प्रकाशक
मत्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला
१/१२८ डुमरावबाग कॉलोनी, अस्सी,
वाराणसी–५ (उ० प्र०)

●

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
डॉ० दरबारीलाल कोठिया

●

प्रथम सस्करण
माघ कृष्णा चतुर्दशी, वी० नि० स २४८६
द्वितीय सस्करण १९००
आषाढ कृष्णा २, वीर नि० स० २५०३
३ जून १९७७

मूल्य १२ रुपये 25/-

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कालोनी,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–१
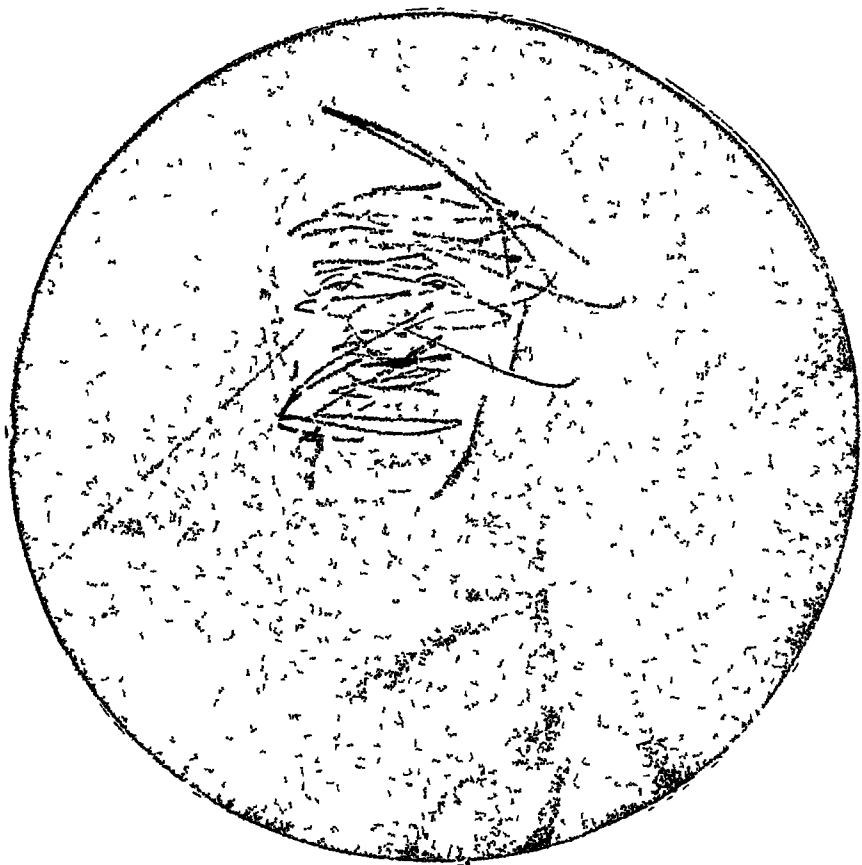
पूज्य श्री १०५ वर्णीजी

प्रकाशकीय
(प्रथम संस्करण)

पूज्य वर्णीजी द्वारा स्वय लिखित मेरी जीवन-गाथा प्रथम भागको प्रकाशित हुए काफी समय गया है। इस वर्ष उसकी द्वितीय आवृत्ति भो प्रकाशित हो गई है। इसे पूज्य वर्णीजीने अपने जीवनवृत्तके साथ अनेक रोचक और हृदयग्राही घटनाओ, सामाजिक प्रवृत्तियो और धर्मोपदेशसे समृद्ध बनाया है। पूज्य वर्णीजीकी कलममें ऐसा कुछ आकर्षण है कि जो भी पाठक इसे पढता है उसकी आत्मा उसे पढते हुए तलमला उठती है। वह वीर नि० स० २४७५ में प्रकाशित हुई थी, इसलिए स्वाभावत उसमें उसके पूर्व तक का ही इहवृत्त सकलित हो सका है। उसे समास करनेके बाद प्रत्येक पाठककी इच्छा होती थी कि इसके आगेकी जोवनी भी यदि इसी प्रकार सकलित होकर प्रकाशित हा जाय, तो जनताका बडा उपकार हो। अनेक बार पूज्य वर्णीजीके समक्ष यह प्रस्ताव रखा भी गया, किन्तु सफलता न मिली। सौभाग्यकी बात है कि पिछले वर्ष जयन्तीके समय जब हम लोगोने पुन यह प्रश्न उठाया और पूज्य वर्णीजीसे प्रार्थना की तो उन्होंने कहा, भैया! उसमें क्या धरा है ' फिर भी यदि आप लोग नही मानते हो तो हमने जो प्रत्येक वर्षकी डायरियाँ आदि लिखी है उनमें अब तककी सब मुख्य घटनाऐं लिपिबद्ध है, आप लोग चाहो तो उनके आधारसे यह यह कार्य हो सकता है। सबको पूज्य वर्णीजीकी यह सम्मति जानकर बडी प्रसन्नता हुई। तत्काल जो डायरियाँ या दूसरी सामग्री इसरीमें थी वे वहाँसे ली गई और जो श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाके कार्यालयमें थी वे वहाँसे ली गई और सबको एकत्रित करके श्री विद्यार्थी नरेन्द्रकुमारजीके हाथ सागर श्री प० पन्नालालजी साहित्याचार्यके पास पहुँचायी गई। मेरी जीवन-गाथा प्रथम भागको प० पन्नालालजी साहित्याचार्यने ही अन्तिम रूप दिया था, इसलिए यही सोचा गया कि इस कार्यको भी वे ही उत्तम रीतिसे निभा सकेंगे। पहले तो पण्डितजीने वर्णीग्रन्थमाला-कार्यालयको यह लिखा कि आजकल हमें विल्कुल अवकाश नही है, गर्मीके दिनोमें हम यह कार्य कर सकेंगे। किन्तु जब उन्हें यह कार्य शीघ्र ही करनेकी प्रेरणा की गई, तो उन्होंने सागर विद्यालयसे प्रतिदिन कुछ समयके लिए अवकाश ले लिया और अपनी एवजमें दूसरे आदमीको नियुक्त कर दिया। प्रसन्नता है कि उन्होने उस समयके भीतर बडी लग्नसे इसे सकलित कर दिया। इसके बाद पण्डितजी उक्त सब सामग्री लेकर ईसरी गये और पूज्य

वर्णीजीके समक्ष उसका पाठ किया। कुल सामग्री पूज्य वर्णीजीके लिखानका सकलन मात्र तो है ही, इमलिए उसमें थोडे वहुत हेर-फेरके सिवा अधिक कुछ भी सशोधन नही करना पडा। वही मेरी जीवन-गाथाका यह उत्तरार्ध है, जिसे श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीको ओरसे प्रकाशित करते हुए हम प्रसन्नताका अनुभव करते है। पण्डितजीने मनोयोगपूर्वक इस कार्यको सम्पन्न किया, इसके लिए तो हम उनके अभारी है ही। साथ ही उन्होने राँची और खरखरी जाकर इस भागकी करीव ८०० प्रतियोके प्रकाशन-खर्चका भार वहन करनेके लिए प्रवन्ध कर दिया, इसके लिए हम उनके और भी विशेष आभारी है। जिन महानुभावोने प्रतियाँ लेना स्वीकार किया उनकी नामावलि इस प्रकार है---

१.	श्रीमान् लाला फीरोजीलालजी सा० दिल्ली	५०० प्रति
२.	रायबहादुर सेठ हर्षचन्द्रजी सा० राची	२०० ,,
३	दानवीर स्वर्गीय सेठ चाँदमलजी पाँड्या राँची वालोंकी धर्मपत्नी गुलावीदेवी जी	२५० प्रति
४	श्रीमान् वावू शिखरचन्दजी सा० खरखरी	२५० ,,
५	श्रीमान् मेठ जगन्नाथजी पाँड्या कोडरमा	१०० ,,
६	श्रीमान् सेठ विमलप्रसादजी खरखरी	१०० ,,
७	श्री रामप्यारी वाई साहुद्रन एवनिंग हाउस न० ५२	२५ ,,
८	श्री वहिन कपूरीदेवी गया (चन्देका)	२५ ,,

इनमेंसे कुछ महानुभावोका रुपया पेशगी भी आ गया है। इन सवके इस उदार सहयोगके लिए हम उनके भी अत्यन्त अभारी है।

मेरी जीवन-गाथा प्रथम भागके समान यह भाग भी अत्यन्त रोचक और आकर्षक वन गया है। इसमें तत्त्वज्ञानकी विशेष प्रचुरता ही इसकी खास विशेषता है। पूज्य वर्णीजीका जीवन प्रारम्भमे लेकर अब तक किस प्रकार व्यतीत हुआ, उनकी सफलताकी कुञ्जी क्या है और उनकी इस जीवन-यात्रासे समाज और देश किस प्रकार लाभान्वित हुआ आदि विविध प्रश्नोंका समुचित उत्तर प्राप्त करनेके लिए तथा अपने जीवनको कार्यशील और प्रामाणिक वनानेके लिए प्रत्येक गृहस्थको तो मेरी जीवन-गाथाके दोनो भागोंका स्वाध्याय करना ही चाहिए। जो वर्तमानमें त्यागी होकर त्यागी-जीवन या प्रतिमा-जीवन व्यतीत कर रहे है उन्हे भी अपने जीवनको कर्तव्यशील और मर्यादानुरूप वनाने के लिए इसके दोनो भागोका स्वाध्याय करना चाहिए।

इस कालमें जैन समाजके निर्माता जो भी महापुरुष हो गये है, या है उनमें पूज्य वर्णीजी प्रमुख है। सस्कृत-विद्याके प्रचारमें तो इनका प्रमुख हाथ

रहा ही है। रूढिचुस्त जनताको उसके बन्धनसे मुक्त करनेमें भी इन्होने अपूर्व योग दिया है। ये अपनी स्फूर्ति, प्रेरणा, सहृदयता, निस्पृहता और परोपकार-वृत्तिके कारण जन-जनके मानसमें समाये हुए हैं। हमारी कामना है कि पूज्य वर्णीजी चिर काल तक हम सबका मार्गदर्शन करते रहें।

श्रद्धावनत

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
ग्रन्थमालासम्पादक और नियामक

वंशीधर व्याकरणाचार्य
मन्त्री श्री ग० वर्णी जैन ग्र० वाराणसी

द्वितीय संस्करण

मेरी जीवन-गाथाके द्वितीय भागका प्रथम बार प्रकाशन वीर निर्वाण सवत् २४८६, सन् १९६० में हुआ था। इस भागमें पूज्य वर्णीजीकी विशाल पद-यात्राका रोचक और मार्मिक वर्णन है ही, उनके बहुमूल्य उपदेशोसे भी यह भरा हुआ है। यदि कोई समाजका विगत पचास वर्षका इतिहास लिखे तो उसके लिए यह मार्गदर्शक एव सहायक होगा।

दो-तीन वर्षसे यह भाग अप्राप्य हो गया था और पाठकोकी माँग उसके लिए निरन्तर आ रही थी। किन्तु अर्थाभावके कारण हम उसका द्वितीय सस्करण इससे पूर्व निकालनेमें असमर्थ रहे।

हमें प्रसन्नता है कि आज हम उसका दूसरा सस्करण प्रकाशित करनेमें सक्षम हो सके हैं। इसका श्रेय समाजको, खासकर कानपुर समाज और उसके अध्यक्ष श्री इन्द्रजीतजो जैन एडवोकेटको है, जिनके प्रयत्नसे हमें गत दशलक्षणपर्वमें वर्णी-ग्रन्थमालाको पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। इन सबका धन्यवाद करता हूँ।

आषाढ वदी २,
वीर निर्वाण सवत् २५०३
३ जून १९७७,
वाराणसी

(डॉ०) दरबारीलाल कोठिया
मन्त्री, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला
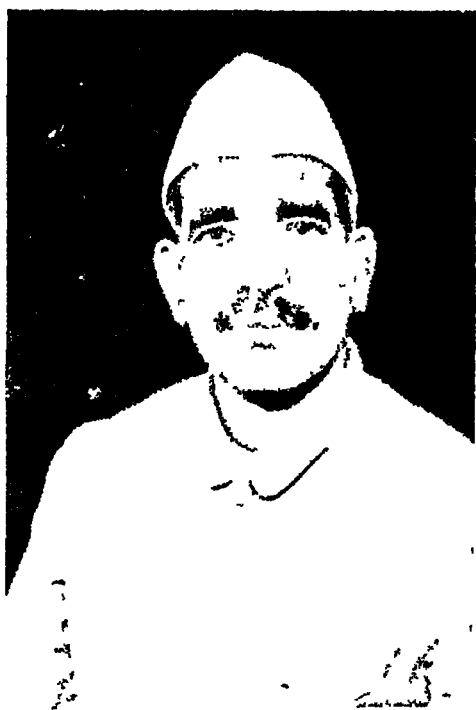
विद्वद्वर्य प० पन्नालालजी साहित्याचार्य
'मेरी जीवन-गाथा' के सफल सपादक

अपनी बात

पिछले वर्ष श्री प० फूलचन्द्रजी शास्त्री वर्णी-जयन्ती पर ईसरी गये थे। भाई नरेन्द्रकुमारजी, जो अपनेको विद्यार्थी लिखते है, पर अव विद्यार्थी नही, एम० ए० और साहित्याचार्य हैं, भी गये थे। वहांसे लौटने पर पण्डितजीने पूज्य वर्णीजीकी पुरानी डायरियों तथा लेख आदिके रजिस्टरोका एक वडा वस्ता नरेन्द्रकुमारजीके हाथ हमारे पास भिजाया और साथ ही उनका डाकसे एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि मैं ईसरीसे लौट रहा हूँ। जीवनगाथा प्रथम भागके आगेकी गाथा इन डायरियोमें पूज्य वर्णीजीने लिखी है। उसे आप शीघ्र ही व्यवस्थित कर दें। नरेन्द्रकुमारजी स्वय तो सागर नही आये, पर उनका भी उक्त सामग्रीके साथ इसी आशयका एक पत्र मिला। इनसे इस पुण्य कार्यके लिये प्रेरणा पा मुझे वहुत हर्ष हुआ। पर प्रात ५ वजेसे लेकर रात्रिके १० वजे तक मेरी जो दिनचर्या है उसमें कुछ लिखनेके लिए समय निकालना कठिन ही था। मैंने वनारस लिखा कि 'यह काम ग्रीष्मावकाशमें हो पावेगा।' ग्रीष्मावकाश-के लिये पर्याप्त देरी थी और पूज्य वावाजीके स्वास्थ्यके जो समाचार आ रहे थे उनसे प्रेरणा यही मिलती थी कि यह काम जल्दीसे जल्दी पूर्ण किया जाय। अन्तमें जव कुछ उपाय न दिखा तव विद्यालयसे मैंने प्रतिदिन दो घटेकी सुविधा मांगी और विद्यालयके अधिकारियोंने मुझे सुविधा दे दी। फलस्वरूप मेरी शक्ति इस काममें लग गई और ३ माहमें यह महान् कार्य पूर्ण हो गया। पूर्ण होते ही मैं पूज्य वावाजीके पास ईसरी गया और उन्हें आद्योपान्त सव सामग्री श्रवण करा दी। आवश्यक हेर-फेरके वाद पाण्डुलिपिको अन्तिम रूप मिल गया और उसे प्रकाशनके लिये श्रीवर्णी-ग्रन्थमालाको सौंप दिया। प्रसन्नता है कि उसका प्रकाशन पूर्ण हो गया है।

मेरी जीवन-गाथाका पूर्व भाग लोकोत्तर घटनाओसे भरा है तो यह दूसरा भाग लोकोत्तर उपदेशोसे भरा है। इस भागमें कितनी ही सामाजिक रीति रिवाजोपर चर्चा आई है और खुलकर उनपर विचार हुआ है। आध्यात्मिक प्रवचनोंका तो मानों यह भण्डार ही है। इसको पढनेसे पाठककी अन्तरात्मा द्रवीभूत हो जाती है। इस युगमें पूज्य वर्णीजीके समान निर्मल, सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न, अटल श्रद्धानी एव समाजकी गतिविधिमें पूर्ण जागरूक रहनेवाला व्यक्ति सुलभ नही है। इसलिये श्री जिनेन्द्र भगवानसे प्रार्थना है कि पूज्य वर्णीजी चिरकाल तक जन-जनको सच्चा पथ प्रदर्शित करते रहें।

सागर
१६-१-१९६०

श्रद्धावनत
पन्नालाल जैन

अपनी बात

(द्वितीय संस्करण)

मैं पूज्यवर दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज और पूज्यवर गणेशकीर्तिजी महाराज (पूज्य वर्णीजी) का नाम मनोज्ञ साधुओके उदाहरणमें प्रस्तुत किया करता हूँ। (मनोज्ञ साधु वे कहलाते है जो अपने ज्ञानादिगुणोके द्वारा लोकमे अत्यधिक प्रसिद्ध होते है और जिनका नाम लेते ही जनताकी आन्तरिक भक्ति प्रकट हो जाती है।)

वहुत प्रार्थना करनेके बाद पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी महाराजने अपनी जीवन-गाथा लिपिबद्ध कर जनसामान्यका महान् उपकार किया है। इसके दो भाग है। पहले भागके ४ सस्करण निकल चुके है और दूसरे भागका भी यह दूसरा सस्करण प्रकाशित हो रहा है। यह भाग वहुत समयसे अप्राप्य हो गया था। लोगोकी माँग आती रहती थी, इसलिये इसका द्वितीय सस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

इस भागके परिशिष्टमे हम पूज्य वर्णीजीकी समाधिका आँखों देखा दृश्य श्री नीरजजी जैन सतनाकी लेखनी द्वारा दे रहे है। इच्छा तो मेरी यह रही थी कि तृतीय भागका पृथक्से प्रकाशन करता और इसमे यह सव सामग्री देता, परन्तु साधनोंके अभावमे वह इच्छा पूर्ण नही हो सकी। दूसरी बात यह भी रही कि भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे पूज्य वर्णीजीके शताब्दी-महोत्सवपर 'गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति-ग्रन्थ'का प्रकाशन हो चुका है। अपेक्षित सामग्रीका संकलन उसमे हो गया है, अत तृतीय भागके प्रकाशनकी इच्छा समाप्त हो गयी।

जनताने जिस श्रद्धा और भक्तिसे पूज्य वर्णीजीके साहित्यको अपनाया है उससे उनके साहित्य और विवेचनशैलीकी सरलताका महत्व सामने आता है। उनका समयसार भी जनताके द्वारा सुरुचिपूर्वक पढा गया, जिससे उसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित करना पडी है। वर्णीग्रन्थमालाके सुयोग्य और उत्साही मन्त्री डा० दरवारीलालजी कोठिया वर्णी-ग्रन्थमालाका सुन्दर सचालन कर रहे हैं। आशा करता हूँ कि पूज्य वर्णीजीका अवशिष्ट साहित्य, जो पत्रावलीके रूपमे या टेप रिकार्डोमे यत्रतत्र विखरा पड़ा है उसे भी यथाशीघ्र प्रकाशित कर जनताको उसका

रसास्वादन करावेगे। भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्के द्वारा प्रकाशित 'गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति-ग्रन्थ' वर्णीजी तथा व्यक्तित्वपर प्रकाश डालनेवाला अनूठा ग्रन्थ है। इसकी ओर भी पाठकोका ध्यान आकर्षित करता हूँ। इसकी १०० प्रतियाँ श्री रतनलालजी पकज टेक्स टाइल्स मेरठ द्वारा भारतवर्षके समस्त विश्वविद्यालयो और प्रमुख सस्थाओमे अपनी ओरसे फ्री भिजवायी गयी हैं। थोडी-सी प्रतियाँ ही शेष रही हैं।

मेरी जीवन-गाथा द्वितीय भागके इस सस्करणमे प्रूफ आदिकी जो त्रुटियाँ रही हो, उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सागर
९-६-१९७७

विनीत .
पन्नालाल साहित्याचार्य

●

मेरी जीवन-गाथा

द्वितीय भाग

द्वितीय संस्करण

पूज्य वर्णीजीके शरीरकी वर्तमान अवस्था

[पृ० १]

मुरारसे आगरा

स सत्यविद्यातपसा प्रणायक समग्रधीरुग्रकुलाम्वरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रम ॥

इसी ग्वालियरमे भट्टारकजीका मन्दिर है। मन्दिरमे प्राचीन शास्त्र-भण्डार है। परन्तु जो अधिकारी भट्टारकजीका शिष्य है वह किसीको पुस्तक नही दिखाता तथा मनमानी गाली देता है। इसका मूल कारण साक्षर नही होना है। पासमे जो कुछ द्रव्य है उसीसे निर्वाह करता है। अब जैन-जनता भी साक्षर—विवेकवती हो गई है। वह अव अनक्षरद्वेषियोका आदर नही करती। हमने बहुत प्रयास किया, परन्तु अन्तमे निराश आना पडा। हृदयमे कुछ दुःख भी हुआ, परन्तु मनमे यह विचार आनेसे वह दूर हो गया कि ससारमे मनुष्योकी प्रवृत्ति स्वेच्छानुसार होती है और वे अन्यको अपने रूप परिणमाना चाहते है जब कि वे परिणमते नही। इस दशामे महादुःखके पात्र होते है। मनुष्य यदि यह मानना छोड देवे कि पदार्थोका परिणमन हम अपने अनुकूल कर सकते है तो दुःखी होनेकी कुछ भी बात न रहे। अस्तु।

अगहन वदी ८ सवत् २००५ को एक बजे ग्वालियरसे चलकर ४ मील पर आगले साहबकी कोठीमे ठहर गये। कोठी राजमहलके समान जान पडती है। यहाँ धर्मध्यानके योग्य निर्जन स्थान बहुत है। जल यहाँका अत्यन्त मधुर है, वायु स्वच्छ है तथा बाह्यमे त्रसजीवोकी सख्या विपुल नही है। मकानमे ऋतुके अनुकूल सब सुविधा है। जब बनी होगी तब उसका स्वरूप अति निर्मल होगा। परन्तु अब मालिकके विना शून्य हो रही है। ऋषिगणोके योग्य है। परन्तु इस कालमे वे महात्मा है नही। यहाँसे ६ मील चलकर बामौरा आ गये और बामौरासे ४ मील चलकर नूराबाद आ गये। यहाँ पर भी आलीशान कोठी थी, उसीमे ठहर गये।

अगहन वदी १२ सवत् २००५ को मोरेनाके अञ्चलमे पहुँचे। पहुँचते ही एकदम स्वर्गीय, प० गोपालदासजीका स्मरण आ गया। यह वही महापुरुष है जिनके आशिक विभवसे आज जैन जनतामे जैन सिद्धान्तका विकास दृश्य हो रहा है। जब मोरेनाके समीप पहुँचे तब श्रीमान् पं० मक्खनलालजी साहब जो कि जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान

है छात्रवर्गके साथ आये। आपने बहुत ही प्रेमसे नगरमें प्रवेश कराया और सिद्धान्त-विद्यालयके भवनमे ठहराया। सुखपूर्वक रात्रि बीत गई। प्रात'काल श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के दर्शन करनेके लिये जैन मन्दिर-मे गये। दर्शन कर बहुत ही विशुद्धता हुई। इतनेमे प० मक्खनलाल-जी आ गये और कहने लगे कि अभिषेक देखने चलिये। हम लोग पण्डितजी के साथ विद्यालयके भवनके ऊपर, जहाँ जिनचैत्यालय था, गये। वहाँ पर एक प्रतिबिम्बको चौकीके ऊपर विराजमान किया और फिर पण्डितजीने पाठ प्रारम्भ किया। पञ्चामृताभिषेक किया। यह विलक्षणता यहाँ ही देखनेमें आई कि जलाभिषेकके साथ-साथ भगवान्‌के शिर ऊपर पुष्पोका भी अभिषेक कराया गया। पुष्पोका शोधन प्राय: नही देखनेमे आया। हमने पण्डितजीसे कुछ नही कहा। उनकी जो इच्छा थी वह उन्होने किया। अनन्तर नीचे प्रवचन हुआ। यहाँकी जनताका बहुभाग इस पूजनप्रक्रियाको नही चाहता, यह बात प्रसङ्ग-वश लिख दी।

प्रवचनके अनन्तर जब चर्याके लिये निकले तब पण्डितजीके घर पर भोजन हुआ। पण्डितजीने बहुत हर्षके साथ आतिथ्य-सत्कार किया तथा सोलापुरकी मुद्रित भगवती आराधनाकी एक प्रति स्वाध्यायके अर्थ प्रदान की। यहाँ पर सिद्धान्त-विद्यालय बहुत प्राचीन सस्था है। इसकी स्थापना स्वर्गीय श्री गुरु गोपालदासजीने की थी। इसके द्वारा बहुत निष्णात विद्वान् निकले। जिनने भारतवर्ष भरमे कठिनसे कठिन सिद्धान्तशास्त्रोको सरल रूपसे पठनक्रममें ला दिया। १ बजे दिनसे सार्वजनिक सभा थी, प्रसगवश यहाँ पर मन्दिरके निमित्तसे लोगोमे जो परस्पर मनोमालिन्य है उसको मिटानेके लिये परिश्रम किया, परन्तु कुछ फल नही हुआ। अगले दिन भी प्रवचनके अनन्तर संगठनकी बात हुई, परन्तु कोई तत्त्व नही निकला। (जब तक हृदयमे कषायरूप विषके कण विद्यमान हैं तब तक निर्मलताका आना दुर्भर है) मैं तो यह विचार कर तटस्थ रह गया कि ससारकी दशा जो है वही रहेगी, जिन्हे आत्म-कल्याण करना हो वे इस चिन्ताको त्यागे, कल्याणके पास स्वयं पहुँच जावेगे।

मोरेनामे ३ दिन रहनेके बाद धौलपुरकी ओर चल दिये। मार्गमे एक ग्रामके बाह्य धर्मशाला थी, उसमे ठहर गये। धर्मशालाका जो स्वामी था उसने सर्व प्रकारसे सत्कार किया। उसकी अन्तरङ्ग भावना भोजन करानेकी थी, परन्तु यहाँकी प्रक्रिया तो उसके हाथका पानी पीना

भी आगम-विरुद्ध मानती है। यद्यपि आगम यही तो कहता है कि जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा हो और जो शुद्धता पूर्वक भोजन बनावे ऐसे त्रिवर्णका भोजन मुनि भी कर सकता है। अब विचारो जब उसकी रुचि आपको भोजन करानेकी हुई तब आपके धर्ममे स्वय श्रद्धा हो गई। जब श्रद्धा आपमे हो गई तब जो प्रक्रिया आप बताओगे उसी प्रक्रियासे वह अनायास आपके अनुकूल भोजन बना देगा। परन्तु यहाँ तो रूढिवादकी इतनी महिमा है कि जैनधर्मका प्रचार होना कठिन है। अस्तु, फिर भी उस धर्मशालाके स्वामीने संघके लोगोंको दुग्ध दान दिया, ५ सेर चावल-दाल तथा एक भेली गुडकी दान की। साथ ही बहुत ही शिष्टाचारका बर्ताव किया।

हम लोग जिस अभिप्रायवाले हैं उसीको उपयोगमे लानेका प्रयत्न करते है। हमने धर्मको निजकी पैतृक सम्पत्ति समझ रक्खी है। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। बाह्यमे आचरण ऐसा होना चाहिए जो उसमे सहायक हो। यही कारण है कि जो मानव मद्य, मास, मधुका त्याग कर चुकता है वही चरणानुयोगमे वर्णित धर्मके पालनका अधिकारी होता है। इसका मूल हेतु यही है कि मद्यपायी मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। उन्मत्त होनेसे उसका मन विक्षिप्त हो जाता है। जिसका मन विक्षिप्त हो गया वह धर्मको भूल जाता है। जो धर्मको भूल जाता है वह नि शङ्क हिंसादि पापोमे अनर्गल प्रवृत्ति करता है। इसी प्रकार मासादिकी प्रवृत्तिमे भी अनर्थपरम्परा जान लेना। आजकल हम लोग उपदेश देकर जनताका सुधार करनेकी चेष्टा नही करते। केवल, 'यह लोग पतित हैं' इसी प्रकारकी कथा कर सतोष कर लेते है। और की बात जाने दो, हमको ५० वर्ष हो गये, प्रतिदिन यही कथा करते-करते समय बीत गया। परन्तु एक भी मनुष्यको सुमार्ग पर नही ला सके। कहाँ तक लिखे अथवा अन्यकी कथा क्या कहूँ मैं स्वय अपनी आत्माको सुमार्ग पर नही ला सका। इसका अर्थ यह नही कि बाह्य आचरणमे त्रुटि की हो, किन्तु जो अन्तरङ्गकी पवित्रता पदके योग्य है उसकी पूर्ति नही कर सका। तात्त्विक मर्म तो यही है कि अन्तरङ्गमे मूर्च्छा न हो। जब इसके ऊपर दृष्टि देते है तब मनमे यही आता है कि इस सासारिक प्रशसाको त्याग आत्मदृष्टि करो, यही सत्य मार्ग है।

धर्मशालासे चलकर एक छोटे ग्राममे पहुँच गया। इस ग्राममे ठहरनेका कोई स्थान न था, तब वहाँ जो गृहस्थ था उसने अपने निवासको खाली कर दिया और कहा कि सानन्द ठहर जाइये, कोई सकोच

करिये तथा दुग्धादि पान करिये। हमने कहा हम लोग रात्रिको दुग्धादि पान नही करते। यह सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। सानन्द ठहराया, धान्यका घास बिछानेको दिया। सुखसे रात्रि बिताई। यहाँसे ६ मील चलकर एक ग्राममें ठहर गये। यहाँका कूप ७० हाथ गहरा था, पानी अति स्वादिष्ट था। यहाँसे भोजन कर चार मील चलनेके बाद चम्बल नदीके तट पर आ गये। यहाँ श्रीमान् प्यारेलालजी भगतके आनेसे बहुत ही प्रमोद हुआ। आपसे सलाप करते-करते ४½ बजे धौलपुर पहुँच गये। आगरासे सेठ मटरूमलजी रईस भी आ गये। शिष्टाचारसे सम्मेलन हुआ। मन्दिरमे प्रवचन हुआ, जो जनता थी, वह आ गई। मनुष्योकी प्रवृत्ति सरल हे। जैनी है यह अवश्य है परन्तु ग्रामवासी हैं, अत' जैन-धर्मका स्वरूप नही समझते। यहाँके राजा बहुत ही सज्जन हैं। वनमे जाते हैं और रोटी आदि लेकर पशुओको खिलाते हैं। राजाके पहुँचने पर पशु स्वयमेव उनके पास आ जाते हैं। देखो, दयाकी महिमा कि पशु भी अपने हितकारीको समझ लेते हैं। यदि हम लोग दया करना सीख लें, तो क्रूरसे क्रूर जीव भी शान्त हो सकता है। परन्तु हमने निजको महान् मान नाना अनर्थ करनेका ही अभ्यास कर रक्खा है। पशु कितनी ही दुष्ट प्रकृतिका होगा, परन्तु अपने पुत्रकी रक्षाके लिये प्राण देनेमे पीछा नही करेगा। मनुष्योंमें यह बात नही देखी जाती। यदि यह मनुष्य अपने स्वरूपका अवलोकन करे तो पशुओकी अपेक्षा अनन्त प्राणियोका कल्याण कर सकता है। मोक्षमार्गका उदय इसी मनुष्य पर्यायमे होता है, अत. जिन्हे मनुष्यताकी रक्षा करना है उन्हे अनेक उपद्रवोको त्याग केवल मोक्षमार्गकी ओर लक्ष्य देना चाहिये और जो समय गल्पवादमे लगाते हैं उसे धर्म-कार्योमे लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँके राजाकी प्रवृत्ति देख हमको दयाका पाठ पढना चाहिये।

धौलपुरसे ५ मील चलकर विरौदा पर शयन किया। भगतजीने रात्रिको उपदेश दिया। जनता अच्छी थी। यदि कोई परोपकारी धर्मात्मा हो, तो उससे नगरोकी अपेक्षा ग्रामोमे अधिक जीवोको मोक्षमार्गका लाभ हो सकता है। परन्तु जब दृष्टि स्वपर उपकार की हो तभी यह काम बन सकता है। अब मेरी शारीरिक शक्ति अतिक्षीण हो गई है। शारीरिक शक्तिकी क्षीणतासे वाचनिक कला भी न्यून हो गई है, अतएव जनता-को प्रसन्न करना कठिन है। ससारमे वही मनुष्य जगत्का उपकार कर सकता है जो भीतरसे निर्मल हो। जैसे जब सूर्य मेघपटलसे आच्छादित रहता है तब जगत्का उपकार नही कर सकता। उसका उपकार यही

है कि वह पदार्थोंको प्रकाशित करता है और यह मनुष्य उन पदार्थोंमेसे अपने योग्य पदार्थोंको चुन उनसे अपनी इच्छाएँ पूर्ण करता है। सूर्यके समान ही वक्ताकी आत्मा जब तक कषायके पटलसे आच्छादित रहती है तब तक वह जगत्का उपकार नही कर सकता। यहाँसे चलकर मागरौल तथा एक अन्य ग्राममे ठहरते हुए अगहन सुदी ८ को राजाखेड़ा पहुँच गये।

यहाँ पर श्री भगत प्यारेलालजीके द्वारा स्थापित एक जैन विद्यालय है। भगतजीके सत्प्रयत्नसे इस विद्यालयका दो लाखका फण्ड है। श्री प० नन्हेलालजी इसके मुख्याध्यापक है। आप श्रीयुत महानुभाव प० वशीधरजी सिद्धान्तशास्त्रीके मुख्य शिष्योमे प्रथमतम शिष्य है। आपकी पठन-पाठनशैली अत्यन्त प्रशस्त है। यहाँ पर कई जैन मन्दिर है, अनेक गृह जैसवाल भाइयोके है। सर्व ही धर्मके प्रेमी है। वडे प्रेमसे सबने प्रवचन सुना, यथायोग्य नियम भी लिये। पाठशालाका उत्सव हुआ। उसमें यथाशक्ति दान दिया। जैनियोमे दान देनेकी प्रक्रिया प्राय उत्तम है। प्रत्येक कार्यमे दान देनेका प्रचार है किन्तु व्यवस्था नही। यदि व्यवस्था हो जावे तो धर्मके अनेक कार्य अनायास चल सकते हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्तिका नेतृत्व है—सब अपनेको नेता समझते है और अपने अभिप्रायके अनुरूप कार्य करनेका आग्रह करते है। यथार्थमे मनुष्य पर्याय पानेका फल यह है कि अपनेको सत्कर्ममे लगावे। सत्कर्मसे तात्पर्य यह है कि विषयेच्छाको त्यागे। विषयलिप्साने जगत्को अन्धा बना दिया। जगत्को अपनाना—अपना समझना ही अपने पातका कारण है। जन्मका पाना उसीका सार्थक है जो शान्तिसे वीते। अन्यथा पशुवत् जीवन वध-बन्धनका ही कारण है। मनुष्य अपने सुखके लिये परका आघात करता है परन्तु उसका इस प्रकारका व्यवहार महान् कष्टप्रद है। ससारमे जिनको आत्महितकी कामना है उसे उचित है कि परकी समालोचना छोडे। केवल आत्मामे जो विकार भाव उत्पन्न होते है उन्हे त्यागे। परके उपदेशसे कुछ लाभ नही और न परको उपदेश देनेसे आत्मलाभ होता है। मोहकी भ्रान्ति छोड़ो।

राजाखेडामे तीन दिन ठहरकर आगराके लिये प्रस्थान कर दिया। वीचमे दो दिन ठहरे। जैनियोके घर मिले। बडे आदरसे रक्खा तथा सघके मनुष्योको भोजन दिया, श्रद्धापूर्वक धर्मका श्रवण किया। धर्मके पिपासु जितने ग्रामीण जन होते है उतने नागरिक मनुष्य नही होते। देहातमे भोजन स्वच्छ तथा दुग्ध, घी शुद्ध मिलता है। शाक बहुत स्वा-

दिष्ट तथा पानी, हवा सर्व ही उत्तम मिलते है। किन्तु शिक्षाकी त्रुटिसे वाचालताकी त्रुटि रहती है। यदि एक दृष्टिसे देखा जावे तो वर्तमान शिक्षा उनमे न होनेसे उन लोगोकी आर्षधर्ममे श्रद्धा है तथा स्त्रीसमाजमे भी इस्कूली और कालेजी शिक्षाके न होनेसे कार्य करनेकी कुशलता है। हाथसे पीसना, रोटी बनाना तथा अतिथिको भोजन दान देने की प्रथा है। फिर भी शिक्षा देनेकी आवश्यकता तो है ही। यह शिक्षा ऐसी हो, जिससे मनुष्यमे मनुष्यताका विकास आ जावे। यदि केवल धनोपार्जन-की ही शिक्षा भारतमे रही तो इतर देशो की तरह भारत भी परको हडपनेके प्रयत्नमे रहेगा और जिन व्यसनोसे मुक्त होना चाहता है उन ही का पात्र हो जावेगा तथा भारतका जो सिद्धान्त था कि—

अय परो निजो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वह बालकोंके हृदयमे अङ्कित हो जाता था और समय पाकर उसका पूर्ण उपयोग भी होता था। अब तो बालकोके माँ बाप पहले ही गुरुजीसे यह निवेदन कर देते हैं कि हमारे पुत्रको वह शिक्षा देना, जिससे वह आनन्दसे दो रोटियाँ खा सके। जिस देशमे ऐसे विचार बालकोके पिताके हो वहाँ बालक विद्योपार्जन कर परोपकार-निष्णात होगे यह असम्भव है। यहाँ पर मार्गमे जो ग्राम मिले उनमे बहुतसे क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ऐसे मिले जो अपनेको गोलापूरव कहते है। हमारे प्रान्तमे गोलापूरव जैनधर्म ही पालते है परन्तु यहाँ सर्व गोलापूरव शिव, कृष्ण तथा रामके उपासक है। सभी लोगोने सादर धर्मश्रवण किया। किन्तु वर्तमानके व्यवहार इस तरह सीमित है कि किसीमे अन्यके साथ सहानुभूति दिखानेकी क्षमता नही। इसी से सम्प्रदायवादकी वृद्धि हो रही है। इस प्रान्तमे जैसवाल जैनी बहुत है, अन्य जातिवाले कुछ कम हैं। यहाँका जलवायु बहुत ही उत्तम है।

राजाखेड़ासे ६ मील चलकर एक नदी आई, उसे पार कर निर्जन स्थानमे स्थित एक धर्मशालामे ठहर गये। स्थान बहुत रम्य तथा सुविधाजनक था। एक दहलानमे सर्व समुदाय ठहर गया। पौष मास था, इससे सर्दीका प्रकोप था। रात्रिमे निद्रा देवी न जाने कहाँ पलाय-मान हो गई ? प्रयत्न करने पर भी उसका दर्शन नही हुआ। अन्तरङ्ग-की मूर्च्छासे उसके अभावमे जो लाभ सयमी महानुभाव लेते हैं उसका रञ्च भी हमारे पल्ले न पडा। प्रत्युत इसके विपरीत आर्त्तपरिणामोका ही उदय रहा। कभी-कभी अच्छे विचार भी आते थे, परन्तु अधिक देर

तक नही रहते थे। कभी-कभी दिगम्बर मुद्राकी स्मृति आती थी और उससे यह शीतवाधा कुछ समयके लिए श्मशान-वैराग्यका काम करती थी। यह देखते थे कि कव प्रात काल हो और इस सकटावस्थासे अपने को सुरक्षित करे। इत्यादि कल्पनाओके अनन्तर प्रात.काल आ ही गया। सामायिक कार्य समाप्त कर वहाँसे चल दिये। सूर्यकी सुनहली धूप सर्वत्र फैल गई और उसकी हलकी ऊष्मासे कुछ सतोषका अनुभव हुआ। एक ग्राममे पहुँच गये। यहाँ पर श्रावकोके घर भी थे। वही पर भोजन किया। सवने वहुत आग्रह किया कि एक दिन यहाँ ही निवास करिये। हम लोग भी तो मनुष्य है हमको भी हमारी वात वताना चाहिये। केवल ऊपरी वातोंसे सन्तोष कराकर आप लोगोका यहाँसे गमन करना न्याय-मार्गकी अवहेलना करना है। हम ग्रामीण है, सरल है, परन्तु इसका अर्थ यह नही कि हम कुछ न समझते हो। हममे भी धर्मधारणकी योग्यता है। हाँ, हमने शिक्षा नही पाई। शिक्षासे तात्पर्य यह है कि स्कूल-कालेज तथा विद्यालयोमे पुस्तक द्वारा ज्ञान प्राप्त नही किया, किन्तु वह ज्ञान, जिसके द्वारा यह आत्मा अपना पराया भेद जानकर पापोसे वचती है, सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोमे प्राकृत रूपसे विद्यमान रहता ही है। यदि वह ज्ञान हममे न होता तो हम आपको अपना साधु न मानते और न आपको आहारदानकी चेष्टा करते। हम यह जानते है कि आहारदानसे पुण्य-वन्ध होता है, आत्मामे लोभका निरास होता है और मार्गकी प्रभावना होती है। विना स्कूली शिक्षाके हममे दया भी है, हिंसासे भयभीत भी रहते हैं। भोजनादिमे निर्जीव अन्न पदार्थोंका भक्षण करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन वातोंमे हम लोग नागरिक मनुष्योकी अपेक्षा न्यून नही हैं। केवल वाह्य आडम्वरोकी अपेक्षा उनसे जघन्य है। यही कारण है कि आप लोग उनके प्रलोभनमे आकर घण्टो व्याख्यान देकर भी विराम नही लेते है परन्तु हम लोगो पर आपकी इतनी भी दयादृष्टि नही होती कि थोडा भी समय प्रवचनमे लगाकर हमे सुमार्ग पर लानेकी चेष्टा करें। यह आपका दोष नही, कालकी महिमा है। यदि तथ्य विचारसे इस पर आप परामर्श करेगे तव हमारा भाव आपके हृदयगम होगा। ग्रामोकी अपेक्षा शहरोमे न तो आपको अन्न ही उत्तम मिलता है और न जल ही। प्रथम तो जिनके द्वारा आपको भोजन मिलता है वे औरते हाथसे आटा नही पीसती। वहुतोके गृहमे तो पीसनेकी चक्की ही नही। पानीकी भी यही दुर्दशा है। घीकी कथा ही छोडिये। हाँ, यह अवश्य है कि शहरमे धन्यवाद और कुछ अपील करनेपर धन मिल जाता है. जिससे

वर्तमानमे सस्थाएँ चल रही है। परन्तु हमारा तो यह विश्वास है कि शहरमे जो धन मिलता है उसमे न्यायार्जितका भाग न होनेसे उसका सदुपयोग नही होता। यही कारण है कि समाजमे निरपेक्ष धर्मका उद्योग करनेवाले बहुत ही अल्प देखे जाते है। अब आप लोगोकी इच्छा, जहाँ चाहे जाइये, हमारा उदय ही हमारा कल्याण करेगा।

ग्रामके लोगोका लम्बा व्याख्यान सुन हम हतप्रभसे रह गये कुछ भी उत्तर देनेमे समर्थ नही हुए। यहाँसे चल कर एक ग्राममे सायकाल पहुँच गये और प्रात काल ३ मील चल एक दूसरे ग्राममे पहुँच गये। यहाँ पर एक ब्रह्मचारीजी रहते थे उन्होने भोजनका प्रबन्ध किया। महती भक्तिके साथ सघको भोजन कराया। यहाँ पर आगरासे बहुतसे मनुष्य आ गये। सामायिक करनेके अनन्तर सर्व जनसमुदायने आगरा-के लिये प्रस्थान कर दिया। दो मील जानेके बाद सहस्रो मनुष्योका समुदाय गाजे बाजेके साथ छीपीटोलाके लिये चला। बाजा बजानेवाले बाजामे मधुर मधुर गाना सुना रहे थे, जिसको श्रवण कर मार्गका परिश्रम विस्मृत-सा हो गया। समुदायके साथ छीपीटोलाकी धर्मशाला-मे पहुँच गये। ½ घण्टा व्याख्यानमे गया। व्याख्यानमे यही अलाप था कि हम लोगोका महान् भाग्य है जो आपका शुभागमन हमारे यहाँ हुआ। हमने भी शिष्टाचारके नाते जो कुछ बना, वक्तव्य दिया। वक्तव्यमे मुख्य बात यह थी कि—

मनुष्यभव पाना अति दुर्लभ है। इसका सदुपयोग यही है कि निजको जानकर परका त्याग कर इस ससार-बन्धनसे छूटनेका उपाय करना चाहिये। इसका मूल कारण सयम भाव है। यही तात्पर्य है कि सब ओरसे अपनेको हटा कर अपनेमे लीन हो जाना। यही ससारके विनाश-का मूल है, अत सबसे मोह त्यागो हम तो कोई वस्तु नही महापुरुषोने भी तो यही मार्ग दिखाया हैं। महापुरुष वही है जो मोह-राग-द्वेषको निर्मूलित करनेका प्रयत्न करता है। राग-द्वेषके अभावमे मूल कारण मोहका अन्त है। उसका अन्त करनेवाला ही सर्वपूज्य हो जाता है। पूज्यता-अपूज्यता स्वाभाविक पर्याय नही किन्तु निमित्त पाकर आविर्भूत होती है। जहाँ मोहादिरूप आत्मपरिणति होती है वही अपूज्यताका व्यवहार होने लगता है और जहाँ इनका नाश होता है वही पूज्यताका व्यवहार होने लगता है। पूज्यता-अपूज्यता किसी जातिविशेषवाले व्यक्तिकी नही होती। जहाँ पापोकी निवृत्ति होकर आत्मश्रद्धा हो जाती है वही पूज्यता आ जाती है और जहाँ पापोकी प्रवृत्ति होने लगती है वही

अपूज्यताका व्यवहार होने लगता है। यद्यपि समस्त आत्माओंमे निर्मल होनेकी योग्यता है तथापि अनादि कालसे परपदार्थोका सम्बन्ध इस प्रकारका हो रहा है कि कुछ भी सुध-बुध नही रहती। यह जीव निरन्तर शरीरके अनुकूल ही प्रवृत्ति करता है। आप लोगोने बाजा वजवा कर वाह्य प्रभावना की। बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाया, पर आभ्यन्तर प्रभावनाकी ओर प्रयास नही हुआ। यदि आभ्यन्तर प्रभावना हो जाय तो स्वर्णमे सुगन्धि हो जावे। अपनी ओर किसीका लक्ष्य नही। प्राय सर्वत्र यही दृश्य देखा जाता है। हमारी प्रभावनासे अन्य लोग लाभ उठा लेते है पर हम तो दर्शकमात्र ही रहनेका प्रयास करते हैं। अन्यको धर्म-का स्वरूप आ जावे, यही चेष्टा हमारी रहती है।

छीपीटोलाकी धर्मशालामे दो दिन ठहरे। तीसरे दिन श्री महावीर इन्टर कालेजका उत्सव था, गाजे-बाजेके साथ वहाँ गये। उत्सवमे अच्छे-अच्छे मनुष्योका समारोह था। व्याख्यानादिका अच्छा प्रबन्ध था। जितने व्याख्यान हुए वे सब प्राय लौकिक पदार्थोके पोषक थे। पार-मार्थिक दृष्टि लोगोकी नही। यद्यपि आज शिक्षाका प्रचार अधिक है परन्तु पारमार्थिक दृष्टिकी ओर ध्यान नही। पहले समयमे शिक्षाका उद्देश्य आत्महित था, परन्तु वर्तमानकी शिक्षाका उद्देश्य अर्थार्जन और कामसेवन है। प्राचीन ऋषियोने कहा है कि—

दु खाद्बिभेषि नितरामभिवाञ्छसि सुखमतोऽहमप्यात्मन्।
दु खापहारि सुखकरमनुशास्मि तवानुमतमेवं॥

अब यह कथा पुराणोमे रह गई है। इस कथाको जो कहे वह मनुष्यों-की गणनामे गणनीय नही। यही नही, लोग तो यहाँ तक कह देते है कि इस उपदेशने हमारे भारतवर्षका पतन कर दिया। सभ्य वही जो द्रव्य-को अर्जन कर सके और अच्छे वस्त्रादिकोसे सुसज्जित रहे। स्त्री और पुरुषोमे कोई अन्तर न देखें। जैसे आप भ्रमणको जाता है वैसे ही स्त्री-गण भी जावे। जिस प्रकार तुम्हे सबसे भाषण करनेका अधिकार है उसी तरह स्त्रीसमाजको भी हो। अस्तु, विषयान्तरको छोडो। सभाका काल पूर्ण होने पर कालेज देखा, व्यवस्था बहुत सुन्दर थी, मटरूमलजी बैनाडाका अनुशासन प्रशसनीय है। यहाँ पर एक छात्रावास भी है तथा छात्रावासमे जो छात्र रहते है उनके धर्मसाधनके अर्थ १ सुन्दर मन्दिर भी है। उसमे एक बृहत्मूर्ति है जिसके दर्शनसे चित्त शान्त हो जाता है। यह सर्व कार्य बैनाडाजीके द्वारा सम्यक्रीतिसे चल रहा है। तदनन्तर गाजे-बाजेके साथ अन्य जिनमन्दिरोके दर्शन करते हुए बेलनगञ्जकी

धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशालामे ऊपर मन्दिर है। उसमें एक विम्व वहुत ही मनोज्ञ है। दर्शन करनेसे अत्यन्त शान्ति आई। यह विम्व श्री पद्मचन्द्रजी वैनाडा और उनके सुपुत्र मटरूमल्लजी वैनाड़ा ने शाहपुर-गणेशगज (सागर) मे पञ्चकल्याणकके समय प्रतिष्ठित कराकर यहाँ पधराया है। इसके दर्शन कर भव्योंको जो आनन्द आता है वह वे ही जाने। मन्दिरमे दो वेदिकाएँ और भी हैं। धर्मशालाके वगलमे श्री स्वर्गीय मूलचन्द्र सेठकी दुकान है। उसमे श्री मगनमल्लजी पाटनी है के स्वामी हैं। आप अत्यन्त सज्जन हैं। आप और आपकी धर्मपत्नी-दोनो प्रात -काल जिनेन्द्रदेवका अर्चन करते हैं। आपके दो सुपुत्र हैं वडेका नाम श्री कुँवर नेमिचन्द्र है। दोनों ही सुयोग्य हैं। नेमिचन्द्रजीको अध्यात्म-शास्त्रमे अधिक रुचि है। आपका अभिप्राय श्रीकानजी स्वामीके अनुकूल है। विशेप विवेचनकी आवश्यकता नही।

यहाँ पर श्री ताराचन्द्रजो रपरिया रहते हैं। आप आँग्लविद्याके वी. ए. हैं। फिर भी जैन शास्त्रोके मर्मज्ञ हैं। आपकी व्याख्यानशैली अति उत्तम है, चारो अनुयोगोके ज्ञाता हैं, आपका व्यवहार अत्यन्त निर्मल है, फैशनकी गन्ध भी आपको नही है। आपके मामा विशिष्ट सम्पन्न हैं। फिर भी आप स्वतन्त्र व्यापार कर स्वय सम्पन्न हुए हैं। धार्मिक पुरुप है। विद्वानोसे प्रेम रखते हैं। आपकी मण्डलीमे प्राय. तत्त्वरुचिवाले ही है। प्रतिदिन शास्त्र होता है। श्रोताओमे श्री वावूरामजी शास्त्री भी आते है। आप वहुत तार्किक हैं—किसी किसी पदार्थको सहसा नही मान लेते। तर्क भी अनर्गल नही करते। यदि यह जीव जैनधर्मके शास्त्रोका अभ्यास करे तो एक ही हो। परन्तु गृहस्थीके चक्रसे पृथक् हो तव न। इनकी स्त्री सुशीला है। प्रतिदिन दर्शनादि करती है, जव कि इसका जन्म विप्रकुलका है। ताराचन्द्रजीके सम्वन्धसे प० तुलाराम जी व वकील हजारीलालजी भी अच्छे धर्मज्ञ हो गये हैं। दो मारवाडी भाई तथा ख्यालीरामजी भी इनके शास्त्रमे आते हैं। यहाँ पर एक सभा हुई, जिसमे जनताका समारोह अच्छा था। श्वेताम्वर साधु भी अनेक आये थे। साम्यरसके विषयमे व्याख्यान हुआ। विपय रोचक था, अत सवको रुचिकर हुआ। आत्महित इसीमे है। इससे उच्चतम विषय क्या हो सकता है। यदि इस पर अमल हुआ तो सर्व उपद्रव अनायास ही शान्त हो जावेगे। परमार्थसे कहनेका नही वह तो अनुभवगम्य है। परन्तु अनुभव तो ससारके विषयोमे लीन हो रहा है, इसका स्वाद आना ही दुर्लभ है। उपयोग क्रमवर्ती है, अत. एक कालमे एक ही पदार्थ तो वेदन

करेगा। यह ज्ञानमे नही आता कि जब ज्ञान स्वसवेद्य ही होता है तब वह परको वेदन करता है, यह असभव है। फिर जो यह स्थान-स्थान पर लिखा है कि ससारी जीव ने आज तक अपनेको जाना ही नही यह समझमे नही आता। इसका उत्तर अमृतचन्द्र स्वामीने स्वय लिखा है कि ज्ञानतादात्म्य होने पर आत्मा आत्माकी उपासना करता ही है फिर क्यो उपदेश देते हो कि आत्माकी उपासना करना चाहिये ? उत्तर— ज्ञानका आत्माके साथ तादात्म्य होने पर भी क्षणमात्र भी आत्माकी उपासना नही करता। तो इसके पहले क्या आत्मा अज्ञानी है ? हाँ अज्ञानी है, इसमे क्या सन्देह है ? अत इन पर पदार्थोसे सम्बन्ध त्यागना ही श्रेयोमार्ग है। व्याख्यान समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। यहाँ पर दो आदमी रोगग्रस्त हो गये। उनकी शुश्रूषा यहाँ वालोने अच्छी तरहसे की। वैद्य डाक्टर आदिकी पूर्ण व्यवस्था रही। आगरा बहुत भारी नगर है। यहाँ पर बहुत मन्दिर हैं। हम लोग सब मन्दिरोमे नही जा सके। यहाँ निम्नाङ्कित सद्विचार हृदयमे उत्पन्न हुए।

'ससारकी असारताका निरूपण करना कुछ लाभदायक नही, प्रत्युत आत्मपुरुषार्थ करना परमावश्यक है। आत्माका पुरुषार्थ यही है कि प्रथम पापोसे निवृत्ति करे, अनन्तर निजतत्त्वकी शुद्धिका प्रयास करे।'

'परिणामोकी निर्मलताका कारण परपदार्थोसे सम्बन्ध-त्याग है। सम्बन्धका मूल कारण आत्मीय बुद्धि ही है।'

'चित्तवृत्ति शमन करनेके लिये आत्मश्लाघा त्यागनेकी महती आवश्यकता है। स्वात्मप्रशसाके लिये ही मनुष्य प्राय ज्ञानार्जन करते है, धनार्जन करते हैं, अन्यकी निन्दा करते है, स्वात्मप्रशसा करते है, पर मिलता जुलता कुछ नही।'

'शिक्षाका उद्देश्य शान्ति है, उसका कारण अध्यात्मशिक्षा है, अध्यात्मशिक्षासे ही मनुष्य ऐहिक तथा पारलौकिक शान्तिका भाजन हो सकता है।'

'धार्मिक शिक्षा किसी सम्प्रदायकी नही। वह तो प्रत्येक प्राणीकी सम्पत्ति है। उसका आदरपूर्वक प्रचार करना राष्ट्रका मुख्य कर्तव्य है। जिस राष्ट्रमे उसके विना केवल लौकिक शिक्षा दी जाती है वह राष्ट्र न तो स्वय शान्तिका पात्र है और न अन्यका उपकारी हो सकता है। आगराके जैन कालेजमे धार्मिक शिक्षाका जो प्रबन्ध है वह प्रशसनीय है। धार्मिक जीवनके लिये धार्मिक शिक्षाकी मुख्य आवश्यकता है।'

'आजकल भौतिकवादके प्रचारसे ससारका सहार हो रहा है। इसका मूल कारण एकाङ्गी शिक्षा है। यदि इसको अध्यात्मशिक्षाके साथ मिश्रण किया गया तो अनायास जगत्का कल्याण हो जायगा।'

'बहुत बोलना ही दु खका मूल है। ससारमे वही मनुष्य सुखका भाजन हो सकता है जो नि स्पृह हो। शान्तिका मार्ग वहीं है जहाँ निवृत्ति है। केवल जल्पवादसे कुछ लाभ नही। केवल गल्पकथाके रसिक मनुष्यों-से सम्पर्क रहना ही ससारबन्धनका मूल कारण है।'

'यहाँ एक दिन स्वप्नमे स्वर्गीय बाबा भागीरथजीकी आज्ञा हुई कि हम तो बहुत समयसे स्वर्गमे देव हैं। यदि तू कल्याण चाहता है तो इस ससर्गको छोड। तेरी आयु अधिक नही, शान्तिसे जीवन बिता। यद्यपि तेरी श्रद्धा दृढ है तथापि उसके अनुकूल प्रवृत्ति नही। हम तुम्हारे हितैषी हैं। हम चाहते हैं कि तुम्हे कुछ कहे परन्तु आ नहीं सकते। आदरसे त्यागको अपनाओ। आदरसे अपनी अवज्ञा आप करते हो। अपना अनादर जो करता है उससे अन्यका आदर नही हो सकता। मनुष्यजन्म एक महती निधि है। यदि इसका उपयोग यथार्थ किया जावे तो इस जन्म-मरणके रोगसे छुटकारा हो सकता है, क्योंकि ससार-घातका कारण जो सयम है वह इसी विधिसे मिलता है। परन्तु हम इतनी पामरता करते हैं कि राखके लिये चन्दनको भस्म कर देते हैं। स्वप्नमे ही बाबाजी ने कहा कि तुमसे जन्मान्तरका स्नेह है। अभी एक बार तुम्हारा हमारा सम्बन्ध शायद फिर भी हो। क्षुल्लकपदकी रक्षा करना कोई कठिन कार्य नही। मनुष्यसपर्क छोडो। यदि कल्याण-मार्गकी इच्छा है तो सर्व उपद्रवोका त्याग कर शान्त होनेका उपाय करो। केवल लोकैपणाके जालमें मत पडो। हम तो देखा और अनुभव किया कि अभी कल्याणका मार्ग दूर है। यदि उद्दिष्ट भोजन जानकर करते हो तो क्षुल्लकपद व्यर्थ लिया। लोकप्रतिष्ठाके लिये यह पद नही। यह तो कल्याणके लिये है, परकी निन्दा-प्रशसाकी परवाह न करो।'

यहाँ रहनेका लोगोने आग्रह बहुत किया और रहना लाभदायक भी था, तो भी हम मथुरा जानेका निश्चय कर यहाँसे चल दिये।

मथुरामें जैन संघका अधिवेशन

आगरासे ३ मील चलकर एक महाशयकी धर्मशालामे १५ मिनट आराम किया। पश्चात् वहाँसे चलकर सिकन्दराबाद आगये। रात्रि सुख-से बीती, प्रात काल शौचादि क्रियासे निवृत्त हो अकबर बादशाहका

पूज्य वर्णीजीके प्रस्थान समयका एक दृश्य

[पृ० १२]

मकवरा देखने गये। मकवरा क्या है, दर्शनीय महल है। उसमे अरवी भाषामे सम्पूर्ण मकवरा लिखा गया है। क्या है, यह हमको ज्ञात नही हुआ और न किसीने वताया। मुसलमान वादशाहोमे यह विशेषता थी कि वे अपनी संस्कृतिके पोषक वाक्योको ही लिखते थे। (जैनियोमे वडी-वडी लागतके मन्दिर हैं परन्तु उनमे स्वर्णका चित्राम मिलेगा, जैनधर्मके पोषक आगम-वाक्योका लेख न मिलेगा।) अस्तु, समयकी वलवत्ता है। धर्म जो आत्माकी शुद्ध परिणति है उसका सम्वन्ध यद्यपि साक्षात् आत्मा-से है तथापि निमित्तकारणोकी अपेक्षा परम्परा वहुतमे कारण है। उन कारणोंमे आगमवाक्य वहुत ही प्रवल कारण हैं। यदि इस मकवरामे पठन-पाठनका काम किया जावे तो हजारो छात्र अध्ययन कर सकते हैं। इतने कमरोमे अकारादि वर्णोकी कक्षासे लेकर एम० ए० तककी कक्षा खुल सकती है, परन्तु इतनी विशाल इमारतका कोई उपयोग नही और न उत्तर कालमे होनेकी सभावना हैं। जो राज्यसत्ता है वह यह चाहती है कि ऐसा कार्य नही करना चाहिये कि जिससे किसीको आघात पहुँचे। यह ठीक है, परन्तु निरर्थक पडी रहे यह भी ठीक नही, उसका उपयोग भी तो होना चाहिये।

यहाँसे चलकर सिकन्दरावाद आ गये। यहाँ पर श्रीमान् प० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य भी आए। आप वहुत ही शिष्ट और विद्वान् हैं। आपने श्लोकवार्तिकभाष्यका भाषानुवाद किया है। आपके अनेक शिष्य वर्तमानकालीन मुख्य विद्वानोकी गणनामे है। यहाँ ५-७ घर जैनियोके हैं। मकवराका वृहद् भवन निरर्थक पडा है, इसकी चर्चा मैंने पण्डितजीसे भी की। परन्तु सत्ताके विना पत्ता भी नही हिल सकता, यह विचार कर सतोष धारण किया। मनमे विचार आया कि—

मोही जीवोकी मान्यता विलक्षण है और इसी मान्यताका फल यह ससार है। जहाँ शुभ परिणामोकी प्रचुरता है वहाँ वाह्यमे मनुष्योके प्रति सद्व्यवहार है। परन्तु यहाँ तो धर्मान्धताकी इतनी प्रचुरता है कि जो इसलाम धर्मको नही मानते वे काफिर हैं। यह लिखना मतकी अपेक्षा प्रत्येक मतवाले लिखते हैं। जैसे वैदिक धर्मवाले कहते है कि जो वेद-वाक्यो पर श्रद्धा न करे वह नास्तिक है। जैनधर्मवालोका यह कहना है जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा नही वह मिथ्यादृष्टि है। यद्यपि ऐसा कहना या लिखना अपनी अपनी मान्यताके अनुकूल है तथापि इसका यह अर्थ तो नही कि जो अपने धर्मको न माने उसको कष्ट पहुँचाओ। मुसलिम धर्ममे काफिरके मारनेमे कोई पाप नही। वलिहारी है इन विचारोकी।

विचारोमे विभिन्नता रहना कोई हानिकर नहीं। परन्तु किसी प्राणीको वलात् कष्ट देना परम अन्याय है। परन्तु यह संसार है। इसमे मानव अपनी मानवताको भूल दानवताको आत्मीय परिणति मान कर जो न करे अल्प है। अन्यायी जीव क्या क्या अनर्थ नही करते, यह किसीसे गुप्त नही। धर्मकी मार्मिकताको न समझ कर मनुष्य अपने अनुकूल होनेसे ही चाहे वह कैसा ही हो उसे आदर देता है और यदि प्रतिकूल हो तो अनादरका पात्र वना देता है। वास्तवमे धर्म कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही, किन्तु जिसमें जो रहता है वही उसका धर्म है। जलमे उष्णस्पर्श नही रहता इसलिये वह उसका धर्म नही है। अग्निका सम्वन्ध पाकर जल उष्ण हो जाता है। यद्यपि उष्णस्पर्शका तादात्म्य वर्तमान जलसे है तथापि वह उसमे सर्वदा नही रहता, अतः उसका स्वभाव नही कहा जा सकता। स्वभाव वह है जो पदार्थमे स्वतः रहता है और विभाव वह है जो परके संसर्गसे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीवमे ज्ञान रहता है अतः वह उसका स्वभाव है। यद्यपि ज्ञान वर्तमान कर्मोदयसे रागादिरूप हो जाता है तथापि परमार्थसे ज्ञानमे राग नही। वह तो आत्माका औदयिक परिणाम है। जिस कालमे चारित्रमोहकी राग-प्रकृतिका उदय होता है उस कालमें आत्माका प्रतिरूप परिणाम होता है। उस समय यदि तीव्र राग हुआ तो यह आत्मा विषयोंके साधक स्त्री-पुत्रादि तथा अन्य अनुकूल पुद्गलोमें राग करने लगता है और निरन्तर उन्हीं पदार्थोंके साथ रुचि रखता है। यदि मन्द राग हुआ तो पञ्च-परमेष्ठीमे अनुराग करनेका व्यापार करता है तथा प्राणियों पर दया करनेकी परिणति करता है। तीर्थक्षेत्रादि पर जानेकी चेष्टा करता है, पासमें यदि द्रव्यादि हुआ तो उसे परोपकारमे लगाता है। परमार्थसे परपदार्थोंमें आदान-प्रदानकी जो पद्धति है वह सर्व मोहजन्य परिणामोकी चेष्टा है, क्योकि जो वस्तु हमारी है ही नही उसे दान करनेका हमे अधिकार ही क्या है तथा जो वस्तु हमारी है उसे हम दे ही नही सकते। हमारी वस्तु हमसे अभिन्न रहेगी, अतः हम उसका त्याग नही कर सकते। जैसे वर्तमानमे हमारी आत्मामें क्रोधका परिणमन हुआ उस समय क्षमादिकका तो अभाव है—क्रोधमय हम हो रहे हैं वही हमारा स्वरूप है, क्योकि द्रव्य विना परिणामके रह नही सकता। क्षमाका उस कालमें अभाव है अतः जिस कालमे आत्मा क्रोधरूप होता है उस कालमे क्रोध ही है। एक गुणका एक कालमे एक रूप ही तो परिणमन होगा। परन्तु उस समय भी जो विवेकी मनुष्य हैं वे उसे वैभाविक परिणति मान कर श्रद्धामे उससे

विरक्त रहते है—यही उसका त्यागना है। देखा जाता है कि गुरु महाराज शिष्यके ऊपर क्रोध भी करते है ताडना भी करते है, परन्तु अभिप्राय ताडनाका नही है। इसी तरह ज्ञानी जीवको कर्मोदयमे नाना प्रकारके भाव होते है परन्तु अन्तरङ्गमे श्रद्धा निर्मल होनेसे उसे करना नही चाहते। जिस प्रकार जब मनुष्य मलेरिया ज्वरसे पीडित होता है तब वह वैद्य द्वारा बतलायी हुई कटुकसे कटुक औषधिका सेवन करता है परन्तु अन्तरगमे उसे सेवन करनेकी रुचि नही। इसी प्रकार ज्ञानी जीव कर्मोदयसे बाह्य पदार्थोका सग्रह करता है, सेवन भी करता है, परन्तु अन्तरगसे सेवन नही करना चाहता। अनादि कालीन संस्कारके विद्यमान रहते इसे बिना चाहके भी काम करना पडता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार सज्ञाएँ अनादि कालसे जीवके लग रही है, क्योकि अनादि कालसे मिथ्यात्वका सम्बन्ध है, इसीसे यह जीव परको अपना मान रहा है। इसी माननेके कारण शरीरको भी, जो स्पष्ट परद्रव्य है, निज मानता है। जब उसे निज मान लिया तब उसकी रक्षाके अनुकूल भोजन ग्रहण करता है तथा जो प्रतिकूल है उन्हे त्यागता है। नाशके कारण आ जावे तो उनसे पलायमान होनेकी इच्छा करता है। जब वेदका उदय आता है तभी स्त्री-पुरुष परस्पर विषय-सेवनकी इच्छा करते है तथा मोहके उदयमे परपदार्थोको ग्रहण करनेकी इच्छा होती है। इस तरह अनादिसे यह चर्खा चल रहा है। जिस समय दैवात् ससार-तट समीप आ जाता है उस समय अनायास इस जीवके इतने निर्मल परिणाम होते है कि अपनेको परसे भिन्न माननेका अवसर स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। जहाँ आपसे भिन्न परको माना वहाँ ससारका बन्धन स्वयमेव शिथिल हो जाता है। ससारके मूल कारणके जाने पर शेष कर्म स्वमेव पृथक् हो जाते है। जैसे दशवे गुणस्थान तक ज्ञानावरणादि षट् कर्मोका बन्ध होता है। बन्धमे कारण सूक्ष्म लोभ है, बँधनेवाले कर्मोकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही पडती है। परन्तु जब दशवे गुणस्थानके अन्तमे मोहका सर्वथा नाश हो जाता है तब बारहवे गुणस्थानके उपान्त्य समयमें निद्रा, प्रचला और अन्तमे ज्ञानावरणकी ५, अन्तरायकी ५ और दर्शनावरणकी ४ प्रकृतियाँ नाशको प्राप्त हो आत्माको केवलज्ञानका पात्र बना देती है। यही प्रक्रिया सर्वत्र है—करणलब्धिके परिणाम होने पर जब सम्यग्दर्शन आत्मामे उत्पन्न हो जाता है तब अनायास ही मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोका बन्ध नही होता। शेष प्रकृतियोंका जो बन्ध होता है वह मिथ्यात्वके साथमे जैसा होता वैसा

अत. जहाँ तक बने विपरीत अभिप्रायको दूर क०९

करो। बिना निर्मल अभिप्रायके कल्याण होना असंभव है। कल्याणका विघातक मलिन अभिप्राय ही है। यद्यपि इसका निर्वचन होना कठिन है फिर भी पर पदार्थमे जो निजत्व कल्पना होती है। वही इसका कार्य है वही विपरीत अभिप्राय है। इसीसे असत्कल्पनाएँ होती हैं। इसीके रहते आत्मा किसीमे राग, किसीमे द्वेष और किसीमे उपेक्षा करता है। इस कार्यसे इसे पहिचान कर इसके छोडनेका प्रयत्न करो। समस्त ससारी जीवोके मन, वचन, कायके व्यापार स्वयमेव होते रहते है। ये ही व्यापार जब मन्द कषायके साथ हों तो शुभ कहलाते हैं और शुभास्रवके हेतु भी हो जाते है और तीव्र कषायके साथ हो तो अशुभ शब्दसे कहे जाते है और अशुभ आस्रवके कारण होते है। इस प्रकार यह परम्परा अनादि कालसे चली आती है। कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो और मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोका मन्द उदय हो तो द्रव्यलिङ्ग हो जाता है परन्तु वह द्रव्यलिङ्ग अनन्त ससारका घातक नही। यद्यपि द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्गके बाह्य आचरणमे कोई अन्तर नही रहता, फिर भी इनके कार्यमे प्रचुर अन्तर हो जाता है। द्रव्यलिङ्गसे पुण्यबन्ध होता है अर्थात् अघातिया कर्मोमे जो पुण्यप्रकृतियाँ है उनका विशेष बन्ध होता है। परन्तु घातिया कर्मोकी जो पापप्रकृतियाँ है उनका बन्ध नही रुकता। कर्मोमे घातिया कर्म जो है वे सब पापरूप ही है उनमे सर्व आपत्तियो-की जड मोह (मिथ्यात्व) है। इसकी सत्ता स्वय अपने अस्तित्वकी रक्षा करती है और शेष घातिया व अघातिया कर्मोकी सत्ता रखती है। इसके अभावमें शेष कर्मोका अस्तित्व सेनापतिके अभावमे सेनाके अस्तित्व तुल्य रह जाता है। वृक्षकी जड उखड़ जाने पर उसके हरापन-का अस्तित्व कितने काल तक रहेगा? अत जिन जीवोको ससार-बन्धसे मुक्त होनेकी अभिलाषा हो उन्हे प्राणपन—पूर्ण प्रयत्नसे सर्व प्रथम इसका निर्मूल उच्छेद करना चाहिये। इसके होने पर जो कार्य करोगे वही सफल होगा।

यहाँ पर आगरासे भी अनेक महानुभाव आये थे। यही पर एक क्षत्रिय महोदय भी मिले। आपने अपने ग्राम ले जानेका आरम्भ किया। आपका ग्राम वही था, जहाँ श्री सूरदासजी ने जन्म लिया था। ग्रामका नाम रुनकता था और क्षत्रियमहोदयका नाम ठाकुर अमरसिंह था। आप डाक्टर थे और कवि भी। आपने अपनी कविता सुनाई। रात भर इसी रुनकता ग्राममें रहे। ठाकुर साहबका अभिप्राय था कि एक दिन यहाँ निवास किया जावे तथा हमारे गृह पर आप पधारे, हमारे कुटुम्बीजन आपका दर्शन कर लेवे तथा वही पर आपका भोजन हो तब हमारा गृह

शुद्ध होवे । परन्तु हृदयकी दुर्बलता और लोगोकी १४४ धाराने यह न होने दिया । मुख्यतया इसमे हमारी दुर्बलता ही बाधक हुई । यहाँसे चले तो ठाकुर साहव बराबर जिस ग्राममे हमने निवास किया, वहाँ तक आये तथा कहने लगे, क्या यही जैनधर्म है ? जिस धर्ममे प्राणी मात्रके कल्याण-का उपदेश है, आप लोगोने अभी उसके मर्मको समझा नही । हमे दृढ विश्वास है कि धर्मका अस्तित्व प्रत्येक जीवमे है, किन्तु उपचारसे बाह्य कारण माने जाते हैं । आप लोग भी इस बातको जानते है कि बाह्य कारणोमे उलझना अच्छा नही । जब आप लोग व्याख्यान करते है, तब ऐसे-ऐसे शब्दोका प्रयोग करते है कि जिन्हे श्रवण कर अन्य प्राणी मोहित हो जाते हैं । हमने कई स्थानो पर श्रवण किया 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्य-स्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेपु' अर्थात् प्राणीमात्रमे मैत्री भावना आना चाहिये । मैत्रीका अर्थ हैं किसी प्राणीको दु ख न हो ऐसी अभिलाषा रखना । प्राणीमात्रका दु ख दूर हो जावे इसकी अपेक्षा प्राणीमात्रको दु ख न हो यह भावना उत्कृष्ट है । जो आत्मगुण विकासमे ला चुके हैं, ऐसे महानुभावोको देखकर हर्षित हो जाना, इस भावनाका नाम प्रमोदभावना है । हम आपके इस अर्थको श्रवण कर गद्गद हो गये । जो जीव क्लेशसे पीडित है, दुखी हैं, दीन हैं, दारिद्रय कर पीडित हैं तथा धनी होकर भी कृपण है, उन्हे देखकर करुणा भाव करना तथा जो मोक्षमार्ग-की कथा न तो स्वय श्रवण करते है और न श्रवण करनेकी अभिलाषा ही रखते हो, ऐसे दुराग्रही लोगोमे माध्यस्थ्य भावना रखना ही उचित है । ऐसा जिस धर्मका अभिप्राय है—कहाँ तक कहे । जहाँ उन जीवोकी भी रक्षाका उपाय बतलाया है कि जो दृष्टिगोचर भी नही होते । जैसे अनाज-के ऊपर जहाँ फुल्ली आ जावे, वहाँ उस अनाजको उपयोगमे मत लाओ, जो रस स्वादसे चलित हो जावे, उसे मत भक्षण करो । कहाँ तक लिखे, जो जल जिस कूपादिसे लाये हो, उसे छानकर जीवानी उसी जलाशयमे निक्षिप्त कर दो । जहाँ ऐसी दयाका वर्णन हो, वहाँ पर हमारे साथ जो आपका व्यवहार है, क्या वह प्रशसनीय है ? हम इस बातको मानते हैं कि हमारा आचरण आप लोगोकी अपेक्षा अच्छा नही है परन्तु यह सर्वथा मानना अच्छा नही, क्योकि हम लोगोके यहाँ भी आटा, गेहूँ चुग-चुगकर पीसा जाता है, चावल आदि भी चुग कर खाते हैं, शाकादिक देखकर बनाये जाते हैं । हाँ, पानी छानकर नही पीते तथा तथा जैन मन्दिर नही जाते सो बहुतसे लोग आपमे भी ऐसे है, जो बिना छना पानी पी जाते है तथा नियमपूर्वक मन्दिर नही जाते । अस्तु, इन युक्तियोसे हम आपको

लज्जित नही करना चाहते, परन्तु हृदयसे तो कहो कि आप जैनधर्मके प्रचारका कितना उपाय करते हो ? आप पैदल यात्रा कर रहे है, इसलिये उचित तो यह था कि जहाँ पर जाते वहाँ आम जनतामे धर्मका उपदेश करते। जो मनुष्य उसमे रुचि करते वहाँ १ या २ दिन रहकर उन्हे भोजनादि प्रक्रियाकी शिक्षा देते तथा उनके गृहपर भोजन करते, तब जैनधर्मका प्रचार होता या जहाँ ठहरे वहाँ पर साथमे रहनेवालोने भोजन दिया, खाया। रात्रिको जहाँ ठहरे वहाँ पर कुछ काल तो मार्गकी कथामे गया, कुछ गल्पवादमे गया, अन्तमे सो गये। एक त्यागीके भोजनमे बीसो रुपये व्यय हो गये, फल क्या निकला ? केवल मार्गकी धूलि छानना ही तो हुआ। यह हम जानते है कि एक त्यागी २०) नही खा सकता परन्तु उसीके अर्थ तो यह आडम्बर है। कल्पना करो यदि वह एकाकी चलता तो जिस ग्राममे जाता, मुझे विश्वास है कि उस ग्राममे एक आध दिन ही व्यवस्था होनेमे कठिनाई होती पश्चात् सब ठीक हो जाता और लोग उसके जानेकी व्यवस्था कर देते। मै हृदयसे कहता हूँ मथुरा तक तो मै पहुँचा देता। वर्णीजी ! आपसे मेरा अति प्रेम हो गया है इसका कारण आपकी सरलता है। परन्तु खेद है कि लोगोने इसका दुरुपयोग किया तथा आपसे जो हो सकता था, वह न हुआ। इसमे मूल कारण आप भीरु प्रकृतिके है। आपकी भीरु प्रकृति इतनी है कि मै इनके यहाँ भोजन करने लगूँगा तो लोग मुझे क्या कहेगे ? यह आपकी कल्पना नि सार है, लोग क्या कहेगे ? हजारो मनुष्य सुमार्ग पर आजावेगे। आजकल अहिंसा तत्त्वकी ओर लोगोकी दृष्टि झुक रही है, सो इसका मूल कारण यह है कि अहिंसा आत्माकी स्वच्छ पर्याय है। 'अहिंसा ही धर्म है' इसका अर्थ यह है कि जब आत्मामे मोहादि परिणाम नही रहता तब आत्मा तन्मय हो जाता है। अहिंसा किसी एक जाति या एक वर्ण विशेषका धर्म नही है। जिस आत्मामे जिस काल तथा जिस क्षेत्रमे रागादि परिणाम नही होते हैं उसीके पूर्ण अहिंसा-धर्म होता है। आपने ही तो सुनाया था कि—

आत्मामे रागादि-भावोका उत्पन्न न होना अहिंसा है और उन्हीका उत्पन्न होना हिंसा है। अस्तु, हमको ऐसी प्रवृत्ति करना चाहिये, जो हमारी प्रवृत्ति परपदार्थोके ससर्गसे दूषित न हो। आप लोग न तो स्वयं अहिंसाधर्म पालते है और न परको उसकी शिक्षा देते है। हम लोग भी इतने अज्ञानी हो रहे हैं कि आपसे धर्म चाहते है। जो धर्म आप पालते है वह हम भी पाल सकते है। हमने यह समझ रक्खा है कि आप लोग ही धर्मके उपदेष्टा है। आपको दान देनेसे हमे पुण्यवन्ध होता है, यह

भ्रम निकल गया। आप लोग भयभीत है, बडे आदमियोकी हाँ मे हाँ मिलानेवाले है, उनके विरुद्ध अक्षर भी नही वोल सकते। अर्थात् उनकी वात चाहे आगमविरुद्ध हो आप लोग उसका प्रत्युत्तर न देवेंगे अथवा हाँ मे हाँ मिला देवेगे। परन्तु इससे हमे क्या? जैसा आपको रुचे वैसा करो" इतना कह कर वह तो चले गये, हम निरुत्तर रह गये।

पश्चात् वहाँसे गमन कर एक स्थानमे निवास किया। सानन्द रात्रि व्यतीत कर चल दिए। भोजनादिकी व्यवस्था हुई, मध्यान्होपरान्त श्री प०राजेन्द्रकुमारजी महामत्री सदलवल आगये। महान् समारोह हो गया और आनन्दसे श्रीजम्बूस्वामीकी निर्वाणभूमि पहुँच गये। पहुँचते ही स्मृति-पटलमे पिछली बात याद आ गई कि यह वही भूमि है, जहाँ पर श्री जैन महाविद्यालयकी स्थापना हुई थी और मैने भी जिसमे रहकर अध्ययन किया था। आजकल दि० जैनसघका कार्यालय यही पर है। अनेक सुन्दर भवन सघके हैं, एक सरस्वती-भवन भी है। एक दिगम्वर जैन गुरुकुल भी है, जिसमे इण्टर तक पढाई होती है। हम लोगोका आतिथ्य-सत्कार होनेके वाद सुन्दर भवनोमे निवास कराया गया। सघका वार्षिकोत्सव था, जिसके सभापति श्रीमान् सरसेठ हुकमचन्द्रजी साहव इन्दौरवाले थे। समारोहके साथ आपका स्वागत किया गया। आप अत्यन्त पुण्यशाली जीव है। धर्मके रक्षक तथा स्वय धर्मात्मा है। जब कोई आपत्ति धर्मपर आती है तव आप उसे सव प्रकारसे निवारण करनेका प्रयत्न करते हैं। आपने सभापतिका भाषण देते हुए कहा कि वर्तमानमे जैनधर्मका विकास करना इष्ट है तो सर्वप्रथम आत्मविश्वास करो तथा सयम-गुणका विकास करो, उदार-हृदय बनो, परकी निन्दा तथा आत्मप्रशसा त्यागो, केवल गल्पवादमे समय न खोओ। आगे भाषण देते हुए आपने कहा कि इस समय हम सबको परस्पर मनोमालिन्यका त्याग कर सौजन्यभावसे धर्मकी प्रभावना करना चाहिए। केवल व्याख्यानोसे कल्याण न होगा, जो वात व्याख्यानोमे आती है उसे कर्तव्यपथमे आना चाहिये—

> वात कहन भू पग धरन करण खडग पद धार।
> करनी कर कथनी करें ते विरले ससार॥

V. good

अर्थात् बातका कहना कोई कठिन नही जो कहा जावे उसे कर्तव्यमे लाना चाहिये। आज हर एक वक्ता होनेकी चेष्टा करता है—प्रत्येक मानव उपदेष्टा बनना चाहता है, श्रोता व शिष्य कोई नही बनना चाहता। अस्तु, कालका प्रभाव है, हमको जो कहना था कह दिया। जैनसघकी

रक्षाके लिए आपने २५०००) पच्चीस हजारका दान किया। उपस्थित जनताने भी यथाशक्ति-दान दिया। इसी अवसरपर विद्वत्परिषद्‌की कार्यकारिणीकी बैठक भी थी, जिसमे प० फूलचन्द्रजी बनारस, प० कैलाशचन्द्रजी बनारस, प० दयाचन्द्रजी, प० पन्नालालजी सागर, पं० बाबूलालजी इन्दौर, प० खुशालचन्द्रजी बनारस, बशीधरजी बीना, प० नेमीचन्द्रजी आरा, प० जगन्मोहनलालजी कटनी आदि अनेक विद्वान् पधारे थे। बैठकमे विचारणीय विषय थे—मानवमात्रको दर्शनाधिकार, प्राचीन दस्सा-शुद्धि आदि। जिनपर उपस्थित विद्वानोमे पक्ष-विपक्षको लेकर काफी चर्चा हुई, परन्तु अन्तमे निर्णय कुछ नही हो सका। यदि विद्वान् परस्परका मनोमालिन्य त्याग किसी कार्यको उठावें, तो उनमे वह शक्ति है जिसे कोई रोकनेके लिए समर्थ नही। परन्तु परस्परका मनोमालिन्य उनकी शक्तिको कुण्ठित किये हुए है। 'विश्व शान्ति और जैनधर्म' इस विषय पर निबन्ध लिखानेका विचार स्थिर हुआ। जैन सघमे श्री प०राजेन्द्रकुमारजी अत्यन्त उत्साही और कर्मठ व्यक्ति है। सघका वर्तमान रूप उन्हीके पुरुषार्थका फल है। एक दिन आपके यहाँ भोजन हुआ, तब आपने स्याद्वादविद्यालय बनारसको ५०१) देना स्वीकृत किया। इसी तरह एक दिन सेठ भगवानदासजीके यहाँ आहार हुआ। सेठानी श्रीवच्छराजजी लाडनूँवालोकी पुत्री है। इन्होने भी स्याद्वाद-विद्यालयको १०००) देना अगीकार किया। सेठ भगवानदासजी सौम्य व्यक्ति है। आप नवयुवक होते हुए भी सज्जनतासे भरे हुए है। टोग्याजी भी यहाँपर प्रसिद्ध व्यक्ति है। आपके प्रबन्धसे यहाँ रथयात्रा महती प्रभावनाके साथ हुई। बाहरके भी मनुष्य आये, तीन दिन तक अच्छी चहल-पहल रही। अनन्तर मेला विघट गया। यहाँ श्रीविनयकुमारजी 'पथिक' सघमे रहते है जो जात्या ब्राह्मण हैं तथा कविता अच्छी करते है कविता करनेकी पद्धति प्राय. प्रत्येकको नही आती, यह भी एक कला है। एकान्त-चिन्तनके समय निम्नाङ्कित विचार उत्पन्न हुए—

'लोगोमे धर्मके प्रति महान् श्रद्धा है, किन्तु धर्मात्माओका अभाव है। लोग प्रतिष्ठा चाहते है परन्तु धर्मको आदर नही देते। मोहके प्रति आदर है, धर्मके प्रति आदर नही। धर्म आत्मीय वस्तु है, उसका आदर विरला ही करता है। जो आदर करता है, वही ससारसे पार होता है।'

'सागरके समान मनुष्यको गम्भीर होना चाहिए। सिंहके सदृश उसकी प्रकृति होना चाहिये। शूरताकी पराकाष्ठा होना ही मनुष्यकेलिये लौकिक और परमार्थिक सुख कही नही, केवल लौकिक सुखकी आशा

त्याग देना ही परमार्थ सुखकी प्राप्तिका उपाय है। सुख-शक्तिका विकास आकुलताके अभावसे होता है।'

'भगवन्! तुम अचिन्त्य-शक्तिके स्वत्वमे क्यो दर-दरके भिक्षुक बन रहे हो ? भगवन्से तात्पर्य स्वात्मासे है। यदि तुम अपनेको सभालो, तो फिर जगत्को प्रसन्न करनेकी आवश्यकता नही।'

'ससारसे उद्धार करनेके अर्थ तो रागादि निवृत्ति होनी चाहिए परतु हमारा लक्ष्य उस पवित्र-मार्गकी ओर नही जाता। केवल जिससे रागादि पुष्ट हो उसी ओर अग्रसर होता है। अनादिकालसे पर-पदार्थोंको अपना मान रक्खा है, उसी ओर दृष्टि जाती है—कल्याण-मार्गसे विमुख रहते है।'

'सुखका कारण क्या है, कुछ समझमे नही आता। यदि बाह्य पदार्थोको माना जावे, तब तो अनादिकालसे इन्ही पदार्थोको अर्जन करते-करते अनन्त-भव व्यतीत हो गए, परन्तु सुख नही पाया। इस पर्यायमे यथायोग्य बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु कुछ भी शान्ति न मिली।'

'ससारमे कोई भी पदार्थ स्थिर नही जो आज है वह कल नही रहेगा। ससार क्षणभगुर है, इसमे आश्चर्य की बात नही। हमारी आयु ७४ वर्ष की हो गई परन्तु शान्तिका लेश भी नही आया और न आनेकी सभावना है, क्योकि मार्ग जो है, उससे हम विरुद्ध चल रहे है। यदि सुमार्ग पर चलते तो अवश्य शान्तिका आस्वाद आता, परन्तु यहाँ तो उल्टी गङ्गा बहाना चाहते हैं। धिक् इस विचारको जो मनुष्यजन्मकी अनर्थकता कर रहा है। केवल गल्पवादमे जन्म गमा दिया। वाह्य प्रशसाका लोभी महान् पापी है।'

'लोगोकी अन्तरङ्ग भावना त्यागीके प्रति निर्मल है किन्तु इस समय त्यागीवर्ग उतना निर्मल नही।'

'हम वहुत ही दुर्बल प्रकृतिके मनुष्य है, हर किसीको निमित्त मान लेते है, अपने आप चक्रमे आ जाते हैं, अन्यको व्यर्थ ही उपालम्भ देते हैं, कोई द्रव्य किसीका बिगाड सुधार करनेवाला नही यह मुखसे कहते हैं परन्तु उसपर अमल नही। केवल गल्पवाद है। वडे-बडे विद्वान् व्याख्यान देते है परन्तु उसपर अमल नही करते।'

मथुरासे चलते-चलते पद्मपुराणमे वर्णित मथुरापुरीका प्राचीन वैभव एक बार पुन स्मृतिमे आ गया।

यहाँ पर मधु राजाका शत्रुघ्नके साथ युद्ध हुआ। शत्रुघ्नने छलसे उसके शस्त्रागारको स्वाधीन कर लिया। अस्त्रादिके अभावमे राजा

मधु शत्रुघ्नसे पराजित हो गया, किन्तु गजके ऊपर स्थित जर्जरित शरीर वाले मधुने अनित्यत्वादि अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन कर दिगम्वर नेपका अवलम्वन किया। उसी समय शत्रुघ्नने आत्मीय अपराधकी क्षमा माँगी— हे प्रभो! मुझ मोही जीवने जो आपका अपराध किया वह आपके तो क्षम्य है, ही मैं मोहसे क्षमा माँग रहा हूँ।

अलीगढका वैभव

मथुरासे चलते ही चित्तमे सबसे विरक्तता हो गई। विरक्तताका कारण परको अपना मानना है। वह अपना होता नही, केवल परमे निजत्व कल्पना ही दु:खदायी है। चलकर वसुगाँवमे ठहर गए। यहाँके ठाकुर नत्थासिंहजी वहुत ही सज्जन हैं। यही पर श्रीमनीराम जाट मिलने आया, वहुत ही सज्जन था। उसके यह नियम था कि हाथसे उपार्जन किया ही मेरा धन है, पराया धन न जाने अन्यायोपार्जित हो तथा मै किसीके प्राण नही दुखाना चाहता। हम यहाँ पुरसानकी धर्मशालामे ठहर गए। यह धर्मशाला एक अग्रवाल शाहकी है। वहुत ही सज्जन हैं, अतिथि-सत्कारमे अच्छी प्रवृत्ति है, मन्दिर भी वना है, रामचन्द्रजीका उपासक है, अनेक भाई दर्शनके लिए आते हैं। यहाँका जमादर भला मानुप है। यहाँसे ८ मील चलकर हाथरस पहुँचे। यहाँ पर ६ मन्दिर हैं। १ मन्दिर वहुत वडा है, जिसका निर्माण वहुत ही सुन्दर-रीतिसे हुआ है इसकी कुरसी वहुत ऊँची है। यहाँ पर मनुष्य वहुत ही सज्जन है। यहाँ कन्यापाठशालामे ठहरे। किन्तु स्थान सकीर्ण था। लघुशकाके लिए स्थान ठीक नही था, नालीमे पानी जाता था, जो आगमविरुद्ध है। भोजनके अर्थ श्रावकोके घर जाते थे परन्तु मार्ग निर्मल नही, प्राय अशुचिका सम्वन्ध मार्गमे बहुत रहता है।

नये-मन्दिरमे सभा हुई। वाहरसे आये हुए विद्वानोके व्याख्यान मनोरञ्जक थे। थोडा-सा समय हमने भी दिया। व्याख्यान श्रवण कर मनुष्योके चित्त द्रवीभूत हो गये तथा मनमे श्रद्धा विशेष हो गई। श्रद्धा कितनी ही दृढ क्यो न हो, किन्तु आचरणके पालन विना केवल श्रद्धा अर्थकरी नही। श्रद्धाके अनुरूप ज्ञान भी हो, परन्तु आचरणके विना वह श्रद्धा और ज्ञान स्वकार्य करनेमे समर्थ नही।

हाथरससे सासनी ७ मील था। लगातार चलनेसे थक गये, ज्वर आ गया। श्री छेदीलालजीके आग्रहसे सासनी आये थे। इनके पिता बहुत ही धर्मात्मा थे। इनके काँचका कारखाना है, वहाँ पर इनके पिताका निवास रहता था, आप निरन्तर ईसरी आते रहते थे, धार्मिक मनुष्य थे, आपको

धर्मरुचि वहुत ही प्रशस्त थी। ईसरी आश्रममे जितने गेहूँ व्यय होते थे, सब आप देते। अब आपका स्वर्गवास हो गया है। आपके छेदीलाल और उनके लघुभ्राता इस प्रकार दो पुत्र हैं। आप लोगोने वेदी-प्रतिष्ठा कराई, जिसमे उस प्रान्तके बहुतसे जैनी भाई आये। आपके द्वारा एक हाईस्कूल भी सासनीमे चल रहा है। वहुत ही सुखसे यहाँ रहा। यहाँ पर १ विलक्षण प्रथा देखनेमे आयी कि जिस समय श्री जिनेन्द्रदेवका रथ निकल रहा था, उस समय यहाँके प्रत्येक जातिवालोने श्री जिनेन्द्रदेवको भेट की। कोई जाति इससे मुक्त न थी। सर्व ही जनताने श्रीमहावीरस्वामीकी जय वोली। यवन लोगोंने ४०) भेट किया तथा ब्राह्मण एव वैश्योने भगवान्‌की आरती उतारी। कहाँ तक कहे, चर्मकारोने २००) की भेट की। खेद इस बातका है, हमने मान रक्खा है कि धर्मका अधिकार हमारा है। यह कुछ बुद्धिमे नही आता। धर्मवस्तु तो किसीकी नही, सर्व आत्मा धर्मके पात्र हैं, बाधक कारण जो हैं, उन्हे दूर करना चाहिये।

माघ वदी ४ सवत् २००५ का दिन था। आज वेगसे ज्वर आ गया। मनमे ऐसा लगने लगा कि अब शारीरिक-शक्ति क्षीण होती जाती है। सम्भव है आयुका अवसान शीघ्र हो जावे, अत कुछ आत्महित करना चाहिये। केवल स्वाध्याय आदिमे चित्तवृत्ति स्थिर करना चाहिये, प्रपञ्चोमे पड व्यर्थ दिन व्यय करना उचित नही। ससारकी दशाका खेद करना लाभदायक नही। दूसरे दिन साधारण सभा थी, हमारा व्याख्यान था। परन्तु हमसे समय पर यथार्थ व्याख्यान न बन सका। हमारी शारीरिक शक्ति बहुत मन्द हो गई, अब हम उतने शक्तिशाली नही कि १००० जनतामे व्याख्यान दे सके। अब तो केवल १० मनुष्योमे व्याख्यान दे सकते हैं। शक्तिह्रासको देखते हुए उचित तो यह है कि अब सर्वविकल्पोका त्याग कर केवल आत्म-हित पर दृष्टिपात करे। गल्पवादके दिन गये, अब आत्मकथामे रसिक होना चाहिये। आज रात्रिको पुन बाबा भागीरथजी का दर्शन हुआ। आपने कहा—

'क्यों चक्रमे फँस अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हो ? आत्माकी शान्ति परपदार्थोंके सहकारसे बन्धनमे पडती है और बन्धनसे ही चतुर्गतिके चक्रमे यह जीव भ्रमण करता है। हम क्या कहे ? तुमने श्रद्धाके अनुरूप प्रवृत्ति नही की। त्याग वह वस्तु है जो त्यक्त पदार्थका विकल्प न हो तथा त्यक्त पदार्थके अभावमे अन्य वस्तुकी इच्छा न हो। नमकका त्याग मधुरकी इच्छा विना ही सुन्दर है।'

अगले दिन प्रात नियमसारका प्रवचन हुआ। उसमे श्री कुन्दकुन्द महाराजने जो आवश्यककी व्याख्या की, वह बहुत ही हृदयग्राही व्याख्या है। तथाहि

जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्म भणति आवासं।
कम्मविणासणजोगो णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो ॥१४१॥

अर्थात् जो जीव अन्यके वश नही होता है उसे अवश कहते है और उसका जो कर्म है उसे अवश्य कहते है। वही भाव कर्म-विनाश करनेके योग्य है। उसीको, निर्वृति मार्ग है, ऐसा निरूपण किया है। कुन्दकुन्द स्वामीकी बात क्या कहे, उनका तो एक-एक शब्द ऐसा है, मानो अमृतके सागरमे अवगाहन कर बाहर निकला हो। लोग हमारे जीवनचरित्रकी चर्चा करते है परन्तु उसमे है क्या ? जीवन-चरित्र उसका प्रशसनीय होता है जिसके द्वारा कुछ आत्महित हुआ हो। हम तो सामान्य पुरुष है। केवल जन्म मानुपका पाया, परन्तु मानुपजन्म पाकर उसके योग्यकार्य न किया। मानुपजन्म पाकर कुछ हित करना चाहिये।

माघ वदी ९ सं० २००५ को मध्याह्नकी सामायिक पूर्ण होते-होते अलीगढके महानुभाव आगये, जिससे वहाँके लिये प्रस्थान कर दिया। यहाँसे अलीगढ ३ मील था। १ मील चलकर बागमे ठहर गये। वहाँसे गाजे-बाजेके साथ खिरनीसरायके मन्दिरमे गये। आनन्दसे दर्शनकर मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। स्थान त्यागियोके ठहरने योग्य नही। यदि वास्तवमे धार्मिक बुद्धि है, तो त्यागीको गृहस्थके मध्यमे नही ठहरना चाहिये। गृहस्थोके सपर्कसे बुद्धिमे विकार हो जाता है और विकार ही आत्माको पतित करता है, अत' जिन्हे आत्महित करना है, वे इन उपद्रवोसे सुरक्षित रहे।

अलीगढ वह स्थान है जहाँ पर श्री स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी साहबका जन्मस्थान था। आपका पाण्डित्य बहुत ही प्रशस्त था, आपके भजनोमे समयसार, गोम्मटसार आदि ग्रन्थोके भाव भरे हुए है। छहढाला तो आपकी इतनी सुन्दर-रचना है कि उसके अच्छी तरह ज्ञानमे आनेपर आदमी पण्डित बन सकता है। पण्डित ही नही, मोक्षमार्गका पात्र बन सकता है। 'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि' स्तोत्रमे समस्त सिद्धान्तकी कुञ्जी बता दी है। स्तवन करनेका यथार्थ मार्गप्रदर्शन कर दिया है। यही पर वर्तमानमे पण्डित श्रीलालजी[1] है। आप सस्कृतके प्रौढ विद्वान्

१. अब आपका देहान्त हो गया है।

हैं। आपकी श्रद्धा बीसपन्थके ऊपर दृढ हो गई है। आप पहले खडे होकर पूजा करते थे, अब वैठकर करने लगे हैं तथा अपने पक्षको आगमानुकूल पुष्ट करते हैं। हमारा आपसे प्राचीन परिचय है। आपके पुत्र कमलकुमारजी हैं। आपने मध्यमा तक व्याकरणका अध्ययन किया है। पण्डितजीके पिता प० प्यारेलालजी धर्मशास्त्रके उत्तम विद्वान् थे। गोम्मटसारादि ग्रन्थोके मर्मज्ञ थे। छहढालाके अर्थको घण्टों निरूपण कर सभाको प्रसन्न कर देते थे। आपके तर्क वहुत प्रबल शक्तिमय थे। अच्छे-अच्छे वक्ता आपको मानते थे। आपकी श्रद्धा दिगम्बर आम्नायमे तेरापन्थको मानने-की थी। हम तो उनको अपना हितैषी मानते थे, क्योकि उन्हीके उपदेशसे जैनधर्मके अध्ययनमे हमारी रुचि हुई थी। आपके द्वारा जैन जनतामे स्वाध्यायका विशेष प्रचार हुआ। आप जेनधर्मकी वृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करते थे। यही पर एक छीपीटोला है। वहाँपर ३ जिनमन्दिर हैं। इसी टोलामे श्री हकीम कल्याणरायजी रहते थे। आप महासभाके मुख्य उपदेशक थे। आपके द्वारा महासभाका सातिशय प्रचार हुआ। इस टोलामे एक मन्दिरमे श्री महावीर स्वामीकी पद्मासन प्रतिमा वहुत ही रम्य विराजमान है, जिसे अवलोकन कर परम शान्तिका परिचय होता है।

यहाँ बागके मन्दिरमे सार्वजनिक-सभा हुई, जिसमे वहुत वक्ताओके भाषण हुए। मेरा भी व्याख्यान हुआ। मै वृद्धावस्थाके कारण पूर्ण रूपसे व्याख्यान नही दे सकता, फिर भी जो कुछ कहता हूँ हृदयसे कहता हूँ। मेरा अभिप्राय यह है कि आत्मा अपने ही अपराधसे ससारी वना है और अपने ही प्रयत्नसे मुक्त हो जाता है। जव यह आत्मा मोही, रागी, द्वेषी होता है तव स्वय ससारी हो जाता है तथा जब राग द्वेष मोहको त्याग देता है, तव स्वय मुक्त हो जाता है, अत जिन्हे ससार-वन्धनसे छूटना है, उन्हे उचित है कि राग, द्वेष, मोह छोड़ें।

आत्मपरिणतिको निर्मल वनानेके जो उपाय है उनमे सर्वश्रेष्ठ आत्मा-ववोध है। परसे भिन्न अपनेको मानो, भेदविज्ञान ही ऐसी वस्तु है जो आत्माका बोध कराता है। स्वात्मवोधके विना राग-द्वेषका अभाव होना अति कठिन, क्या असभव है। अत आवश्यकता इस बातकी है कि तत्त्व-ज्ञान-सम्पादन किया जाय। तत्त्वज्ञानका कारण आगमज्ञान है। आगम-ज्ञानके लिए यथाशक्ति व्याकरण न्याय तथा अलकार शास्त्रका अभ्यास करना चाहिए। मै बोलनेमें वहुत दुर्बल होगया हूँ, क्योकि मेरी यह दृढ

श्रद्धा है कि मैं जो कहता हूँ, उसका स्वय तो पालन नही करता, अन्यसे क्या कहूँ ? यही कारण है कि मैं उपदेशमे सकोच करता हूँ। वास्तवमें वही आत्मा सुखका पात्र हो सकता है जो कथनपर आरूढ होता है। न तो हम स्वय तद्रूप होनेकी चेष्टा करते हैं और न अन्यपर उसका प्रभाव डाल सकते हैं। इसका मूल कारण केवल कषायकी कृशताका अभाव है। उस आत्माको ही उपदेश देनेका अधिकार है जो स्वयं मार्गपर चले। केवल शब्दोकी मधुरता और सरलता अन्य पर प्रभाव नही डाल सकती। उचित तो यह है कि हमे इस वातका प्रयत्न करना चाहिए कि हम प्रथम उस पर अमल करें, अनन्तर परको बतानेकी चेष्टा करें, तभी सफल हो सकते हैं। प्रतिदिन सुन्दर विचार आत्मामे आते हैं परन्तु उन पर आरूढ नही होते अत. जैसे आये वैसे न आये, कुछ लाभ नही। केवल कथावादसे कोई लाभ नही, लाभ तो उस पर हृदयसे अमल करनेमे है। देहलीसे प० राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री आ गये और प० चन्द्रमौलि जी हमारे साथ ही थे। आप लोगोके भी उत्तम व्याख्यान हुए। परन्तु स्वभावमे परिवर्तन होना कठिन है। स्वभावसे तात्पर्य परनिमित्तक भावोसे है। अनादि-कालसे हमारी प्रवृत्ति आहारादि सज्ञाओमे हो रही है। आत्माका स्वभाव ज्ञायकभाव है। ज्ञायकभावमे ज्ञेयका अनुभव होना ही कष्टकर है।

अलीगढसे चलकर बागके मन्दिरमें आये। वहाँ १ घण्टा रहे। हकीम इन्द्रमणिजीने व्याख्यान दिया। यहाँसे चलने पर विजलीवालोने बहुत रोका, पर हमलोग नही रुके। लोगोमे भक्ति बहुत है, परन्तु भक्ति जिसकी की जाती है वह पात्र नही, वेषमात्र है, कुछ भी हो, अलीगढका पहला वैभव चलते-चलते आँखोके सामने झूलने लगा।

मेरठकी ओर

अलीगढसे भाकुरी ६ मील है। यहाँपर ठहर गये। प्रात काल यहाँ-से ४ मील चलकर नगरियाकी धर्मशालामे भोजन किया। १२½ बजे सामायिक कर चल दिए और ३ बजे गुहानाकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँपर एक बाग है। बीचमे एक छोटा-सा सरोवर है। उसमे शिवजी-का मन्दिर है। बाग सुन्दर है। यहाँपर अलीगढसे पाँच मनुष्य आये। उनसे स्वाध्यायकी बात हुई, तो उत्तर मिला—करते हैं। हम इतरको उपदेश दानमे चतुर हैं, स्वय करनेमे असमर्थ हैं। केवल वेष बना लिया

और परको उपदेश देकर महान् बननेका प्रयत्न है। यह सब मोहका विलास है। गुहानासे ५ मील चलकर एक स्थानपर भोजन किया। यहाँ-पर एक अग्रवाल मनुष्य बहुत ही सज्जन था, जिसका नाम मुझे स्मृत नही रहा। उसने घरसे लाकर ऽ२ सेर गुड, आटा, नमक, दुग्ध सघके अन्य लोगोके भोजनके लिए दिया। बहुत ही श्रद्धासे भोजन कराया। जैनी लोगोकी अपेक्षा इनमे श्रद्धा न्यून नही, परन्तु जैनी त्यागी इसका प्रचार नही करते। यहाँसे चलकर दमारामे एक वैश्यकी दूकानमे ठहर गये। स्थान तो अच्छा था, परन्तु मक्षिकाओकी बहुलतासे खिन्न रहे। हम ६ आदमी यहाँ रह गये। बाकी सब लोग खुरजा चले गये। ग्राम है, जलवायु उत्तम है। यहाँ एक वेदान्ती ठाकुर मिले, शान्तपरिणामी थे।

स० २००५ माघ सुदी ३ को प्रात १० बजे खुरजा पहुँच गये। यह वही खुरजा है जहाँ पर राणीवाले प्रसिद्ध सेठ रहते थे। उन्हीके मुख्य पुत्र सेठ मेवारामजी थे, जो सेठ ही नही, उस समयके प्रमुख विद्वान् थे। उस समय आपकी गणना विद्वानोमे ही नही, प्रमुख सेठोमे भी थी। आप विद्याके रसिक थे। एक सस्कृत विद्यालय भी आपके द्वारा चलता था, जिसमे २५ छात्र अध्ययन करते थे। छात्रोको भोजनाच्छादन आपकी तरफसे था। क्वीन्स कालेज बनारसकी मध्यमा परीक्षा तक व्याकरण, न्याय, काव्यका अध्ययन होता था। आप स्वय अध्ययन-अध्यापन करते-कराते थे। आप विद्वान् ही न थे, वक्ता और वाग्मी भी थे तथा आर्य-समाजके विद्वानोसे शास्त्रार्थ भी करते थे। यहाँपर प० तेजपालजी भी प्रसिद्ध विद्वान् थे, आप विद्वान् ही नही, धनाढ्य भी थे। यही पर पण्डित नैनसुखदासजी थे। जो स्त्री-सभामे शास्त्र पढते थे। यही पर श्री सेठ मेवारामजीके चाचा सेठ अमृतलालजी थे, जो अत्यन्त धर्मात्मा और शास्त्रके वक्ता थे। आपकी प्रवृत्ति आरम्भसे बहुत भयभीत रहती थी। बहु आरम्भको आप निरन्तर निन्दा करते थे। मिलके कार्योसे आपको महती घृणा थी। आप छात्रोको निरन्तर दान देते थे। आप सात भाई थे, सातो ही सम्पन्न और धार्मिक विचारोके थे। मैने भी खुर्जामे विद्या-भ्यास किया था। बनारसकी प्रथमा परीक्षा यहीसे दी थी। यही पर न्याय पढना प्रारम्भ किया था। पडित चण्डीप्रसादजी, जो कि व्याकरणके निष्णात विद्वान् थे, उनसे पढना शुरू किया था। सेठ मेवारामजो उन दिनो मुक्तावली आदिका अध्ययन कर चुके थे। व्याकरणकी मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण हो चुके थे। यहाँ पर एक सुन्दरलाल वैश्य थे, जो बहुत व्युत्पन्न थे।

वर्तमानमे सेठ मेवारामजीके सुपुत्र शान्तिप्रसादजी वहुत ही योग्य है। उनके घर आहार हुआ, आप वहुत कुशल है, धर्ममे आपकी रुचि वहुत है, तत्त्वज्ञानके सम्पादनमे वहुत प्रयत्नशील है। आपके कमरामे सरस्वतीभवन है। सव तरहकी पुस्तकें आपके भण्डारमे विद्यमान है। हस्तलिखित शास्त्र भी १०० होगे। सत्यार्थप्रकाश भी प्राय जितने प्रकारके मुद्रित है सर्व यहाँ पर हैं। प्राय. मुद्रित सभी पुराण इनके पास है। आपके कुटुम्बकी लगभग १०० जनसख्या होगी। प्रमुख व्यक्ति यही पर रहते है। खुर्जा आते हो पिछले दिन स्मृति-पटलमे अङ्कित हो गये। उस ज्योतिषीकी भविष्यवाणी भी याद आ गई, जिसने कहा था कि तुम वैशाखके वाद खुर्जा न रहोगे। मोहजन्य सस्कार जव तक आत्मामे विद्यमान रहते है, तव तक यह चक्र चलता रहता है। जव तक अन्तरग से मूर्च्छा नही जाती तव तक कुछ नही होता। केवल विकल्पमाला है। मोहके परिणामोमें जो जो क्रिया होती है, करनी पडती है। आनन्दका उत्थान तो कषायभावके अभावमें होता है। गल्पवादसे यथार्थ वस्तुका लाभ नहीं। ससारमे अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ हैं, जिन्हे यह जीव मोहवश सहन करता हुआ भी उनसे उदासीन नही होता।

खुर्जामे ३ दिन रह कर चल दिये। नहरके वाध पर आये। पानी वडे वेगसे वरसा और हम लोग मार्ग भूल गये। परन्तु श्री चिदानन्दजीके प्रतापसे उस विरुद्ध मार्गको त्याग कर अनायास ही सरल मार्गपर आ गये। रात्रि होते-होते एक ग्राममे पहुँच गये। यहाँ जिसके गृहमे निवास किया था वह क्षत्रियका था। रात्रिमे उनकी माने मेरे पास एक चद्दर देखकर वडी ही दया दिखलाई। बोली—वावा! शरदी वहुत पड़ती है, रात्रिको नीद न आवेगी, मेरे यहाँ नवीन सौड (रजाई) रक्खी है, अभी तक हम लोगाके काममे नही आई, आप उसे लेकर रात्रिको सुखपूर्वक सो जाइये और मे दूध लाती हूँ उसे पान कर लीजिये, खुर्जासे आये हो, थक गये होगे, इससे अधिक हम कर ही क्या सकती है? आशा है हमारी प्रार्थनाको आप भङ्ग न करेगे। मैंने कहा—मा जी! मै यही वस्त्र ओढता हूँ तथा रात्रिको कुछ खान-पान नही करता हूँ। बुढ़िया माँ सुन कर बहुत उदासीन हो वोली—मुझको वहुत ही क्लेश हुआ। अब एक प्रार्थना करती हूँ कि प्रात काल मेरे यहाँ भोजन कर प्रस्थान करे। अनन्तर हम, लोग शयन कर गये। प्रात काल हुआ, सामायिक कर चलने लगे, तो बूढी माँ आ गई और बोली कि यह क्या हो रहा है? हमने कहा—माँ जी। जा रहे है। वह बोली—यह शिष्टाचारके अनुकूल आचरण नही।

हमने कहा—माँ ! फिर घाम हो जावेगा। उसने कहा—यह उत्तर शिष्टाचारका विघातक है। अच्छा, तुम्हारी जो इच्छा, सो करो, किन्तु २) ले जाओ, इनके फल लेकर सब लोग व्यवहारमे लाना तथा पुत्रसे बोली—बेटा ! घरके ताँगामे इनका सामान भेज दो। हम लोग बुढिया माँके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो चल दिये और मार्गमे उसीके सौजन्यपूर्ण व्यवहारकी चर्चा करते रहे। उसका बेटा महावीर राजपूत २ मील तक पहुँचाने आया और मेरे बहुत आग्रह करने पर वापिस लौटा। मेरे मनमे आया कि यदि ऐसे जीवोको जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप दिखाया जाय, तो बहुत जनताका कल्याण होवे।

खुर्जासे ४ मील चल कर बुलन्दशहर आगये और वहाँ वालोने शिष्टाचारके साथ हमे मन्दिरजीकी धर्मशालामे ठहरा दिया। यहाँ पर मन्दिरजीके नीचे भागमे मन्दिरकी दुकानमे एक सज्जन मनिहारीकी दुकान किये थे उन्हींके घर पर भोजन हुआ। आप बहुत ही उदार व्यक्ति थे। आपका व्यापार लाहौरमे होता था। बहुत ही धनाढ्य थे। परन्तु लाहौरके पाकिस्तानमे जानेसे आप यहाँ आ गये और आपकी सम्पत्तिका बहुत भाग वहाँ ही रह गया। इसका आपको खेद न था, आपके हृदयसे यही वाक्य निकले कि ससारमे यही होता है। जहाँ पर सहस्रो नरेशोको परम्परागत अधिकारोसे वञ्चित होना पडा तथा अग्रेजोका अखण्ड प्रताप अस्त हो गया वहाँ हमारी इस दशा पर आश्चर्यकी कौन बात है ? अथवा अन्यकी कथा त्यागो, आप स्वयं अपनी दशाको देखो। क्या चालीस वर्ष पहले आप इसी तरह यष्टिके सहारे चलते थे ? अस्तु, इस कथाको छोडो और मन्दिरमे शास्त्र-प्रवचन कीजिये। अनुकूल कारणके सद्भावसे चित्तमे शान्तिका परिचय हुआ। आत्मानुशासनका स्वाध्याय किया—

[श्रीगुणभद्राचार्यका कहना है कि हे आत्मन् ! तुम दु खसे भयभीत होते हो और सुखकी वाँछा करते हो, अत जो तुम्हे अभीष्ट है उसीका हम अनुशासन करेगे। देखा जाता है, ससारमे प्राणीमात्र दु खसे डरते है और सुखकी अभिलाषा करते है। यदि उनकी अभिलाषाके अनुकूल उन्हे मार्ग मिल जाता है, तो उनकी आत्माको शान्ति हो जाती है। परन्तु यह ससार है, अनन्त दु खोका भण्डार है, इसमे अनुकूल मार्गदर्शकोकी अत्यन्त त्रुटि है।

जना घनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिता ।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रा ये जगदभ्युज्जिहीर्षव ॥

अर्थात् ससारमे ऐसे मनुष्य और मेघ सुलभ हैं जो वाचाल और वृथा गर्जना करनेवाले है। जगत्के मनुष्योको व्यामोहमे डालनेवाले

शब्दोकी सुन्दर-सुन्दर रचना द्वारा अपनेको कृतकृत्य माननेवाले मनुष्यो-की गणनातीत सख्या है इसी प्रकार घटाटोपसे गर्जन करनेवाली अगणित मेघमालाएँ आकाशपथमे प्रकट होकर विलीन हो जाती हैं, परन्तु जल-शून्य होनेके कारण जगत्की उपकारिणी नही होती। अत बन्धुवर्ग। जो वक्ता आत्महितका उपदेश करे, मन्दकषायी हो, निर्लोभ, निर्मान, निर्मायि तथा क्षमागुण सयुक्त हो उनके मुखसे शास्त्र श्रवण कर आत्म-कल्याणके मार्गमे लग जाओ। मनुष्यजन्मका लाभ अति कठिन है, सयमका साधन इसी पर्यायमे होता है। सब प्रकारकी योग्यता यहाँ है। नारकी तो अनन्त दु खके ही पात्र हैं। तिर्यञ्चोमे भी बहुभाग निरन्तर पर्यायबुद्धिमे ही काल पूर्ण करता है। कुछ अन्य तिर्यञ्च संज्ञी पर्यायके पात्र होते हैं। उनमें अधिकाश तो महाहिंसक क्रूर ही जन्म पाते हैं। कुछ सरल-भद्र भी होते हैं। इन दोनो प्रकारके तिर्यञ्चोंमे जिनके मन है वे सम्यग्दर्शन और देशसयमके पात्र हैं, परन्तु विरले हैं। देवोंमें शुभोपयोगके कार्योकी मुख्यता है, परन्तु कितना ही प्रयत्न करें, सयमसे वञ्चित ही रहते हैं। मन्दकषाय है, शुक्ललेश्या तक हो सकती है, परन्तु वह लेश्या मनुष्यपर्यायमे संभवनीय शुक्ललेश्यासे न्यून ही है। मनुष्यजन्ममे ससार-नाशका साक्षात् कारण जो रत्नत्रय है, वह हो सकता है। मनुष्य ही महाव्रतका पात्र हो सकता है। ऐसे निर्मल मनुष्यजन्मको पाकर पञ्चेन्द्रियोंके विषयमें लीन हो खो देना बुद्धिका दुरुपयोग है। आप लोग सम्पन्न हैं, नीरोग है और साधन अच्छे हैं। यदि इस उत्तम अवसरको पाकर आत्महितसे वञ्चित रहे, तो अन्तमें पश्चात्ताप ही रह जावेगा, अत जहाँ तक बने, आत्मतत्त्वकी रक्षा करो। उससे अधिक मैं नही जानता। अब हमको जाना है, आप लोग आनन्दसे रहिये।

प्रवचनके बाद बुलन्दशहरसे ४ मील चल कर एक कूपपर विश्रामके अर्थ रह गये और १५ मिनटके अनन्तर वहाँसे प्रस्थान कर दो मीलके उपरान्त एक धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशालाके समीप ही एक शिवालय था, उसमे सायंकाल बहुतसे भद्र मनुष्य आये और सन्ध्या वन्दन कर चले गये। अन्तमे एक महाशयने प्रश्न किया कि ससारमें मनुष्यका क्या कर्त्तव्य है? यह तो महादु खका सागर है? प्रश्नके उत्तरमे मैने कहा—दु ख क्या है? वह महाशय बोले—जो नाना प्रकारकी अभिलाषाएँ होती है वही दु ख है। मैंने कहा—जब यह निश्चय हो गया कि अभिलाषाएँ ही दु ख है, तब इन्हे त्यागना ही दु ख-निवृत्तिका उपाय है। किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नही। इतना ही

मार्मिक तत्त्ववेत्ता कहेगे। दु खनिवृत्तिका उपाय जब यही है तब दु खके मूल कारणोसे अपनेको सुरक्षित रखना मनुष्यका कर्तव्य अनायास सिद्ध है। आजकी कथा तो प्रत्यक्ष ही है। ससारमे जिसकी आवश्यकताएँ जितनी अधिक होगी वह उतना ही अधिक दु खका पात्र होगा। जितनी कम अभिलाषाएँ होगी, वह उतना ही कम दु खका पात्र होगा, इससे अधिक उपदेश कल्याणमार्गका है नही। दु खका मूल कारण परमे निजकी कल्पना है। जिसने इस कल्पनाकी उत्पत्तिको रोका, उसने ससारका बीज ही उच्छेद कर डाला। देव, गुरु और आगमकी उपासनाका भी यही सार है। यदि मोह नष्ट हो गया तो विषाक्त दन्तके विना सर्प जिस प्रकार फण पटकता रहे, पर कुछ अहित करनेको समर्थ नही, उसी प्रकार अन्य विभाव काम करता रहे, पर आत्माका कुछ पदार्थ विगाड नही सकता इसे, हम और आप जानते है। यदि विशेष जाननेकी इच्छा हो तो विशिष्ट विद्वानो-के पास जाओ। मेरा उत्तर सुन उसका चित्त गद्गद हो गया।

यहाँ रात्रिको ठण्डका बहुत प्रकोप हुआ, परन्तु (जब निरुपाय कोई उपद्रव आ जाता है तब एक सन्तोष इतना प्रबल उपाय है कि उससे वह उपद्रव विना किसी उपायके स्वयमेव शान्त हो जाता है) यहाँसे प्रात काल चले। लगभग ६ मील चले होगे कि एक वैष्णव धर्मको माननेवाली महिला आई और उसने बहुतसे फल समर्पण किये। बहुत ही आदरसे उसने कहा कि हमारा भारतवर्ष देश आज जो दुर्दशापन्न हो रहा है, उसका मूल कारण साधु लोगोका अभाव है। प्रथम तो साधुवर्ग ही यथार्थ नही और जो कुछ है वह अपने परिग्रहमे लीन है। कोई उपदेश भी देते है, तो तमाखू छोडो, भाँग छोडो, रात्रिको मत खाओ ' यह उपदेश नही देते, क्योकि वे स्वय इन व्यसनोके शिकार रहते है। यथार्थ उपदेशके अभावमे ही देशका नैतिक चारित्र निर्मल होनेकी जगह मलिन हो रहा है। यद्यपि सम्प्रदायभेद होनेसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके साधु हैं तथापि आत्माको चैतन्य मानना पञ्चपाप त्यागना, यह तो प्राणिमात्रके लिए उपदेश देना चाहिए। इसमे क्या हानि है ? अथवा यह तो दूर रहो, प्रथम तो उपदेश ही नही देते। यदि देते भी है, तो ऐसा उपदेश देवेगे, जिसका सामान्य मनुष्योको बोध भी नही होगा कि महाराज क्या कह रहे हैं ? आप पैदल यात्रा करते है, यह बहुत ही उत्तम है, परन्तु आप जो आपके परिकरमे है उन्हे उपदेश देवेंगे या जहाँ जैन जनता मिल जावेगी, वहाँ उपदेश देवेगे। हम-लोगोको आपके पैदल भ्रमणसे क्या लाभ ? आपको तो सर्वप्राणिवर्गके साथ धार्मिक प्रेम रखना चाहिए।

धर्म तो धर्मीका होता है। हम भी तो धर्मी (आत्मा) हैं, अत हमको भी धर्मका तत्त्व समझना चाहिए। मेरा तो दृढतम विश्वास है कि यदि वक्ता सुबोध और दयालु है तो श्रोतागण उससे अवश्य लाभ उठावेंगे। हम लोग इतने सकुचित विचारके हो गये हैं कि इतरको दीन समझ सदुपदेशसे वचित रखते हैं। मै तो इसका अर्थ यह जानती हूँ कि जो वक्ता स्वय मोक्षमार्गमे वञ्चित है, वह इतरको उससे लाभान्वित कैसे करा सकता है ? अत मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी पैदल यात्राका यथार्थ लाभ उठावे। वह लाभ आप तभी उठा सकेंगे, जब धर्मका उपदेश प्राणीमात्रके लिए श्रवण करावेंगे। जो बाते मैंने आपके समक्ष प्रदर्शित की, यदि उनमे कुछ तथ्यांश दृष्टिमे आवे तो उन्हे स्वीकृत करना, अन्यथा त्याग देना। इतना बोलनेका साहस मैंने आज ही किया और आपने सुन लिया, यह आपकी शिष्टाचारता है। अब मैं आपका अधिक समय नही लेना चाहती इतना कह प्रणाम कर वह चली गई।

महिला चली गई और हृदयके अन्दर विचारोका एक सघर्ष छोड गई। उसके चले जाने पर मैंने बहुत कुछ मानसिक परिश्रम किया। मनमे विचार आया कि क्यो तुम्हे एक अबला इतनी शिक्षा दे गई ? क्यो उसका इतना प्रबल साहस हुआ ? मैं तो उसका कथन श्रवण कर आत्मीय दुर्बलता पर ध्यान देने लगा। विचार किया कि ७४ वर्षकी आयु होनेवाली है, परन्तु तुमने आज तक शान्ति नही पाई। प्रथम तो सम्यग्दर्शन होनेके बाद आत्मामे अनन्त ससारकी विच्छित्ति हो जानेसे अनन्त ही शान्ति आना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण कषाय शान्तिकी घातक नही। केवल ईषत् सयम, जिसे देशसयम कहते है, नही होने देती। देशसयम-घातक कषाय आत्मस्वरूपके बोध होनेमे बाधक नही। अनन्तानुबन्धी कषायके अभावमें आत्मा हर समय, चाहे स्वात्मोपयोगी हो, चाहे परपदार्थोके ज्ञानमे उपयुक्त हो, आत्मश्रद्धासे विचलित नही होता। यही कारण है कि यह सर्वससारके कार्योमे व्यग्र रहने पर भी व्यग्र नही होता। उसकी महिमा अवर्णनीय और अचिन्त्य है। जिस दिन सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया, उस दिन आत्मा कर्तृत्वधर्मका स्वामी मिट गया।

अज्ञानके कारण ही यह आत्मा परपदार्थोका कर्ता बनता फिरता है, अत जब अज्ञानभावकी—मोहमिश्रित ज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है, तब यह अकर्ता हो जाता है। किसी पदार्थका अपने आपको कर्ता नही मानता। जिसे इस तत्त्वकी प्राप्ति हो चुकी उसे अब चिन्ता करनेकी कौन

सी बात है ? जिसके पास ९९९९९९९) रुपये ६३ पैसे और २ पाई हो गई, उसे कोटयधीश कहना कुछ आत्युक्ति नही। परन्तु परमार्थसे अभी १ पाईकी कमी उसे कोटयधीश नही कहने देती। इसी प्रकार अनन्त ससारका अभाव होनेपर भी अभी उस जीवको हम सर्वज्ञ—केवली नही कह सकते। कहनेका तात्पर्य यह है कि (जब जीवके सम्यग्दर्शन हो जाता है, उस समय उसकी आत्मामे जो शान्ति आती है, उसका अनुभव उसी आत्माको है, अन्य कोई क्या उसका निरूपण करेगा ? इतना होने पर भी यदि वह अन्तरङ्गसे खिन्न रहता है, तो मेरी बुद्धिमे तो उसे सम्यग्दर्शन नही हुआ। व्यर्थ ही व्रती बननेका मान करता है। मोक्षमार्गमे जो कुछ कला है, इसी सम्यग्दर्शनकी है) विवाहमे मुख्यता वरकी है, वरातियोकी नही। यदि वह चगा है, तो सर्व परिकर सानन्द है। इसके असद्भावमे सर्व परिकरका कोई मूल्य नही, अत हम जो रात्रि-दिन शान्तिके अर्थ रुदन करते हैं, उस रुदनको छोड देना चाहिए, क्योकि हम लोगोकी जैनधर्ममे अकाटय श्रद्धा है। शेष त्रुटि कम करनेके अर्थ पुरुषार्थ करना चाहिए। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि धर्मभे हमारी रुचि है, तो अवश्य ही हम मोक्षमार्गके पात्र हैं। श्री समन्तभद्रस्वामीने कहा है कि सम्यक्त्वके समान श्रेयस्कर और मिथ्यात्वके समान अश्रेयस्कर अन्य नही। अस्तु, इस विषयमे विवाद न कर, निरन्तर शान्तभावोका उपार्जन करो। मनमे यही विचार आया कि—(गल्पवाद मत करो, सहसा उत्तर मत दो, हठ मत करो, किसीको अनिष्ट मत वोलो, जो उचित बात हो, उसके करनेमे सकोच मत करो, आगमके प्रतिकूल मत चलो। न धर्म वाह्य चेष्टामे है और न अधर्म, उसका तो सीधा सम्बन्ध आत्मासे है। आत्माकी सत्ताका अनुमापक सुख-दु खका अनुभव है तथा प्रत्यभिज्ञान भी आत्माकी नित्यतामे कारण है, प्रत्येक मनुष्य सुखकी अभिलापा करता है।)

इसी विचार निमग्नदशामे चलकर वुलन्दशहरसे ८मील आये और १ धर्मशालामे ठहर गये। यहाँसे ९ मील चलकर गुलावटीमे श्री मोहन जैसवालकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँपर कई बुढियाँ आईं और केला आदि चढा गईं। उन्होने समझा कि यह उडिया बाबा है। अभी तक भारतमे वेपका आदर है। यहाँ पर मेरठसे बाबू ऋषभदासजी आ गये। उन्हीके यहाँ भोजन किया। आप वहुत ही सज्जन हैं। यहासे ३ मील चलकर एक धर्मशालामे ठहर गये। एक कोठरी थी। उसीमे ५ आदमियोने गुजर किया। रात्रिको शीतका वहुत प्रकोप था। परन्तु अन्तमे वह प्रकोप गया। प्रात काल ७½ वजे जब दिनकरकी सुनहली धूप सर्व ओर फैल गई तब

चले । कुछ समय बाद तगा ब्राह्मणोके ग्राममे पहुँच गये, तगा लोग अपनेको त्यागी कहते है । ये लोग दान नही लेते है, देते है । त्यागकी महत्ता समझते है । जिनके यहाँ ठहरे थे, उनका पूर्वज बहुत विद्वान् था । उनके घर बहुतसे ग्रन्थोका सग्रह था, शिष्ट मानव था । मेरठसे दो चौका आ गये थे । उन्हीके यहाँ भोजन किया । पिछले दिनो एक महिलाने प्रेरणा की थी कि जहाँ जाओ सर्व हितके लिये उपदेश दो, धर्मका प्रचार करो-पर हमने उस पर कुछ भी चेष्टा न की । आखिर सस्कार भी तो कोई वस्तु है । वास्तवमे यही उपेक्षा हमारे उत्कर्षमे बाधक है। यहाँसे दो कोश चलकर हापुड आगये । यह बहुत भारी मण्डी है । यहाँपर बर्तनोका महान् व्यापार है तथा यहाँपर एक वर्षमे करोडो रुपयेका सट्टा हो जाता है । सहस्रो मन गुड यहाँ पर प्रतिदिन आता है । यहाँ पर मन्दिर बहुत सुन्दर है । प्रतिमाएँ भी अत्यन्त मनोज्ञ है । आजकल कारीगर बहुत निपुण हो गये है । दर्शन करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीके गृहमे आये । बहुत ही सुन्दर गृह है । आपके ३ सुपुत्र है । तीनो ही बुद्धिमान् है । आपका कुल धार्मिक है, आपके यहाँ शुद्ध भोजन बनता है तथा आपकी दानमे प्रवृत्ति अच्छी है । कन्याशालामे श्री चौ० रामचरणलाल सागरकी बहिन है । यहाँके मनुष्य बहुत ही सज्जन है । १ खण्डेलवाल भाईके बागमे, जो शहरसे आधा मील होगा, ठहर गये । आपने सर्व प्रकारकी व्यवस्था कर दी, कोई कष्ट नही होने दिया । मन्दिरमे २ दिन प्रवचन हुआ, मनुष्यसख्या अच्छी उपस्थित होती थी । प्रवचन सुन मनुष्य बहुत ही प्रसन्न हुए । परन्तु वास्तवमे जो बात होना चाहिए वह नही हुई और न होनेकी आशा है, क्योकि लोग ऊपरी आडम्बरमे प्रसन्न रहते है, अन्तरङ्गकी दृष्टि पर ध्यान नही देते । केवल गल्पवादमे समय व्यय करना जानते है । १ धर्मशाला मन्दिरके पास बन रही है । मन्दिरके पास बर्तन बनानेवाले बहुत रहते है । इससे प्रवचनमे अतिबाधा उपस्थित रहती है । पर कोई उपाय इस विघ्नके दूर करनेका नही है । शामको मेरठवाले आये और मेरठ चलनेके लिए प्रार्थना करने लगे जिससे हापुडवालोमें और उनमे बहुत विवाद हुआ । हापुडके मनुष्योको मेरे जानेका बहुत खेद हुआ, परन्तु प्रवास तो प्रवास ही है । प्रवासमे एक स्थान पर कैसे रहा जा सकता है । फलत माघ सुदी १३ को हापुडसे मेरठकी ओर प्रस्थान कर दिया । यहाँ निम्नाकित भाव मनमे आया—

'किसीकी मायामे न आना यही बुद्धिमत्ता है । जो कहो उस पर दृढ रहो, व्यर्थ उपदेष्टा मत बनो, किसीसे रुष्ट तथा प्रसन्न मत होओ,

किसी सस्थासे सम्वन्ध न रक्खो, अपने स्वरूपका अनुभवन करो, परकी चिन्ता छोडो, कोई किसीका कुछ उपकार नही कर सकता।'

मेरठ

हापुडसे ४ मील कैली आये। एक जमीदारके वरण्डामे ठहर गये, अति सज्जन था। सत्कारसे रक्खा, दुग्धादि पान करानेकी वहुत चेष्टा की। परन्तु किसीने नही पिया। यहाँसे ३ मील चलकर खरखोदा आ गये। यहाँपर एक तगा ब्राह्मणके घरपर ठहर गये, जो वहुत ही सज्जन था। इनके बावा तुलसीराम वहुत प्रसिद्ध पुरुष थे। निरन्तर दानमे प्रवृत्ति रखते थे। यहाँ तक दयालु थे कि निज उपयोगके पदार्थ भी परजनहिताय दे देते थे। ऐसे पुरुष बहुत कम होते हैं। यहाँ पर मेरठसे एक चौका आया था। उसीमे भोजन किया। यह ग्राम ६००० मनुष्योकी वस्ती है। यहाँपर अनिवार्य शिक्षा है। सस्कृतशाला तथा हाईस्कूल है। सब प्रकार-की सुविधा है। व्यापारकी मण्डी है। यहाँसे ११½ वजे चल दिये और १ मील चलकर मार्गमे सामायिक की। नगरके कोलाहलसे दूर निर्जन स्थान पर सामायिक करनेसे चित्तमे वहुत शान्ति आई। तदनन्तर चलकर एक वागमे ठहर गये। माघ सुदी पूर्णिमाको प्रात तीन मील चलकर मेरठसे इसी ओर २ मील दूरी पर १ वाग था, उसमे ठहर गए। देहलीसे श्री राजकृष्णके भाई आये, उनके यहाँ भोजन हुआ। वहाँ १½ वजते-वजते मेरठसे बहुत जनसख्या आकर एकत्र हो गई और गाजेबाजेके साथ मेरठ ले गई। लोगोने महान् उत्साह प्रकट किया। अन्तमे श्री जैन वोर्डिंगमे पहुँच गये और यही ठहर गए। यहाँ पर १ मन्दिर बहुत सुन्दर है, स्वच्छ है। १ भवन शास्त्रप्रवचनका है जिसमे २०० मनुष्य तथा १०० महिलाएँ आनन्दसे शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुआ। श्रीवर्णी मनोहरलालजीने प्रवचन किया। आपकी प्रवचनशैली गम्भीर है, आप सस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं, कवि भी है, भजनोकी अच्छी रचना की है, गानविद्यामे भी आपकी गति है, हारमोनियम अच्छा वजाते हैं, सौम्यमूर्ति है। आपने सहारनपुरमे गुरुकुल खोला है। उसके अर्थ कुछ सकेत किया तो २००००) वीस हजार रुपये हो गए। १००००) दस हजार तो आटेकी मिलवालोने दिये। आपसे यहाँकी जनता प्रसन्न है। यहाँ बाबू ऋषभदासजी साहब अच्छे विद्वान् है। आपके प्रवचनसे हमे बहुत आनन्द आया। आपको चारो अनुयोगोका ज्ञान है। जनता आपके प्रवचनोसे बहुत प्रसन्न रहती है। आपने व्यापारका त्याग कर दिया है। आपके

पुत्र भी बहुत सुशील है। आपका कुटुम्ब आपके अनुकूल है। आप विद्वान् भी है, सदाचारी भी है, त्यागी भी है, वक्ता भी है। आपके समागमसे अपूर्व शान्ति हुई। आप गृहमे रहकर जलमे कमलके समान अलिप्त है। आपके साथ वार्तालाप करनेसे श्री आचार्य समन्तभद्रके रत्नकरण्डश्रावकाचारका श्लोक—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने ॥

याद आ गया और दृढतम विश्वास हो गया कि कल्याण-मार्गका बाधक अन्य पदार्थ नही। इसका अर्थ यह नही कि निमित्तकारण कुछ नही करता। यदि पदार्थमे योग्यता है तो निमित्त उसके विकासमे सहकारी हो जाता है। चनामे विकास होनेकी योग्यता है, अत उष्ण बालुपुञ्जका ससर्ग पाकर वह खिल जाता है। बालुका पिण्ड अग्निका निमित्त पाकर उष्ण तो हो जाता है परन्तु विकसित नही होता और निजकी योग्यता रहने पर भी अग्निरूप निमित्तकी सहायताके विना चना विकसित नही होता। इससे सिद्ध होता है कि कार्यकी सिद्धिमे पदार्थकी योग्यता और बाह्य निमित्तका आलम्बन दोनो ही कार्यकारी है।

मेरठ पहुँचते ही हमे बाबा लालमनजीका स्मरण हो आया। आपकी कथा बडी रोचक है। आपके नेत्रोकी दृष्टि जाती रही थी। एक दिन आप मन्दिरमे गये तो आपकी माला टूट गई। तब आपने नियम लिया कि अब तो मन्दिरसे तब ही प्रस्थान करेगे। लोगोने बहुत समझाया परन्तु आपने किसीकी शिक्षा नही मानी। २ दिन हुए कि आपको लघुशकाकी बाधा हुई। उसके निवृत्त्यर्थ आप मन्दिरसे निकले परन्तु निकलते समय आपके शिरमे पत्थरकी चौखटका आघात लगा और मस्तकसे रुधिरधार बहने लगी। मालीने जलसे धोया शिरका विकृत भाग निकल जानेसे आपको दिखने लगा। इस घटनासे आपने गृह जानेका त्याग कर दिया और क्षुल्लक दीक्षा अगीकार कर ली। आप प्रसिद्ध क्षुल्लक हुए। १५-१५ दिन तकके उपवास करनेमे आप समर्थ थे। आप धर्मप्रचारक भी अच्छे थे। बीसो स्थानो पर आपने जिन मन्दिर निर्माण कराये, अनेकोको माँस-भक्षणका त्याग कराया और अनेकोको मन्दिरमार्गी बनाया। जिसके पीछे पड जाते थे उसे कुछ न कुछ त्याग करना ही पडता था। आपकी तपस्याका प्रभाव अनेक व्यक्तियो पर पडता था। आप यदि विद्वान् होते तो कई विद्यालय स्थापित करा जाते। परन्तु उस ओर आपकी दृष्टि

न गई, फिर भी आपने जैनधर्मका महान् उपकार किया, स्वय निर्दोष चारित्र पालन किया, औरोको भी पालन करानेका पूर्ण शक्तिसे प्रचार किया। एक वारकी वात है कि आप सिंहपुरीकी यात्राको गये थे और मै भी वहांके दर्शनके लिए गया था। आपके दर्शनका आकस्मिक लाभ हो गया। मैने आपको सविनय प्रणाम किया। फिर क्या था ? आप कहते है—कौन हो ? मैने उत्तर दिया छात्र हूँ। आपने कहा—कहाँ अध्ययन करते हो ? मैंने कहा—स्याद्वाद विद्यालयमे। आपने प्रश्न किया—कुछ त्याग कर सकते हो ? मैने विचार किया—हम छात्र है, अत क्या त्याग कर सकते है ! हमारे पास कुछ द्रव्य तो है नही। फिर भी जो वनेगा १ आना, २ आने किसी गरीवको दे देवेगे। इस विचारके अनन्तर मैने सहर्ष स्वीकृत किया कि—कर सकते है। अच्छा, महाराज वोले—तुमको भोजनमे सबसे प्रिय शाक कौनसा है ? मैने कहा—महाराज ! आपने कहा था कुछ त्याग कर सकते हो, मैंने समझा—कुछ पैसेका त्याग महाराज करावेंगे—पर आप तो पूछते है भोजनमे कौनसा प्रिय शाक है ? महाराज ! मुझे सबसे प्रिय शाक भिण्डी है। सुनकर महाराज बोले—इसीको त्यागो। मै वोला—महाराज ! यह कैसे होगा ? क्योकि यह तो मुझे अत्यन्त प्रिय है। महाराज बोले—तूने स्वय कहा था कि त्याग कर सकते है। मैने कहा—महाराज भूल हुई, क्षमा करो। महाराज बोले—भूलका फल तो तुम्हे भोगना ही पडेगा। मैने कहा—महाराज ! जो आज्ञा, कव तकके लिये छोडू ? महाराज वोले—तेरी इच्छा पर निर्भर है। मै बोला—महाराज ! मै मोही जीव हूँ, आप ही वतावे। महाराजने कहा—जो तेरी इच्छा सो बोल। मैने कहा—जब तक वनारस भोजनालयमे नही पहुचा तव तक त्याग है। महाराज बोले—बेटा ! हम समझ गये। परन्तु ऐसी दम्भिता सुखकारी नही। ज्ञानार्जनका फल यह नही कि छलसे काम निकाल लो। यही दोष वर्त्तमानके वातावरणमे हो गया है कि हर वातमे कुतर्कसे काम निकालते है। हम तुमको छात्र जान तुम्हारे हितकी वात कहते है जो मनमे हो सो कहो। देखो, यदि भिण्डीकी शाक छोडना इष्ट नही था तो हमसे कह देते—महाराज, मैं नही छोड सकता—यह सीधा उत्तर देना था। अस्तु, छलसे काम न करना। मैंने महाराजसे कहा—१२ मासको त्याग दिया। महाराज प्रसन्न हुए, कहने लगे—प्रसन्न रहो, कल्याणके पात्र होओ। महाराजका अन्तिम उपदेश तो यह था कि यदि कल्याण नामका कोई पदार्थ है तो उसका पात्र त्यागी ही हो सकता है। अन्य कथा छोड़ो, जो हिंसक है, विषयी है, व्यसनी है उन्हे भी जो सुख होता है वह त्यागसे

ही होता है। जैसे हिंसक मनुष्यके यह भाव हुए कि अमुक प्राणीकी हिंसा करूँ। अब वह जब तक उस प्राणीका घात न करे तब तक निरन्तर खिन्न और दुखी रहता है। अब उसकी खिन्नता जानेके दो ही उपाय हैं—या तो अपनी इच्छाके अनुसार उस प्राणीका घात हो जावे या वह इच्छा त्याग दी जावे। यहाँ फलस्वरूप यही सिद्धान्त तो अन्तमें आया कि सुखका कारण त्याग ही हुआ। हम उस ओर दृष्टि न दें, यह अन्य कथा है। विषयी मनुष्य जब विषय कर लेता है तभी तो प्रसन्न होता है। इसका यही अर्थ तो हुआ कि उसे जो विषयेच्छा थी वह निवृत्त हो गई। मेरा ही यह विश्वास है सो नहीं, प्राणीमात्रको यही मानना पडेगा कि त्यागमें ही कल्याण है।

कल्याणका बाधक कर्म है और यह कर्म उदयमें विकृति देकर ही खिरता है। उस समय जो औदयिक विकृति होती है वही फिर नवीनबंध बाँधनेका कारण हो जाती है। यही संतति हमारी आत्माको आत्मोन्मुख नहीं होने देती। यही हमारी महती अज्ञानता है। जब तक हमारी असंज्ञी अवस्था थी तब तक तो हमको हेयोपादेयका बोध ही न था। पर्यायमात्र-को आपा मान पर्याय ही मे आहारादि संज्ञाओं द्वारा मग्न रहते थे, परन्तु अब तो संज्ञीपनाको प्राप्त हो हेयोपादेयके जाननेके पात्र हुए हैं। अब भी यदि निजकी ओर लक्ष्य न दिया तो हमारा-सा अपात्र कौन होगा? हमको यह बोध है कि हम जो हैं वह शरीर नहीं है। शरीर पुद्गलपरमाणुओंका पिण्ड है। अनादिकालसे विभावपरिणतिके कारण इन दोनोंका बन्ध हो रहा है और उस बन्धके कारण दोनों द्रव्य आत्मीय स्वरूपसे च्युत हो रहे हैं। जैसे स्वर्ण और रजतको गलाकर यदि १ पिण्ड कर दिया जावे तो उस अवस्थामें न वह केवल स्वर्ण है और न रजत है किन्तु दोनोंकी विकृ-तावस्था है। यद्यपि जिस समय उन दोको गलाया था उस समय उनमें जो चार आना भर स्वर्ण और चार आना भर रजत था वही पिंडावस्थामें भी विद्यमान है तथापि पर्यायदृष्टिसे न वह केवल स्वर्ण है और न केवल रजत ही है किन्तु स्वर्ण और रजतकी १ मिश्रित अवस्था है। इसी प्रकार आत्मा और पुद्गलकी बन्धावस्थामें एकमेक प्रतीति होती है। यद्यपि दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं तथापि मोहके कारण भिन्नता दृष्टिपथ नहीं होती। भिन्नताका कारण जो भेदज्ञान है वह मद्यपायी मनुष्यकी विवेक-शक्तिके समान अस्तमितके समान हो रहा है। अतः बेटा! हमारा यही उपदेश है कि मोहको त्यागो और आत्मकल्याणमें आओ। केवल जाननेसे कुछ न होगा। अस्तु, महाराजकी यह कथा आनुषङ्गिक आ गई। मेरठमें

कई दिन रहे। यहाँकी जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। यहाँकी मण्डली भी धार्मिक है—धार्मिक भावोसे ओत-प्रोत है। सदरमे दो जिनमदिर हैं। यहाँ पर भी लोगोका वर्ताव धार्मिक भावोसे अनुस्यूत है। इसी तरह तोपखानेमे भी १ सुन्दर जिन मन्दिरका निर्माण कराया गया है। यदि त्रुटि देखी गई तो यही कि समाजमे सघटन नही, अन्यथा आज ससारमे आत्माका जो वास्तव धर्म है, उसका विकास होनेमे विलम्व न होता।

अहिंसा धर्म है और वह आत्माका वह परिणाम है जहाँ मोह, राग, द्वेषकी कलुषता नही होती। इस तरह आत्माकी जो शुद्ध अवस्था है, वही अहिंसा है। विषयलालसासे पञ्चेन्द्रियोके विषयोमे जो प्रवृत्ति हो रही है वह अहिंसाके श्रद्धानमात्रसे विलीन हो जाती है। पञ्चेन्द्रियोके द्वारा विषयो-का ज्ञान होना अन्य बात है और रुचिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए जानना अन्य बात है। दोनोमे महान् अन्तर है। प्रमादपूर्वक जो हिंसा होती है आन्तरङ्गिक कलुषताके निकल जाने पर वह भी नहीं होती। प्रयत्नपूर्वक निष्प्रमाद रहने पर यदि किसी प्राणीका वध भी हो जावे, तो वह हिंसा नही, क्योकि अमृतचन्द्रदेवने कहा है—

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥

अर्थात् जिसका आचरण युक्त—निष्प्रमाद है उसके रागादिजन्य आवेगके बिना यदि बाह्यमे कदाचित् प्राणोका व्यपरोप भी होता है, तो उससे हिंसा नही होती। अत अन्तरङ्गमे जिनका अभिप्राय निर्मल हो गया उन महापुरुषोकी प्रवृत्ति अलौकिक हो जाती है। किसीके ये भाव बाहरसे आते नही, किन्तु जिन आत्माओके ससारवन्धनसे मुक्त होनेकी आकाक्षा हो जाती है उनके अनायास आभ्यन्तरसे प्रकट हो जाते हैं। प्रत्येक प्राणीकी अहिंसारूप परिणति स्वभावत विद्यमान रहती है, कही बाहरसे वह आती नही है। जैसे अग्निमे उष्णता किसीने लाकर नही दी है। वह तो उसका स्वभावसिद्ध गुण है। परन्तु जिस प्रकार चन्द्रकातमणिके सपर्कसे अग्निका उष्णतागुण दाहकार्यसे विमुख हो जाता है, उसी प्रकार आत्माका अहिसक गुण मोहके सपर्कसे स्वकार्यसे विमुख हो रहा है। हे आत्मन्! अब इन परपदार्थोके द्वारा अपनी प्रशसा, निन्दा आदिके जो भाव होते हैं, उन्हे त्याग सुमार्ग पर आओ।

यहाँ बाबू जुगलकिशोरजी मुख्त्यार तथा उनके साथ प० दरबारी-लालजी न्यायाचार्य भी आये। यहाँ आहार आदिके समय लोगोने सहारन-

पुर गुरुकुलके लिये यथाशक्य सहायता दी। गुरुकुल सस्था उत्तम है, परन्तु लोगोकी दृष्टि उस ओर नही। उसका स्वाद नही, जिन्हे स्वाद है उनके पास द्रव्य नही, जिनके पास द्रव्य है उनके परिणाम नही होते। ससारी जीव निरन्तर परको अपना मानता है। इसी कारण वह ससारमे भ्रमता है। हमारे मनमे यह विचार आया कि 'स्पष्ट और सरल व्यवहार करो। परको पराधीन बनाना महती अज्ञानता है। आत्मीय कलुषताके विना परकी समालोचना नही होती।'

('अन्तरङ्ग वृत्ति निर्मल नही। तत्वज्ञानकी रुचि जैसी चाहिये, वह नही। खेद इस बातका है कि हम स्वय आत्मपरिणामोके परिणमन पर ध्यान नही देते। स्वकीय आत्मद्रव्यका कल्याण करना मुख्य है, परन्तु उस ओर लक्ष्य नही है। आत्मन्! तू परपदार्थोमे कब तक उलझा रहेगा?')

खतौली

फाल्गुन बदी ६ स० २००५ को मेरठसे चलकर शिवाया पर निवास किया। यहाँ पर जो बगला था, वह ईसाईका था, परन्तु उसमे जो रहनेवाला था, वह उत्तम विचारका था, जातिका वैश्य था, गाधीजीके आश्रममे १½ वर्ष रहा था, मुफ्त औषध बाँटता था, योग्य था। उसने यह नियम लिया कि तमाखु न पीवेगे तथा जहाँ तक बनेगा मनुष्यता सम्पादन करनेकी चेष्टा करेगे। चेष्टा ही नही, मनुष्य बनकर ही रहेगे। बहुत विनयसे १ मील पहुँचा गया। शिवायासे चलकर डोराला आया। यहाँ पर भोजन कर सामायिकक्रिया की और फिर चलकर सायकाल सकौती पहुँच गये। यहाँ पर ठहरनेके लिये पवित्र स्थान मिला। रात्रिको विचार आया कि 'परके सम्बन्धसे जीव कभी भी सुखी नही हो सकता, क्योकि जहाँ पर पराधीनता है, वही दुःख है। अत जहाँ तक बने परकी पराधीनता त्यागो। यही कल्याणका मार्ग है। स्वतन्त्रता ही सुखकी जननी है, सुखका साधन एकाकी होना है।'

फाल्गुन वदी ८ स० २००५ के ३ बजे खतौली आये। ग्रामके सर्व मनुष्य आये, स्त्री-जन भी अधिक सख्यामे आई। लोगोकी स्वागतपद्धतिको देखकर मनमे विकल्प आया कि 'केवल रूढिकी प्रवृत्ति ही चलनेसे लाभ नही। मार्गमे चाँदीके फूल विखेरे। मै तो इसमे कोई लाभ नही मानता। परोपकार करनेकी ओर लक्ष्य नही। इसका कारण यह है कि हम लोग आत्मतत्त्वको नही जानते, अत अनावश्यक प्रवृत्ति

कर अपनेको धर्मात्मा मान लेते हैं। परन्तु धर्मात्मा वही हो सकता है, जो धर्मको अगीकार करे।'

यह वही खतौली है जहाँ पर लाला हरगूलालजी वहुत ही प्रबल विद्वान् और उदार थे। आप केवल सस्कृतके ही विद्वान् न थे, किन्तु फारसीके भी पूर्ण विद्वान् थे। आप, यहाँसे २ कोस पर मौलवी साहवका गृह था, वहाँ पर पढने जाते थे। मौलवी साहवने कहा—हरगू बेटा। तुमको कष्ट होता होगा, अत. हम स्वय खतौली आया करेगे और यही हुआ। यहाँ पर वर्तमानमे कई सज्जन ऐसे है जो धवलाका स्वाध्याय करते हैं। श्री महादेवी वहुत विदुषी है, त्यागकी मूर्ति है, निरन्तर अपना समय ज्ञानार्जनमे लगाती हैं। यहाँ पर पहले जो कुन्दकुन्द-विद्यालय था वह अब अग्रेजीका कॉलेज हो गया। इस युगमे लौकेपणाके कारण अध्यात्म-विद्याकी ओरसे लोगोका झुकाव कम होता जा रहा है परन्तु मेरा तो दृढ विश्वास है कि इस जीवका वास्तविक कल्याण अध्यात्मविद्यासे ही हो सकता है। यहाँ पर कई सज्जन है—वाबूलालजी साहव महापरोपकारी है। लाला त्रिलोकचन्द्रजी तो एक पैरसे कमजोर होकर भी धार्मिक कार्योमे अपना समय लगानेमे कृपणता नही करते। लाला विश्वम्भर-सहायकी क्या कहे, सामग्री होते हुए भी उसका उपभोग करनेमे सकोच करनेसे नही चूकते। हमारा आपका वहुत प्राचीन सम्वन्ध है। हमारी सुनते तो है परन्तु 'हर्रा लगे न फटकरी, रग चोखा हो जाय' ऐसा मधुर भाषण कर टाल देते हैं। टालते रहे, पर हमे विश्वास है कि एक दिन अवश्य मार्ग पर चलेगे। मार्गमे है, पर चलनेका विलम्ब है। यही पर लाला खिचोडीमल्ल है, जो सचमुच एक उदारताका पुतला है। यदि ऐसा मनुष्य विशेप धनिक होता, तो न जाने क्या करता ? मेरा इनका बहुत दिनसे सम्वन्ध है, निरन्तर इनकी प्रवृत्ति स्वाध्यायमे रहती है। पूजन प्रतिदिन करते है। मुरारमे आप ४ मास रहे। निरन्तर त्यागियोको आहार कराना, सस्थाओमे दान करना, किसीको कुछ आवश्यकता हो उसकी पूर्ति करना, विद्वानोका आदर करना आपके प्रकृतिसिद्ध कार्य हैं। बनारस तथा सागर विद्यालयकी निरन्तर सहायता करते है। आपका अधिक समय मेरे पास ही जाता हैं। आपने अपने भानजेके पाणिग्रहणमे २५००) का दान किया तथा विवाह नवीन पद्धतिसे किया। कन्यावालेसे कुछ भी आग्रह नही किया। आपका व्यवहार इतना निर्मल है कि कोई किसी पक्षका क्यो न हो, प्राय आपसे स्नेह करने लगता है। खतौलीमे प्राय सर्व सज्जन है। यहाँ पर श्री माडेलाल जी दस्सा वडे प्रतापशाली

थे। आपने १ जैन मन्दिर भी उत्तम बनवाया है। आपके २ पुत्र बहुत ही योग्य थे। १ अब भी विद्यमान है। उन्हीके बँगलामे मैं ठहरा था।

प्रात काल ८½ बजेसे ९½ बजे तक प्रवचन किया। परन्तु मेरी बुद्धिमे तो यह आया कि हम लोग रूढिके उपासक है, धर्मके वास्तविक तत्त्वसे दूर है। धर्म तो आत्माकी शान्ति-परिणतिके उदयमे होता है, अत उचित तो यह है कि परपदार्थके साथ जो आत्मीय सम्बन्ध जोड रक्खा है, उसे त्यागना चाहिए। जब तक यह नही होगा, तब तक सर्व क्रियाएँ नि:सार है। इसका अर्थ यह है कि जब तक अनात्मीय पदार्थोके साथ निजत्वकी कल्पना है तब तक यह प्राणी धर्मका पात्र नही हो सकता। प्रवृत्तिकी निर्मलता उसीको हो सकती है जिसका आशय पवित्र हो और आशय पवित्र उसीका हो सकता है जिसने अनात्मीय पदार्थोमे आत्मबुद्धि त्याग दी। वही ससारके बन्धनोसे छूट सकता है। फागुन बदी ११ को जैन कालेजमे प्रवचन था। प० मनोहरलालजी वर्णीका प्रवचन हुआ। अनन्तर मैने भी कुछ कहा—

आशाका त्याग करना ही सुखका मूल कारण है। जिन्होने आशा जीत ली, उन्होने करने योग्य जो था, वह कर लिया। आशाका विषय इतना प्रबल है कि कभी भी पूर्ण नही हो सकता। सासारिक पदार्थोकी पूर्तिकर इस आशागर्तको आज तक कोई नही भर सका है। ससारमे सुखी वही हो सकता है जो इन आशाओ पर विजय प्राप्त करले। अगले दिन कवीवाले मन्दिरमे प्रवचन हुआ। मनुष्योकी संख्या अच्छी थी। १० बजे चर्याको निकले, परन्तु भीड बहुत होनेसे चर्याकी विधि नही मिली। परिणामोमे कुछ अशान्ति हुई। अशान्तिका कारण मोहकी बलवत्ता है। मोही जीव सर्वदा दु खका पात्र होता है। शारीरिक अवस्था दु खकी जननी नही, किन्तु उसके होते उसमे जो आत्मीयताकी कल्पना है वही दु खकी जननी है। शरीर परपदार्थ है, परन्तु उसके साथ ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि भिन्नता भासमान नही होती। मनमे विचार आया कि यदि यह चाहते हो—हमारे श्रेयोमार्गका विकास हो तो शीघ्रसे शीघ्र इन महापुरुषोका समागम त्यागो। आजकल जितने महापुरुष मिलते है उनका अभिप्राय तुम्हारे अभिप्रायसे नही मिलता है और इससे यह दृढ निश्चय करो कि प्रत्येक पदार्थका परिणमन भिन्न-भिन्न है। तब यह खेद करना कि यह समागम अच्छा नही, व्यर्थकी कल्पना है।

एक दिन भैसी गये, मन्दिरके दर्शन किये। यहाँ पर ५ घर जैन है। मन्दिर बहुत सुन्दर है। परन्तु मनुष्योकी रुचि धार्मिक कार्योमे थोडी

है। यहाँ पर २ आदमियोने प्रतिज्ञा ली कि हमारे जो खर्च होगा उसमे एक पैसा रुपया दानमे दिया करेंगे। यह ग्राम जाट लोगोका है। यहाँ पर १ चर्मकार है। उसकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर है। पार्श्वनाथका चित्र रक्खे है और उसकी भक्ति करता है। यहाँ जो जैनी हैं, वे सज्जन है। भोजनके वाद सामायिक की। अनन्तर स्त्रीसमाज आया। उसे कुछ उपदेश दिया, परन्तु प्रभाव कुछ नही पडा। (प्राय स्त्रीपर्याय मोहसे भरी रहती है। इसका सहवास मोही जीव चाहते हैं और उनके सपर्कसे आत्मीय कल्याणसे वञ्चित रहते है। ससारमे सवसे कठिन मोह [-त्याग] स्त्रीका है।)

अगले दिन फिर प्रवचन हुआ। प्रवचन करते करते मुझे लगा कि लोग ऊपरी दृष्टिसे सुनते हैं। पश्चात् उसका कुछ असर नही रहता, केवल प्रशसा ही रह जाती है। वक्ता आत्मीय परिणतिसे कार्य नही लेता। लौकिक मर्यादा ही मे निज प्रतिष्ठा मान प्रसन्न हो जाता है। होता जाता कुछ नही। मोक्षमार्गकी सरल पद्धति है, परन्तु वक्ताओने उसे इतनी दुरूह वना दी है कि प्रत्येक प्राणी सुन कर भयभीत हो जाता है। (धर्म जव आत्माकी परिणति है, तव उसको इतना कठिन दिखाना क्या शुभ है? मनमे विचार आया कि अपनी दिनचर्या ऐसी वनाओ, जो विशेषतया परका सम्पर्क न्यून रहे। परसम्पर्कसे वही मनुष्य रक्षित रह सकता है, जो अपनी परिणतिको मलिन नही करना चाहता। मलिनता-का कारण परमे मोह-द्वेप ही है। अत स्वीय मोह-राग-द्वेप-छोडो।)

यहाँसे प्रात काल ७॥ बजे चलकर ८॥ वजे गधारी आ गये। यहाँ पर धूमसिंहके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर ४ घर हैं। चारो ही अच्छे है। घसीटामल अत्यन्त दयालु है। आयका ⅟₂ भाग दानमे लगाते हैं। यहाँसे चलकर तिसना आ गये। तिसना गधारीसे ५ मील है। यहाँ पर ६ घर जैनी है। प्राय सभी सम्पन्न है। यहाँ आनन्दस्वरूपके घर भोजन किया। यहाँसे १२ मील हस्तिनापुर है। हस्तिनापुर पहुँचनेकी भावना हृदयको विशेषरूपसे उत्सुक कर रही थी। अत यहाँसे चलकर वटावली ठहर गये और अगले दिन प्रात २ मील चलकर वसूमा आ गये। यहाँ पर वहुत उच्चतम मन्दिर है। मन्दिरमे श्री शान्तिनाथजीकी मूर्ति है। १२३१ सम्वत् की है। वहुत सुन्दर और देशी पत्थरकी है। यहाँ पर तिसनासे आये हुए आनन्दस्वरूपजीके यहाँ भोजन हुआ। आप हस्ति-नागपुर तक वरावर हमारे साथ आये। फागुन सुदी पञ्चमी स० २००५ को दिनके ३ वजते-वजते हम हस्तिनागपुर आ गये। आनन्दसे श्रीजिन-राजका दर्शन किया।

हस्तिनागपुर

यह वही हस्तिनागपुर है, जहाँ शान्ति, कुन्थु और अरनाथ भगवान्के गर्भ, जन्म तथा तप कल्याणक हुए थे। देवोपनीत जिसकी रचना थी, तथा जहाँ भगवान्के गर्भमें आनेसे ६ माह पूर्व ही से रत्नवर्षा होने लगती थी। जगद् प्रसिद्ध कौरव-पाण्डवोकी भी राजधानी यही थी। अकम्पनाचार्य आदि सातसौ मुनियोकी रक्षा भी यहाँ हुई थी तथा रक्षाबन्धनका पुण्य पर्व भी यहीसे प्रचलित हुआ था। यहाँके प्राचीन वैभव और वर्तमानकी निर्जन अवस्था पर दृष्टि डालते हुए जब विचार करते है, तो अतीत और वर्तमानके बीच भारी अन्तर अनुभवमे आने लगता है।

वर्तमानमे यहाँ पर १ विशाल मन्दिर है, जो देहलीके लाला हरसुखरायजीका बनवाया हुआ है। बहुत ही पुष्ट और सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण किस स्थितिमे किस प्रकार हुआ, यह इसके इतिहाससे प्रसिद्ध है। मन्दिरमे श्रीशान्तिनाथ स्वामीका बिम्ब अतिरम्य है[1]। १२३१ सम्वत्का है। जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। बीचमे एक वेदी है। उसके बाद एक नवीन बिम्ब श्रीमहावीर स्वामीका है। यह सब है, परन्तु मनुष्योकी प्रवृत्ति तो प्राय इस समय अति कलुषित रहती है। यदि यहाँसे लोग शान्तभावको लेकर जावे तब तो यात्रा करनेका फल है, अन्यथा अन्यथा ही है। ससारबधनके नाशका यदि यहाँ आकर भी कुछ प्रयास नही हुआ, तो निमित्तकारणका क्या उपयोग हुआ? दूसरे दिन मन्दिरमे प्रवचन हुआ। प्रवचनमे मैंने कहा कि आत्मामे अचिन्त्य शक्ति है, फिर भी उपयोगमे नही आती। जल्पवादसे मुख मीठा नही होता। कर्तव्यवाद कथनवादसे भिन्न वस्तु है। आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है, यह शब्दकी रचना उसमे राग-द्वेषकी कलुषतासे रक्षा करे, यह असंभव है। मनुष्योकी प्रवृत्तिके हम कर्त्ता-धर्ता नही, फिर भी बलात्कार स्वामी बनते है। मोही जीव कुछ कहे, परन्तु उस स्वादको नही पहुँचता, जो मोहाभावके समय होता है। यह निर्विवाद सिद्धान्त है, कि ज्ञानमे ज्ञेय नही जाता, फिर भी हम ज्ञेयोके व्यवस्थापक बनते ही जाते है। लौकिक व्यवहार भी इसी बल पर चल रहा है। लौकिक व्यवहार भी मोही जीवोकी चेष्टाका विशेष फल है। यह तो लौकिक प्रक्रिया है। पर-

---

१ यह मूर्ति यहाँ बसूमासे लाई गई है।

मार्थसे विचारा जाय तब व्यवहार मात्र इसी मोहसे चल रहे है। अन्यकी कथा दूर रही, मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति भी इसी कषायके आधीन है। योगोकी प्रवृत्ति आत्मामे प्रदेशकम्पन करा दे, परन्तु बन्धजनक नही। यही कारण है कि उपशान्त मोहसे लेकर त्रयोदश गुणस्थान पर्यन्त योगोकी प्रवृत्ति स्थितिबन्धकी उत्पादक नही, अत अभिप्रायको निर्मल बनानेकी चेष्टा करो। योगोकी प्रवृत्तिमे मत उलझे रहो। योगोमें शुभता और अशुभता तन्मूलक ही है। ससारका मूल कारण कषाय है। इसके बिना योगका कोई महत्त्व नही। वृक्षकी जड कटनेके बाद हरापनकी स्थितिका कारण नही। अत हमे आवश्यकता कपायशत्रुको पराजित करनेकी है। जिन्होने इस पर विजय पा ली, वे सिद्धपदके अधिकारी हो चुके। ज्ञानमें जो ज्ञेय आता है, अर्थात् ज्ञानका जो परिणमन ज्ञेयसदृश होता है उसका कारण ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम है तथा ज्ञानमे जो रागादि प्रतिभासता है उसका कारण मोहनीयकर्मका उदय है। उस उदयसे चारित्रगुण विकृत होता है। वही गुण विकृतरूप होकर ज्ञानमे आता है। ज्ञेय, यह दोनो हैं, परन्तु एक ज्ञेय बाह्य है। उसके निमित्तसे ज्ञान साक्षात् ज्ञेयाकार हो आता है। रागमे चारित्रगुणकी विकृति जो होती है वह ज्ञानमे भासती हैं। परमार्थत राग भी ज्ञेय है और घट पटादि भी भी ज्ञेय हैं।

हम तो कुछ विद्वान् नही, परन्तु विद्वान् भी वक्ता हो, तब भी ये भद्रगण—नाममात्रके जैनी, उस वक्ताके प्रवचनका लाभ नही उठाते। अब सयमके स्थानमे अष्टमूलगुणधारणका उपदेश रह गया है। बहुतसे बहुत बलका प्रभाव पडा, तो बाजारकी जलेबी त्याग तक सीमा पहुच गई है।

प्रवचनके बाद भोजन हुआ। भोजन बहुत ही सकोचसे होता है। कारण उसका यह है कि पदके अनुकूल प्रक्रिया उत्तम नही। अनेक घरसे भोजन आता है तथा अति भोजन परोस देते हैं, जो कि आगमविरुद्ध है। भोजन थालीमे छूटना नही चाहिए, पर मेरी थालीमे १ आदमीका भोजन पडा रहता है। भोजन करते समय मुझे लगता है कि यदि मैं पाणिपात्रभोजी होता तो लोग यह अधिक भोजन कहाँ परोस देते ? यह मेरी दुर्बलता है, सकोचवश होकर यह अनर्थ होता है। सकोचका कारण भी एक प्रकारसे स्वप्रशसाका लोभ है—कोई अप्रसन्न न हो जाय यह भावना है। जिस जीवके प्रशसाकी इच्छा नही, वही निर्भीक कार्य कर सकता है।

एक दिन स्त्रीसमाजके सुधारके अर्थ भी व्याख्यान हुआ। मैंने कहा

कि यदि मनुष्य चाहे तो स्त्रीसमाजका सहज कल्याण हो सकता है। यदि यह समाज मर्यादासे रहे तो कल्याणपथ दुर्लभ नही। सबसे प्रथम तो ब्रह्मचर्य पाले, स्वपतिमे सन्तोष करे तथा पुरुषवर्गको उचित है कि स्वदारमे सन्तोष करे। जब स्त्रीके उदरमे बालक आ जावे तबसे लेकर ३ वर्ष ब्रह्मचर्य पाले तथा ब्रह्मचर्य पालनेवालोको आत्मीय वेषभूषाकी चटक-मटक मिटा देना चाहिये, क्योकि वेषभूषाका प्रभाव मन पर पडता है। यदि आजकी जनता ब्रह्मचर्यके इस महत्त्वको हृदयाकित कर सके, तो उसकी सन्तान पुष्ट हो तथा जनसख्याकी वृद्धि सीमित रहे। आज मनुष्य की आयके साधन सीमित हो गये हैं और उसके विरुद्ध सन्तानमे वृद्धि हो रही है जिसके कारण उसे रात-दिन सक्लेशका अनुभव करना पडता है। इस सक्लेशसे बचनेका सीधा सच्चा उपाय यही है कि पुरुष तथा स्त्रीवर्ग अपनी इच्छाओ पर नियन्त्रण करे।

एक दिन व्रतीसम्मेलन हुआ। व्रती लोगोने भाषण दिये। प्राय सफलता अच्छी मिली। लोगोके हृदयमे व्रतका महत्त्व भर गया, यही तो उसकी सफलता थी। लगभग बीस आदमियोने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, छोटे छोटे बालकोने रात्रिभोजन त्याग किया, अनेकोने अष्टमी चतुर्दशीके दिन ब्रह्मचर्य व्रत लिया। आवश्यकता उपदेशकी है। जैनकुलमे उत्पन्न हुए लोगोकी त्यागकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति देखी जाती है। फिर उन्हे यदि बार-बार प्रेरणा मिलती रहे तो उनका वह त्यागभाव अधिक विकसित हो सकता है। मैने देखा कि किसी भी व्यक्तिके ऊपर यदि प्रभाव पडता है तो आत्माकी पवित्रताका ही पडता है। शब्दोका नही, उनका प्रभाव तो कानो तक ही रहता है। अच्छे शब्द हुए, लोग सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं और कटुक शब्द हुए, नाराज हो जाते हैं। कुछ समय बाद 'लोग वक्ताने क्या कहा' यह भूल जाते हैं। परन्तु एक वीतराग मनुष्यकी आत्मासे यदि कोई शब्द निकलते हैं तो लोगोके हृदय उन्हे सुनकर द्रवीभूत हो जाते हैं वे कुछ करनेके लिए विचार करते हैं। यदि ये व्रती लोग अपना आचरण पवित्र रक्खे तथा जनकल्याणकी भावना लेकर भ्रमणके लिए निकल पडे, तो जनताका कल्याण हो जावे। पूर्व समयमे निर्ग्रन्थ मुनियोका विहार होता था, जिससे उनके उपदेश लोगोंको अनायास ही प्राप्त होते रहते थे, इसीलिए जनताका आचार पवित्र रहता था, पर आज यह साधन दुर्लभ हो रहे हैं। यही कारण है कि लोगोका आचरण निर्मल नही रहा।

फागुन शुक्ला १२ स० २००५ को मध्यान्होपरान्त १ बजेसे गुरुकुलका उत्सव हुआ। प्राय. अच्छी सफलता मिली। लोगोके चित्तमे यह बात आ

गई कि गुरुकुलकी महती आवश्यकता है। बच्चोका हृदय अपक्व घटके समान है। उसमे जो सस्कार भरे जावेगे वे जीवन भर स्थिर रहेंगे। आजका नागरिक जीवन विलासतापूर्ण हो गया है, जिसका प्रभाव छात्रसमाजपर भी पडा है। मैने देखा है कि आजका छात्र साधारण गृहस्थकी अपेक्षा कही अधिक विलासी हो गया है। यह बात उसके रहन-सहन तथा वेप-भूषासे स्पष्ट होती है। उसका बहुत समय इसी साज-सजावटमे निकल जाता है, जिससे विद्याका प्रगाढ अध्ययन नही हो पाता। प्राचीन कालमे लोग थोडा पढ कर भी अधिक विद्वान् हो जाते थे, पर आजके छात्र अधिक पढ कर भी अधिक विद्वान् नही बन पाते है। इसका कारण उनका चित्त-विक्षेप ही कहा जा सकता है। गुरुकुलकी आवश्यकता इसलिये है कि वे नागरिक वातावरणसे दूर स्वच्छ वायुमण्डलमे होते है और इसीलिए उनमे पढनेवाले छात्रोको चित्तविक्षेपके साधन नही जुट पाते। इस दशामे वे अच्छा अध्ययन कर सकते है। हस्तिनागपुरका वर्तमान वातावरण अत्यत शान्तिपूर्ण है। यहाँ गुरुकुल जितना अच्छा कार्य कर सकता है, उतना अन्यत्र नही। इसकी पूर्तिके लिए ५ लाखकी योजना की गई। अपील करने पर ५००००) पचास हजारका चन्दा हुआ। चौतीस हजार ३४०००)पहिले का था। कुल चौरासी हजार हुआ। यद्यपि इतनेसे उसकी पूर्ति नही हो सकती तथापि जो साधन उपलब्ध हो उसीके अनुसार काम हो तो हानि नही। यदि सब लोग परस्परका अविश्वास दूर कर दे तथा यह उद्देश्य अपने जीवनका बना ले कि हमारे द्वारा जगत्का कल्याण हो तो बडी-बडी योजनाएँ अनायास ही पूरी हो सकती है।

एक दिन प्रात नसियाजीके दर्शन किये, चित्त प्रसन्न हुआ। हरी-भरी झाडियोके बीच जानेवाली पगडंडीसे नसियाजीको जाना पडता है। इन स्थानो पर अपने आप चित्तमे शान्ति आ जाती है। मन्दिरसे थोडी दूर पर पाण्डवोका टीला नामसे प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ कुछ खुदाईका काम हुआ है। गवर्नमेन्टकी ओरसे यहाँ एक नगर बसाया जा रहा है, जिसमे शरणार्थी लोगोके बालकोको अध्ययन कराया जावे तथा १ औपधालय खोला जावे, जिसमे आम जनताको औपध बाँटी जावे। अष्टान्हिका पर्व होनेके कारण आठ दिन तक बहुत चहल-पहल रही परन्तु अन्तिम दिन होलीका उत्सव होनेसे अधिकाश लोग चले गये। प० फूलचन्द्रजी शास्त्री बनारस, प० दरबारीलालजी कोठिया तथा मुख्त्यार साहब भी यहाँ आये थे। एक दिन हमारा भोजन स्वर्गीय महावीर प्रसादजी रईस बिजनौरवालोकी पुत्रीके घर हुआ। आपने वर्णी-ग्रन्थमालाको १०१)

दिये। आप वहुत ही धर्मनिष्ठासे रहती है। आपके पतिका स्वर्गवास हो गया है। वडा ही सज्जन था, निरन्तर दानमे प्रवृत्ति रखता था तथा जैनधर्मकी पुस्तके वितरण करता था। भीड-भाड कम हो जानेसे दो दिन शान्तिमे वीते।

मुजफ्फरनगर

चैत्र वदी ३ स० २००५ को हस्तिनागपुरसे चलकर गणेशपुर आये। चलते समय लाला कपूरचन्द्रजी कानपुरवालोने वडे आग्रहसे कहाकि यदि कही पर कुछ आवश्यकता पडे तो वह आप मेरेसे मँगा लीजिए। गणेशपुरमें विद्यानन्दीजीने, जो कि ब्राह्मण हैं गुरुकुलके लिये ११) दिये। १ वजे चलकर ३ वजे मवाना आ गये। यहाँ वहुत ही शानदार स्वागत किया गया। प० शीलचन्द्रजी शास्त्री वहुत ही योग्य हैं, इसका सर्वसमाज पर प्रभाव है, आप म्युनिसिपलके चेयरमैन हैं तथा ऐंग्लो सस्कृत कॉलेजके सभापति भी हैं। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुआ। मध्यान्हके वाद १ वजे एंग्लो संस्कृत कॉलेजमे गये। प्रिन्सिपल साहवने वहुत ही आदरसे स्वागत किया। आपने वर्तमान परिस्थितिका स्वरूप सम्यक् रीतिसे वतलाया। उन्होने कहा कि वर्तमान शिक्षामे प्राय' चार्वाक मतकी ही पुष्टि होती है। आजकल शिक्षाका प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन और कामसेवन मुख्य रह गया है। जहाँसे शिक्षाका श्रीगणेश होता है वहाँ पहला पाठ यही होता है कि आजीविका किस प्रकार होगी तथा ऐसा कौन-सा उपाय होगा कि जिससे ससारकी विभूति हमारे ही पास आ जावे, ससार चाहे किसी आपत्तिमे रहे। प्रिन्सिपल साहवके इन हार्दिक तथ्य उद्गारोसे मुझे वडी प्रसन्नता हुई।

अगले दिन सामायिकके वाद वसूमाके लिए चल दिए। मवानासे वसूमा आठ मील होगा। घाममे चलना पडा, जिससे महान् कष्ट हुआ। रात्रिको ज्वर आ गया। हम बिलकुल निर्विचार आदमी हैं, जो विना विवेकके काम करते हैं। ८ मील घाममे चलना वहुत ही कष्टकर हुआ। हमारी शारीरिक शक्ति अति क्षीण हो गई है तथा आत्माकी स्फूर्ति जाती रही है। इसका कारण मोहकी सबलता है। कह देते हैं कि मोह शत्रु है परन्तु स्वय उसके कर्त्ता हैं, पर पदार्थके शिर दोष मडते हैं। अज्ञानी जीवको अपना दोप नही दिखता, परमे ही नाना कल्पनाएँ करता हैं। देहली वाले महाशयने यहाँ आहार दिया। यहाँ श्री शान्तिनाथ स्वामीके सदृश चन्द्रप्रभस्वामीका प्रतिबिम्ब अति मनोज्ञ है, वायु अति प्रशस्त है, मनुष्य सरल हैं परन्तु ज्ञानकी हीनतासे जैनधर्मका प्रचार, जैसा चाहिए, वैसा

कार्यरूपमे परिणत नही होता। यहाँसे ६ मील चलकर मीरापुर आ गये। ग्राम वडा है किन्तु मुसलिम जनताका प्रभाव अधिक है। वर्तमानमे यद्यपि कॉंग्रेसका साम्राज्य होनेसे प्रभाव दव गया है तथापि समय पाकर आगे पुन आविर्भूत हो सकता है। चैत्यालयमे प्रात: प्रवचन हुआ, पर जनता नही थी। यहाँ धर्मकी रुचि तो है परन्तु साधन नही। यहाँ पर शीतल-प्रसादजी तथा वावूरामजीके घर प्रतिष्ठित है। इनका चित्त धर्ममे उपयुक्त है। श्री वावूरामजी बरावर वैयावृत्त्यमे रहे। इनका लडका धनेशचन्द्र वहुत ही योग्य है। १ वजे सभा हुई। प्राय सर्व रुचिमान् थे। गुरुकुल सहारनपुरको ७२८) चन्दा हुआ। एक महानुभावने २००) भेजनेको कहा।

यहाँसे ६ मील चलकर ककरौली आ गये। वड़े समारोहसे स्वागत हुआ। प्रातःकाल प्रवचन हुआ। मनुष्य-सख्या ५० के अन्दाज थी। उनमे १ मौलवी साहव थे, जो वहुत ही योग्य थे। आपने वहुत प्रसन्नता प्रकट की। यहाँ पर सैयद लोगोकी जमीदारी थी जो काल पाकर उनके हाथसे निकल गई। वैश्य लोगोके हाथमे चली गई। सुमतिप्रसादजी यहाँके प्रमुख व्यक्ति हैं। इन्हीके यहाँ आहार हुआ। आपने सहारनपुर गुरुकुल-के लिये हस्तिनापुरमे १००१) दिये थे। आपकी माँ शुद्ध भोजन करती हैं। यहाँसे चलकर तिस्सा आ गये। प्रात काल प्रवचन हुआ। श्री मगलसेनजीके वहिनोईके घर भोजन किया। माध्याह्नको आमसभा हुई। एक ब्राह्मणने, जो कि मद्यपान करता था, जीवनपर्यन्तके लिये मद्यपान छोड दिया, १ मुसलमानने भी जीवघात छोड दिया तथा एक चमारने मदिरा छोड दी। यहाँ पर मुजफ्फरनगर, ककरौली तथा मसूरपुरसे वहुत आदमी आये। सव कुछ हुआ, परन्तु हमारे जैन वन्धुओकी दृष्टि स्वय धर्मश्रवण करनेकी नही है। अन्य धर्म जान जावें, हमको चाहे ज्ञान हो या न हो। यहाँसे अगले दिन ६¾ वजे चलकर ९½ वजे कवाल आ गये। यहाँ पर २० घर जैनियोके हैं। १ मदिर है। परन्तु उसमे अभी श्रीजीकी स्थापना नही हुई। १ चैत्यालयमे बिम्ब विराजमान है। विम्ब अति मनोज्ञ हैं। भोजनकी प्रक्रिया उत्तम है परन्तु लोग आहारदान करनेमे भय करते हैं। उसका कारण कभी दिया नही। कवालसे ६ मील चलकर मसूरपुर आ गये। यहाँसे ४ मील चलकर गङ्गानहर मिली। यहाँ पर विजली भी वनती है। बडे वेगसे पानी चलता है। यहाँ पर आटा पिसता है। मसूरपुर ग्राम सैयद मुसलमानोका है। प्रात ¾ घंटा प्रवचन हुआ। पश्चात् भोजन किया। मध्याह्न बाद आमसभा हुई। ५०० मनुष्य

होगे। श्री चिदानन्दजी तथा पूर्णसागरजीने परिश्रमके साथ वक्तव्य दिया। वक्तव्यमे मुख्य विपय अष्टमूलगुण था। यहॉ मुजफ्फरनगरसे वहुत मनुष्य आये। उन्होने वहुत ही आग्रह किया कि कल हो मुजफ्फरनगर आइये। चाहे आपको कष्ट हो, इसकी परवाह न कीजिये। हमारा प्रोग्राम है, इसीके अनुकूल आप प्रवृत्ति करिये, इसीमे हमारी प्रतिष्ठा है। चैत्र वदी १४ स० २००५ को ६½ वजे प्रात काल चलकर ९ वजे वहलना पहुँच गये। यहाँ पर १ प्राचीन जिनमन्दिर है। उसमे श्री पार्श्वनाथ भगवान्‌का प्रतिविम्व वहुत ही मनोज्ञ है। यहाँपर मुजफ्फरनगरसे १०० जनसख्या आई। भोजनोपरान्त २½ वजे यहाँसे चलकर कम्पनी-वाग आ गये। वहाँसे कोई २००० आदमियोका जुलूस निकला। २ तोला धूल फाँकनेमे आई होगी। ५ वजते-वजते जैन स्कूलमे पहुँच गये। यही पर जनताका वहुत समारोह हुआ। अगले दिन वाजार वन्द था, इसलिये प्रवचनमे वहुत मनुष्य आये। प्रवचनके लिये प्रवचनसारकी निम्न गाथा थी—

> जो जाणदि अरहत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहि।
> सो जाणदि अप्पाण मोहो खलु जादि तस्य लय॥

जो द्रव्य, गुण और पर्यायकी अपेक्षा अरहन्तको जानता है वह आत्माको जानता है और जो आत्माको जानता है उसका मोह विनाशको प्राप्त होता है। अनादिकालीन मोहके कारण यह जीव आत्मस्वभावसे च्युत हो रहा है। मोहकी तीव्रतामे तो इसे यह भी प्रत्यय नही होता कि शरीरके अतिरिक्त कोई आत्मा नामका पदार्थ है भी। वह शरीरको ही अह मानकर उसकी इष्ट-अनिष्ट परिणतिमे हर्ष-विषाद कर सुखी-दुखी होता है। यदि भाग्यवश मोहका पटल कुछ क्षीण होता है तो शरीरसे पृथक् आत्माकी सत्ता अगीकार करने लगता है, परन्तु कर्मोदयसे आत्माकी जो विकृत दशा है उसे ही शुद्ध दशा या स्वाभाविक दशा मान उसीरूप रहना चाहता है। कर्मोदय भङ्गुर है, इसलिए उसके उदयमे होनेवाली आत्माकी दशा भी भङ्गुर होती है। पर यह मोही प्राणी यथार्थ रहस्य न समझ हर्ष-विषादका पात्र होता है। जव मोहका उदय विल्कुल दूर होता है तव इसे आत्माकी शुद्ध दशाका अनुभव होने लगता है। पद्मरागमणिके सपर्कसे स्फटिकमे जो लालिमा दिखती है उसे अज्ञानी प्राणी स्फटिककी लालिमा समझता है पर विवेकी प्राणी यह समझता है कि स्फटिक तो अत्यन्त स्वच्छ है। यह लालिमा पद्मरागमणिकी है। इसी प्रकार वर्तमानमे हमारी आत्मा रागी द्वेषी हो रही है सो यह मोहजन्य विकृतिका चमत्कार है।

अज्ञानी प्राणी इस अन्तरको न समझ आत्माको ही रागी द्वेषी मान बैठता है, परन्तु विवेकी प्राणी यह जानता है कि आत्मा तो सदा स्वच्छ तथा निर्विकार है। उसपर जो वर्तमानमे विकार चढ रहा है वह मोहजन्य है। जो द्रव्य, जो गुण और जो पर्याय अरहन्तकी है वही द्रव्य, वही गुण और वही पर्याय मेरी है। जिस प्रकार इनका चेतनद्रव्य केवलज्ञानादि क्षायिक गुणोसे उद्भासमान होता हुआ परमात्मपर्यायको प्राप्त हुआ है उसी प्रकार हमारा चेतनद्रव्य भी उक्त गुणोसे उद्भासमान होता हुआ परमात्मपर्यायको प्राप्त हो सकता है। जब आत्मामे ऐसा विचार उठता है—विवेकरूपी ज्योतिका आविर्भाव होता है तब उसका मोह स्वय दूर हो जाता है और ज्ञानघन आत्मा निर्द्वन्द्व रह जाता है। यही इस जीवकी सुखमय अवस्था है। इसे ही प्राप्त करनेका निरन्तर प्रयत्न होना चाहिये। कुन्दकुन्द महाराजके वचन मिश्रीके कण है। मिश्रीका जो भी कण खाया जायगा वह मीठा होगा। इसी प्रकार कुन्दकुन्द महाराजका जो भी वचन या गाथा आपके चिन्तनमे आवेगी वह आपको आनन्ददायी होगी।

दिनके दो बजेसे सभा थी उसमे बहुतसे नर-नारी आये। श्री पूर्णसागर महाराज, चिदानन्दजी महाराजका व्याख्यान हुआ। समयकी बलवत्ता है कि अब अष्टमूलगुण पालनका उपदेश दिया जाता है। जैनियोका जो लौकिक धर्म था उसका अब उपदेश दिया जाता है। लोगोके आचरण अत्यन्त गिर गये है। जैनधर्मकी व्यवस्था तो इतनी उत्तम है कि उसका पालन करनेसे सहज ही कल्याणका पथ मिल सकता है। श्री प० चन्द्रमौलि शास्त्रीने गुरुकुलकी अपील की तथा श्री समगौरयाजीने समर्थन किया। चन्दा प्रारम्भ हो गया। पाँच हजारके अन्दाज चन्दा हो गया। जैनियोमे दान करनेका गुण नैसर्गिक है। निमित्त मिलने पर वह अनायास ही प्रकट हो जाता है। अगले दिन प्रातःकाल फिर प्रवचन हुआ, पर मै अब प्रवचनका पात्र नही। मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। वचनवर्गणा स्पष्ट नही। केवल मनुष्योको रञ्जन करना तात्त्विक मार्ग नही। तात्त्विक मार्ग तो वह है जिसमे आत्माको शान्ति मिले। पर शान्ति राग-द्वेषकी प्रचुरतासे अत्यन्त दूर है, क्योकि परपदार्थोमे जो इष्टानिष्ट कल्पना होती है उसका मूल कारण ही मोह है और मोहसे परपदार्थोमे आत्मीय बुद्धि ही रागका कारण है। आजका जनसमूह गल्पवादका रसिक है। वास्तविक तत्त्वका महत्त्व नही समझता। केवल बाह्य आडम्बरमे निज धर्मकी प्रभावना चाहता है। प्रभावनाका मूल कारण ज्ञान है। उसकी ओर दृष्टि नही। ज्ञानके समान अन्य कोई हितकारी

नही, क्योकि ज्ञान ही आत्माका मूल असाधारण गुण है । उसीकी महिमा है जो यह व्यवस्था बन रही है ।) एक दिन नईमण्डी भी गये । लोग बहुत भीडके साथ ले गये, जिससे कष्टका अनुभव हुआ । यहाँ प्रवचनमे अजैन जनता बहुत आई और उत्सुकता भी उसे बहुत थी । परन्तु मत-विभिन्नता बहुत ही बाधक वस्तु है । यथार्थ वस्तुका स्वरूप प्रथम तो जानना कठिन है । फिर अन्यको निरूपण करना और भी कठिन है । स्वरूपका परिचय होना ही कल्याणका मार्ग है, परन्तु उसके लिये हमारा प्रयास नही । प्रयास केवल बाह्य आडम्बरके अर्थ है । मुजफ्फर-नगरमे ६-७ दिन रुकना पड़ा ।

सहारनपुर--सरसावा

चैत्र सुदी ६ सं० २००६ को मुजफ्फरनगरसे ५ मील चलकर जगलमे ठहरे । यहाँ पर १ पुल बना हुआ है जिसके ५२ दरवाजे है । यहाँ पर चौके आये । हमारा श्री मुनीमजीके यहाँ भोजन हुआ । भोजन पवित्र था । इसका मूल कारण था कि वे स्वय पवित्र भोजन करते है, अतएव अतिथिको भोजन देनेमे उन्हे कोई आपत्ति नही । (सदा मनुष्यको शुद्ध भोजन करना चाहिये, इससे उसकी बुद्धि शुद्ध रहती है, शुद्ध बुद्धिसे तत्त्वज्ञानका उदय होता है, तत्त्वज्ञानसे पर-भिन्नताका ज्ञान होता है और पर-भिन्नताका ज्ञान ही कल्याणका मार्ग है ।) ४ मीलके बाद रोहाना आ गये, स्थान उत्तम है । १ मन्दिर है, ४ घर जैनियोके है, मकान बहुत उत्तम है । परन्तु बहुत आदमी प्राय दर्शन नही करते । २ बजे सार्वजनिक सभा हुई । श्रीवर्णी मनोहरलालजी-का व्याख्यान हुआ । इनके सिवा अन्य त्यागियोके भी व्याख्यान हुए । सभीने अच्छा कहा । श्री सुमेरचन्द्रजीका त्यागधर्मपर अच्छा रुचिकर व्याख्यान हुआ । बहुत मनुष्योने दर्शनकी प्रतिज्ञा ली । दूसरे दिन फुटे-सरा पहुँच गये । यह स्थान श्री जीवाराम जी ब्रह्मचारीके जैनधर्म ग्रहण करनेका है । जिनका ससार निकट रह जाता है उन्हे ही जैनधर्म उप-लब्ध होता है । जैनधर्मके सिद्धान्त अत्यन्त उदात्त है । हृदयका व्यामोह छूट जावे तो यह धर्म सभीको रुचिकर हो जाय, परन्तु इस युगमे यही छूटना कठिन है । श्री समन्तभद्र स्वामीने तो लिखा है—

> काले प्रभाव कलुषाशयो वा श्रोतु प्रवक्तुर्वचानयो वा ।
> त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्म्या प्रभुत्वशक्तेरपवादहेतु. ॥

(हे भगवन् ! आपका शासन—धर्म ऐसा है कि उसका समस्त ससारमे एकाधिपत्य होना चाहिये, परन्तु उसमे निम्नाङ्कित बाधक कारण हैं—१ कलिकालका प्रभाव, २ श्रोताका कलुषित आशय और ३ वक्ताको कथन करने योग्य नयका ज्ञान नही होना । यदि यह हुण्डावसर्पिणी काल नही होता, श्रोताका आशय निर्मल होता और वक्ता किस समय कौन बात कहना चाहिये, इसका ज्ञान रखता तो आपका शासन समस्त ससार मे एकाधिपत्य रूपसे फैलता । यदि आज कोई अजैन जैनधर्मको स्वीकृत भी करना चाहता है तो वर्तमान जैनियोका व्यवहार इतना सकीर्णता-पूर्ण हो गया कि उसका निर्वाह होना कठिन होता है । किसी एकाकी ब्रह्मचारीका जैनधर्म धारण करना तथा उसका निर्वाह होना दूसरी बात है पर पूरी गृहस्थीके साथ यदि कोई अजैन जैनधर्म धारण करता है तो उसका वर्तमान जैन समाजमे निर्वाह कहाँ है ? वह तो उभयत भ्रष्ट जैसा हो जाता है ।) अस्तु, मन्दिरमे दर्शन किये । मन्दिर निर्मल बना हुआ है । दिनको ३ बजे सभा हुई । श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी तथा क्षुल्लक चिदानन्दजी साहबका प्रवचन हुआ । यहाँ पर २० घर जैनोके हैं । सर्व सम्पन्न हैं । गुरुकुल सहारनपुरको ११०१) प्रदान किया । १०१) वर्णी ग्रन्थमालाको भी दान किया । रात्रिको बागमे शयन किया । बाग बहुत ही रम्य था । आगामी दिन देवबन्द आ गये । अच्छा स्वागत हुआ, मध्याह्नके ३ बजेसे सभाका आयोजन हुआ । मनुष्योका समारोह अच्छा था, परन्तु बात वही थी कि मानना किसीकी नही । आजकल मनुष्योके यह भाव हो गये हैं कि 'अन्य सिद्धान्तवाले हमारा सिद्धान्त स्वीकृत कर लेवें' यह समझमे नही आता । प्रत्येक मनुष्य यही चाहता हैं कि हमारा आत्मा उत्कर्ष पद को प्राप्त करे, किन्तु उत्कर्ष प्राप्त करनेका जो मार्ग है उस पर न चलना पडे । यही विपरीत भाव हमारे उत्कर्षका बाधक है । हमारा विश्वास तो यह है कि यदि हम अपने सिद्धान्त पर आरूढ हो जावें—उसीके अनुसार अपनी सब प्रवृत्ति करने लगे तो अन्य लोग हमारे सिद्धान्तको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेगे । हम लोग अपने सिद्धान्तोको अपने आचरण या प्रवृत्तिसे तो दिखाते नही, केवल शब्दो द्वारा आपको बतलानेका प्रयत्न करते हैं परन्तु उसका प्रभाव उनपर नही पडता । यहाँ मुसलिम समाजका विशाल कालेज है जिसमे उनके उच्चतम ग्रन्थ पढाये जाते हैं, २००० छात्र उसमे शिक्षा पाते हैं । बहुत ही सरल इनका व्यवहार है, बहुत मधुरभाषी है । एक मौलवी साहबने उक्त सर्व स्थान दिखलाये । इनके यहाँ बाह्य आडम्बरका बिलकुल अभाव

है, भोजन बहुत सादगीका है। यहाँसे चलकर ४ मील पर १ ग्राम था, उसमे निवास किया। यहाँ जिसके स्थानमे ठहरे वह बहुत ही उदार प्रकृतिका था। उसने बडे सत्कारके साथ रहनेका प्रबन्ध किया। उसी समय ५ पाँच सेर दूध निकाल लाया। जो पीनेवाले थे उन्हे पान कराया। अनन्तर हम लोग कथोपकथन कर सो गये।

चैत्र सुदी १२ स० २००६ को सहारनपुर आ गये। टपरी स्टेशनसे ही मनुष्योंका सपर्क होने लगा और सहारनपुरके बाहर तो हजारो मनुष्योका जमाव हो गया। बडी सजधजके साथ जुलूस निकाला। श्री हुलासरायजी रईसके गृहके पास जो कन्या विद्यालयका मकान था वही पर जुलूस समाप्त हुआ। हजारो नर-नारियोका समुदाय होनेसे इतना शब्दमय कोलाहल था कि लाउडस्पीकरके द्वारा भी कार्य सिद्धि नही हो सकी। एक भी कार्य नही हुआ, केवल श्री जिनमन्दिरके दर्शन कर सके। चैत्र सुदि १३ भगवान् महावीर स्वामीका जन्म दिवस है। इस दिन समस्त भारतवर्षमे जैन बडा उत्सव करते है। यहाँ भी उत्सवकी बडी-बडी तयारियाँ थी। प्रात. काल ८ बजे से ९ बजे तक जैन कालेज मे प्रवचन हुआ। बहुत भीड थी, भीडके अनुकूल ही प्रवचन रहा। प्रवचनसे जनता प्रसन्न भर हो जाती है पर जो बात होनी चाहिए वह नही होती। जनता मे बहुत ही आनन्द समाया हुआ था। बनारससे श्री सम्पूर्णानन्दजी आये थे। रात्रिको आपका भाषण होगा। लोगोने उत्सुकताके साथ दिन व्यतीत किया, परन्तु जब रात्रिका समय आया तब अखण्ड पानी बरसा, इससे सभा नही हो सकी और श्री सम्पूर्णानन्दजीके भाषण श्रवणसे जनता वञ्चित रह गई। अगले दिन जैन बागमे प्रवचन हुआ, मनुष्योकी भीड बहुत थी, तदपेक्षा स्त्रीसमाज बहुत था। समुदाय इतना अधिक था कि प्रवचनका आनन्द मिलना कठिन है। १ घण्टा जिस किसी तरह पूर्णकर छुट्टी मिली। यहाँ स्वाध्यायके रसिक बहुत है जिन मे श्री ब्र० रत्नचन्द्रजी मुख्त्यार और श्री नेमिचन्द्रजी वकील प्रमुख है। ये दोनो भाई आत्महितमे जागरूक तथा आगमग्रन्थोके परिज्ञानसे युक्त है। सस्कृत भाषाका अध्ययन न होने पर भी जिनागमका विशद ज्ञान प्राप्त हो जाना इनके पूर्व सस्कारका फल है। ज्ञानका सस्कार पर्यन्तरमे साथ जाता है, इसलिये साधन रहते हुए मनुष्यको ज्ञानार्जनमे कभी प्रमाद नही करना चाहिए। यहाँ प्रवचनोंमे लोगोका समुदाय बहुत आता है परन्तु न तो तात्त्विक लाभ उठाता है और न तात्त्विक धर्मके ऊपर दृष्टि है। केवल बाह्य प्रभावनामे अपना सर्वस्व लगाकर धर्मका उत्कर्ष मानते है। प्रभा-

वनाका प्रभाव साधारण जनता पर पडता है और साधारण जनता वाह्य वेषको देखकर केवल इतना समझ लेती है कि इन लोगोके पास द्रव्यकी पुष्कलता है। ये लोग व्यापारी है। इन्हे सग्रह करनेकी युक्ति विदित है। वास्तवमे पूछा जाय तो आजका मनुष्य इन वाह्याडम्बरोसे प्रभावित नही होता। उसे प्रभावित करनेके लिये तो उसका अज्ञान दूर होना चाहिए। ज्ञानकी महिमा अपरम्पार है। उसका जिसे स्वाद आ गया वह वाह्य पदार्थोकी अपेक्षा नही करता। यहाँ गुरुकुलकी उघाई करनेका कार्य हुआ। एक महानुभावने २ कमरा गुरुकुलके लिए वनानेका वचन दिया। दो वी ए लडकोने यह प्रतिज्ञा ली कि विवाहमे रुपया नही माँगेगे। दोने यह नियम लिया कि जो खर्च होगा उसमे १ पैसा प्रति रुपया विद्यालयको देवेंगे। कई मनुष्योने विवाहमे कन्यापक्षसे याचना न करनेका नियम लिया। श्री लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईसने गुरुकुलके लिये २९ वीघा जमीन देनेका वचन दिया तथा १०००) स्याद्वाद विद्यालयको भी प्रदान किये। यहाँ १०–११ दिन रहे। सभी दिनोमे समागम अच्छा रहा। मोहोदयमे समागम अच्छा लगता है। मोहकी महिमा देखो कि लोग जिस समागमसे बचनेके लिये गृहका त्याग करते है, त्यागी होने पर भी उन्हे वही समागम अच्छा लगता है। परमार्थत मोह गया नही है, उसने रूप भर वदल लिया है।

वैशाख वदी ९ को सहारनपुरसे चलकर ८॥ वजे विलखनी पहुँच गये। प० दरवारीलालजी कोठियाके यहाँ भोजन हुआ। भद्र पुरुष हैं। सहारनपुरसे कई चौके आये। सर्व मोहका ठाठ है। जिस दिन मोहका अभाव होगा उस दिन यह सर्व प्रक्रिया समाप्त हो जायगी। मोहकी मन्दता और तीव्रतामे शुभ-अशुभ मार्गका सत्ता है। जिस समय मोहका अभाव होता है उस दिन यह प्रक्रिया अनायास मिट जाती है। मोहके नष्ट होते ही ज्ञानावरणादिक तीन घातिया कर्म अन्तर्मुहूर्तमे स्वयमेव नष्ट हो जाते है।

वैशाख वदी १० स० २००६ को सरसावा आ गये। प० जुगल-किशोरजीके यहाँ भोजन हुआ। आपका त्याग और जिनवाणी सेवा प्रसिद्ध है। आपने अपना समस्त जीवन तथा समस्त धन जिनवाणीकी सेवाके लिये ही अर्पित कर दिया है। आपका सरस्वती भवन दर्शनीय है। यहाँ १ घटनासे चित्तमे अति क्षोभ हुआ और यह निश्चय किया कि परका समागम आदि सर्व व्यर्थ है। आत्मा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रताका बाधक अपनी अकर्मण्यता है। अकर्मण्यताका यह अर्थ है कि उसकी ओर उन्मुख

नही होते। परपदार्थोके रक्षण-भक्षणमे ही आत्माको लगा देते है। अगले दिन प्रात काल प्रवचन हुआ। वक्ता धर्मका स्वरूप बतलानेमे ही अपनी शक्ति लगा देते हैं। निरन्तर प्रत्येक वक्ता अपने परिश्रम द्वारा धर्मके स्वरूपको समझानेकी चेष्टा करता है, धर्मके अन्दर बाह्य-आभ्यन्तर रूप दिखलानेकी चेष्टा करता है और जहाँ तक बनता है दिखलानेमे सफ़ल भी होता है। परन्तु आभ्यन्तर रसास्वाद न आनेके कारण न तो आपको लाभ होता है और न जनताको। केवल गल्पवादमे परिणत हो जाता है। वैशाख वदी १२ को वीरसेवामन्दिरका १३ वाँ वार्षिकोत्सव हुआ। सभापतिके पद पर मुझे बैठा दिया। वीरसेवा मन्दिरकी रिपोर्ट, मुख्त्यार साहबकी प्रेरणा पाकर दरबारीलालजी कोठियाने सुनाई। इसके अनन्तर श्री जयभगवान्‌जी वकीलने प्राचीन धर्मोमे जनधर्मको विशेषता बतलाई। आपका तुलनात्मक अध्ययन प्रशसनीय है। अन्तमे मैंने भी कुछ कहा। आगामी दिन कन्या विद्यालयका वार्षिकोत्सव हुआ। लोगोकी बहुत भीड थी। रिपोर्ट आदि सुनानेके बाद अपील हुई। मन्त्री महोदयने १००१) स्वय दिये तथा ३०००) और हो गये। लोगोने विशेष ध्यान नही दिया, अन्यथा १००००) हो जाते। पुरुषोकी अपेक्षा महिलावर्गमे धार्मिक रुचि अधिक है। उसका कारण है कि इनका बाह्य सम्पर्क नही है। आजका मनुष्य तो बाह्य सम्पर्कके कारण धर्मसे च्युत होता जा रहा है। उसे धर्म आडम्बर मात्र जान पडने लगा है। यदि प्रारम्भसे मनुष्य पर अपना रङ्ग चढ जावे तो फिर दूसरा रङ्ग नही चढे, परन्तु लोग प्रारम्भसे ही अपनी सन्तानको निज धर्मके रङ्गसे विमुख रखते हैं। परिणाम उसका जो होता है वह सामने है। अस्तु, समयका प्रवाह और लोगोकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकार हैं।

दिल्ली की ओर

(१)

वैशाख बदी १३ स० २००६ को प्रात काल ५½ बजे सरसावासे चल पडे ½ मील तक १०० मनुष्य और स्त्रीसमाज पहुँचानेके लिये आया, जिसे बडे आग्रहसे लौटा पाया। यहाँसे ७ मील चलकर ९ बजते हम लोग

अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। स्नानादिसे निवृत्त हो स्वाध्याय किया पश्चात् भोजन किया। भोजनके बाद कथोपकथन हुआ। प्रतिदिन यही चर्चा होती है कि राग-द्वेष-मोह संसारके मूल कारण हैं। इन तीनोंमें मूल मोह है। इसके बिना राग-द्वेषकी प्रधानता नहीं। आगामी दिन प्रात ८½ बजे जगाधरी आ गये। सर्व समाजने स्वागत किया। यह ब्र० सुमेरुचन्द्रजी भगतका ग्राम है। ९ बजे श्री मन्दिरजीमें क्षुल्लक पूर्णसागरजीका व्याख्यान हुआ। ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ। जनताको हँसी आ गई। हास्यका कारण वृद्धावस्था है। वृद्धावस्थामें जो कथा मनुष्य कहता है वह प्राय प्रत्येक विषयमें स्खलित निकलती है। किन्तु उसका अभिप्राय निर्मल रहता है, अत आदरका स्थान हो जाती है। मध्याह्नके ३ बजे आमसभा हुई। विशेष व्याख्यान हुए। एक शास्त्रीका व्याख्यान बहुत मार्मिक हुआ। अगले दिन ८ से ९ बजे तक प्रवचनमें बहुतसे मनुष्य आये। ब्राह्मण भी बहुत आये। १ शास्त्रीजी व १ ज्योतिषीजी भी आये, जो जैनधर्मकी पदार्थनिरूपणकी शैलीसे बहुत प्रभावित हुए। अन्य मनुष्य भी आये। उनको भी बहुत हर्ष हुआ। जैनधर्मकी प्रणालीसे सभी प्रभावित हुए। (अन्तरङ्गमें निर्मलता हो तो तत्त्वनिरूपण रुचिकर होता है तथा जिज्ञासाको वृद्धिगत करता है, अन्यथा उत्तमसे उत्तम तत्त्वनिरूपण अरुचिकर हो जाता है तथा द्वेष व मात्सर्यको वृद्धिगत करने लगता है।) कई मानवोंने ब्रह्मचर्य व्रत लिये तथा स्त्रीसमाजने महीन वस्त्रोंके परिधानका त्याग किया। वैशाख सुदी १ को जगाधरीसे ५ मील चलकर रत्नपुर आ गये। यहाँ सुमतिलालजीके यहाँ भोजन किया। आपके भाईने १००१) स्याद्वाद विद्यालय बनारसको प्रदान किया। ४ चौके जगाधरीसे भी आये थे। सबने अपनी-अपनी भक्तिके अनुकूल पात्रको दान देनेकी चेष्टा की, परन्तु जो पात्र हैं वे मर्यादातिक्रमण कर दान लेते हैं। चरणानुयोगकी पद्धतिको अतिक्रमण कर नई-नई पद्धति निकालना उचित नहीं। प्राय पात्रको देखकर दान देनेवाला व्यक्ति भयसे कम्पायमान हो जाता है। इसमें पात्रकी असरलता ही कारण है।

रत्नपुरसे ३ मील चलकर यमुना नदी पर आ गये। यहाँसे ३ मील चलकर कुतुबपुरी आ पहुँचे। यहीं भोजन हुआ। जिसने भोजन दिया वह बहुत प्रसन्न हुई। आज कल इस पञ्चम कालमें अनेक आपत्तियोंके आने पर भी लोगोंमें धार्मिक प्रेम है तथा त्यागीकी महती प्रतिष्ठा करते हैं। उसका भोजन हो गया, मानो उन्हें त्रैलोक्यकी निधि मिल गई। जब

तक त्यागी भोजन न करले तब तक बडी सावधानी रखते हैं। यही भावना निरन्तर रखते है कि किसी तरह मेरे घर पात्रका भोजन हो जावे। दैवयोगसे पात्र आ जावे तो मेरा धन्यभाग होगा। २ बजे आमसभा हुई। यहाँ पर जो ठाकुर राणा थे, आपने शिकार छोड दिया तथा मदिराका भी त्याग कर दिया। ग्रामके अन्य प्रतिष्ठित लोगोने भी मास-मदिराका त्याग किया। यहाँसे २ मील चलकर समस्तपुरमे ठहर गये। दूसरे दिन प्रात ६ मील चलकर नकुड आ गये। ग्रामवालोने स्वागतसे धर्मशालामे ठहराया। मन्दिरमे प्रवचन हुआ, पश्चात् भोजन हुआ। दिनके ३ बजेसे सभा हुई। जो सर्वत्र होता है वही यहाँ हुआ, कुछ विशेष लाभ नही हुआ और न होनेकी सभावना है क्योकि मनुष्योके भाव प्राय निर्मल नही रहते। अगले दिन मन्दिरमे प्रवचन हुआ। कुछ तत्त्व दृष्टि-गोचर नही हुआ, केवल रस्म अदा करना पड़ती है। वक्ताको स्वय अपने-मे आत्मकल्याणकी भावना रखना चाहिए। कल्याणका मूल कारण स्वपर-विवेक है। जिनने स्वपर-विवेक किया उनका जन्म सार्थक है। मध्यान्होपरान्त ३ वजेसे सभा हुई। मनुष्यसमुदाय अच्छा था, परन्तु कोई तत्त्व नही निकला। प्राय प्रतिदिन यही कथा होती है। यहाँ की समाजने ५०१) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ५०१) गुरुकुलको हो गये। रुपया मिलता है, पर सदुपयोग होना अधिकारियोके हाथकी बात है।

यहाँसे ५¼ बजे प्रात ५ मील चलकर अम्वाडा आ गये। वडे स्वागतसे लोगोने धर्मशालामे ठहराया। पश्चात् मन्दिरमे गया, प्रवचन हुआ। लोगोने स्वाध्यायका नियम लिया। धर्मशालामे कई महाशयोने, जो कि हरिजनोमे थे, मदिराका त्याग किया। कई महाशयोने माँसका त्याग किया। खेद इस बातका है कि जेनी भाई स्वय बीचमे बोलने लगते है इससे जनतामे प्रभाव नही रहता। सायकाल व्याख्यान हुआ। जैनेतर जनता अति प्रसन्न हुई। यहाँ १५ घर जैनियोके हैं। मन्दिर बहुत सुन्दर है। शास्त्र-प्रवचनका हाल बहुत बडा है। दूसरे दिन प्रात -काल समयसारका प्रवचन किया। अनन्तर रत्नकरण्डश्रावकाचारके भावनाप्रकरणसे ३ भावनाओका वर्णन किया। प० सदासुखरायजीने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। सबने प्रेमसे सुना, परन्तु जिनको उनपर विचार करना चाहिये वे कदापि उनका पालन नही करते यह महती त्रुटि है।

अम्वाडासे ४ मील चलकर इसलामपुर आ गये। यह बस्ती पठान लोगोकी है। ३ घर जैनियोके है। मार्गमे १ पठानने ६ आम उपहारमे

दिये । १ जैनी भाई लेनेको प्रस्तुत नही हुए । मैंने कहा कि अवश्य लेना चाहिये । आखिर यह भी तो मनुष्य हैं । इनके भी धर्मका विकास हो सकता है । बाह्य आचरणके अनुकूल ही मनुष्योका व्यवहार चलता है । इससे ही हम लोग उनसे घृणा करने लगते हैं, अत. आवश्यकता अन्तरग आचरणके निर्मल करनेकी है । उसके अर्थ बाह्य आचरणको भी निर्मल बनानेकी आवश्यकता है । यदि वाह्य आचरण शुद्ध हो जाये तो अन्तरङ्ग आचरणका निर्मल होना कठिन नही । अगले दिन इसलामपुरसे ४ मील चल कर रामनगर आये । वीचमे १ नहर मिली । हवा ठण्डी थी । साथ ही हवाकी प्रचुरतासे बालूके कण बहुत उठते थे जिससे आँखोमे कष्ट प्रतीत होता था । यहाँ वालोने बहुत ही स्वागत किया । अनेको स्थानो पर दरवाजे बने हुए थे । जगह जगह सजावट थी । लोगोमे उत्साह ही उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था । धर्मशालामे ठहराया । ८ बजे प्रवचन हुआ । बहुतसे मनुष्य आये । प्रवचन रुचिकर हुआ, परन्तु विशेष वाचालता (कोलाहल) से चित्त नही लगा । पश्चात् भोजन किया । मध्याह्नके बाद २ बजेसे सभा हुई जिसमे मनुष्योकी भीड वहुत आई । क्षुल्लकद्वय तथा अन्य लोगोके व्याख्यान हुए । अगले दिन प्रात ७ बजे वाचनालय खुला । समारोह अच्छा था । पश्चात् ८ बजेसे ९ बजे तक प्रवचन हुआ । वहुत मनुष्य एकत्र हुए । सबने प्रवचन सुना । जैनियोकी अपेक्षा अन्य मनुष्योने बडे स्नेहसे धर्मके प्रति जिज्ञासा प्रकट की तथा उनके चित्तमे मार्गका विशेष आदर हुआ । अनन्तर भोजनके लिए गमन किया । वहुत ही भीड थी । भोजन करना कठिन हो गया । एकके बाद एक आता ही रहा ।

वैशाख सुदी १०-११ सवत् २००६ को ६¾ बजे चल कर ७ मील नानौता आ गये । श्री महेन्द्रने बहुत ही आदरसे अपने घरमे स्थान दिया । स्नानान्तर मन्दिरमे गये । आपके घर पर आपकी माँ तथा स्त्रीने आहार दिया । २ बजे बाद उत्सव हुआ । कई सहस्र मनुष्य उत्सवमे आये । कीर्तन करनेवालोने कीर्तन किया । प्राय ससारमे मनुष्य जो काम करता है वह अपने उत्सवके लिये करता है । उन्नतिका मार्ग कषाय-निवृत्ति है, कषायकी निवृत्ति ज्ञानसे होती है, ज्ञानका मूल कारण आगमज्ञान है और आगमज्ञानका कारण विद्याका अभ्यास है । दूसरे दिन वडे मन्दिरमें प्रवचन हुआ । मनुष्यसख्या पुष्कल थी । परन्तु हमको इतनी योग्यता नही कि उन्हे प्रसन्न कर सकते । केवल १ घण्टा समय गया । हम रूढिके गुलाम हैं और उसीकी पूर्ति करना चाहते हैं । बहुत

आदमी जिसमे प्रसन्न हो उसीमे प्रसन्नता मानना हमारा कार्य है, परन्तु धर्मका स्वरूप तो निर्मल आत्माकी परिणति है। उसकी यथार्थता मोह-राग-द्वेपके अभावमे ही है। यदि राग-द्वेषकी प्रचुरता है तो आत्माका कल्याण होना असम्भव है। प्रवचनोमे जैन लोगोंके अतिरिक्त अन्य लोग भी आते हैं। परन्तु उन्हे उनकी भाषामे तत्त्वका उपदेश नही होता, अत वे लोग उपदेशके फलसे वञ्चित्त रह जाते हैं। जैन लोग स्वय इसकी चेष्टा नहीं कहते, केवल ऊपरी व्यवहारमे अपना समय व्यय कर देते हैं। एक दिन प्रकाशचन्द्रजी रईसके यहाँ भोजन हुआ। आपने स्याद्वाद विद्यालयको १०००) दिये। भोजन भी निरन्तराय हुआ। प्रकाशचन्द्र व उनकी पत्नी दोनो योग्य है। एक दिन चतुरसेनके यहाँ भोजन हुआ। आपने भी स्याद्वाद विद्यालयको ५०१) प्रदान किये तथा महेन्द्रने भी १००१) उक्त विद्यालयको दिये। कुछ लोगोने देनेका वचन दिया। यह सब हुआ, परन्तु यह सुनकर बहुत खेद हुआ कि नानौता ग्राममें कई जैनी भाई मदिरा पान करते हैं तथा कई वेश्यागामी हैं। त्यागी लोगोको शुद्ध भोजन मिलना प्राय कठिन है। क्षुल्लक पूर्णसागरजी लोगोंके सुधारका बहुत प्रयास करते हैं। बहुत मनुष्य अष्टमूलगुणका नियम लेते हैं, किन्तु जानते कुछ नही। इससे व्रतका निर्वाह होना कठिनसा प्रतीत होता है। इस प्रान्तमे सदाचारकी त्रुटि महती है। नानौतामे ४ दिन लग गये।

वैशाख सुदी १५ सम्वत् २००६ को नानौतासे ३ मील चल कर यमुनाकी नहर पर आ गये। यहाँसे ४ मील चल कर तीतरो आये। यहाँ जैनियोके १० घर हैं। मन्दिरमे प्राय जैन लोग बहुत कम आते हैं। हम जिस घर भोजनके लिये गये, पता चला कि उस घरसे कोई भी दर्शन करनेको नही जाता। यहाँ पर ३ बजे सभा हुई जिसमे प० हुकम-चन्द्रजी सलावावालोने मूर्तिपूजा विषयक व्याख्यान दिया। अगले दिन १½ बजे तीतरोसे चलकर कच्चीगढी आ गये। यहाँ ८ घर जैनियोके हैं। १ मन्दिर है। यहाँ पर रामाभाई खतोलीके निवास करते है, सज्जन हैं, आँखसे नही दिखता, वृद्धावस्था है। यहाँके जैनी आपके साथ अच्छा सलूक करते है। मन्दिर स्वच्छ है। सब भाईयोने पूजा करनेकी प्रतिज्ञा ली। अगले दिन ७ मील चलकर पक्कीगढी आये। यहाँ ' मन्दिर है। १० घर जैनियोके हैं जो सम्पन्न है। मिडिल स्कूलमे प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। लाला जम्बूप्रसादजीके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५१) स्याद्वाद विद्यालयको दिए। मध्यान्हके बाद क्षुल्लक चिदानन्दजीका

उपदेश हुआ। आपको व्याख्यान देनेका बहुत शौक है। अगले दिन पक्कीगढीसे ३ मील चलकर भैसवाल आए। यहाँ ३ घर जैनोके है। सर्व सम्पन्न है। यहाँ जाट लोगोकी वस्ती है। ग्राममें ईख वहुत उत्पन्न होती है। इससे यहांके कृषक सम्पन्न है। पैसाकी पुष्कलता सबके है, किन्तु वह दुरुपयोगमे जाता है। देहातोमे धार्मिक विद्याके जाननेवाले नही और शहरोमे ऐश आरामसे लोगोको अवकाश नही। अव तो काम और अर्थ पुरुपार्थ ही मुख्य रह गए है।

यहाँसे ६ मील चलकर जेठ बदी ४ को शामली आ गये। यहाँ पर १०० घर जैनियोके है। बडी भारी मण्डी है। आज कल इस नगरमे सट्टाकी प्रचुरता है। यहाँ २ मन्दिर हैं, किन्तु पूजन और स्वाध्यायका प्रचार नही। जिसके घर भोजन किए वह भला आदमी है। ३ वजेसे आमसभा हुई, परन्तु फलाग जो सर्वत्र होता है यहाँ भी वही हुआ। वाह वाहमे ससार लुट रहा है। आप स्वय निज स्वरूपसे च्युत है और संसारको उस स्वरूपमे लगाना चाहता है' यह सर्वथा उचित नही। जो मनुष्य जगत्के कल्याणकी चेष्टा करते है उनका स्वय अपनी ओर लक्ष्य नही। ऐसे लोगोका प्रयत्न अन्धेके हाथमे लालटेनके सदृश है। ससारकी विडम्बनाका चित्रण करना ससारीका काम है। जिसको नाना विकल्प उत्पन्न होते है वह पदार्थको नाना रूपमे देखता है। वास्तवमे पदार्थ तो अभिन्न है, अखण्डित है, यह उसे क्षयोपशम ज्ञानसे नाना रूपमे देखता है।

आज यहाँ प्रात काल होनेके पूर्व एक घटना हुई जो कल्पनामे न आनेके योग्य है। स्वप्नमे बावा भागीरथजीका दर्शन हुआ। दर्शन होना असभव नही, परन्तु जैसा उनका रूप न था वैसा देखा। उन्हे दिगम्बर मुद्रामे देख मैंने कहा—महाराज! आप दिगम्बर हो गये? आप तो यहाँ पञ्चम गुणस्थानवाले श्रावक थे? यहाँसे स्वर्ग गये, देवपर्याय पाई। फिर यह मुद्रा कहाँ पाई? उन्होने कहा—भाई! गणेशप्रसाद! तुम बडे भोले हो। मै तुम्हारे समझानेके लिए आया हूँ। यद्यपि मै अभी सागरो पर्यन्त आयु भोग कर मनुष्य होऊँगा तो तब दिगम्बर पदका पात्र बनूँगा, परन्तु तुमको कहता हूँ कि तुमने जो पद अगीकार किया है उसकी रक्षा करना। व्रत धारण करना सरल है, परन्तु उसकी रक्षा करना कठिन है। बाह्यमे १ चद्दर और २ लगोटी रखना, १ बार पानी पीना कठिन नही तथा आजन्म निर्वाह करना कोई कठिन नही। किन्तु आभ्यन्तर निर्मलता होना अति कठिन है।

आज जेठ बदी ८ स० २००६ का दिन था। उपवास करना चाहिये, परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे १ बार तो प्रतिदिन भोजन होता ही है, किन्तु जो भोजन प्रतिदिन करते थे, उससे कुछ अल्प किया। लोग ससारमे शान्ति चाहते है, परन्तु ससारका स्वरूप ही अशान्तिका पुञ्ज है। उसमे शान्ति खोजना रम्भास्तम्भमे सार अन्वेषण करनेके सदृश है। ससारके अभावमे शान्ति है। लौकिक मनुष्य स्थानविशेषको ससार और मोक्ष समझते हैं वह नही। ससार असंसार आत्माकी परिणतिविशेष है। आत्माकी सकर्म परिणति ससार है और निष्कर्म परिणति असंसार है—मोक्ष है। नवमीके दिन शीतलप्रसादजी शाहपुरवालोके यहाँ भोजन किया। प्रत्येक मनुष्यकी यह दृष्टि रहती है कि हमारे यहाँ ऐसा भोजन बने जो सर्वश्रेष्ठ हो, तथा पात्र हमारी इच्छानुसार उतना भोजन कर लेवे। चाहे पात्रको लाभ हो, चाहे अलाभ हो। भोजनकी इच्छाका ही नाम आहार है। आहारसज्ञाके कारण ससारमे महान् अनर्थ होते हैं। अनर्थकी जड भोजनकी लिप्सा है। अच्छे-अच्छे महान् पुरुष इसके वशीभूत हो कर जो क्रिया करते हैं वह किसीसे गुप्त नही। भोजनकी लालसा अच्छे अच्छे पुरुषोका तिरस्कार करनेमे कारण हो जाती है।

एक दिन लोगोने सभामे निर्णय किया कि लडकोवालेसे रुपया नही लेना। समयकी वलवत्ता देखो कि लोग लड़कीवालेसे ठहराव कर रुपया माँगने लगे है। कितनी अकर्मण्यता लोगोमे आ गई है और लोभकी कितनी सीमा बढ गई है? वास्तवमे लोभ ही पापका मूल कारण है। बहुतसे मनुष्य लोभके वशीभूत हो कर नाना अनर्थ करते हैं। आज ससार दुखी है, इसका लोभ ही मूल हेतु है। हजारो मनुष्योके प्राण लोभके वशीभूत होनेसे चले गये। आज ससारमे जो सग्राम हो रहा है उसका कारण राज्यलिप्सा है। आज जितने यन्त्रोका सचालन हो रहा है उसका अन्तरङ्ग कारण लोभ है। और यन्त्रोमे जो असंख्य प्राणियोका घात हो रहा है उसका मूल कारण यह लोभ ही है। आजकल तत्त्वज्ञानका आदर नही, केवल ऊपरी बातोसे लोकको रञ्जन करना ही व्याख्यानका विषय रहता है। मैने बहुत विचार किया कि अव इन विषयोमे न पडूँ तथा आत्मकल्याणकी ओर दृष्टिपात करूँ, परन्तु पुरातन सस्कार भावनाके अनुसार कार्य नही होने देते। व्याख्यान देना तभी उपयोगी होगा जिस दिन आत्मप्रवृत्ति निर्मल हो जावेगी। उसी दिन अनायास सवर हो जायेगा, सवर ही मोक्षमार्ग है। इसके बिना मोक्षमार्गका लाभ होना अति कठिन नही, असभव है। मनुष्योके साथ विशेष सपर्क नही करना चाहिए, क्योंकि

सपर्क ही रागका कारण है। रागके विषयको त्यागनेमे भी रागकी निवृत्ति होती है। निर्विषय राग कहाँ तक रहेगा ? सर्वथा ऐसा सिद्धान्त नही कि पहले राग छोडो, पश्चात् विषय त्यागो। यदि क्षयोपशम ज्ञानको पाया है तो उसे पराधीन जान उसका अभिमान छोडो। भोजनकी लिप्सा छोडो। उदयानुकूल कार्य होते हैं। परने हमारा उपकार किया, परका उपकार किया, यह अहकार त्यागो। न तो कोई देनेवाला है और न कोई हरण करनेवाला है। सर्व कार्य सामग्रीसे होते है। केवल दैव भी कुछ नही कर सकता और न केवल पुरुपार्थ ही कार्यजनक है, किन्तु सामग्री कार्यजननी है। बाह्याभ्यन्तर निमित्तकी उपस्थिति ही सामग्री कहलाती हैं।

सामलीके बाद विशेप आवास कॉदलामे हुआ। यहाँ प्रवचनमे मनुष्योका समुदाय अच्छा रहा, किन्तु समुदायसे ही तो कुछ नही होता। शास्त्रप्रवचन केवल पद्धति मात्र रह गया है। वास्तवमे तो न कोई वक्ता है, और न श्रोता है। (मोहकी बलवत्तामे ही यह सब ठाठ हो रहा है। जहाँतक मोहकी सत्ता है वहाँ तक यह सब प्रपञ्च है। ससारके मूल कारण रागादिक है। इनके सद्भावमे ही यह सर्व हो रहा है। रागकी प्रवलता पष्ठ गुणस्थान तक ही है, इसलिये यह लीला वही तक सीमित है यह भाव वक्ता तथा श्रोताके हृदयमे आ जावे तो प्रवचनकी सार्थकता है।) महावीरसे प० धरणेन्द्रकुमारजी आये। उन्हीके यहाँ भोजन हुआ। आपने १ कषायप्राभृत भेट किया तथा स्याद्वाद विद्यालय को ११) प्रदान किये। आपकी श्रद्धा धर्ममे उत्तम है। वास्तवमे श्रद्धा आत्माका अपूर्व गुण है। इसके होने पर सर्व गुण स्वयमेव सम्यक् हो जाते है। इसकी महिमा अचिन्त्य है। इसके होने पर ज्ञान सम्यक् और मिथ्याचारित्र अविरतशव्दसे व्यवहृत होने लगता है। जेठ सुदी २ का प्रवचन बहुत शान्तिसे समाप्त हुआ। प्रकरण ब्रह्मचर्य व्रतका था। परपदार्थसे भिन्न आत्माका निश्चय कर जो परपदार्थोमे राग-द्वेषका त्याग कर देता है, वही पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला होता है। लौकिक मनुष्य केवल जननेन्द्रिय द्वारा विपयसेवनको ही ब्रह्मचर्यका घातक मानते है, परन्तु परमार्थसे सर्व इन्द्रिय द्वारा जो विषयसेवनकी इच्छा है, वह सव ब्रह्मचर्यका घातक है। आज देहलीसे २० मनुष्य आये। सवका यही आग्रह था कि दिल्ली चलिये। चातुर्मासका अवसर निकट था तथा उसके उपयुक्त दिल्ली ही स्थान था, इसलिये हमने कह दिया कि दिल्लीकी ओर ही तो चल रहे है।

काँदलामे एक दिन पल्टूरामजीके यहाँ भोजन हुआ। आप बहुत ही सज्जन तथा तत्त्वज्ञानी है। आप स्थानकवासी सम्प्रदायके है। आपका हृदय विशाल है, परन्तु साथमे कुछ आग्रह भी है। स्थानकवासी सम्प्रदायका कुछ व्यामोह है। यद्यपि आप निर्ग्रन्थ पदको ही मुख्य मानते है, फिर भी वस्त्रधारीको भी मुनि माननेमे सकोच नही करते। दिगम्बर सम्प्रदायमे तो यह अकाट्य मान्यता है कि वाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकारके परिग्रहका जहाँ त्याग है, वही मुनि पद हो सकता है। एक दिन यहा ग्रामके सवसे वडे प्रसिद्ध मौलवीने २ आम भोजनके लिये दिये। लोगोने बहुत टिप्पणी की, परन्तु मैने उन्हे आहारमे ले लिया, खेद इसका है कि लोग विना शिर-पैरकी टीका-टिप्पणी करते हैं। यदि ये ही आम किसी मुसलमानकी दुकानसे लाये होते तो ये लोग टीका-टिप्पणी न करते। अस्तु, लोग अपने अभिप्रायके अनुसार टीका-टिप्पणी करते है। हमको उचित है कि उससे भय न करे। पापसे भयभीत रहे। किसीके प्रति अन्यथा न विचारें। जो होना है, होगा, इसमे खेद किस वात का? मेरा तो वार-वार यही लक्ष्य रहता है कि आत्माकी निर्मलता ही सुखका कारण है, और सुख ही शान्तिका उपाय है। उपाय क्या? सुख ही शान्ति है। इधर प्रवचनमे अजैन लोग भी बहुत आते है और जैनधर्मके मर्मको श्रवण कर प्रसन्न भी होते हैं। आत्मा अनादि अनन्त है, यह सबको मान्य है। किन्तु इसका यह अर्थ नही कि आत्मा कूटस्थ रहे, परिणाम बिना परिणामी नही और परिणामी बिना परिणाम नही, अत यह मानना सर्वथा उचित है कि आत्मा न तो सर्वथा नित्य है, और न सर्वथा अनित्य है, किन्तु नित्यानित्यात्मक है।

(२)

जेठ सुदी १० स० २००६ को ५ बजे प्रात काँदलासे चलकर गगेरु आ गये। यहाँ पर १ मन्दिर है। ४० घर जैनियोके है। मन्दिरमार्गी है। इनके अतिरिक्त ४० घर स्थानकवासियोके है। ये लोग मूर्तिको नही मानते है। आलम्बनके बिना धर्मका कोई आचार इनमे नही है, और न धर्मका स्वरूप ही समझते है। नाममात्रके जैन है। सायकालको सभा हुई, जिसमे अष्टमूलगुण आदिके व्याख्यान हुए। यहाँसे ६ मील चलकर कैराना आये। यहाँ पर ४० घर जैनियोके है। प्राय सम्पन्न है,

सरल है, स्वाध्याय और पूजनका अच्छा प्रवन्ध है। यहाँ जैनियोके अनेक वालक राष्ट्रीय स्वयसेवक सघमे है, परन्तु सघका उद्देश्य क्या है, किसीको पता नही। देशमे सर्वत्र इनका प्रचार है। कुछ इनसे पूछो, वताते नही। केवल देगका भला हो, यह कह देते हैं। वास्तव वात कुछ वताते नही। भारतवर्ष ऋषिभूमि रही, परन्तु अव तो यहाँके मनुष्य कामलोलुप हो गये। प्रवचनमे वहुत लोग आये। प्रवचनका सार यही था कि ज्ञानका विपरीत अभिप्रायसे मुक्त हो, जाना सम्यग्दर्शन है, पदार्थ-को जानना सो सम्यग्ज्ञान है, और कर्मघात करना चरित्र है। इस तरह ज्ञान ही सम्यग्दर्शनादि तीन रूप है—विद्यानन्द स्वामीने यही वात श्लोकवार्तिकमे कही है—

मिथ्याभिप्रायनिर्मुक्तिर्ज्ञानस्येष्टं हि दर्शनम्।
ज्ञानत्वमर्थविज्ञप्तिश्चर्यात्वं कर्म्महन्तृता॥

भोजनमे अन्तराय तथा पैरमे मोच आ जानेके कारण एक दिन यहाँ और रुकना पडा। शरीरकी दशा पतनोन्मुख है, फिर भी हम वाह्य आडम्वरमे उलझ रहे है, यह दु खकी वात है। उचित तो यह है कि धर्म-साधनमे सावधान रहे। धर्म-साधनका अर्थ यह है कि परिणामोकी व्यग्रतासे रक्षा हो। धर्म माने वाह्य क्रिया नही। किन्तु हम अज्ञानी लोगोने वाह्य क्रियामे धर्म मान रक्खा है। आज यहाँसे जाना था, परन्तु किट्ठलके मनुष्योमे परस्पर रात्रिको वैमनस्य हो गया। वैमनस्य का कारण पाठशालाके अर्थ चन्दा था। परमार्थसे पूछा जावे तो ससारमे दु खादिका कारण परिग्रह-पिशाच है। यह जहाँ आया वहाँ अच्छे-अच्छे महापुरुषोकी मति भ्रष्ट कर देता है। परिग्रहकी मूर्च्छा इतनी प्रवल है कि आत्मीय-ज्ञानसे वञ्चित कर देती है। कहाँ तक लिखा जावे? जव तक इसका सद्भाव है तव तक आत्मा यथाख्यातचारित्रसे वञ्चित रहती है। अविरत अवस्थासे पार होना कठिन है।

आषाढ वदी १ स० २००६ को किट्ठलसे ५ मील चलकर छपरौली आ गये। यहाँ पर १०० घर जैनधर्मवालोके है जिनमे ५० घर मन्दिर-मार्गी दिगम्वर आम्नायवालोके है और शेष स्थानकवासियोके हैं। पञ्चम कालका महात्म्य है कि इस निर्मल धर्ममे भी पन्थोकी उत्पत्ति हो गई। शान्तिका मार्ग तो मिथ्याभिप्रायके त्यागनेसे होता है, परन्तु उस ओर दृष्टि नही। दृष्टिको शुद्ध वनाना ही आत्माके कल्याणका मूल मार्ग है। हमारी भूल ही हमारे ससार परिभ्रमणका कारण है। वहुत विचार करनेके वाद हमने तो यह निश्चय किया कि अपनी अन्तरङ्गकी परिणति

निर्मल करना चाहिये। परपदार्थोके गुण-दोषोकी समालोचनाकी अपेक्षा आत्मीयपरिणतिको निर्मल करना वहुत लाभदायक है। देवपूजा करनेका तात्पर्य यह है कि आत्माकी परिणति निर्मल होनेसे यह दशा आत्माकी हो जाती है। अर्थात् आत्मा देव पदको प्राप्त हो जाता है। (मेरी आत्मा भी यदि इनके कथित मार्गपर चलनेकी चेष्टा करे, तो कालान्तरमे हम भी तत्तुल्य हो सकते है,) परन्तु हमारी प्रवृत्ति अत्यन्त निन्द्य है।

छपरौलीसे ४ मील चलकर नगला आये। यहाँ १५ घर जैनियोके है। सब दिगम्बर सम्प्रदायके है। १ मन्दिर है, स्वच्छ है, २ वेदिकाएँ है, १ काली मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यहाँ जाट लोग वहुत है, प्राय सम्पन्न है। प्रवचनमे सव लोग आये। आजकल लोगोके हृदयमे धार्मिक सघर्षका जोर प्राय कम हो गया है और लोग प्रेमसे एक दूसरेकी वात सुननेको तैयार है यह प्रसन्नताकी बात है। धर्म जीवका स्वच्छ स्वभाव है जिसका उदय होते ही आत्मा कैवल्यावस्थाका पात्र हो जाती है। मोक्ष, आत्माकी केवलपरिणतिको कहते है। उसके अर्थ ही यावत् प्रयास है। यदि उसका लाभ न हुआ तो सर्व प्रयास विफल है। अगले दिन यहाँसे ४ मील चलकर वावली आ गये। यह ग्राम वहुत बडा है। मन्दिर भी यहाँका विशाल है। यहाँ श्री शान्तिनाथकी मूर्ति अत्यन्त मनोहर और आकर्षक है, परन्तु मूर्तिके अनुरूप स्थान नही। यहाँ पर परस्पर मनोमालिन्य वहुत है और वह इतना विकृत हो गया है कि जिसमे हानिकी सम्भावना है। वहुतसे मनुष्य ऐसे होते है जिन्हे कलह ही प्रिय होता है। जनता उनके पक्षमे आजाती है। सदसद्विवेक होना अत्यन्त कठिन है। शास्त्रका अध्ययन करनेवाले जब इस विपयमे निष्णात नही तब ज्ञानी मनुष्य तो अज्ञानी ही है।

अषाढ बदी ५ स० २००६ को वावलीसे चलकर बडौत आ गये। यह नगर अच्छा है, व्यापारका केन्द्र है। ५०० घर दिगम्बर जैनोके है। २ मन्दिर है। वडी शानसे स्वागत किया। कालेज भवनमे वहुत भीड थी। व्याख्यानका प्रयास वहुत लोगोने किया, परन्तु कोलाहलके कारण कुछ असर नही हुआ। हमने भी कुछ बोलना चाहा, परन्तु कुछ वोल न सके। लोगोका कोलाहल और हमारी वृद्धावस्था इसके प्रमुख कारण थे। कालेजकी विल्डिग वहुत वडी है। किराया अच्छा आता है। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुआ, भीड वहुत थी। अव शास्त्रकी प्रणालीसे शास्त्र होता नही, क्योकि जनता अधिक आती है और शोरगुल वहुत होता है।

इस स्थितिमे यथार्थ बात तो कहनेमे आती नही, केवल सामाजिक बातोमे शास्त्रका प्रवचन होने लगता है। समाजमे विद्वान् बहुत है तथा व्याख्याता भी उत्तम है, किन्तु वे स्वय अपने ज्ञानका आदर नही करते। यदि वे अपने ज्ञानका आदर स्वय करे तो ससार स्वय मार्ग पर आ जावे अथवा न आवे, स्वय तो कल्याण पर आ जावेगे। ज्ञानके आदरमे अभिप्राय तदनुकूल आचरण है। तदनुकूल आचरणके विना ज्ञानकी प्रतिष्ठा ही क्या है ? मुझे तो अन्तरङ्गसे लगता है कि बोलना न पडे, अपनी परिणतिको निर्मल बनानेका प्रयत्न करूँ, इसीमे सार दिखता है। ससारमे ऐसा कोई शक्ति-शाली पुरुष नही जो जगत्की सुधारणा कर सके। बडे-बडे पुरुष हो गये। वे भी ससारकी गुत्थी सुलझा न सके तब अल्पज्ञानी इसकी चेष्टा करे, यह महती दुर्बोधता है। यदि कल्याणकी इच्छा है तो अपने भावोको सुधारा जाय। इच्छाको रोकना ही सुखका कारण है। सुख कोई अन्य पदार्थ नही, जिसके अर्थ किसीसे याचना की जावे। जैसे कुम्भकार घटको चाहता है और यह जानता है कि घटकी पर्याय मिट्टीमे होती है। वह निरन्तर १ ढेर मिट्टीका घरमे रखता है। यदि वह मिट्टीकी पूजा करने लगे तथा जप करने लगे कि घट बन जावे तथा घटानुकूल व्यापार न करे तो क्या घट बन जावेगा ? इसीप्रकार सुख आत्माका गुण है और आत्मामे सदा विद्यमान है, परन्तु वर्तमानमे मोहके कारण उसमे दु खरूप परिणमन हो रहा है। यदि यह प्राणी सुख-प्राप्तिके अनुकूल चेष्टा न करे—आत्मासे मोहपरिणतिको विघटित न करे तो क्या अपने आप सुखगुण प्रकट हो जावेगा ?

आषाढ वदी ९ स० २००६ को श्रीक्षुल्लक चिदानन्दजी तथा क्षु० पूर्णसागरजीके केशलुञ्च हुए। दृश्य देखनेके लिये अपार भीड एकत्रित हुई। यद्यपि केशलुञ्च एक क्रिया है और इसको मुनि तथा ऐलक करते है एव यह एकान्तमे होता है, किन्तु अब इसे प्रभावनाका अग बना दिया है, सहस्रो मनुष्य इकट्ठे हो जाते हैं तथा जयकारके नारे लगाते है। पञ्चम काल है, मनुष्य स्वेच्छाचारी है, जो मनमें आता है, वह करते है। आगमकी अवहेलना भले ही हो जावे, परन्तु जो असत्कल्पना मनमे आ जावे, उसकी सिद्धि होना ही चाहिये। मनुष्य आवेगमे आकर अनेक अनर्थ करता है। यद्यपि केशलुञ्च करना कोई धर्म नही। केश है, पासमे पैसा नही। यदि उन्हे रक्खा जावे तो कौन सँभाले, यूका आदि हो जावे, अत हाथसे उपाडना ही धर्म है। उसे जनता वीतरागताका द्योतक समझती है तथा जय-जयकारके नारे लगाती है और उसीमे हमारे

जो त्यागी है वे द्वादशानुप्रेक्षाका पाठ पढते हैं, तथा नाना नारे लगाते हैं। मेरी समझसे व्रतीको आगमकी अवहेलना करना उचित नही। बडौतमे ६ दिन लग गये। अष्टाह्निकाके पूर्व दिल्ली पहुँचना था, इसलिए बीचमे अधिक रुकना रुचिकर नही होता था।

आपाढ वदी ११ स० २००६ को प्रात काल ५ वजे वडौतसे चलकर ७ वजे वडौली आये। यहाँ पर १ मन्दिर तथा १० घर जैनोके है, साधारण स्थितिके है, सरल है। परिणामोकी सरलता जो छोटे ग्रामवासियोमे होती है, वह वडे ग्रामोके मनुष्योमे नही होती। बडे ग्रामोके मनुष्योके विषयकी लोलुपता अधिक रहती है, क्योकि छोटे ग्रामोकी अपेक्षा उनमे विषय सेवनकी सामग्री अधिक रहती है, और यह अनादिसे विपयलोलुप वन रहा है। इसी दिन मध्यान्हके बाद चलकर मसूरपुर आ गये। यहाँ १ मन्दिर और २० घर जेनियोके है। मसूरपुरसे ६ मील वागपत आये। यहाँ पर २० घर जैनियोके तथा १ मन्दिर है। १ हाईस्कूल भी है। मनुष्य सज्जन है, परन्तु यहाँ पर कोई समागम नही। इससे जैनत्वका विशेष परिचय नही। कहाँ तक लिखे? न जाननेके कारण प्राय जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोकी विरलता होती जाती है। लोगोकी बुद्धिकी वलिहारी है कि वे स्वकीय द्रव्य मन्दिरोके सजाने तथा सोने चाँदीके उपकरणोके एकत्रित करनेमे तो व्यय करते है पर जिनसे जैन सिद्धान्तोका ज्ञान बढे, हमारी सन्तान सुवोध हो, इस ओर उनका लक्ष्य नही। त्रयोदशीके दिन वागपतसे ३ मील चलकर टटेरीमण्डी आ गये। यहाँ पर १० घर जैनियोके तथा १ चैत्यालय है। चैत्यालय बहुत ही सुन्दर है। आज बहुत ही गर्मी रही। तृषाने बहुत सताया, परन्तु स्वप्नमे भी यह ध्यान न आया कि यह व्रत धारण करना उपयोगी नही। प्रत्युत यही विचार चित्तमे आया कि परिषह सहन करना ही तप है। आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। परिणामोकी निर्मलतासे यह आत्मा अनायास ही ससारके बन्धनसे विमुक्त हो सकता है। जहाँ तक वने अभिप्राय शुद्ध करनेकी महती आवश्यकता है।

चतुर्दशीको टटेरीमण्डीसे ५½ मील चलकर खेखडा आ गये। यह ग्राम बहुत प्रसिद्ध है। इसमे वावा भागीरथजी प्राय निवास करते थे। यहाँ लगभग २०० घर जैनियोके है। लोगोने बहुत स्वागतसे लाकर लाला उग्रसेनजीकी कोठीमे ठहराया था। ९ वजे मन्दिर गये। वहाँ पर वहुत जनता थी। मुझे लगा कि जनता धर्मकी पिपासु है, परन्तु धर्मका स्वरूप वतलानेवाले विरले है। मै तो अपने आत्माको इस विषयमे प्राय
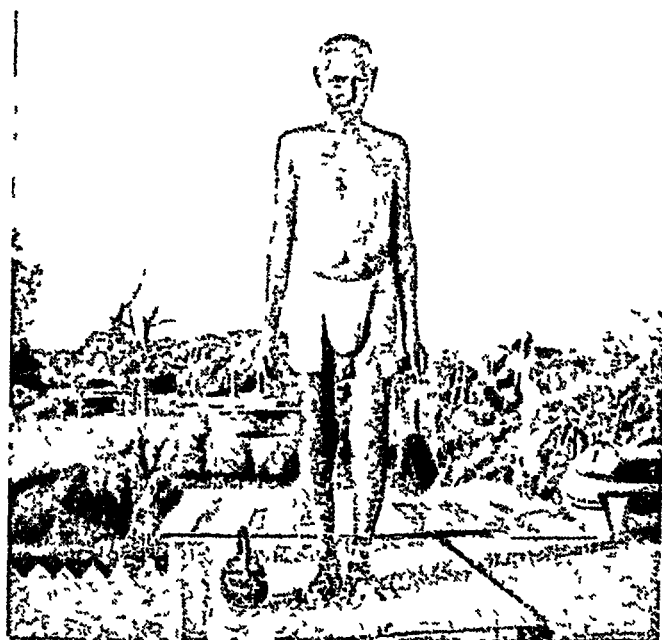
पूज्य वर्णीजी खड्गासन मुद्रामे। [पृ० ६९]

बहुत ही दुर्बल देख रहा हूँ। जहाँ तक बने परकी वञ्चना मत करो। परकी वञ्चना हो व मत हो, आपकी वञ्चना तो हो ही जाती है। आपकी वञ्चनाका यही अर्थ है कि आप वर्तमानमे जिस कषायसे दुखी होता है, उसीका बीज फिर बो लेता है। आत्माको दुख देनेवाली वस्तु इच्छा है। वह जिस किसी विषयकी हो, जब तक उसकी पूर्ति नही होती, यह जीव दुखी रहता है तथा आत्मा भी आगामी दुखका पात्र हो जाता है। यह सब होने पर भी मनुष्य निज हित करनेमे सकुचित रहते है। केवल ससारकी वासनाएँ इन्हे सताती रहती है। वासनाओमे सबसे बडी वासना लोकेषणा है, जिसमे सिवाय सक्लेश के कुछ नही।

दूसरे दिन प्रात काल कन्यापाठशालाका निरीक्षण किया। द्रव्यकी पुष्कलताके अभावमे यथायोग्य व्यवस्था नही। यहाँ पर २०० घर जैनियोके है, परन्तु उनमे परस्पर प्रेम नही और सघटन होना भी असंभव-सा है। मानकषायकी तीव्रताके कारण लोग एक दूसरेको कुछ नही समझते। दूसरेके साथ नम्रताका भाव आनेमे अपना अपमान समझते है, यही सर्वत्र पारस्परिक वैमनस्यका कारण होता है। यदि हृदयसे मानकी तीव्रता निकल जावे और एक-दूसरेके प्रति आत्मीयभाव हो जाय तो वैमनस्य मिटनेमे क्या देर लगेगी? जहाँ वैमनस्य नही, एक दूसरेके प्रति मत्सरभाव नही, वहाँ बडे-से-बडे काम अनायास सिद्ध हो जाते है वा द्रव्यकी कभी कमी नही रहती। यह वैमनस्यका रोग सर्वत्र है और सर्वत्र ही इसका यही एक निदान है। इसे मिटानेकी क्षमता सबमे नही। वही मिटा सकता है, जो स्वय कषायजन्य कलुषतासे परे हो।

आषाढ सुदि २ स० २००६ को प्रात ५ बजे चलकर बडेगाँव क्षेत्र पर आ गये। यहाँ पर १ विशाल मन्दिर है और मन्दिरके चारो कोनो पर ४ छोटे मन्दिर है। उनमे भी प्रतिमाएँ विराजमान है। यहाँ पर श्री पारसदासजी ब्रह्मचारी रहते है। पण्डित श्यामलालजीका भी यहाँ निवास है। आज बाहरसे १०० यात्री आ गये दिल्लीसे राजकृष्णजी, उनकी पत्नी तथा श्रीमान् जुगलकिशोरजी और घडीवालोके बालक भी आये। मध्याह्न बाद बाबाजीका प्रवचन हुआ। श्री प० जुगलकिशोरजीसे बातचीत हुई। १० लाख रुपयेके सद्भावमे प्राचीन सस्कृत साहित्यका उद्धार प्रारम्भ हो सकता है। दूसरे दिन बडेगाँवसे १ मील चलकर नहर पर आये और वहाँसे ५½ मील चलकर नहरके ऊपर १ बगला सरकारी था, उसमे निवास किया। यहाँ पर लाला रघुवीरसिंहजी व

श्री जैनेन्द्रकिशोरजी दिल्लीवालोके चौकामे भोजन किया। श्री ब्र० कृष्णावाईजी भी आई थी। इनकी त्यागचर्या वडी ही कठिन है। स्त्रीजाति स्वभावत कष्टसहिष्णु होती है।

आषाढ सुदी ४ स० २००६ को वगलासे ५½ मीलका मार्ग तय कर टीलाके वागमे निवास किया। यह वाग श्री लाला उलफतरायजी दिल्लीवालोका है। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्याय नही हुआ। वैसे उपयोगकी स्थिरताके लिये स्थान सुन्दर है, परन्तु वाह्य कारणकूटके अभावमे कुछ नही हुआ। मेरी अवस्था ७५ वर्षकी हो गई, परन्तु उसका लाभ न लिया और न लेने की चेष्टा है। इसका मूल कारण मोहकी प्रवलता है। जिसने मोहकी प्रभुता पर विजय नही पाई उसने मनुष्य जीवनका सार नही पाया। पचमीको प्रात टीलासे ५ मील चलकर शाहदरा आ गये। यहाँ पर ५० घर जैनोके तथा १ मन्दिर है। स्थान भद्र है। जलवायु उत्तम है। हम लोग धर्मशालामे सानन्द ठहर गये। यहाँके लोगोकी प्रवृत्ति ग्रामवासियोके सदृश है, परन्तु दिल्लीके समीपवर्ती होनेसे यहाँके मनुष्य प्राय उसी विचारके है। यहाँ दिल्लीसे वहुत मनुष्य आये थे, किन्तु सबकी प्रवृत्ति वही है जो होना चाहिये। निवृत्तिमार्गकी ओर दृष्टि वहुत ही कम है। मुझे लगा कि कल्याणके अर्थ लोग इतस्तत भ्रमण करते है। किन्तु कल्याणका मार्ग ससारमे कही भी नही। आभ्यन्तर आत्माकी निर्मल परिणतिमे ही है। शाहदरासे ३ मील चलकर राजकृष्णके बागमे ठहर गये। यही पर भोजन हुआ। दोपहरको १ मिनट भी विश्राम नही मिला, १ मनुष्यके वाद १ मनुष्यका आगमन बना रहा और सकोचवश मै बैठा रहा। वास्तवमे आभ्यन्तर मोहकी परिणति इतनी प्रवल है कि इसके प्रभावमे आकर कुछ भी रागाशका त्यागना कठिन है। वाह्य रूपादि विषयोका त्याग तो प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, किन्तु आभ्यन्तर त्याग करना अति कठिन है।

आषाढ सुदी ८ स० २००६ को राजकृष्णजीके वागसे ३ मील चलकर यमुना पुलके १ फर्लाङ्ग वाद लोगोने विश्राम लिवाया। तदनन्तर एक विशाल जुलूसके साथ १ मील चलकर लालमन्दिरमे आ गये। जनता वहुत थी, फिर भी प्रबन्ध सराहनीय था। यही पर लालमन्दिरकी पंचायतने अभिनन्दनपत्र श्रीमान् प० मक्खनलालजीके द्वारा समर्पित किया। मैने भी अपना अभिप्राय जनताके समक्ष व्यक्त किया। मेरा अभिप्राय यह था कि त्यागसे ही कल्याणमार्ग सुलभ है। त्यागके

विना यह जीव चतुर्गतिरूप ससारमे अनादिकालसे भ्रमण कर रहा है आदि। यहाँसे १ मील चलकर अनाथाश्रमके भवनमें ठहर गया। मुरारसे लेकर यहाँ तक ७ माहके निरन्तर परिभ्रमणसे शरीर श्रान्त हो गया था, तथा चित्त भी क्लान्त हो चुका था, इसलिए यहाँ इस मञ्जिल पर आते ही ऐसा जान पडा, मानो भार उतर गया हो। प० चन्द्रमौलिने मुरारसे लेकर देहली तक साथ रह कर सव प्रकारकी व्यवस्था वनाये रक्खी।

दिल्लीका ऐतिहासिक महत्त्व और राजा हरसुखराय

भारतीय इतिहासमे दिल्लीका महत्त्वपूर्ण स्थान है, रहा है और आगे रहेगा। इसका प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है। यह वर्तमानमे भारतकी राजधानी है और पहले भी इसे राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त रहा है। दिल्लीको उजाडने, पुन बसाने और कत्लेआम करने-कराने आदिके ऐसे भीषणतम दृश्य इतिहासप्रसिद्ध है कि जिनका स्मरण भी शरीरमे रोमाञ्च ला देता है। दिल्लीपर तुंवर (तोमर), चौहान, पठानो, मुगलो तथा अग्रेजो आदिने शासन किया है। वर्तमानमे स्वतन्त्र भारतकी राजधानी होनेसे दिल्लीकी शोभा अनूठी है। यहांकी जनसख्या २६ लाखसे कम नही है जिसमे जैनियोकी जनसख्या पच्चीस हजारसे कम नही ज्ञात होती। रात्रिमे विजलीकी चमचमाहट और कारोकी दौड देख साधारण जनता विस्मित हो उठती है। दिल्लीमे प्राचीनसमयमे ही जैनोका गौरव रहा है। यहां अनेक जैन श्रीमन्त, राजमन्त्री तथा कोषाध्यक्ष हो गये है। जैन सस्कृतिके सरक्षक अनेक जैनमन्दिर समय-समय पर यहां बनते रहे है। वर्तमानमे जैनियोके २९ मन्दिर और ४-५ चैत्यालय है। ३-४ मन्दिरोमे अच्छा विशाल शास्त्रभण्डार भी है। (वर्तमान मन्दिरोमे चांदनी चौककी नुक्कडपर बना लालमन्दिर सबसे प्राचीन है, क्योकि उसका निर्माण शाहजहांके राज्यकालमे हुआ था। दूसरा दर्शनीय ऐतिहासिक मन्दिर राजा हरसुखरायका है जो 'नयामन्दिर' के नामसे लोकमे ख्यात है। इस मन्दिरमे पच्चीकारीका बहुत बारीक और अनूठा काम है, जो कि ताजमहलमे भी उपलब्ध नही होता।)

(दिल्लीका यह ऐतिहासिक मन्दिर जो अपनी कलाके लिये प्रसिद्ध है, दर्शनीय है। उसकी अनूठी कारीगरी अपूर्व और आश्चर्यकारक है। दिल्लीके वर्तमान ऐतिहासिक स्थानोमे इसकी गणना की जाती है। भारत पर्यटनके लिये आनेवाले विदेशी जन दिल्लीके पुरातनस्थानोके साथ इस मन्दिरकी कलात्मक पच्चीकारी और सुवर्णाङ्कित चित्रकारीको देखकर हर्षित तथा विस्मित होते है। इस मन्दिरके निर्माता जैनसमाजके प्रसिद्ध राज्यश्रेष्ठी लाला हरसुखराय हैं जो राजाकी उपाधि अलकृत थे। उन्होने वि० स० १८५७ मे इसे बनवाना शुरू किया था और सात वर्षके कठोर परिश्रमके बाद वि० स० १८६४ मे यह बनकर तैयार हुआ था। इसका प्रतिष्ठा महोत्सव स० १८६४ वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया)

को सूर्य मन्त्रपूर्वक हुआ था। उस समय इस मन्दिरकी लागत लगभग सातलाखरुपया आई थी जब कि कारीगरको चार आना और मजदूरीको दो आना प्रतिदिन मजदूरीके मिलते थे।

मन्दिरके बाहर प्रवेशद्वारके ऊपर बनी हुई कलात्मक छतरी साचीके तोरणद्वारोके समान सुन्दर तोरणद्वारोसे अलकृत है। उसमे पाषाणका कोई भी ऐसा हिस्सा नही दीखता, जिसमे सुन्दर वेलबूटा, गमला अथवा अन्य चित्ताकर्षक चीजे उत्कीर्ण न की गई हो। यह छतरी दर्शकको अपनी ओर आकर्षित किये विना नही रहती। मन्दिरमे प्रवेश करते ही दर्शकको मुगलकालीन १५० वर्ष पुरानी चित्रकलाके दर्शन होते है। मन्दिरकी छते लाल पाषाणकी है और उनपर बारीक घुटाईवाला पलस्तर कर उसके ऊपर चित्रकारी अङ्कित की गई है। चित्रकारी इतनी सधी हुई कलमसे बनाई गई है कि जिसे देखकर दर्शक आनन्द-विभोर हो उठता है। ज्यो-ज्यो दर्शककी दृष्टि सभी दहलानों, दरवाजो और गोल डाटो आदिमे अङ्कित चित्रकला देखती है, त्यो-त्यो उसकी अतृप्ति बढती जाती है। मन्दिरका प्राङ्गण विशाल और मनोरम है। इतना विशाल प्राङ्गण अन्य मन्दिरोमे कम देखनेको मिलता है। जब दर्शक चौकमेसे मूलवेदीका निरीक्षण करता है, साथ ही वेदीके चारो ओर लगे हुए जगलोकी बारीक जालीकी कटाईका अवलोकन करता है तो वह आनन्द-विभोर हो उठता है। जब वह वेदीकी बारीक कलात्मक पच्चीकारी वेदीके चारो ओर चारो दिशाओमे बने हुए सिंहके युगलोको तथा उनकी मूछोके बारीक बालोको देखता है, तब उसे उस शिल्पीके चातुर्यपर आश्चर्य हुए विना नही रहता। उसके बाद जब दर्शक वेदीके ऊपरी भागमे बने हुए कमलका अवलोकन करता है, जिसपर आदिनाथ भगवान्की स० १६६४ की प्रतिष्ठित प्रशान्त मूर्ति विराजमान है। साथ ही जब उसे ज्ञात होता है कि जब मन्दिर बना था तब इस कमलकी लागत दस हजार रुपया थी और वेदीकी सवा लाख रुपया तब वह और भी अधिक आश्चर्यमे पड जाता है। यह वेदी मकरानेके सुन्दर सफ़ेद सगमर्मर पाषाणसे बनाई गई है। इसमे कही-कही तो पच्चीकारीका इतना बारीक काम है कि जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नही होता। गर्भालयके चारो ओर दीवारोपर सुवर्णाङ्कित अनेक ऐतिहासिक एव पौराणिक भावोको चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है। जैसे गजकुमार मुनिका अग्नि उपसर्ग, सेठ सुदर्शनके शील-प्रभावसे शूलीका सिंहासन होना, सीताका सतीत्व-परिचयके लिये अग्निकुण्डमे प्रवेश करना, रावणका कैलाशगिरिको उठाना और बाली मुनिका

तपश्चरण, भरत और बाहुबलीके दृष्टि, जल और मल्ल नामक तीन युद्ध, राजा मधुका वैराग्य, सनत्कुमार चक्रवर्तीकी देवोके द्वारा परीक्षा, अवन्तीसेठ सुकुमालका वैराग्य, मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका भद्रबाहु श्रुत-केवलीसे स्वप्नोका फल पूँछना, यादववंशी भगवान् नेमिनाथ और उनके चचेरे भाई श्रीकृष्णके बलकी परीक्षा, अकलंकदेवका बौद्धाचार्यके साथ राजसभामे शास्त्रार्थ तथा भगवान् जिनेन्द्रके समवरणका दृश्य। ऊपर मानतुङ्गाचार्यके भक्तामर स्तोत्रके ४८ काव्योको सुवर्णाक्षरोमे अङ्कित किया गया है। साथ ही उनकी सिद्धि तथा ऋद्धिमन्त्रोको भी स्पष्ट रूपसे चित्रित किया है। तीर्थोंमे पावापुरी, चम्पापुरी, मन्दारगिरि और मुक्तागिरिके चित्र अंकित है। ऊपर अनेक देवगण अपने अपने वाद्योको लिये हुए दिखलाये गये हैं। मूल वेदीके अतिरिक्त अन्य ३ वेदियाँ भी पीछे चलकर यहाँ बनवाई गई हैं, जिनपर प्राचीन एवं नवीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन मूर्तियोमें स्फटिक, नीलम और मरकतकी मूर्तियाँ भी विद्यमान है। कुछ मूर्तियाँ तो १११२ तथा ११५३ वि० स० तककी प्रतिष्ठित है। चौकके बाँई ओर दहलानमे चारो ओर सुवर्णाक्षरोमे आचार्य कुमुदचन्द्रका कल्याणमन्दिर स्तोत्र अङ्कित है और बगलवाले कमरामे विशाल सरस्वतीभवन है। (सरस्वती भवनमे प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी आदिके १८०० के लगभग हस्तलिखित ग्रन्थ हैं तथा २०० के लगभग हिन्दी, संस्कृतके गुटकोका भी संकलन है। इन ग्रन्थोमे सबसे प्राचीन ग्रन्थ १४८६ वि० स० का लिखा हुआ है। ५०० से अधिक मुद्रित ग्रन्थ भी संगृहीत है।)

यहाँ चौकके सामनेवाली दहलानमे शास्त्रसभा होती है। यह सभा अपने ढंगकी एक ही है। यही सभा लाला हरसुखराय तथा लाला सगुनचन्द्रके समय सगुनचन्द्रशैलीके नामसे प्रसिद्ध थी। संवत् १८८१ मे जयपुरके विद्वान् पं० मन्नालाल जी, अमरचन्द्रजी दीवानके साथ हस्तिनागपुरकी यात्राको गये थे। यात्रा कर जब वापिस दिल्ली आये तब लाला सगुनचन्द्रजीने चातुर्माससें दिल्ली ठहरा लिया और उनसे शास्त्र-प्रवचन सुना। साथ ही लालाजीने उनसे राजा चामुण्डरायके चारित्रसार-की हिन्दी टीका करनेकी प्रेरणा की, जिसे उन्होने वि० स० १८८१ मे बनाकर पूर्ण की थी। छहढालाके कर्ता पं० दौलतरामजीने भी अपना अन्तिम जीवन यही विताया और तत्त्वचर्चा तथा स्वाध्यायका रस लिया एवं अनेक आध्यात्मिक पद बनाये। प्रसन्नता है कि शास्त्रसभाकी परम्परा अभीतक चली आ रही है।

मन्दिरके निर्माता राजा हरसुखरायजीके पिता लाला हुकूमतसिंह हिसारके रहनेवाले थे। दिल्लीके बादशाहके आग्रहसे दिल्ली आकर रहने लगे थे। बादशाहने उन्हे शाही मकान प्रदान किया था। लाला हुकूमत-सिंहके पाँच पुत्र थे—१ हरसुखराय, २ मोहनलाल, ३ सगमलाल, ४ मेवाराम और ५ तनसुखराय। इनमे हरसुखराय ज्येष्ठ थे। आप बहुत ही गभीर तथा समयानुकूल कार्य करनेमे अत्यन्त पटु थे। बादशाहने इन्हे अपना खजाची बना दिया तथा इनके कार्यसे वह इतना खुश हुआ कि इन्हे 'राजा' पदसे अलकृत कर दिया। इन्हे सरकारी सेवाओके उपलक्ष्यमे तीन जागीरे, सनदे तथा सार्टिफिकेट आदि भी प्राप्त हुए थे, जो उनके कुटुम्बियोंके पास आज भी सुरक्षित है। ये स्वभावत दानी और दयालु थे। इनके पास जाकर कोई गरीब मनुष्य असहाय नही रहा। वि० स० १८५८ को रात्रिके समय बिस्तरपर पडे-पडे राजा साहबके मनमे मन्दिर बनवानेका विचार उठा और दूसरे दिन प्रातःकाल ही उस विचारको कार्यरूपमे परिणत करनेके लियें आपने अपने मकानके पास ही विशाल जमीन खरीद ली तथा बादशाहसे मन्दिर निर्माणकी निर्माणकी आज्ञा ले ली। शुभ मुहूर्तमे मन्दिरकी नीव डाली गई और मन्दिर बनना आरम्भ हो गया। सात वर्ष तक बराबर काम चलता रहा, परन्तु जब शिखरमे थोडा काम बाकी रह गया। तब आपने काम बन्द कर दिया। काम बन्द देख लोगोमे तरह-तरहकी चर्चाएँ उठी। कोई कहता कि बादशाहने शिखर नही बनने दी, इसलिए काम बन्द हो गया है, तो कोई कहता कि राजासाहबने मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर हम जैनियोकी प्रतिष्ठा कम करा दी आदि। कुछ लोग राजा-साहबके पास पहुँचे और काम बन्द करनेका कारण पूछने लगे। उन्होने उत्तर दिया कि भाईयो! अपनी स्थिति छिपाना बुरा है, अत आप लोगोसे कहता हूँ कि मेरी जितनी पूँजी थी, वह सब इसमे लग गयी। अब आप लोग चदा एकत्रितकर बाकी कार्य पूरा करा लीजिये। राजा साहबके इतना कहते ही उनके इष्ट-मित्रोने अर्सफियोके ढेर उनके सामने लगा दियें। उन्होने कहा कि नही, इतने धनका अब काम बाकी नही हैं, बहुत थोडा ही काम बाकी रह गया है, सो उसे आप एक दो नही, किन्तु समस्त जैनियोसे थोडा-थोडा इकट्ठा लाइये। आज्ञानुसार समस्त जैनियोके घरसे चन्दा इकट्ठा हुआ, उससे मन्दिर पूरा हुआ।

जब वि० स० १८६४ मे मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई और कलशारोहणका समय आया तब सब लोगोने राजा साहबसे प्रार्थना की कि आप कलशा-रोहण कीजिये। इसके उत्तरमे राजा साहबने पगडी उतारकर कहा कि

भाइया। मन्दिर मेरा नही है समस्त जैन भाईयोके चन्दासे इसका निर्माण हुआ है, इसलिए पञ्चायत इसका कलशारोहण करे और वही उसका प्रवन्ध करे। उस समय लोगोकी समझमे आया कि राजा साहवने काम वन्दकर इसलिए चन्दा कराया था। वे लोग गद्गद हो गये। राजा साहवने कहा भाइयो! यदि मै इसमे आप लोगोका सहयोग न लेता। तो सदा मेरे मनमे यह अहकार उठता रहता कि यह मन्दिर मेरा है अथवा मेरी वात जाने दो, हमारी जो सतान आगे होगी, उसके मनमे भी यह अहंकार उठता रहेगा कि यह मेरे पूर्वजोका वनवाया हुआ है। आप सवके चन्दासे इसका काम पूरा हुआ है, इसलिए यह आप सवका मन्दिर है। मेरा इसके ऊपर कुछ भी स्वत्त्व आजसे नही है। उसी समयसे मन्दिरका नाम 'पचायती मन्दिर' प्रचलित हुआ। दिल्लीके अतिरिक्त आपने हस्तिनापुर, अलीगढ, करनाल, सोनपत, हिसार, मागानेर और पानीपत आदि स्थानोपर भी मन्दिर निर्माण कराये है।

हस्तिनागपुरके मन्दिर वनवानेकी तो विचित्र कथा है। वहाँके राजाको सरकारी खजानेका २ लाख रुपया भरना था, पर भरनेका समय निकट आने पर वह रुपयोका प्रवन्ध न कर पाया। इतना रुपया कौन देगा? इस चिन्तामे राजा निमग्न था। कुछ लोगोने राजा हरसुखरायका नाम सुझाया। राजाने अपना आदमी हरसुखरायजीके पास भेजा। उन्होने आश्वासन दिया कि व्यग्र न हो, समय पर आपका रुपया खजानेमे जमा हो जायगा। समयके पूर्व ही उन्होने दो लाख रुपया खजानेमे जमा कर दिया और अपने यहाँ वहीमे वह रुपया राजाके नाम न लिखकर हस्तिनागपुरमे मन्दिर वनवानेके लिये राजाके पास भेजे, यह लिखा दिया। समयने पलटा खाया। हस्तिनागपुरके राजाकी स्थिति सुधरी और उन्होने २ लाख रुपया राजा हरसुखरायजीके पास पहुँचाया। हरसुखरायजीने कागज पत्र दिखाकर कहा कि हमारे यहाँ आपके राजाके नाम कोई रुपया नही निकलता। लोग वडे आश्चर्यमे पडे कि दो लाख रुपयेकी रकम इनके यहाँ नामे नही पडी। जव इस ओरसे अधिक आग्रह हुआ तव उस वर्षकी वही निकलवाई गई तथा उसमे लिखा राजासाहवको वताया गया कि यह रुपया तो उन्होने हस्तिनागपुरमे मन्दिर वनवानेके लिये आपके पास भेजा था। राजा उनके व्यवहारसे गद्गद हो गया और उसने अपनी देखरेखमे हस्तिनागपुरका मन्दिर वनवा दिया।

आप अपने व्यवहारसे समाजके गरीब-से-गरीव व्यक्तिको अपमानित नही करते थे, तथा सवको साथ लेकर चलते थे। वि०स० १८६७ मे आपके

श्री लाला फीरोजीलालजी (दिल्ली)

प्रयत्नसे शाही लवाजमाके साथ रथोत्सव हुआ था और जैनधर्मकी अद्भुत प्रभावना हुई थी। वि० स० १८८० मे आपका देहावसान हुआ था। आपका एक ही पुत्र था, जिसका सुगुनचन्द्र नाम था। यह भी अपने पिताके समान ही प्रतापी, धर्मनिष्ठ तथा पुण्यशाली था।

वर्तमानमे भी यहाँ भारतवर्षीय दि० जैन अनाथालय नामकी सस्था चलती है, जिसका विशाल भवन तथा साथमे स्कूल है। समाजमे कई उत्साही व्यक्ति है, जो निरन्तर समाजको आगे बढाते रहते हैं। लाला राजकृष्ण भी एक दक्ष व्यक्ति हैं। इन्होने अपने पुरुपार्थमे अच्छीसे अच्छी सपत्ति सचित्त की है तथा अहिसामन्दिरका निर्माण करा कर समाजसेवा के लिये उसका ट्रस्ट करा दिया है। इनके सिवा लाला फिरोजीलालजीका नाम भी उल्लेखनीय है। ये अधिकतर अपनी सम्पत्तिका उपयोग धार्मिक कार्योमे करते रहते हैं।

दिल्लीका परिकर

मेरे साथ श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी, क्षुल्लक चिदानन्दजी, ब्र०सुमेरुचन्द्रजी भगत तथा एक दो त्यागी और थे। श्री कर्मानन्दजी, जिनका आधुनिक नाम ब्र० निजानन्द था यहाँ थे ही, ब्र० चाँदमलजी भी उदयपुरसे आगये थे, इसलिये यहाँ समय सम्यक् रीतिके व्यतीत होता था। दिल्ली वडा शहर है। अनेक मोहल्लोमे दूर-दूर पर जिनमन्दिर तथा जैनियोके घर हैं। वृद्धावस्थाके कारण मेरी प्रवचनकी शक्ति प्राय क्षीण हो गई थी, अत. इन सबके प्रवचनो और भाषणोसे जनताको लाभ मिलता रहता था। प्रवचनके वाद मैं भी जो बनता था, कह देता था। पहले दिन कण्ठ रुद्ध होनेके कारण मैं कुछ नही कह सका, इसलिए सभा विसर्जन हो गई। श्री रघुवीरसिंहजी रईसके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५०१) दान मे दिये। आज मनमे विचार आया कि जगत्को प्रसन्न करनेका भाव त्याग दो। जो कुछ वने, स्वात्महितकी ओर दृष्टिपात करो। ससारमे ऐसी कोई शक्ति नही जो सबका कल्याण कर सके। कल्याणका मार्ग स्वतन्त्र है। अन्तर्गत राग-द्वेपका त्याग करना ही, आत्मशान्तिका साधक है। अन्तरङ्ग रागादिक आत्माके शत्रु हैं, उनसे आत्मामे अशान्ति पैदा होती है, और अशान्ति आकुलताकी जननी है, आकुलता ही दु ख है, दु ख

किसीको इष्ट नही, सर्व ससार दु खसे भयभीत है। अषाढ सुदी १२ के दिन कण्ठ ठीक हो जानेके कारण मैंने कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि—

आत्मा मोहोदयके कारण परपदार्थोंमे आत्मबुद्धि कर दु खी हो रहा है। एक प्रज्ञा ही एसी प्रवल छैनी है कि जिसके पडते ही वन्ध और आत्मा जुदे-जुदे हो जाते हैं। आत्मा और अनात्माका ज्ञान कराना प्रज्ञाके आधीन है। जव आत्मा और अनात्माका ज्ञान होगा तव ही तो मोक्ष हो सकेगा। परन्तु इस प्रज्ञारूपी छैनीका प्रयोग वडी सावधानीसे करना चाहिए। वुद्धिमे निजका अश छूट कर परमे न मिल जाय, और परका अश निज मे न रह जाय, यही सावधानीका मतलव है।

धन-धान्यादिक जुदे है, स्त्री-पुत्रादिक जुदे हैं, शरीर जुदा है, रागादिक भावकर्म जुदे हैं, द्रव्यकर्म जुदे हैं, मति-ज्ञानादिक क्षायोपशमिक ज्ञान जुदे हैं। यहाँ तक कि ज्ञानमे प्रतिविम्वित होनेवाले ज्ञेयके आकार भी जुदे हैं। इस प्रकार स्वलक्षणके वलसे भेद करते-करते अन्तमे जो शुद्ध चैतन्यभाव बाकी रह जाता है, वही निजका अश है। वही उपादेय है। उसीमे स्थिर हो जाना मोक्ष है। प्रज्ञाके द्वारा जिसका ग्रहण होता है, वही चैतन्यरूप 'मैं' हूँ। इसके सिवाय अन्य जितने भाव हैं निश्चयसे वे परद्रव्य हैं—परपदार्थ हैं। प्रज्ञाके द्वारा जाना जाता है कि आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है। वास्तवमे ज्ञाता-द्रष्टा होना ही आत्माका स्वभाव है। पर इसके साथ जो मोहकी पुट लग जाती है, वह समस्त दु खो का मूल है। अन्य कर्मके उदयसे तो आत्माका गुण रुक जाता है, पर मोह-का उदय इसे विपरीत परिणमा देता है। अभी केवलज्ञानावरणका उदय है। उसके फलस्वरूप केवलज्ञान प्रकट नही हो रहा है, परन्तु मिथ्यात्वके उदयसे आत्माका आस्तिक्य गुण अन्यथा रूप परिणम रहा है। आत्माका गुण रुक जाय, इसमें हानि नही, पर मिथ्यारूप हो जानेमे महती हानि है। एक आदमीको पश्चिमकी ओर जाना था, कुछ दूर चलने पर उसे दिशा भ्रान्ति हो गई। वह पूर्वको पश्चिम समझ कर चलता जा रहा है, उसके चलनेमे वाधा नही आई पर ज्यो-ज्यो चलता जाता है त्यो त्यो अपने लक्ष्यसे दूर होता जाता है। दूसरे आदमोको दिशा-भ्रान्ति तो नही हुई, पर पैरमे लकवा मार गया, इससे चलते नही वनता। वह अचल होकर एक स्थान पर वैठा रहता है, पर अपने लक्ष्यका बोध होनेसे वह उससे दूर तो नही हुआ, कालान्तरमे ठीक होनेसे शीघ्र ही ठिकानेपर पहुँच जावेगा।

एकको आँखमे कामला रोग हो गया, जिससे उसका देखना वन्द तो

नही हुआ, देखता है, पर सभी वस्तुएँ पीली-पीली दिखती है। उससे वर्ण का वास्तविक बोध नही हो पाता। एक आदमी परदेश गया। वहाँ उसे कामला रोग हो गया। घर पर स्त्री थी, उसका रङ्ग काला था। जब वह परदेशसे लौटा और घर आया तो उसे स्त्री पीली-पीली दिखी। उसने उसे भगा दिया। कहा कि मेरी स्त्री तो काली थी, तू यहाँ कहाँसे आई ? वह कामला रोग होनेसे अपनी ही स्त्रीको पराई समझने लगा। इसी प्रकार मोहके उदयमे यह जीव कभी-कभी अपनी चीजको पराई समझने लगता है, और कभी कभी पराईको अपनी। यही विभ्रम ससारका कारण है, इस लिए ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे पापका बाप यह मोह आत्मासे निकल जाय। हिंसादिक पाँच पाप है अवश्य, पर ये मोहके समान अहितकर नही है। पापका बाप यही मोहकर्म है। यही दुनियाको नाच नचाता है। मोह दूर हो जाय और आत्माके परिणाम निर्मल हो जाये, तो ससारसे आज छुट्टी मिल जाय। पर हो तब न। सस्कार तो अनादिकालसे इस जातिके वना रक्खे है कि जिससे उसका छूटना कठिन दिखने लगता है।

ज्ञानके भीतर जो अनेक विकल्प उठते है, उसका कारण मोह ही है। किसी व्यक्तिको आपने देखा, यदि आपके हृदयमे उसके प्रति मोह नहीं है, तो कुछ भी विकल्प उठनेका नही। आपको उसका ज्ञान भर हो जायगा। पर जिसके हृदयमे उसके प्रति मोह है, उसके हृदयमे अनेक विकल्प उठते है—यह विद्वान् है, यह अमुक कार्य करता है, इसने अभी भोजन किया है या नही ? आदि। विना मोहके कौन पूछने चला कि इसने अभी खाया है या नही ? मोहके निमित्तसे ही आत्मामे एक पदार्थको जानकर दूसरा पदार्थ जाननेकी इच्छा होती है। जिसके मोह निकल जाता है, उसे एक आत्मा ही आत्माका वोध होने लगता है। उसकी दृष्टि वाह्य ज्ञेयकी ओर जाती नही है। ऐसी दशामे आत्मा आत्माके द्वारा, आत्माके लिए, आत्मासे आत्मामे ही जानने लगता है। एक आत्मा ही षट्कारकरूप हो जाता है। सीधी वात यह है कि उसके सामनेसे कर्त्ता, कर्म, करणादिका विकल्प हट जाता है।

चेतना यद्यपि एकरूप है फिर भी वह सामान्य-विशेषके भेदसे दर्शन और ज्ञानरूप हो जाती है। जव कि सामान्य और विशेष पदार्थमात्रका स्वरूप है तव चेतना उसका त्याग कैसे कर सकती है ? यदि वह उसे भी छोड दे तव तो अपना अस्तित्व भी खो बैठे और इस रूपमे वह जडरूप

होकर आत्माका भी अन्त कर दे सकती है, इसलिये चेतनाका द्विविध परिणाम होता ही है। हाँ, चेतनाके अतिरिक्त अन्य भाव आत्माके नही है। इसका यह अर्थ नही समझने लगना कि आत्मामे सुख, वीर्य आदि गुण नही है। उसमे तो अनन्त गुण विद्यमान है और हमेशा रहेगे, परन्तु अपना और इन सबका परिचायक होनेसे मुख्यता चेतनाको ही दी जाती है। जिस प्रकार पुद्गलमे रूप, रसादि गुण अपनी-अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते है उसी प्रकार आत्मामे भी ज्ञान, दर्शन आदि अनेक गुण अपनी-अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते है। इस प्रकार चेतनातिरिक्त पदार्थोंको पररूप जानता हुआ ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो कहे कि ये मेरे है। शुद्ध आत्माको जाननेवालेके ये भाव तो कदापि नही हो सकते।

(जो चोरी आदि अपराध करता है, वह शकित होकर घूमता है। उसे हमेशा शङ्का रहती है कि कोई मुझे चोर जान कर बाँध न ले, पर जो अपराध नही करता है, वह सर्वत्र नि शक होकर घूमता है। 'मै बाँधा न जाऊं' इस प्रकारकी चिन्ता ही उसे उत्पन्न नही होती।) इसी प्रकार जो आत्मा परभावोका ग्रहणकर चोर बनता है, वह हमेशा सङ्कित ही रहेगा और ससारके बन्धनमे बँधेगा। सिद्धिका न होना अपराध है। अपराधी मनुष्य सदा शङ्कित रहता है, अत यदि निरपराधी बनना है तो आत्मा-की सिद्धि करो। आत्मामे परभावोको जुदा करो। अमृतचन्द्रस्वामी कहते है कि मोक्षार्थी पुरुषोको सदा इस सिद्धान्तकी सेवा करना चाहिए कि मै शुद्ध चैतन्यज्योतिरूप हूँ और जो ये अनेक भाव प्रतिक्षण उल्ल-सित होते है, वे सब मेरे नही है, स्पष्ट ही परद्रव्य है।

एक दिन (अषाढ सुदी १३) को श्री प० जुगलकिशोरजी मुख्त्यारने जैनधर्मके सिद्धान्तपर अच्छा प्रकाश डाला। अन्तमे आपने यह भाव प्रदर्शित किया कि हमे जैनशासनको प्रकाशमे लानेका प्रयत्न करना चाहिए। आज लोगोमे जैनधर्मके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। पर-स्परका तनाव भी लोगोका न्यून हो गया है, इसलिए यह अवसर है कि हम जैनधर्मके प्राचीनग्रन्थ जनताके सामने लावे और अच्छे रूपमे लावे, जैनधर्मके पवित्रसिद्धान्त मन्दिरकी चहारदीवालोके अन्दर सदियोसे कैद चले आ रहे है, उन्हे हमे बाहर प्रकाशमे लाना चाहिए। मुख्त्यार-साहबने यह बात इस ढगसे कही कि सबको पसद आ गई। आपका वीर-सेवामन्दिर सरसावामे है। लोगोने प्रेरणा दी कि वह स्थान आपकी संस्थाके लिए उपयुक्त नही है। यहाँ राजधानीमे उसका सचालन होना

चाहिए। जनताने स्थानकी व्यवस्था करनेका आश्वासन दिया। जैन समाजमे रुपयेके व्ययकी त्रुटि नही, परन्तु उसका उपयोग कुछ विवेकके साथ नही होता। यदि इसीका उपयोग यथार्थ हो तो मानवजातिका बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। मानवजातिकी कथा छोडो, जैनधर्म तो ससारमात्रके प्राणियोका सरक्षक है।

श्रीकर्मानन्दजी (निजानन्दजी) के प्रवचन रोचक होते है। जनतामे धर्मश्रवणकी उत्सुकता बहुत है, परन्तु एकत्रित होकर इतना कलरव करते है कि सब आनन्द किरकिरा हो जाता है। सावन वदी ७ स० २००६ को रविवार था, इसलिए जनताकी भारी भीड उपस्थित हुई। श्री क्षु० चिदानन्दजी महाराजने मनुष्योको समझानेकी बडी चेष्टा की, परन्तु उनका सब प्रयत्न जनताके कलरवमे विलीन हो गया। प० मक्खनलालजीने भी प्रयत्न किया, पर कोई प्रभाव जनतापर न पडा। इसके अनन्तर आरासे पधारी हुई चन्दाबाईने भी अपनी मधुर ध्वनिसे उपदेश दिया, परन्तु जनतामे सर्वप्रयत्न विलीन हो गये। अन्तमे हमारा प्रयत्न भी असफल ही रहा। लोग जिस भावनाको लेकर धर्मायतनोमे उपस्थित होते है उसकी पूर्तिकी वात तो भूल जाते है और वाह्य वातावरणमे इतने निमग्न हो जाते हैं कि सारकी कोई वस्तु उनके हाथ नही पडती। श्रीराजकृष्णके भाई हरिचन्द्रजीके यहाँ एक दिन आहार करनेके लिये गये। यहीपर श्रीलाला सरदारीमल्लजी भी आये। आपने महिलाश्रम वननेपर पूर्ण वल दिया। मैंने कहा कि भैया! दिल्लीमे कमी किस वातकी है? महिलाश्रम वन जाय तो महिलाओका भला ही होगा।

वस्तुत धर्मका तत्त्व सरल है, किन्तु अन्तरङ्गमे माया न होना चाहिए। क्षयोपशमज्ञानका होना कठिन वात नही, किन्तु सम्यग्ज्ञान होना अति कठिन है। इसका मूल कारण यह है जो हम अनात्मीय पदार्थोमे आत्मीय वुद्धि मान रहे है। आज तक न कोई किसीका हुआ, न है और न होगा। फिर भी वलात् माननेमे हम त्रुटि नही करते। एक दिन नये मन्दिरमे गये। यह मन्दिर धर्मपुरामे है। इसमे स्फटिक मणिकी कई मूर्तियाँ रम्य है। वाहुवली स्वामीकी मूर्ति अति सुन्दर है। दर्शन करनेसे चित्तमे शान्ति आ जाती है। यथार्थमे शान्तिका कारण तो आभ्यन्तरमे है, वाह्य तो निमित्तमात्र है। निमित्त कारण वलात् कार्य नही कराता, किन्तु यदि तुम करना चाहो तो वह सहकारी हो जाता है।

धर्मपुराके मन्दिरमे क्षु० पूर्णसागरजीका प्रवचन हुआ। अष्टमूलगुणधारण और सप्तव्यसनके त्यागपर वल था। नगरोकी अपेक्षा महान्

नगरमे विशेष प्रभावना होती है, परन्तु उस प्रभावनामे मुख्यता वाह-वाहकी रहती है। मार्मिक सिद्धान्तका विवेचन नही होता। मनुष्योका कल्याण, तत्त्वविवेकमूलक रागद्वेषनिवृत्तिमे ही होता है। केवल तत्त्व-विवेकके परामर्शसे शान्तिका लाभ नही। एक दिन सेठके कूचामे बनारस-से आगत प० कैलाशचन्द्रजीका उत्तम व्याख्यान हुआ। पश्चात् हमने भी कुछ अस्पष्ट भाषामे कहा। सावन सुदी पूर्णिमा रक्षाबन्धनके दिन श्री ब्र० निजानन्द (कर्मानन्द) की समारोहके साथ क्षुल्लक दीक्षा हुई। ७००० हजार मनुष्योका समुदाय था। समारोहमे प० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य फिरोजाबाद, प० कैलाशचन्द्रजी बनारस तथा प० राजेन्द्र-कुमारजीके भाषण हुए। श्रीनिजानन्दजी पहले आर्यसमाजी थे, परन्तु बादमे आप जैन सिद्धान्तसे प्रभावित हो जैन हो गये। कुछ समय पहले आपने ब्रह्मचर्य-प्रतिमा धारण की थी और आज क्षुल्लक-दीक्षा लेकर ग्यारहवी प्रतिमा धारण की। लोकैषणाकी चाह न हो तो आदमी अच्छा है—प्रभावक है।

एक दिन बेजवाड़ाके मन्दिर भी गया। वहाँ प्रवचन हुआ। समुदाय अच्छा था, परन्तु वास्तविक लाभ कुछ नही। यथार्थमे प्राणीमात्रका कल्याण उसीके आधीन है। जिस कालमे वह अपनी ओर दृष्टिपात करता है, उस कालमे अनायास बाह्यपदार्थोसे विरक्त होकर आत्मकल्याणके मार्गमे लग जाता है। अत सर्वविकल्पोको त्यागकर आत्महित करना, व्यर्थकी झझटोमें पडना अच्छा नही। एकदिन धीरजपहाडीके लोगोने पहाडीपर ले जानेकी चेष्टा की। फलस्वरूप हमलोग ३¾ मीलका लम्बा मार्ग तयकर सदरपार पहाडीपर पहुच गये। यहाँपर हीरालाल हाईस्कूलमे व्याख्यान हुआ। बहुत ही भीड थी, परन्तु प्रबन्ध अच्छा था। इसीप्रकार एकदिन डिप्टीगजमें भी गये। वहाँ भी प्रवचन और व्याख्यान-सभाएँ हुई, परन्तु सार कुछ नही निकला। यदि प्रवचनो और व्याख्यान-सभाओसे लाभ लेकर एक भी आदमी सुमार्गपर आता तो मै इन सब आयोजनोको सारपूर्ण समझता। लोगोका ख्याल तो ऐसा हो गया है कि ये सुनानेवाले है, कुछ देना लेना तो है नही। एक तरहका सिनेमा है, पर सिनेमामे तो पैसाका व्यय है, यह अमूल्य दृश्य है। मेरे हृदयसे तो यह ध्वनि निकल पडी कि—

जो सुख चाहो मित्र तुम, तज दो पर की आस।
सुख नाहो ससारमें, सदा तुम्हारे पास॥
गल्पवादमे दिन गया, विषय भोगमें रात।
भोदू के भोदू रहे, रात दिना बिललात॥

हरिजन मन्दिर-प्रवेश

इसी समय समाजमे हरिजन मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन जोर पकड रहा था। अस्पृश्योके उद्धारकी भावना तो भारतमे बहुत पहलेसे चली आ रही थी, पर अब स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद भारतका जो विधान बना, उसमे मनुष्यमात्रको समानाधिकार घोषित किया गया। उसीका आलम्बन लेकर बम्बई प्रान्तकी सरकारने एक कानून ऐसा बनाया कि जिसमे अस्पृश्य लोग भी मन्दिरोमे जानेसे न रोके जावे। हिन्दू भाईयोके साथ ही साथ यह कानून जैनधर्मावलम्बियो पर भी लागू होता था, अत वे भी अपने मन्दिरोमे अस्पृश्य लोगोको जानेसे नही रोक सकते थे। यदि रोकते तो दण्डके पात्र होते। इस कानूनकी प्रतिक्रिया करनेके लिए श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने अन्नके आहारका त्याग कर दिया। केवल सिघाडा, दूध तथा फल ही लेने लगे। इस समाचारसे समाजमे इस आन्दोलनने जोर पकड लिया। कुछ लोग यह कहने लगे कि हरिजनोको मन्दिर-प्रवेशकी आज्ञा मिलनेसे धर्म-विरुद्ध काम हो जायगा, क्योकि जब हरिजनोको हम अपने घरोमे नही आने देते, तब मन्दिरो मे कैसे आने देगे ? उनके आनेसे मन्दिर अशुद्ध हो जावेगे, तथा हमारे धर्मायतनोमें हमारी जो स्वतन्त्रता है उसमे बाधा आने लगेगी एव अव्यवस्था हो जायगी। हरिजन जब हमारे धर्मके माननेवाले नही तब बलात् हमारे मन्दिरोमे सरकार उन्हे क्यो प्रविष्ट कराना चाहती है ? इसके विरुद्ध कुछ लोगोका यह कहना रहा कि यदि हरिजन शुद्ध और स्वच्छ होकर धार्मिक भावनासे मन्दिर आना चाहते है, तो उन्हे बाधा नही होना चाहिये। मन्दिर कल्याणके स्थान है और कल्याणकी भावना लेकर यदि कोई आता है, तो उसे रोका क्यो जाय ? इस चर्चाको लेकर एक दिन मैंने कह दिया कि हरिजन सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य है। उनमे सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है, सम्यग्दर्शन ही नही, व्रत धारण करनेकी भी योग्यता है। यदि कदाचित् काललब्धि वश उन्हे सम्यग्दर्शन या व्रतकी प्राप्ति हो जाय तब भी क्या वे भगवान्‌के दर्शनसे वञ्चित रहे आवेगे ? समन्तभद्राचार्यने तो सम्यग्दर्शन सम्पन्न चाण्डालको भी देव सज्ञा दी है पर आजके मनुष्य धर्मकी भावना जागृत होने पर भी उसे जिन दर्शन-मन्दिर प्रवेशके अनधिकारी मानते है। मेरे इस वक्तव्यको लेकर समाचारपत्रोसे लेख-प्रतिलेख लिखे गये। अनेकोको हमारा वक्तव्य पसन्द आया। अनेकोकी समालोचनाका पात्र हुआ। पर अपने हृदयका अभिप्राय मैने प्रकटकर दिया। मेरी तो श्रद्धा है कि सज्ञी पचे-

द्रिय जीव सम्यग्दर्शनके अधिकारी है, यह आगम कहता है। सम्यग्दर्शनके होनेमे वर्ण और जातिविशेषकी आवश्यकता नही। देव ओर नारकी तो कितना ही प्रयास करे उन्हे सम्यग्दर्शनके सिवाय व्रत धारण नही हो सकता, क्योकि वैक्रियिकशरीरवालोके चतुर्थ गुणस्थान तक ही हो सकता है। मनुष्य और तिर्यञ्चोके पञ्चम गुणस्थान भी होता है। मनुष्योके महाव्रत भी होता है और यही एक पर्याय ऐसी है कि जिससे यह जीव कर्मबन्धन काट मोक्षका पात्र हो जाता है। मनुष्योका वर्णविभाग आगममे देखा जाता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमे प्रारम्भके तीन वर्णवाले उच्चगोत्री हैं और अन्तिम वर्णवाले अर्थात् शूद्र नीचगोत्री हैं। उच्च गोत्रमे ही मुनिव्रत होता है। शूद्रोमे उच्चगोत्र नही, अतएव उनके मुनिधर्म नही होता। श्रावकके ही व्रत हो सकते है। उनमें भी जो स्पृश्य शूद्र है वे क्षुल्लकव्रत धारण कर सकते हैं, अस्पृश्य शूद्र व्रती हो सकते हैं। इसमे बहुतसे महाशय उन्हे द्वितीय प्रतिमा तक मानते हैं। अस्तु, जो आगममे कहा सो ठीक है।

आजकल हरिजनोके मन्दिर-प्रवेश पर बहुत विवाद चल रहा है। बडे-बडे धर्मात्माओका व बडे-बडे पण्डितोका कहना है कि वे मन्दिर नही जा सकते, क्योकि उनमे चाण्डाल, चर्मकार, भगी आदि अनेक बहुत ही घृणित रहते है तथा आचार-विचारसे शून्य है। ये मन्दिरमे आकर दर्शन नही कर सकते, यह चरणानुयोगकी-पद्धति है। परतु करणानुयोगमे उनके भी सम्यग्दर्शन तथा व्रत हो सकता है। चाण्डालके भी इतने निर्मल परिणाम हो सकते है कि वह अनन्त ससारका कारण जो मिथ्यात्व है उसका अभाव कर सकता है। अब विचार करो कि जो आत्मा सबसे बडे पापको नाश कर दे, वह फिर भी चाण्डाल बना रहे। चाण्डालका सम्बन्ध यदि शरीरसे ही है, तब तो हमे कोई विवाद नही। रहो, परन्तु आत्मा तो जब सम्यग्दृष्टि हो जाता है, तब पुण्य जीवोकी गणनामे हो जाता है। आगममे मिथ्यादृष्टि जीवोको पापी जीव कहा है। चाहे वह किसी वर्णका हो। हाँ, चरणानुयोगकी अपेक्षा जो देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा रखता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है। बाह्यमे जिसके चरणानुयोगके अनुकूल व्रत हैं उसे व्रती कहते है। चरणानुयोगके सिद्धान्तका व्यवहारमे उपयोग नही। व्यवहारमे उपयोग न हो, परन्तु अन्तरङ्गकी निर्मलताका बाह्यमे नियमसे असर पडता है। जिस व्याघ्रीने सुकोशल स्वामीके उदरको विदारण किया उस समय उसका परिणाम अतिमलिन था—आर्त-रौद्र परिणामके वशीभूत हो वह दयाका भाव बिलकुल भूल गई। उसके उदर विदारणसे

स्वामीके किंचित् भी अन्यथा वृत्ति नही हुई। उन्होने तो क्षपकश्रेणी द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न किया। उसी समय देवलोग उनकी पूजा करने आये, तथा कीर्त्तिधर स्वामी, जो उनके पिता थे, दैवयोगसे वहाँ आ गये। उन्होने उस व्याघ्रीको समझाया कि जिस पुत्रके वियोगमे मरकर व्याघ्री हुई, उसीका उदर विदारण किया, यह सब मोहका माहात्म्य है। मुनिके वाक्य श्रवणकर व्याघ्री एकदम शिर धुनने लगी। यह देख मुनिने कहा कि व्यर्थ शोकको त्याग। ससारकी यही दशा है, यही भवितव्य था, शान्तभाव धारणकर आत्मकल्याणके मार्गमे अपनेको तन्मय कर दे। उसने मुनि-मुखारविन्दसे अनुपम उपदेश सुन एकदम सन्यासमरणकी प्रतिज्ञा कर ली और अन्तमें स्वर्ग गई। ऐसे अनेक उदाहरण आगममे मिलते है, परन्तु हम लोग इतने स्वार्थी हो गये कि विरले तो यहाँ तक कह देते हैं कि यदि इनका सुधार हो जायगा तो हमारा कार्य कौन करेगा ? लोकमे अव्यवस्था हो जायगी, अत इनको उच्च धर्मका उपदेश ही नही देना चाहिये। जगत्मे इतना स्वार्थ फैल गया है कि जिनके द्वारा हमारा सर्व व्यवहार वन रहा है उन्हीसे हम घृणा करते हैं। कबीरदास एक साधु हो गया। अध्यात्मकी ओर उसकी दृष्टि थी। यदि वह व्यवहारकी तरफ कुछ भी दृष्टि देता तो अच्छे-अच्छे उसके अनुयायी हो जाते। फिर भी उसने लाखो मनुष्योको मद्य-मास छुडवा दिया और लाखो आदमियोको सरल बना दिया। आज हम लोग धर्म जो कि प्राणी-मात्रका है उसके विकासमे वाधक वन रहे हैं। यद्यपि धर्मका विकास आत्मामे ही होता है और आत्मा ही उसका उत्पादक है तथा आत्मा ही उसका घातक है (जिस समय आत्मा परसे भिन्न अपने स्वरूपको जानता है, उसी समय परमें निजत्वकी कल्पनाको त्याग देता है और उसके त्याग से उसकी रक्षाके लिये अनुकूल पदार्थोके सचयका उद्यम स्वयमेव नही होता तथा प्रतिकूल पदार्थोके निग्रह करनेकी चेष्टा स्वयमेव शान्त हो जाती है) किन्तु व्यवहारमे जिन महात्माओने आत्मज्ञानकी पूर्णता प्राप्त की, उनके स्मरणके अर्थ जो मन्दिर आदि आयतन है, उनकी आवश्यकता जघन्य अवस्थामे आवश्यक है, अत मानवजाति मन्दिर आदि का निर्माण करती है। उस मन्दिरमे वही जा सकता है जो स्वच्छ हो, क्योकि मन्दिर एक पवित्र स्थान है और उसमे पवित्र आत्माकी स्थापना रहती है। अब यहाँ पर यह विचारना है कि पवित्रता उभयविध है— एक तो यह कि आत्मा पञ्च पापोका परित्यागी हो तथा जिसके दर्शन करने जावे, उसमे श्रद्धा हो। यह तो अन्त करणकी शुद्धता होनी चाहिये

और दूसरी बाह्यमे शरीर शुद्ध हो, स्वच्छ वस्त्रादिक हो। जिसके यह उभयविध शुद्धता हो वह मनुष्य उस मन्दिरमे प्रतिष्ठापित देवके दर्शनका अधिकारी हो। मूर्त्तिपूजाका अधिकारी वही हो जो उस मन्दिरके अधिकारियो द्वारा निर्मित नियमोका पालन करे।

यथार्थमे जो प्रतिमा है उसमे जिस देवकी स्थापना है वह तो साक्षात् है नही, केवल स्थापना है। उस देवपर किसी जातिविशेषका अधिकार नही। प्रत्येक मनुष्य, यदि उस देवमे उसकी श्रद्धा है तो उसकी आराधना कर सकता है, केवल उच्चगोत्रवाले ही उसके आराधक हो सकते है, यह नियम नही। आजकल उच्चवर्णवालोने यह नियम बना रक्खा है कि ये हमारे ही भगवान् है। उनकी जो मूर्ति हमने बना रक्खी है उसे अन्य विधर्मियोको पूजनेका अधिकार नही है। तत्त्वसे विचारकर देखो, तुमने मूर्तिमे भगवान्‌की स्थापना ही तो की है। स्थापना २ प्रकारकी होती है—एक तदाकार और दूसरी अतदाकार। तदाकार स्थापनामे पञ्चकल्याणकी आवश्यकता होती है और अतदाकार स्थापनामे विशेष आडम्बरकी आवश्यकता नही। केवल विशुद्ध परिणामोकी आवश्यकता है। मन ही मे भगवान्‌की स्थापना कर प्रत्येक प्राणी पूजन कर सकता है। उस पूजाको आप नही रोक सकते। उससे भी मनुष्य लाभ उठा सकते है। अरहन्त नामका स्मरण प्राणीमात्र कर सकता है। उसमे आपके निषेध एक काममे न आवेगे, क्योकि वर्णसमाम्नाय अनादिसिद्ध है है और वह प्रत्येक मनुष्यके उपयोगमे आ सकता है। इसी तरह जैसे आपको श्री तीर्थंकरदेवकी मूर्ति बनानेका अधिकार है वैसे यदि अन्य भी बनावे और पूजे तो आप रोकनेवाले कौन ? हाँ, लोकमे जिन वस्तुओपर जिनका अधिकार है, वे उनकी कहलाती है। अन्य उसे बिना स्वामीकी आज्ञाके उपयोगमे नही ला सकता। अथवा यह भी कोई नियम नही, क्योकि ससारमे नीति प्रसिद्ध है 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' देखिये, चक्रवर्ती जब उत्पन्न होते है तब क्या लाते है, पर वे षट्‌खण्डके राजा बन जाते है। इसी प्रकार जब उन्हे राज्यसे विरक्तता आती है तथा विरक्तताके आनेपर जब दिगम्बर पद धारण करते है तब चक्रादि शस्त्र स्वयमेव चले जाते है। उनके पुत्र सामान्य राजा रह जाते है, अत यह कोई नियम नही कि जो वस्तु आज हमारी है, वह कल भी हमारी ही रहे।

(देखो, विचारो, जो मनुष्य सज्ञी है, यदि उसे ससारसे अरुचि हो तथा धर्मसाधन करनेकी उसकी भावना जागृत हो तो उसे कोई मार्ग भी तो होना चाहिए। मन्दिर एक आलम्बन है। उससे वञ्चित रहा, आप स्वय

उससे वोलना नही चाहते, वाड्मय आगम है उसे पढनेका अधिकारी नही, अत स्वाध्याय नही कर सकता, आप सुनाना नही चाहते, तव वह तत्त्वज्ञानसे वञ्चित रहेगा, तत्त्वज्ञानके विना सयमका पात्र कैसे होगा और संयमके विना आत्माका कल्याण कैसे कर सकेगा ? इस तरह आपने भगवान्‌का जो सार्वधर्म है, उसकी अवहेलना की। धर्म प्राणीमात्रका है, उसका पूर्ण विकास मनुष्यपर्यायमे ही होता है, अत चाहे चाण्डाल हो अथवा महान् दयालु हो, धर्मश्रवणके अधिकारी दोनो ही हैं। आपको यदि धर्मका रहस्य मिला है तो पक्षपातको तिलाञ्जलि दो और उस धर्मका विकास करो, अन्यथा उसका लोप करोगे, तो तुम स्वय ऐसे कर्मचक्रमे आओगे और अनन्त कालतक भवभ्रमणके पात्र होओगे। अत ज्ञाति अभिमानका परित्यागकर प्राणी मात्रपर दया करो, जिनके आचरण मलिन हैं, उन्हे सदाचारकी शिक्षा दो। वह भी तो मनुष्य है। (हम जो वडे वनते है, अपनेको पुण्यवान् मानते है, उन्होने अपने आरामके लिये शूद्रोको सेवावृत्ति दी और आप स्वय राजा वन बैठे। सवसे जघन्य काम जिसे आप न कर सके, भगियोके सुपुर्द किया और उनको चाण्डाल शब्दसे पुकारने लगे। प्राय मनुष्य जो कार्य करता है, उसीके अनुरूप उसका परिणाम वन जाता है, यही सस्कार कहलाता है। आत्मामे ज्ञान-दर्शन गुण है। प्रत्येक आत्मामे यह वात है। यही जब विकृत अवस्थाको धारण करता है, तव अनन्त ससारका पात्र होता है और नाना यातनाएँ सहता है। प्रत्येक आत्मा ज्ञानादि गुणोका आश्रय है। अनादि कालसे इसके साथ परद्रव्यका एकक्षेत्रावगाह सम्वन्ध है। एक क्षेत्रमे ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये षट्द्रव्य स्वकीय-स्वकीय सत्ता लिये निवास कर रहे हैं। उनमे जीव और पुद्गलको छोडकर चार द्रव्य तो अपने-अपने स्वभावमे लीन है। उनमे कोई प्रकारकी विकृति नही आती। २ द्रव्य—जीव और पुद्गल इनमे विभावनामक शक्ति है, इससे उनका परस्परमे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो रहा है। जीवके रागादिक परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गलमे ज्ञानावरणादिरूप परिणाम होता है और कर्मके उदयको पाकर जीवमे रागादि परिणाम होते है। उन रागादिकके द्वारा जीव नाना प्रकारके कार्य करता है। जो पदार्थ अपने अनुकूल होते हैं, उन्हे इष्ट मान लेता है और जो प्रतिकूल होते है उन्हे अनिष्ट मानता है। यदि इष्ट पदार्थ मिले, तो उनके साधकोसे राग और अनिष्ट पदार्थ मिले, तो उनके साधकोसे द्वेष करने लगता है। इस प्रकार निरन्तर राग-द्वेपकी कल्पनासे मुक्त नही होता और मुक्त होनेका कारण

जो उपेक्षाभाव (रागद्वेषरहित परिणाम) है, उस ओर इस जीवकी दृष्टि नही। उपयोग आत्माका एक कालमे एक ही होता है।

इस प्रकार हमने तो अपना भाव प्रकट कर दिया। यद्यपि यह निश्चय है कि जो होना है वही होगा। ससारकी दशाको बदलनेकी किसीमे सामर्थ्य नही। परन्तु अभिप्रायके विरुद्ध बात कहना और करना दम्भ है, इसलिये यह लिखकर मै निर्द्वन्द्व हो गया।

पावन दशलक्षण पर्व

दशलक्षण पर्व आ गया। कटनीसे श्री प० जगन्मोहनलालजी शास्त्री आ गये। लाल मन्दिरमे विशाल मण्डपका आयोजन हुआ। प्रति दिन १ वजेसे मण्डपमे प० जगन्मोहनलालजीका प्रवचन होता था। अनन्तर कुछ हम भी कह देते थे। जैन समाजमे दशलक्षण पर्वका महत्त्व अनुपम है। भारतमे सर्वत्र जहाँ जैन रहते है, वहाँ इस समय यह पर्व समारोहके साथ मनाया जाता है। पर्वका अर्थ तो यह है कि इस समय आत्मामे समाई हुई कलुषित परिणतिको दूरकर उसे निर्मल बनाया जाय, पर लोग इस ओर ध्यान नही देते। बाह्य प्रभावनामे ही अपनी सारी शक्ति व्यय कर देते है।

प्रारम्भके दिन जब मेरा विवेचनका अवसर आया, तब मैंने कहा कि यद्यपि आज उत्तम क्षमाका दिन है, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि आज मार्दव धर्म धारण नही करना चाहिए। धर्म तो प्रत्येक दिन सभी धारण करनेके योग्य है। फिर क्षमा आदिका जो क्रम बताया है, वह केवल निरूपणकी अपेक्षासे बताया है। क्षमाधर्म क्रोधकषायपर विजय प्राप्त करनेसे होता है। क्रोधकषायके उदयमे यह आत्मा स्वात्मनिष्ठ रत्नत्रयके विकासको रोक देता है। देखो, उपशमसम्यग्दृष्टिका काल जब जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे ६ आवलि प्रमाण बाकी रह जाता है तब यदि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया या लोभमेसे किसी एकका उदय आ जावे, तो यह जीव उपरितन गुणस्थानोसे गिरकर द्वितीय सासादन गुणस्थानमे आ जाता है और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नमय पर्वतकी शिखरसे नीचे गिर जाता है। इससे जान पडता है कि कषायका उदय अच्छा नही।

द्वितीय दिन मार्दव धर्मका व्याख्यान हुआ। मृदुका भाव मार्दव होता है और मृदुका अर्थ कोमल है। इसकी व्याख्या करना पण्डितोका कार्य है, परन्तु इतना हर कोई जानता है कि मन, वचन और कायके व्यापारमे कठोरता न आना चाहिए। कठोरताका व्यवहार बहुत ही अनुचित होता है। जिसका व्यवहार मृदुताको लिये हुए होता है उसको जगत् प्रिय मानता है, वह जगत्मे प्रत्येक समय आदरका पात्र होता है। कोई भी उसके साथ असद्व्यवहार नही करता।

तृतीय दिन आर्जवधर्मका विवेचन हुआ। आर्जव धर्म सरल परिणामोसे होता है, यह कह देना कौन कठिन है ? परन्तु जीवनमे उतर जाय यह कठिन है। मायारूप पिशाचीके वशीभूत हुआ यह प्राणी नाना स्वाग वनाता है। आज तो लोगोकी वात-वातमे मायाचारका व्यवहार भरा हुआ है। मायाचारका व्यवहार रहते परिणामोमे नि शल्यता नही आती और नि शल्यताके अभावमे शान्ति कहाँसे प्राप्त हो सकती है ? अत· शान्तिके यदि इच्छुक हो तो माया रहित व्यवहार करो।

चतुर्थ दिन शौचधर्मका व्याख्यान था। शौचधर्म कही वाहरसे नही आता, किन्तु आत्माकी निर्मल परिणति हो जानेसे आत्मामे ही प्रकट होता है। आत्माकी परिणति लोभकपायके कारण कलुपित हो रही है, अत. कलुपिताका अपहरण करनेके लिये लोभका सवरण करना आवश्यक है। शौचधर्म आत्माकी स्वकीय परिणति है और लोभ उसकी विकृत परिणति है। जब कि एक गुणकी एक समयमे एक ही पर्याय होती है तव लोभके रहते हुए शौचरूप परिणति नही हो सकती।

पञ्चम दिन सत्यधर्मका व्याख्यान था। वास्तवमे सत्यधर्म तो वह है, जहाँ परका लेश नही। जहाँ परमे आत्मवुद्धि है, वहाँ धर्मका लेश नही। आत्माका स्वभाव भगवान्ने ज्ञान और दर्शन कहा है। अर्थात् उसका स्वभाव जानना और देखना वतलाया है। चेतना आत्माका लक्षण है। चेतनाका द्विविध परिणाम होता है। उनमेसे स्वपरव्यवसायात्मक परिणामको ज्ञान कहते है और केवल स्वव्यवसायात्मक परिणामको दर्शन कहते है। मोहके वशीभूत हुआ प्राणी अपने ज्ञान-दर्शनरूप स्वभावसे विमुख हो जाता है, यही असत्य धर्म है। स्वभावविमुख प्राणीके वचन ही अन्यथा निकलते है।

षष्ठ दिन सयमधर्मका दिवस था। सयमधर्म यह शिक्षा देता है कि सर्व तरफसे वृत्तिको सकोच करो। जहाँ परपदार्थोमे दृष्टि गई, उनको अपनाया वहाँ सयम गुणका घात हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि हम केवल सयमको जानते है पर उसके अनुभवसे शून्य है, अन्यथा जैसी हमारी विषयोमे प्रवृत्ति है, वैसी सयममे क्यो न होती ? वाह्यमे सयम धर लेनेपर भी अन्तरङ्ग उन्ही विषय-कपायोकी ओर आकृष्ट क्यो होता ?

सप्तम दिन तपका व्याख्यान था। अनादिसे आत्मामे जो परपदार्थोकी इच्छा उत्पन्न हो रही है वही तप धर्ममें वाधक है। आत्माका

स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, परन्तु मोहजन्य इच्छाके कारण इसके सामने जो आता है, उसे यह अपना मान लेता है। जहाँ किसी पदार्थमे अपनत्व-बुद्धि हुई वही उसकी रक्षाका भाव उत्पन्न हो जाता है। जहाँ रक्षाका भाव उत्पन्न हुआ, वहाँ उसके साधक-बाधक कारणोमे राग-द्वेष—इष्ट अनिष्टकी कल्पना अनायास हो जाती है।

अष्टम दिन त्यागधर्मका मार्मिक विवेचन था। अनादिसे यह आत्मा परवस्तुको अपना मान रहा है। यद्यपि पर अपना होता नही और न एक अश उसका हममे आता है। वस्तु जिस मर्यादामे है, उसीमे रहेगी, परन्तु हम मोहके वशीभूत हो वस्तुस्वरूपको अन्यथा मान रहे हैं। जिस तरह कामला रोगवाला श्वेत शङ्खको पीत मानता है, उसी तरह मैं अनात्म-पदार्थको स्वात्मा मान रहा हूँ। जब तक किसी पदार्थसे अपनत्व बुद्धि नही हटती, तब तक उसका त्याग होना सभव नही।

नवम दिन आकिञ्चन्य धर्मका अवसर था। आत्मासे मूर्च्छाभाव निकल जाने पर आकिञ्चन्य धर्म प्रकट होता है। मूर्च्छाका अर्थ परमे ममताभाव है। यद्यपि संसारका कोई पदार्थ किसीका नही। सब अपने अस्तित्व गुणसे परिपूर्ण हैं, तो भी यह मोही प्राणी उन्हे अपने अस्तित्वमे मिलाना चाहता है और जब वे इसके अस्तित्वमे नही मिलते, तब दु खी होता है। व्यर्थ ही परपदार्थोका भार अपने ऊपर ले, सक्लेशका अनुभव करता है। 'काजी दुर्बल क्यो ' नगरकी चिन्तासे' यह कहावत हमारी प्रवृत्तिमे आ रही है।

दशम दिन ब्रह्मचर्यका प्रकरण था। परमार्थसे ब्रह्मचर्यका अर्थ ब्रह्म अर्थात् आत्मस्वरूपमे लीन होना है। योग और कषाय ये दोनो ही आत्माको आत्मलीनतासे विमुख कर रहे हैं, अत इनका अभाव करनेसे ही ब्रह्मचर्यमे पूर्णता आती है। बाह्यमे स्त्री-त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। प्रारम्भमे स्वदारसतोष ब्रह्मचर्य कहलाता है, परन्तु सप्तम प्रतिमासे स्वदारका भी त्याग हो जाता है।

चतुर्दशीके दिन अनन्तनाथ महाप्रभुका निर्वाणोत्सव हुआ था। इसलिये वह लोकमे अनन्त चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। आजके दिन नगरमे गाजे-बाजेके साथ सर्व समूहका विशाल जुलूस निकला। तदनन्तर श्री जिनेन्द्रदेवका कलशाभिषेक हुआ। आश्विन कृष्ण प्रतिपदाके दिन क्षमावणोका आयोजन हुआ। कलशाभिषेकके बाद सबका सम्मेलन हुआ।

नम्र निवेदन

भादो सुदी पूर्णिमाके दिन, दिल्लीसे निकलनेवाले हिन्दुस्तान दैनिक पत्रमे यह लेख छपा हुआ दृष्टिगोचर हुआ कि वर्णी गणेशप्रसाद शूद्र लोगोके मन्दिर प्रवेशके पक्षमे है अस्तु, हम किसी पक्षमे नही, किन्तु यह अवश्य कहते है कि (धर्म आत्माकी परिणति विशेष है और उसका विकास सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियमे प्रारम्भ हो जाता है। देव-नारकीके तो अविरत अवस्था ही तक होती है। अर्थात् उनके सम्यग्दर्शन तक ही होती है, व्रत नही हो सकता। तिर्यगवस्थामे अणुव्रत हो सकता है। अर्थात् तिर्यञ्चके पञ्चम गुणस्थान हो सकता है और मनुष्यके चतुर्दश गुणस्थान हो सकते है, वह मोक्षका पात्र हो सकता है। मनुष्योमे विशेष शक्ति तथा ज्ञानके प्रकट होनेकी योग्यता है। मनुष्योमे गोत्रके दोनो भेद होते है। अर्थात् नीचगोत्र भी होता है और उच्चगोत्र भी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये उच्चगोत्रवाले है और शूद्र नीच गोत्रवाला है। शूद्रके दो भेद है—एक स्पृश्य शूद्र और दूसरा अस्पृश्य शूद्र। स्पृश्य शूद्र क्षुल्लक तकका पद ग्रहण कर सकते है, उच्चगोत्रवाले उन्हे भक्तिपूर्वक दान देते है, उन्हे मन्दिर जानेका प्रतिवन्ध नही। रहे अस्पृश्य शूद्र, जिन्हे हरिजन कहते है, सो इनके भी व्रत प्रतिमा हो सकती है। ये १२ व्रत पाल सकते है, धर्मकी भी अकाट्य श्रद्धा इन्हे हो सकती है, फिर इनको भी देवदर्शनसे क्यो रोका जावे ? चरणानुयोग क्या आज्ञा देता है, इसका तो हमे विशेष ज्ञान नही, परन्तु हृदय हमारा यह कहता है कि उनके साथ इतना वैमनस्य रखना अनुचित है। वह भी आखिर मनुष्य है, उन्हे भी धर्मका मर्म समझाना चाहिये। वह भी धर्म समझकर हिंसादि पापके त्यागी हो सकते है। ज्ञानके उपार्जनसे ही धर्मका श्रद्धान हो सकता है।

श्रीमान् आचार्य शान्तिसागरजी महाराज वर्तमान कालमे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति है। उनके आदेशानुसार सम्पूर्ण दि० जैन जनता चलनेको प्रस्तुत है। आपने हरिजन मन्दिर-प्रवेश विलके कारण आजीवन अन्न त्याग दिया है, इससे सम्पूर्ण समाज बहुत ही खिन्न है। होना ही चाहिये।

इसी अवसरपर मैने महाराजसे निम्नाङ्कित निवेदन किया कि महाराज। मै आपसे कुछ निवेदन करूँ, साहस नही होता किन्तु एक नम्र निवेदन है कि जब चतुर्गतिके जीवोको सम्यक्त्व होता है तब मनुष्यगतिमे जन्म पानेवाले हरिजन भी उसके पात्र है तथा मनुष्य और

तिर्यग्गतिमे जन्म लेनेवाले पञ्चम गुणस्थानवर्ती भी होते है, तब क्या हरिजन इस गुणस्थानके पात्र नही हो सकते ? यह तो करणानुयोगकी कथा रही, परन्तु व्यवहारमे चरणानुयोगके अनुसार मनुष्यपर्यायमे जिसे देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है। जब यह व्यवस्था है, तब हरिजन भी इस श्रद्धाके पात्र हो सकते है, जब देव, शास्त्र और गुरुकी श्रद्धाके पात्र है, तब देवदर्शनके अधिकारी क्यों नही हो सकते ? जब देवदर्शनके अधिकारी है, तब फिर हरिजन मन्दिर-प्रवेश बिलपर इतनी आपत्ति क्यो ? चरणानुयोगके अनुकूल मद्य, मास, मधुका त्याग होना चाहिये, तब वे भी इस त्यागके पात्र है तथा जब गुरुकी श्रद्धाके पात्र है, तब क्या वे हरिजन आपकी भी वन्दनाके पात्र नही हो सकते है ? यदि वे श्रद्धालु जहाँपर आप तत्त्वोपदेश कर रहे हैं, आकर उपदेशको श्रवण करे तथा आपकी वन्दना करे, तो क्या नही आने देगे ? अत यह सिद्ध होता है कि हरिजन भी देवदर्शनके पात्र हो सकते हैं, तब हरिजन मन्दिर प्रवेश बिलपर इतनी आपत्ति क्यो ?

धर्म तो जीवकी निज परिणति है। उसका विकास सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियमे होता है। वह चारो गतिवाला जीव हो सकता है। वहाँ पर यह नही है कि अमुक व्यक्ति ही उसका पात्र है। यह अवश्य है कि भव्य, पर्याप्तक, संज्ञी जागृदवस्थावाला जीव होना चाहिये। हरिजनोमे भी ऐसे जीव हो सकते है। हरिजनोमे उत्पत्ति होनेसे वह इसका पात्र नही, यह कोई नही कह सकता। वे निन्द्य कार्य करते है, इससे सम्यग्दर्शनके पात्र न हो, यह कोई नियामक कारण नही ? क्योंकि उच्च गोत्रवाले भी प्रात काल शौचादि क्रिया करते हैं तथा यह कहो कि उस कार्यमे हिंसा बहुत होती है, इससे वे सम्यग्दर्शनादिके पात्र नही, तब मिलवालोके जो हिसा होती है—हजारो मन चमडा और चर्बीका उपयोग होता है, तदपेक्षा तो उनकी हिंसा अल्प ही है, अत हिंसाके कारण वे दर्शनके पात्र नही, यह कहना उचित नही। यदि यह कहा जाय कि भोजनादिकी अशुद्धताके कारण वे दर्शनके पात्र नही, तो प्राय इस समय बहुत ही कम ऐसे मनुष्य मिलेंगे, जो शुद्ध भोजन करते है, अत यह निर्णय समुचित प्रतीत होता है कि जो मनुष्य धर्मकी श्रद्धा रखता हो, वह भी जिनदेवके दर्शनका पात्र हो सकता है। यह ठीक है कि उसके व्यवहारमे शुद्ध वस्त्रादि होना चाहिये तथा मद्य, मास, मधुका त्यागी होना चाहिये। व्यवहारधर्मकी यह बात है।

निश्चयधर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। उसका तो यहाँपर विवाद ही नही है, क्योकि उसके पालनके प्रत्येक संज्ञी जीव पात्र हो सकते है। धर्म

प्रत्येक प्राणीका है। उसके बिना आत्मा जीवित नही रह सकता। त्रिकालमे उसका सद्भाव है। जैसे पुद्गलमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रहते हैं, उनके बिना पुद्गलका अस्तित्व नही। इसी प्रकार आत्माका धर्म दर्शन-ज्ञान है। इनसे शून्य आत्मा नही रह सकता, हाँ, यह अवश्य है कि स्पर्शादिका परिणमन किसी रूपमे हो, किन्तु सामान्य स्पर्शादिगुणके बिना जैसे उसके विशेष नही रह सकते, इसी प्रकार दर्शन-ज्ञानका परिणमन कोई रूपमे हो, उनके बिना यह परिणमन विशेष नही रह सकता। जब यह व्यवस्था है, तब सर्व जीव दर्शन-ज्ञानके पात्र है। उनके अन्दर जो विकृति आ गई, उसका अभाव करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। जब यह बात है, तब जैसे हम सञ्ज्ञी है और आत्महित चाहते है, ऐसे ही और मनुष्य भी, चाहे किसी जातिविशेषके हो, उन्हे भी आत्महित करनेका अधिकार है। इसके सिवाय जब उनके वज्रर्षभनाराच सहनन हो सकता है और वे सप्तम नरक जानेका पापोपार्जन कर सकते है, तब उत्तम पुण्य उपार्जन कर लें, इसमे क्या क्षति है ? पशुओमे मत्स्य सप्तम नरक जाता है, उसके दृष्टान्तसे यह बाधित नही, क्योकि मनुष्यपर्याय तिर्यक्पर्याय से भिन्न है। आगममें शूद्रके क्षुल्लक पर्याय हो सकती है, ऐसा विधान है, तब क्या लोग उसे आहार नही दे सकते ? यह समझमे नही आता। यदि आहार दे सकते है, तो श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शनके अधिकारी न हो, यह बुद्धिमे नही आता। केवल हठवादको छोडकर अन्य युक्ति नही। धर्म तो आत्माकी उस निर्मल परिणतिको कहते है, जिसमे अधर्मका लेश न हो। उस परिणतिमे तो पुण्यको भी हेय माना है, क्योकि पुण्यसे केवल स्वर्गकी प्राप्ति होती है और स्वर्गमे केवल भोगोकी मुख्यता है—वे चतुर्थ गुण-स्थानसे ऊपर नही जा सकते। आजन्म उसी गुणस्थानमे रहते हैं। मनुष्य पर्याय ही सयमका मूल कारण है। सयमके उदयमे ही यह जीव परवस्तु के त्यागका पात्र हो सकता है। सम्यग्दर्शनके होते ही अभिप्राय निर्मल हो जाता है। परवस्तुसे भिन्न आत्माको उसी समय जान जाता है। केवल चरित्रमोहके उदयसे ऐसा सस्कार बैठा हुआ है जिससे परको भिन्न जानकर भी यह जीव उसे त्यागनेमे असमर्थ रहता है। अस्तु,

समाचारपत्रोमे बहुत विवाद चला। दोनो पक्षके लोगोंने अपनी-अपनी बात लिखी। किसीने किसीको बुरा लिखा और किसीने किसीको। पदार्थका स्वरूप जैसा है वैसा है। लोग अपनी-अपनी कषायमे प्रेरित हो उसे विवादकी भूमि बनाकर दु खी होते है।

दिल्लीके शेष दिन

आसौज वदी ४ स० २००६ को मेरा जयन्ति उत्सव था, जिसमे उद्योगमन्त्री भी पधारे थे। आपने समयानुकूल अच्छा भाषण दिया। अनेक लोगोने श्रद्धाञ्जलियाँ दी, जिन्हे सुनकर मुझे बहुत सकोच उत्पन्न हुआ। श्री शान्तिप्रसादजी साहु प्रसिद्ध नररत्न है। आप बहुत ही नम्र तथा शान्त है। आपने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको देकर अमर कीर्तिका अर्जन किया। अब बहुत अशोमे विद्यालयकी त्रुटि दूर हो गई। आशा है इनके दानसे समाज भी चेतेगी। महाविद्यालय समाजका महोपकार कर रहा है। श्रीयुत रतनलालजी मादेपुरियाने भी २१००) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ११) मासिक व्याज देते जावेगे और रुपये अपने यहाँ ही जमा रक्खेगे। जब विद्यालयको आवश्यकता पडेगी, वापिस दे देवेगे। परन्तु मेरी बुद्धिसे यह बात यथार्थ नही, क्योकि दानका रुपया दे देना ही श्रेयस्कर है। इसमे काल पाकर नकारा भी हो सकता है, क्योकि द्रव्य अपने ही पास तो है। काल पाकर लोग बडे-बडे वायदे भी तबदील कर देते है। मै इस दानको दान नही मानता। दानके मायने दत्त द्रव्यसे ममत्व त्याग देना है। दान देकर उससे ममता रखना दानके परिणामोका विघात है। मनुष्य आवेगमे आकर दान तो कर बैठता है और लोगोसे धन्यवाद भी ले लेता है। पश्चात् जब अन्तरङ्गसे विचार करता है, तब व्यग्र होने लगता है। वह विचारता है कि मैंने बडी गलती की, जो रुपया दे आया। रुपयेसे ससारमे मेरी प्रतिष्ठा है। इसके प्रसादसे बडे-बडे महान् पुरुप मेरे द्वारपर चक्कर लगाते है। कहाँ तक कहे, बडे-बडे विद्वान् भी इसकी प्रतिष्ठा करते हं। प्राय प्राचीन राजाओकी प्रशसामे जो काव्य बने है, वे अधिकाश इसी द्रव्यकी लालचमे पडकर बने हैं। अस्तु,

मैंने तो उत्सवमे यही कहा कि संसारके प्रणिमात्रपर दया करो। हम लोग आवेगमे आकर ससारके प्राणियोको नाना प्रकारसे निग्रह करते है। हमारे प्रतिकूल हुआ उसे अपना शत्रु और अनुकूल हुआ उसे मित्र मान लेते है। वास्तवमे न तो कोई मित्र है और न कोई शत्रु है। यही भावना निरन्तर आना चाहिये। वह भी इस उद्देश्यसे कि आत्मा बन्धनसे विनिर्मुक्त हो जावे। मनुष्यजन्मकी सार्थकता सयमके पालनेमे है। सयमका अर्थ कपायसे आत्माकी रक्षा करना है। इसके लिये यह पदार्थोसे सपर्क त्यागो। (यद्यपि परपदार्थ सदा विद्यमान रहेगे, क्योकि

लोकमे सर्वपदार्थ व्याप्त है। इस तरह उनका त्यागना किस प्रकार बनेगा, यह प्रश्न उठता है तथापि उनमे जो हमारी आत्मीय कल्पना है, उसके त्यागनेसे परपदार्थोका त्यागना बन जाता है। वे यथार्थमें दुःखदायी नही, किन्तु उनमे जो ममत्वभाव है, वही दुःखदायी है। राग-द्वेष आत्माके सबसे प्रबल शत्रु है, उन्हे नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। 'जो जो देखी वीतरागने सो सों होसी वीरा रे' इस वाक्यसे सतोष कर लेना अन्य बात है और पुरुषार्थकर राग-द्वेषका निपात करना, अन्य बात है। राग-द्वेप कोई ऐसे वज्र नही जो भेदे न जा सके। अपनी भूलसे ये होते और अपनी बुद्धिमत्तासे विलीन हो सकते हैं। कायरतासे इनकी सत्ता नही जाती। ये वैभाविकभाव है—आत्माके क्लेशकारक है। इनके सद्भावमे आत्माको बेचैनी रहती है। उसके अर्थ यह नाना प्रकारके उपाय करता है। उससे बेचैनीका ह्रास नही होता, प्रत्युत वृद्धि होती है।

स्पृश्यास्पृश्यकी चर्चा लोग करते है, पर जैनधर्म कब कहता है कि तुम अस्पृश्योको नीच समझो। तुम्ही लोग तो अस्पृश्योको जूठन खिलाते हो और यहाँ बडी-बडी बाते बनाते हो। नियम करो कि हम अस्पृश्योको अपने जैसा भोजन देंगे, फिर देखो अपने प्रति उनका हृदय कितना पवित्र और ईमानदार रहता है। मै अन्यकी बात नही कहता, पर बाईजीकी कहता हूँ। सागरकी बात है। सावन, दीपावली आदि पर्वोके दिन बाईजी जो पेडा या पुडी मुझे खिलाती थी वही अपनी मेहतरानीको खिलाती थी। जब उनसे कोई कहता कि आप इसे पीछेका बचा हुआ रद्दी पेडा क्यो नही दे देती ? तो वे उसे घुडककर उत्तर देती थी कि क्या मै इसे रोज देती हूँ ? इसे अच्छा भोजन कब मिलेगा ? एक बार सडासमे बाईजीकी सोनेकी चूडी गिर गई, पर बाईजीको पता नही। दूसरे दिन वह मेहतरानी अपने आप चूडी घर दे गई। हम सबको उसकी ईमानदारी पर आश्चर्य हुआ। मै स्वय एक बार रेशन्दीगिरिके मेलेमे तांगासे गया, साथमे और भी बहुतसे तांगे थे। बाईजीने मुझे चार पेडे रख दिये, रास्तेमे मैंने दो पेडे तांगावालेको दिये और दो मैंने खाये। कच्ची रास्तामे धूल उडने लगी, मुझे कष्ट हुआ। मैंने नाकपर कपडा लगा लिया। तांगावालेने ज्यो ही देखा, झटसे तांगा आगे ले गया। इससे साथवालेने तांगेवालोसे आगे ले जानेको कहा और साथमे इस बातकी धमकी दी कि हमने भी तो तुम्हे उतना ही किराया दिया है। तांगेवालेने कहा कि आपने किराया दिया, सो तो ठीक है, पर स्वय भूखा रह कर दो पेडे तो नही दिये ? हृदयपर हृदयका असर पडता है। आप धोबीका धुला

कपडा उठानेमे दोष समझते है, पर शरीरपर चर्बीसे सने कपडे वडे शौकसे धारण करते है। क्या यही जैनधर्म है? जैनधर्म पवित्रताका विरोधी नही, पर घृणाको वह कषाय अतएव हेय समझता है। क्या कहे, लोग बाह्य आचारमे तो वालकी खाल निकालते हैं, पर अन्तरङ्गको शुद्ध करनेकी ओर ध्यान ही नही देते। दिल्लीमे हरिजन विषयक चर्चा हमारे अन्तरङ्गकी परीक्षा रही। पर मेरे मनमे जो वात थी, वह व्यक्त कर दी। मै तो इस पक्षका हू कि प्राणीमात्रको धर्म-साधनका अधिकार है। पञ्च पाप त्यागनेका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको है, क्योकि जब उसकी आत्मा वुद्धिपूर्वक पाप करती है, तब उसे छोड भी सकती है। मन्दिरमे आना न आना इसमे वाधक नही। आजकल सर्वत्र यही चर्चा हो रही है कि हरिजनोको मन्दिर नही जाने देना चाहिये, क्योंकि वे हरिजन हैं। अपवित्र हैं, पूर्वाचार्योने उन्हे अस्पृश्य बतलाया है। अस्पृश्यका अर्थ यह है कि उनको स्पर्श कर स्नान करना पडता है। यहा प्रश्न होता है कि वे आखिर अस्पृश्य क्यो है? ये मदिरापान करते है, इससे अस्पृश्य हैं, या हम लोगोके द्वारा की हुई गन्दगीको स्वच्छ करते हैं, इसलिये अस्पृश्य है, या शरीरसे मलिन रहते हैं, इससे अस्पृश्य है, या परम्परासे हम उन्हे अस्पृश्य मानते आ रहे है इससे अस्पृश्य हैं? यदि वे मदिरापानसे अस्पृश्य है, तो लोकमे वहुतसे उच्चकुलीन भी मदिरापान आदि करते हैं, वे भी अस्पृश्य होना चाहिये। यदि गन्दगीको स्वच्छ करनेसे अस्पृश्य हैं, तो प्रत्येक मनुष्य गन्दगी साफ करता है, वह भी अस्पृश्य हो जावेगा। यदि शरीरकी मलिनता अस्पृश्यताका कारण है, तो वहुतसे उत्तम कुलवाले भी शरीरकी मलिनतासे अस्पृश्य हो जावेगे। यदि उनमे मलिनाचारकी वहुलता, उनकी अस्पृश्यतामे साधक है, तो यह बहुत उत्तम कुलोमे भी पाई जाती है। विरले विरले उत्तम कुलवाले तो इतना पापाचार करते हैं, जितना नीच कुलवाले भी नही कर सकते। इससे सिद्ध होता है कि चाहे ऊँच हो या नीच, जिसमे पापाचारमय प्रवृत्ति है, वही कल्याणके मार्गसे दूर है। यदि आज शूद्र पञ्चपापका त्याग कर देवे, तो वह भी अणुव्रती हो सकते है तथा अन्तरङ्गमे जिनेद्रदेवकी भक्तिके पात्र हो सकते हैं। ब्राह्मण मर कर नरक जा सकता है और चाण्डाल मर कर स्वर्गमे देव हो सकता है। यह तो अपनी अन्तरङ्ग परिणतिकी निर्मलताके ऊपर निर्भर है। इस निर्मलताको रोकनेका किसीको अधिकार नही। खेद इस बातका है कि जो अपनेको उच्च वर्णवाले मानते हैं, उन्होने नीच कहे जानेवाले लोगोकी पवित्रताका अपहरण किया है।

इसीका फल है कि उच्च वर्णवाले ऊपरसे उच्च वर्ण है, पर भीतरसे उनमे उच्चताके दर्शन नही होते। अस्तु, अप्रासङ्गिक चर्चा आ गई, परमार्थकी बात तो यह है कि शुद्ध चिन्तके लिये शुद्ध आत्माको जानो। शुद्ध ज्ञान वह है, जिसमे रागादिभावकी कलुपता न हो। शत्रु रागादिक ही है, अन्य कोई नही। रागादिके अनुकूल परपदार्थ होता है, तव तो उसकी रक्षाका प्रयत्न होता है और रागादिके प्रतिकूल होनेमे उसके नाशके लिये प्रयत्न करनेकी सूझती है। इस परणतिको धिक्कार ही देना चाहिये।

जयन्तीका उत्सव समाप्त हुआ, लोग अपने अपने घर गये। एक दिन साहु शान्तिप्रसादजीने भारतीय ज्ञानपीठ वनारसके लिये दस लाख रुपयेके शेयर प्रदान किये और उससे सम्वद्ध कागजोपर मैने हस्ताक्षर कर दिये। हस्ताक्षर तो कर दिये, पर जव विचार किया, तव मुझे लगा कि मैने महती भूल की। उचित यही था कि चाहे कुछ हो, परिग्रहके विषयमे कुछ भी नही करना चाहिये। अस्तु, जो हुआ, सो ठीक है, अव ऐसे कार्यो मे उपयोग नही लगाना चाहिये यह विचार स्थिर किया। यथार्थमे कल्याणका मार्ग तो निराकुलतामे है। जहाँ आकुलता है, वहाँ शान्ति नही। हमारी प्रवृत्ति आजन्म प्रवृत्तिमार्गमे लग रही है, अत निरीहमार्गकी ओर जाना अतिकठिन है। धन्य है, उन महापुरुषोको जिनकी प्रवृत्ति निर्दोष रहती है।

चित्तवृत्ति निरन्तर कलुषित रहे, यह महान् पापका उदय है। जव परिग्रहका सम्वन्ध नही, तव कलुषित होनेका कोई कारण ही नही। वास्तवमे देखा जावे, तो हमने परिग्रह त्यागा ही नही। जिसको त्यागा है, वह तो परिग्रह ही नही। वे तो पर पदार्थ है, उनको त्यागना ही भूल है, क्योकि उनका आत्मासे सम्वन्ध ही नही। आत्मा तो दर्शन-ज्ञान-चरित्रका पिण्ड है। उसमे मोहके विपाकसे कलुषता आती है, जो कि चारित्रगुणकी विपरिणति—विरुद्ध परिणति है, उसे ही त्यागना चाहिये। उसका त्याग यही है कि वह होवे, इसका विषाद मत करो तथा उसमे निजत्व कल्पना न करो।

चित्तमे न जाने कितने विकल्प आते है, जिनका कोई भी प्रयोजन नही। (प्रत्येक मनुष्यके यह भाव होते है कि लोकमे मेरी प्रतिष्ठा हो। यद्यपि इससे कोई लाभ नही, फिर भी न जाने लोकैषणा क्यो होती है? सर्वविद्वान् निरन्तर यह घोषणा करते है कि ससार असार है। इसमे एक दिन मृत्युका पात्र होना पडेगा। पर असारका कुछ अर्थ ही समझमे नही आता। मृत्यु होगी, इसमे क्या विशेषता है? इससे वीत-

राग तत्त्वको क्या सहायत्ता मिलती है, कुछ ध्यानमे नही आता। मुझे तो लगने लगा है कि बहुत बोलना, जिस प्रकार आत्मशक्तिको दुर्बल करनेका कारण है, उसी प्रकार वहुत सुनना भी आत्मशक्तिके ह्रासका कारण है। आगमाभ्यास भी उतना सुखद है, जितना आत्मा धारण कर सके। बहुत अभ्यास यदि धारणासे रिक्त है, तो जैसे उदराग्निके बिना गरिष्ठ भोजन लाभदायक नही, वैसे ही वेद अभ्यास भी लाभदायक नही, प्रत्युत हानिकारक है। यद्वा तद्वा मनुष्योसे वार्तालाप करना उचित नहीं। धर्मके अर्थ शरीर-दण्डनकी आवश्यकत्ता नही। शरीर न तो धर्मका कारण है और न अधर्मका। इससे उपेक्षा रखना ही श्रेयस्कर है। ससार आज नाना प्रकारके सकटोमे जा रहा है, इसका मूल कारण परिग्रह है। सर्वपापोका मूल कारण परिग्रह ही है। 'मूर्छा परिग्रह — 'ममेद बुद्धिलक्षणम्' यही परिग्रहका स्वरूप है। ससारका कारण परिग्रह ही है। परिग्रहका अर्थ मोह-राग-द्वेप है, यही ससार है और यही दु ख-का मूल कारण है।

आसौज सुदी ८ का दिन था। दरियागजमे शान्तिसे स्वाध्याय कर रहा था कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सुनाया कि—'आचार्य शान्तिसागरजी ने कहा है कि यदि वर्णीका मत हरिजनके विषयमे हमारे मन्तव्यानुकूल नही, तव वे इसमे मौन धारण करे। यदि कुछ वोलेंगे, तब उनके हक्कमे अच्छा न होगा अर्थात् उनको जैन दिगम्बर मतानुयायी अपने सम्प्रदाय-बलसे पृथक् कर देवेगे'।

इसका तात्पर्य यह है कि दिगम्वर जैन उन्हे आदरकी दृष्टिसे न देखेगे। (मैंने यह विचार किया कि मनुष्योकी दृष्टिसे कुछ कल्याण तो होता नही और न मनुष्योकी दृष्टिमे आदर पानेके लिए मैंने वीतराग जिनेन्द्रका धर्म स्वीकार किया है। मेरा तो विश्वास है कि जैनधर्म किसीकी पैतृक सम्पत्ति नही, तब धर्म साधनके जो अङ्ग है, वे क्यो सर्व-साधारणके लिये उपयोगमे आनेसे रोके जाते है? कल्पना करो, कोई हरिजन जैनधर्मका श्रद्धालु वन गया, तब उसे क्या ये लोग श्रावकके अनु-कूल क्रिया नही करने देगे? यदि नही करने देगे, तो निश्चय ही उन्होने उसे धर्मसे वञ्चित किया, यह समझना चाहिये। धर्म तो आत्माकी परि-णति है, उसे कोई रोक नही सकता। एक दो नही सब मिलकर भी मेरी वीतराग धर्मसे श्रद्धाको दूर नही कर सकते। लोकैषणाकी मुझे अभिलाषा नही है। मैंने विचार किया कि अच्छा हुआ कि एक आभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हुए।)

आसौज सुदीमे प्रात काल ७ वजे चलकर ८ वजे न्यू दिल्ली गये। नसियाजीमे ठहरे। स्थान रम्य है। यहाँसे एक फर्लांग दूर पर श्री मन्दिरजी हैं। वहुत ही रम्य मन्दिर है। वीचमे एक वेदिका है। उसमे श्रीजिनेन्द्रदेवका विम्ब है। इसके अतिरिक्त लगभग १०० गजपर दूसरा जिन मन्दिर है, जो खण्डेलवालोका है। वहुत ही रम्य है। चौकमे नीमका वृक्ष है। वहुत ही ठडा है। स्थान उत्तम है, परन्तु धर्म साधन करनेवाला कोई नही। यहाँ पर यदि अनुसन्धान विभाग खोला जावे तो उन्नति हो सकती है, परन्तु न तो कोई महापुरुप ऐसा है जो इस कार्यमे उत्साह दिखावे और न कोई करनेवाला है। एक दिन फिर भी यहाँ आये, प्रवचन हुआ, जनता अच्छी थी, प्राय सर्व अग्रेजी विद्यामे पटु हैं, साथ ही धार्मिक रुचि अच्छी रखते हैं। हमारे साथ खुले भावोंसे व्यवहार किया तथा यह प्रतिज्ञा ली कि सायकाल शास्त्र-प्रवचन करेगे।

एक दिन क्षुल्लक पूर्णसागरजी रुष्ट होकर चले गये। यहाँपर खलवली मच गई कि वर्णीजीसे रुष्ट होकर चले गये। वर्णीजीने कुछ कहा होगा, ऐसा अनुमान लोगोने लगाया। परन्तु, मैने तो कुछ कहा भी नही, ससार-की गति विचित्र है, जो चाहे सो आरोप करे। इतना अवश्य था कि इनके समागमसे निरन्तर क्लेश रहता था। आप आहारके वाद श्रावकोसे केन्द्रीय समितिके नामपर प्रेरणा कर दान कराते, जिसकी लम्बी-चौडी स्कीम कुछ समझमे नही आती। क्षुल्लककी वृत्ति तो नि.स्पृह है। उसे दान आदि कराकर, उसके व्यवस्थापक वनना शोभास्पद नही है। वास्तवमे इनकी प्रकृति अपनेसे मिलती नही। २ घण्टा बाद पं० चन्द्र-मौलिजी आये, तव चित्तको संतोप हुआ।

आसौज समाप्त हुआ। कार्तिक वदी १ को सागरसे सिंघई कुन्दन-लालजी आये। वहुत ही स्नेह जताया। अन्ततो गत्वा नेत्रोसे अश्रुपात आ गये। प्राचीन स्मृति करते-करते कई घण्टा विता दिये। आपका निरन्तर यही कहना था कि सागर चलिये। वहाँ आपको सर्व प्रकारसे शान्ति मिलेगी। मुझे उनकी स्नेह-दशा देख, ऐसा लगा जैसे इस व्यक्तिके साथ जन्मान्तरका स्नेह हो। मैने उनसे यही कहा कि अव सर्व उपद्रवो-का त्याग कर आत्महितमे लगो। स्नेह ही ससार बन्धनका कारण है। हमारा और आपका जीवन भर स्नेह रहा। अव अन्तिम समय है, अत स्नेह वन्धन तोड कर आत्महितकी ओर दृष्टि देना श्रेयस्कर है।

कार्तिक वदी ३,२००६ को लालमन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ।

श्री प० शीतलप्रसादजीका भाषण बहुत रोचक हुआ। कुछ हो, जो आनन्द वक्ताको आता है, वह श्रोताओको नही आता। वह अपनेमे तन्मय हो जाता है। उपदेश देनेकी आकाक्षा शान्त होनेपर वक्ताको शान्ति मिलती है। शान्तिका मूल कारण कषायका अभाव है। कषायाग्निके शान्त करनेके लिये आवश्यकता इस बातकी है कि पर पदार्थोसे सम्बन्ध छोडा जावे।

रोहतकसे श्री नानकचन्द्रजी आये। आपके साथ अन्य ४ प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे। आपका आग्रह था कि रोहतक चलिये, परन्तु मैने उत्तर दिया कि विचार पूर्वकी ओर जानेका है। गिरिराज श्री सम्मेदशिखरजी पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बलवती है। इसलिये वे निराश हो गये। हमारे मनमे बार-बार यही भाव आता था कि अब हमे व्यवहारमार्गमे नही पडना चाहिए। व्यवहारमे पडना ही आत्मकल्याणका बाधक है। जहाँ परके साथ सम्बन्ध हुआ, वही ससारका पोषक तत्त्व आ गया, इसीका नाम आस्रव है।

एक दिन प० महेन्द्रकुमारजी और प० फूलचन्द्रजी बनारसवालोका शुभागमन हुआ। कुछ चर्चा हुई। चर्चामे प० राजेन्द्र कुमारजी तथा स्वामी निजानन्दजी भी थे। कुछ निष्कर्ष न निकला। आगमका प्रमाण ही सब कहते है, किन्तु शान्तिपूर्वक वाक्यविन्यास नही होता। विवाद हरिजन समस्याका है। एक पक्ष तो यह कहता है कि हरिजन जैन मन्दिरमे प्रवेश नही कर सकता और एक कहता है कि भगवान् महावीरका यह सदेश है कि प्राणीमात्र धर्मधारणका पात्र है। मुझे इस विवादसे आनन्द नही आया। आजकलके मानवोमे सहनशक्ति नही, तत्त्वचर्चामे अनापशनाप शब्दोका प्रयोग करनेमे सकोच नही। धर्मको पैतृक सम्पत्ति मान रक्खा है तथा उसमे अन्यको प्रवेश करनेका हक्क नही, कुछ समझमे नही आता। अस्तु, लोग अपनी अपनी दृष्टिसे ही तो पदार्थको देखते है। मैने विचार किया कि यद्वा तद्वा मत बोलो, वही बोली जिससे स्वपरहित हो। यो तो पशु-पक्षी भी बोलते है पर उनके बोलनेसे क्या किसीका हित होता है। मनुष्यका बोल बहुत कठिनतासे मिलता है।

यहाँ क्षुल्लक चिदानन्दजी भी थे। इन्होने जैन शास्त्रोको सस्ते मूल्यमे प्रकाशित करानेके लिए एक सस्ती ग्रन्थमालाका आयोजन किया और उसके द्वारा कई ग्रन्थोका प्रकाशन भी हुआ। जनताने इस कार्यके लिये द्रव्य भी अच्छा दिया, पर कार्य तो व्यवस्थासे ही स्थायी हो सकता है, भावुकतासे नही। मेरे मनमे रह रहकर यही विचार घर करता गया

कि परसे ससर्ग करना ही पापका मूल है। जब अन्य द्रव्य स्वाधीन हैं तब परसे सम्बन्ध जोड़ना ही दु खका बीज है। अनादिसे आत्माने इसी रोगको अपनाया और उससे जो जो दुर्दशा इस जीवकी हुई वह किसीसे गुप्त नही—सबको अनुभूत है। परका वेदन ही दुर्दशाका मूल कारण है। जिन्हें इन दुर्दशाओंसे अपनेको बचाना है, उन्हे उचित है कि इन पर, पदार्थोंका सम्पर्क त्याग दे, एकाकी होनेका अभ्यास करें। जहाँ तक मनुष्यकी मनुष्यता पर आच नही आती वहाँ तक परपदार्थका सम्बन्ध रहे परन्तु निज न माने। मनुष्यता वह वस्तु है, जो आत्माको ससार-बन्धनसे मुक्त करा देती है। अमानुषता ही ससार-दु.खोकी जननी है। मनुष्य वह जो अपनेको ससारके कारणोसे सुरक्षित रक्खे। मनुष्य वही है, जो कुत्सित परिणामोसे स्वात्मरक्षा करे। केवल गल्पवादसे आत्माकी शुद्धि नही। शुद्धिका कारण निर्दोष दृष्टि है। हे भगवान्! (हे आत्मन्) तुम भगवान् होकर भी क्यो पतित हो रहे हो?

एक दिन नये मन्दिरमे सत्तघरेकी कन्या पाठशालाका वार्षिकोत्सव था। चारो क्षुल्लक वहाँ विराजमान थे। २०० छात्राएँ व महिलाएँ उपस्थित थी। १ कन्याने बहुत जोरदार शब्दोमे व्याख्यान दिया। सुनकर सर्व जनता प्रसन्न हुई। पूर्णसागर महाराजने २५००) जो उनके पास भारतवर्षकी स्कीमका है, उसमेसे दिया तथा उन्होने अपील की, जिससे ३०००) और भी हो गया।

अमावस्याके दिन वीर निर्वाणोत्सव था। जनसमुदाय अच्छा था, परन्तु कुछ नही निकला और न निकलनेकी सभावना है। बोलना बहुत और काम कुछ न करना, यह आजके मानवोकी वस्तु स्थिति है। गल्पवादसे कुछ कल्याण नही होता। कर्तव्यवादसे च्युत रहना जिसको इष्ट है, वही गल्पवादका रसिक है। आगामी दिन वीरसेवामन्दिरकी कमेटी हुई, जिसमे उसके स्थायित्व तथा दिल्लीमे आने विषय पर विचार हुआ।

दिल्लीके चातुर्मासका यह मेरा अन्तिम दिन था, इसलिये बहुत लोग आये। महासभाके मन्त्री परसादीलालजी आये। आप शान्त पुरुष है, किन्तु आजकलकी परिस्थिति पर पूर्ण रीतिसे विचार नही करते। कुशल है और प्राचीनताके ऊपर बहुत बल देते है। प्राचीनता उत्तम है, किन्तु उसका जो धार्मिक भाव है, उसपर गम्भीर दृष्टिसे विचारना चाहिये। धर्मपर किसी जाति-विशेषका अधिकार नही। प्रत्येक मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है। जिन्हे हम अस्पृश्य शूद्र कहते है, वे भी पञ्चपापोका

मूल जो मिथ्याभाव उसे छोड कर पञ्चपापका त्याग कर सकते है। यदि वे चाहे, तो हम लोग जैसा शुद्ध भोजन करते है, वे भी कर सकते है।

हम दिल्लीमे आनन्दसे ३ माह २४ दिन रहे, सर्व प्रकारकी सुविधा रही। यहाँपर जनतामे धर्म-श्रवणका अच्छा उत्साह रहा। समय-समय पर अनेक वक्ताओका यहाँ समागम होता रहता था। दिल्ली भारतकी राजधानी होनेसे व्याख्यान सभाओमे मनुष्य-सख्या पुष्कल रहती थी। यहाँके व्याख्याता मुख्यमे थे—श्री निजानन्दजी क्षुल्लक, श्रीपूर्णसागरजी क्षुल्लक तथा श्रीचिदानन्दजी क्षुल्लक। मै वृद्धावस्थाके कारण वहुत कम भाग ले पाता था। त्यागियोमे श्रीचादमल्लजी साहव उदयपुरका भी अच्छा प्रभाव था। पण्डितोमे श्री राजेन्द्रकुमारजी सघ-मन्त्रीका व्याख्यान अति प्रभावक होता था। दशलक्षणपर्वके ६ दिन वडी शान्तिसे बीते। ६वे दिन न जाने हरिजनकी चर्चाने कहाँसे प्रवेश किया, जो सर्व गुड मिट्टी हो गया। और मेरे मत्थे यह टीका मढा गया कि वर्णीजी हरिजन प्रवेशके पक्षपाती है। यद्यपि मै न तो पक्षपाती हूँ और न विरोधी हू किन्तु आत्माने यही साक्षी दी कि जो मनमे हो, सो वचनोसे कहो। यदि नही कह सकते, तो तुमने अवतक धर्मका मर्म ही नही समझा। अनन्तानन्त आत्मायें है, परन्तु लक्षण सवके नाना नही, एक ही है। भगवान् उमास्वामीने जीवका लक्षण उपयोग माना है। भेद अवस्थाप्रयुक्त है, अवस्था परिवर्तनशील है। एक दिन हम वालक थे, अवस्था परिवर्तन होते-होते आज वृद्ध अवस्थाको प्राप्त हो गये यह तो शारीरिक परिवर्तन हुआ, किन्तु आत्मामे भी परिवर्तन हुआ। एक दिन ऐसा था जव दिनमे १० वार पानी और ५ वार भोजन करते भी सकोच न करते थे, पर आज एक वार जल और भोजन ग्रहण करके सन्तोष करते है। कहनेका तात्पर्य है कि सामग्रीके अनुकूल प्रतिकूल मिलनेपर पदार्थोमे परिणमन होते रहते है। आज जिनको हम अपवित्र और नीच सम्वोधनसे पुकारते है, वे ही मनुष्य यदि उत्तम समागम पा जावें, तो उत्तम विचारके हो सकते है, अन्यथा जो दशा उनकी हो रही है, वह किसीसे गुप्त नही। आगममे गृध्र पक्षीको व्रती लिखा है। वह मृत्यु पाकर स्वर्गका कल्पवासी देव हुआ। देव ही नही, श्रीरामचन्द्रको मृत भ्रातृका मोह दूर करनेमे निमित्त भी हुआ।

कार्तिक सुदी २ को दिनके २ बजे दिल्लीसे सहादराके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमे अत्यन्त भीड थी, लोगोको विशेप अनुराग ।

दिल्लीसे हस्तिनागपुर

प्रात कालिक क्रियाओसे निवृत्त हो, मन्दिरमे शास्त्रप्रवचनके अर्थ गये। वहाँपर दिल्लीसे ५० नर-नारी आ गये। वही रागका आलाप, कोई अन्य वात नही थी। वहुत मनुष्योका कहना था कि आप दिल्ली लौट चलें, जो कहो सो कर देवें। पर हमको तो कुछ करवाना नही, भूल-भुलैयामे फँसकर क्या करता? यहाँसे चलकर गाजियावाद आये। भोजनके वाद १ वजेसे ३ वजे तक सभा हुई। यहाँपर एक वर्णी शिक्षा-मन्दिरकी स्थापना हुई। यहाँ से २½ मील चल वेगमावाद स्टेशनसे १ फर्लाङ्ग सडकपर ठहर गये। यहाँपर एक शरणार्थी पजावी मनुष्य वडा भला आदमी था। भोजनादिके लिये आग्रह किया। अभी अन्य मताव-लम्बियोमे साधु पुरुपका महान् आदर है। जैनधर्म प्राणीमात्रका कल्याण करनेवाला है। जैन कहनेको तो कहते हैं कि हम जिन भगवान्के उपासक हैं, परन्तु उनके मार्गका आदर नही करते। यहाँसे ५ मील चल कर मुरादनगरकी धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशाला उत्तम थी, रात्रिको हम लोग तत्त्व-विचार करते रहे। वास्तवमे अन्तरङ्गकी वासनाकी ओर ध्यान देना चाहिये। यदि अन्तरङ्ग वासना शुद्ध है, तो सव कुछ है। अनादि कालसे हमारी वासना परपदार्थोमे ही निजत्वकी कल्पना कर असख्य प्रकारके परिणामोको करती है। वे परिणाम कोई तो रागात्मक होते हैं और कोई द्वेषरूप परिणम जाते है। जो रुच गये, उनमे राग और जो प्रतिकूल हुए, उनमे द्वेष करने लगते है।

मुरादनगरसे ४ मील चलकर मोदीनगर आये। यहाँ पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चलकर एक स्टेशनपर स्कूलमे ठहर गये। वहाँ स्कूलके हेडमास्टर अत्यन्त भद्र थे। वहुतसे छात्र यहाँपर थे, उनमे दो छात्र शरणार्थी थे। उनके चेहरे पर कुछ औदासीन्य था। पूछने पर कारण मालूम हुआ कि जव वे पजावसे आये, तव उनके कुटुम्वके मनुष्य वही पाकिस्तानी मुसलमानोके द्वारा कत्ल कर दिये गये। हमने एक-एक कुरताकी खादी उन्हे श्री हुकमचन्द्रजी सलावा द्वारा दिला दी तथा हुकमचन्द्रजीने ५) मासिक राजकृष्णजी द्वारा दिलाया। वे बहुत प्रसन्न हुए। यहाँसे चलकर मेरठसे २ मील पर १ सरोवर था, वही भोजन किया। तदनन्तर २ मील चलकर मेरठ पहुँच गये। यहाँ बोर्डिगमे

निवास हुआ। अनेक नर-नारी स्वागतके लिये आये। (मनुष्य धर्मका आदर करता है और धर्मका आदर होना ही चाहिये, क्योंकि वह निज वस्तु है, तथा परकी निरपेक्षता ही से होता है। हम अनादिसे जो भ्रमण कर रहे है उसका मूल कारण यह है कि हमने आत्मीय परिणतिको नही माना। बाह्य पदार्थोंके मोहमे आकर राग-द्वेषसन्ततिको उपार्जन करते रहे और उसका जो फल हुआ वह प्राय सबके अनुभवगम्य है।)

आज कार्तिक सुदी ८ स० २००६ का दिन था। प्रात काल मेरठके मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ। श्री हुकमचन्द्रजी सलावाने भोजन कराया। दिनभर मनुष्योका समागम रहा, केवल गल्पवादमे दिन गया। दिल्लीसे लाला जैनेन्द्रकिशोरजीका शुभागमन हुआ। आप बहुत ही सज्जन हैं, श्री प्रेमप्रसादजीसे बातचीत हुई, बहुत ही सज्जन हैं। श्री लाला फिरोजीलालजी दिल्लीसे आये। बहुत उदार और योग्य हैं। आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। यहाँसे प्रात कालकी क्रियाओसे निवृत्त हो मिल मन्दिरमे स्वाध्याय किया। यहाँसे ३ मील चल कर, तोपखाना आ गये, यही पर भोजन किया, यहाँ पर मन्दिर बहुत ही सुन्दर है, पत्थरका दरवाजा बहुत मनोहर है, अन्दर भी उत्तम पत्थर लगा है। २ घण्टा यहाँ पर बिताये। बहुतसे मनुष्य मिलने आये। २० आदमी और महिलाये गुजरात प्रान्तके आये। धार्मिक मनुष्य थे, शिखरजीकी यात्राको जा रहे थे, लोग सरल प्रकृतिके थे, यू० पी० के मनुष्य चञ्चल होते हैं। तोपखानासे ३ मील चलकर एक चक्कीपर ठहर गये। सानन्द रात्रि बीती। प्रात-काल प्रवचन हुआ, भोजनके बाद यहाँसे चलकर ४ मीलपर १ धर्मशाला मे ठहर गये। यहाँसे ३ मील चलकर, छोटे मुहाना आ गये। स्कूलमे ठहरे, प्रात काल प्रवचन हुआ, बहुत कुछ तत्त्व चर्चा हुई। कार्तिक सुदी ११को प्रात ५ बजे मवाना आ गये, मन्दिरमे प्रवचन हुआ, प्रकरण राम और रावणके युद्धका था। अन्यायका जो फल होता है, वही हुआ। रावण मृत्युको प्राप्त हुआ, श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी विजय हुई। रावण रावण था, पर आज रावणके दादा पैदा हो गये है। रावण तो सीताके सपर्कसे दूर रहा, केवल अपनी दुर्भावनाके ही कारण कुगतिका पात्र हुआ, पर आज तो ऐसे-ऐसे मानव विद्यमान है, जिन्होने परस्त्रीके चक्रमे पडकर अपना सर्वस्व खो दिया है। यहाँसे १ बजे चलकर ४ मीलपर एक बागमे ठहर गये। बाग १ मीलका था, परन्तु ऊजड था, कोई प्रबन्ध नही। दूसरे दिन प्रात काल श्रीहस्तिनापुर आ गया। स्थान शान्तिका रत्नाकर है, परन्तु मेलाकी भीड-भाडके कारण उस समय शान्ति दृष्टिगोचर नही हो रही थी।

कार्तिक सुदी १४ स० २००६ को उत्तर प्रान्तीय गुरुकुलका उत्सव हुआ, किन्तु जब अपील हुई, तव विशेष सफलता नही हुई। केवल सात हजार रुपया हुआ। इसका मूल कारण, इस प्रान्तमे जितने जैन लोग है, सबकी प्रवृत्ति अंग्रेजी पढानेकी है। आचरण भी प्राय धर्मके अनुकूल नही। भोजनादिमे शिथिलता रहती है, वेषभूषा अपनी योग्यता और कुलमर्यादाके प्रतिकूल है। पूर्णिमाको प्रात काल मण्डपमे प्रवचन हुआ। ९ वजे के बाद कमेटीके मेम्वरोमे कुछ वैमनस्य था, वह दूर हो गया। उसके बाद मन्दिर गये, शुद्धि करनेके वाद भोजनके लिए निकले। भोजनगृहमे निर्विघ्न प्रवेश किया, पर ज्यो ही भोजन प्रारम्भ किया, त्यो ही दूधका ग्रास लेनेके वाद उसमे तिरूला निकल आया। अन्तराय आ गया। लोगोको विकल्तता हुई। आज अपराह्नकालमे श्रीजीका रथ निकला। वीस हजारके करीव भीड थी, वडी भक्तिसे रथ निकाला गया, मनुष्योमे वहुत उमग थी। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुआ, मनुष्योका समुदाय अच्छा था। गुरुकुलको कुछ चन्दा भी हो गया। लोगोमे उत्साहकी त्रुटि नही, किन्तु योग्य नेताकी कमी है। श्रीमास्टर उग्रसेनजी इसके कार्य करनेमे अग्रसर हुए और सभव है इनके प्रयाससे गुरुकुलकी पूर्ति हो जावे।

गुरुकुलका नवीन भवन वनकर तैयार था, अत मगसिर वदी २ को ९ वजे उसका उद्घाटन हुआ। मास्टर उग्रसेनजीने अति मार्मिक व्याख्यान दिया। लोगोके हृदयमे अति उत्साह हुआ, हमारे चित्तमे भी सस्थाके उत्कर्षके अर्थ वहुत उद्वेग हुआ, परन्तु हम पराधीन थे, क्योकि हमने यह निश्चित विचार कर लिया था कि एक वार श्रीपार्श्वप्रभुके निर्वाण क्षेत्रके दर्शन अवश्य करना, किसीके चक्रमे न आना। चाहे २ मील ही क्यो न चला जावे। कल्याणका मार्ग निरीह वृत्ति है। आराधना करो, परन्तु फलकी इच्छा न करो। धीरे-धीरे जब समुदाय अपने-अपने घर चला गया, अत वातावरण शान्त हो गया। मगसिर वदी ३ को प्रात काल सानन्द स्वाध्याय हुआ। भोजन करनेके उपरान्त १ घण्टा आराम कर सामायिक किया, तदनन्तर २½ बजे चलकर ३ मीलके वाद गणेशपुरमे आ गये।

इटावा की ओर

सामायिक आदि करके परस्पर कुछ चर्चा हुई। तदनन्तर सो गये।

१२½ वजे निद्रा भङ्ग हो गई, ½ घण्टा कुछ विचार किया, पश्चात् कठिनतासे निद्रा आयी। उस समय यह विचार मनमे आया कि जिनके पास वस्त्र नही, ऐसे गरीब लोग कैसे रात्रि व्यतीत करते होगे? तब यही मनमें आया कि उनकी आशा वश हो जाती है। आशा ही तो समस्त दुःखो का कारण है, जिसने आशापर विजय पा ली, उसने जगत्को जीत लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल गणेशपुरसे चलकर ८½ वजे मवाना आ गये। मन्दिरमें स्वाध्यायके वाद भोजन किया। २ वजेसे सस्कृत कालेजमे प्रिंसिपल साहबके आग्रहसे गये। बहुत ही योग्य पुरुष है। ½ घटा आपका व्याख्यान हुआ। आध्यात्मिक शिक्षाके विना लौकिक शिक्षा कुछ अर्थकरी नही। ¼ घटा मैने भी इसी विषयपर कुछ कहा। पश्चात् यहाँसे चलकर ५ बजे मुहाना आ गये और स्कूलमे ठहर गये। दूसरे दिन छोटे मुहानेसे ३ मील चलकर एक गाँवमे ठहर गए। दिल्लीवाले छुट्टनलाल मैदावालोके यहाँ भोजन किया। बहुत ही योग्य व्यक्ति है। यहाँसे ५ मील चल कर चक्की पर ठहर गये और वहाँ रात्रिभर रहे। रात्रि सानन्द बीती। मनमे भाव आया कि 'अन्तरङ्गकी निर्मलताके विना बाह्य निर्मलता बकवेषके समान है। तोता, राम राम रटता है, परन्तु उसका तात्पर्य नही समझता, अतः जो कुछ रटो उसको समझो। समझोके मायने तदनुसार प्रवृत्ति करो।' यहाँसे ३ मील चलकर तोपखाना आ गये। यही पर भोजन किया। मध्याह्नोपरात शास्त्र प्रवचन किया। लोग शातिपूर्वक सुनते रहे।

सर्व मनुष्य सुख चाहते है, परन्तु सुख प्राप्ति दुर्लभ है। इसका मूल कारण उपादान शक्तिका विकास नही। वक्ताओको यह अभिमान है कि हम श्रोताओको समझा कर सुमार्ग पर ला सकते है और श्रोताओकी यह धारणा है कि हमारा कल्याण वक्ताके आधीन है, पर बात ऐसी नही है।

तोपखानामे १५ घर जैनियोके है, प्रायः अग्रेजी विद्याके पडित है, स्वाध्यायमे रुचि नही। परन्तु यह सभी चाहते है कि येन केन उपायसे ससार-बन्धनसे छूटे। इसके अर्थ महान् प्रयास भी करते है। मर्यादासे अधिक त्यागियो और पण्डितो की शुश्रुषा करते है, यही समझते है कि त्यागी और पण्डितोके पास धर्मकी दुकान है, उनका जितना आदर सत्कार करेगे, उतना ही हमको धर्मका लाभ होगा। किन्तु होगा क्या, सो कौन कहे? कहावत तो यह याद आती है कि 'फुट्टी देवी ऊँट पुजारी।'

दूसरे दिन मिलमे प्रवचन किया, पश्चात् वहाँसे चलकर बोर्डिगमे आये, सामायिक की। १२½ वजे श्रीपद्मपुराणका स्वाध्याय किया, प्रकरण

था श्री रामचन्द्रजीकी विजय हुई। यथार्थमे बात यही है—न्यायमार्गमे जिनकी प्रवृत्ति होती है, उनकी अन्तमे विजय होती है। अन्यायमार्गमे जो प्रवृत्त होते है, वे ही न्यायमार्गमे चलनेवालोसे पराभव प्राप्त करते हैं। अत मनुष्योको चाहिए कि न्यायमार्गसे चले। ससार दु खमय है, इसका कारण आत्मा परपदार्थको निज मानकर नाना विकल्प करता है। अगले दिन नगरमे प्रवचन हुआ, वहीपर आहार हुआ, पश्चात् वोर्डिगमे आ गये। यहाँ पर निरन्तर भीड रहती है, स्वाध्याय भी नही हो पाता, केवल गल्पवादमे समय जाता है। वस्तुत मेरे हृदयकी दुर्बलता ही भीड एकट्ठी करती है। हृदयकी दुर्बलता कार्यकी बाधक है। मोहके कारण यह दुर्बलता है, इसका जीतना महान् कठिन है।

मगसिर वदी १० स० २००६ को यहाँसे १ वजे चलकर ४ मीलकी दूरीपर एक वागमे ठहर गये। यह बाग पहले वहुत ही सुन्दर रहा होगा पर अव तो नष्ट-भ्रष्ट हो गया है, जिस मकानमे ठहरे वह वहुत ही अस्वच्छ था—मकडी और मच्छरोका घर था। येन केन प्रकारेण यहाँ रात्रिभर सोये। प्रात काल ४ मील चल कर फफूँदा आ गये। फफूँदा कसवा अच्छा है, यहाँपर गूजर लोगो की बस्ती है, सब सम्पन्न है, इन्होने बहुत सत्कार किया, हमने समाधिशतकका प्रवचन किया, परन्तु जो सुख होना चाहिये, वह नही हुआ। इसका मूल कारण आत्मोक रस नही। यहाँसे २ वजे चल कर खरखोदाके स्कूलमे ठहर गये। स्थान अच्छा था, रात्रि को स्वाध्याय अच्छा हुआ। स्वाध्यायसे आत्मकल्याण होता है, कल्याणका अर्थ है, पर पदार्थोसे ममता त्याग। ममताका कारण अहम्बुद्धि। यहाँसे ४ मील चल कर कौनी ग्राममे एक राजपूतके बगलेमे ठहर गये। बगला उत्तम था, एक घण्टा स्वाध्याय किया, सुनने वाले व्यग्र थे। व्यग्रताका कारण चञ्चलता है और इस ओर रुचि भी नही। स्वाध्यायके प्रति रुचि नही, रुचि न होनेमे मूल कारण कभी इस ओर लक्ष्य नही। निरन्तर गृहस्थोको अपने वालकादिके पोषणके अर्थ परिग्रह सञ्चय करनेमे समयका उपयोग करना पडता है, इस मार्गमे चलनेका उन्हे अवकाश ही नही मिलता। प्रात काल ४½ वजे से ५½ तक मोक्षमार्गप्रकाशका स्वाध्याय किया, उसमे प्रकरण था कि मोहके उदयसे यह जीव, पदार्थकी अन्य रूप श्रद्धा करता है, इसीसे दु खी होता है। जैसे कोई मनुष्य रज्जुमे सर्पभ्रान्तिसे भयभीत होता है। यह भ्रम दूर हो जावे, तो भय नही होवे। इसी प्रकार परपदार्थोमे निजत्व वुद्धि त्याग देवे, तो सुखी हो जावे। ९ वजे मन्दिर गये वहाँ पद्मपुराणका स्वाध्याय किया, उसमे चर्चा थी

वालीकी दीक्षाका कारण रावण हुआ। यथार्थमे कारण तो उनकी आन्तरिक विरक्तता थी। रावण उसमे निमित्त हुआ। वाली मोक्षको प्राप्त हुए। आज एक मास्टरके घर भोजन हुआ। श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी दिल्लीवाले आये। शामको श्री पतासीबाईजी भी आ गई। रात्रिको चर्चा हुई, श्री जैनेद्र किशोरका स्नेह बहुत है, उनका भाई भी मुरादाबादसे आया ८००) मासिक पाता है, उसकी धर्मपत्नी भी साथ थी। सबका अन्तरङ्ग यह था कि आप दिल्ली रह जाओ, कुटिया हम बनवा देगे। आप निर्द्वन्द्व धर्म साधन करिये। यहाँसे चलकर हापुड निवास हुआ, तदनन्तर वहाँ से ४ मील चल कर हाफिजनगर आ गये। यहाँ तक दो आदमी हापुडसे आये, लोगोमे धर्म प्रेम अच्छा है, रामचन्द्र बाबू यहाँ पर बहुत योग्य है, आपकी प्रवृत्ति भी अच्छी है। पण्डित परमानन्दजी दिल्लीसे यहाँ आये, १ वजे कुछ चर्चा हुई, चर्चाका सार यही था कि प्राचीन साहित्यका प्रचार होना चाहिए। बिना प्राचीन साहित्यके जैन सस्कृतिकी रक्षा होना कठिन है। मेरा ध्यान यह है कि प्राचीन साहित्यके प्रचारके साथ-साथ उसके ज्ञाता भी तैयार होते रहना चाहिये, अन्यथा अकेला प्राचीन साहित्य क्या कर लेगा? आज लोगोकी दृष्टि इंग्लिश विद्याके अध्ययनकी ओर ही बलवती होती जा रही है, क्योकि वह अर्थकरी है तथा सस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओके अध्ययनसे विमुख हो रही है, क्योकि उससे ऐहिक अर्थकी प्राप्ति नही होती। यह समाजके हितके लिये अच्छी बात नही दिखती।

यहाँसे ५ मील चलकर गुलावटी आये, ग्रामके बाहर स्थानमे ठहर गये, स्थान मनोज्ञ था, पानी यहाँका अच्छा था, प्रात काल स्वाध्याय अच्छा हुआ, पश्चात् गर्मीमे कुछ नही हुआ। यह विचार अमलमे लानेकी महती आवश्यकता है—जिनके विचारमे मलिनता है, उनका सर्व व्यापार लाभप्रद नही। सर्व चेष्टा संसार बन्धनसे मुक्त होनेके लिये है, परन्तु वर्तमानमे मनुष्योंके व्यापार ससारमे फँसनेके लिये हैं। व्यापारका प्रयोजन पञ्चेन्द्रियोके विषयसे है। यहाँसे ३ मील चल कर, एक शिवालयमें ठहर गये, स्थान अत्यन्त मनोज्ञ है। कूपका जल मिष्ट है, आज भोजन करनेकी इच्छा नही थी, फिर भी गये, परन्तु अन्तराय हो गया। उदर निर्मल रहा। इच्छाको स्वाधीन रखना ही कल्याणमार्ग है। यहाँका जो मैनेजर है, वह जाट है, प्रकृत्या भद्र और उदार मनुष्य है। यहाँ पर बाहरसे आनेवालोको पानी भी पीनेके लिये मिलता है, बन्दरोका निवास भी यहाँ पुष्कल है। कोई-कोई दयालु उन्हे भी भोजन दे देते हैं। यहाँसे

५ मील चल कर बुलन्दशहर आ गये। एक वैश्यके मकानमे ठहर गये। इसने सट्टामे सर्व धन खो दिया। हमको बहुत आदरसे ठहराया, पुष्प-माला चढाई तथा १५ मिनट तक पैरो पर लोटा रहा। उसकी यह श्रद्धा थी कि इनके आशीर्वादसे हमारा कल्याण हो जावेगा। लोगोकी धर्ममे श्रद्धा है, परन्तु धर्मका स्वरूप समझनेकी चेष्टा नही करते, केवल पराधीन होकर कल्याण चाहते हैं। कल्याणका अस्तित्व आत्मामे निहित है, किन्तु जब हमारी दृष्टि उस ओर जावे, तब तो काम बने। दो दिन बुलन्द-शहरमे रहे, सानन्द समय बीता। समयके प्रभावसे मनुष्योमे धर्मकी रुचि-का कुछ ह्रास हो रहा है, पर स्त्रीगण धर्मकी इच्छा रखता है, फिर भी मनुष्योमे इतनी शक्ति और दया नही जो उनको सुमार्गपर लानेकी चेष्टा करे। यथार्थ बात तो यह है कि स्वय सन्मार्गपर नही, परको क्या सन्मार्ग पर चलावेगे ? जो स्वय अपनेको कर्मकलकसे रक्षित नही कर सकते, वह परकी रक्षा क्या करेंगे ?

यहाँसे चलकर मामन आये, एक राजपूतके घर ठहरे। रात्रिको यह विचार उठे कि किसीसे कटुक वचन मत बोलो, सर्वदा सुन्दर हितकारी परिमित वचन बोलनेका प्रयास करो, अन्यथा मौनसे रहो। समागम त्यागो, भोजनके समय अन्यको मत ले जाओ। भोजनमे लिप्साका त्याग करो। पराधीन भोजनमे सन्तोष रखना ही सुखका कारण है। यदि भिक्षा-भोजन अङ्गीकृत किया है, तो उसमे मनोवाछितकी इच्छा हास्य-करी है। 'भैक्ष्यममृतम्' ऐसा आचार्योका मत है। जो मानव गृहस्थीमे रत हैं, उनकी ही लिप्सा शान्त नही होती तब अन्यकी कथा ही क्या है ? यहाँ दिल्लीसे जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये। राजकृष्णजो, उनके भाई, प० राजेन्द्रकुमारजी, लाला मक्खनलालजी, प० परमानन्दजी, श्रीमान् प० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार, लाला उलफतरायजी तथा श्रीसरदारी-मल्लजीका बालक वा उनकी लडकी सूरजबाई आदि अनेक लोग आये। प० खुशालचन्द्रजी एम ए साहित्याचार्य भी पधारे, सबका आग्रह यही था कि दिल्ली चलो, पर मै तो गिरिराज जानेका निश्चय कर चुका था, अत दिल्ली जानेके लिये तैयार नही हुआ। सब लोग निराश होकर लौट गये।

यहाँसे चल कर ४ मील बाद मरिपुर आ गये। यहाँपर कोरीका एक बालक ठण्डमे नगा था, उसे मैने मेरे पास जो ३ गज कपडा था, वह दे दिया, यह देख लाला खचेड़ूमल तथा मगलसेनजी ने भी उसे कपडा दिया। गरीबका काम बन गया, यह देख मुझे हर्ष हुआ। दया बड़ी वस्तु है,

दयासे ही संसारकी स्थिति योग्य रहती है। जहाँ निर्दयता है, वहाँ परस्परमे बहुत कलह रहती है। इस समय ससारमे जो कलह हो रही है, वह इसी दयाके अभावमे हो रही है। वर्तमानमे मनुष्य इतने स्वार्थी हो गये है कि एक दूसरेकी दया नही करते।' यहाँसे ४ मील चल कर नगलोकी धर्मशालामे ठहर गये और वहाँसे प्रात ५ मील चल कर १ धर्मशालामे विश्राम किया। यही भोजन हुआ। यहाँपर सेठ शान्तिप्रसादजीकी लडकी मिलने आई, साथमे उसकी फूफी व भावज भी थी। मुझे लगा कि 'सर्व मनुष्य धर्मके पिपासु है, परन्तु धर्मका मर्म बतानेवाले विरलताको प्राप्त हो गये। अपने अन्तरङ्गमें यद्वा तद्वा जो समझ रक्खा है, वही लोगोको सुना देते है। अभिप्राय स्वात्मप्रशसाका है। लोग यह समझते है कि हमारे सदृश अन्य नही। धर्मके ठेकेदार बनते हैं पर धर्म तो मोहक्षोभसे रहित आत्माकी परिणतिका नाम है। उसपर दृष्टि नही।

दूसरे दिन प्रात ३ मील चल कर गवाना आ गये। यही पर भोजन किया। पश्चात् ५ मील चलकर भरतरीकी धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशालामे ही शिवालय है, यहाँसे अलीगढ ८ मील है। श्री प० चाँदमल्लजी यहाँसे चले गये सेठ भौरीलालजी सरियावाले खुरजासे साथ थे। यहाँ गयासे १ मनुष्य रामेश्वर जैनी तथा १ बर्तन मलनेवाला भी आ गया। इस धर्मशालामे १ साधु था, वह भला आदमी था। यहाँसे ५ मील चलकर अलीगढसे ३ मील इसी ओर आगरावालो के मिलके सामने १ छोटीसी धर्मशाला थी, उसमे ठहर गये। १० बजे भोजनको गये, परन्तु २ ग्रासके बाद ही अन्तराय हो गया। अन्तरायका होना, लाभदायक है, जो दोष हैं, वे अपगत हो जाते है, क्षुधा परिषहके सहनेका अवसर आता है, अवमौदर्य तपका अवसर स्वयमेव हो जाता है। आत्मीय परिणामोंका परिचय सहज हो जाता है।'

यहाँसे ३ मील चलकर अलीगढ आ गये। यहाँ श्री सेठ वैजनाथजी सरावगी कलकत्तावाले मिल गये। आपका अभिप्राय निरन्तर जैन जातिके उत्कर्षमे मग्न रहता है, तथा यथाशक्ति दान भी करते रहते हैं। आजकल आपका उद्योग बनारसमे ऐसा छात्रावास बनानेका है, जिसमे २०० छात्र अध्ययन करे। तथा एक महान् मन्दिर भी बने, इस कार्यके लिए सर सेठ हुकुमचन्द्रजी इन्दौरवालोंने अस्सी हजारका विपुल दान दिया है। यहाँसे खिरनीसहाय गया। यहाँ दोपहर बाद श्री क्षुल्लक चिदानन्दजीका प्रवचन हुआ। मै १ बागमे चला गया, वही ४ बजे तक स्वाध्याय किया, पश्चात् यही आ गया। एक दिन यहाँ ग्रामके बाहर

सडक पर मन्दिर है, उसमे गये। श्री बाबा चिदानन्दजीने अष्टमूलगुणपर व्याख्यान दिया, पश्चात् मैंने भी ½ घटा कुछ कहा। परमार्थसे क्या कहा जावे ? क्योकि जो वस्तु अनिर्वचनीय है, उसे वचनोसे व्यक्त करना, एक तरहकी अनुचित प्रणाली है, परन्तु विना वचनके उसके प्रकाश करनेका मार्ग नही। यह सर्वसाधारणको विदित है कि ज्ञान ज्ञेयमे नही आता, फिर भी उसे प्रकाशित करनेकी चेष्टा मनुष्य करते ही है।

पौष वदी १ स० २००६ को यहाँसे एटाके लिए प्रस्थान किया। ६ मील चलकर चक्की पर ठहर गये। सामायिक करनेके वाद चक्कीका स्वामी आ गया और अपनी व्यथा सुनाने लगा—सुनकर यही निश्चिय हुआ कि ससारमे सर्व दु खके पात्र है। साराश यह है कि जो ससारमे सुख चाहते है, वे पर पदार्थोसे मूर्च्छा त्यागे। मूर्च्छा त्याग विना कल्याण नही। दूसरे दिन प्रात काल ७ वजे चलकर ९ वजे गङ्गा नहर आ गये। यहाँ कूपका पानी वहुत स्वादिष्ट था। भोजनोपरान्त कुछ लेट गये। स्थान अतिरम्य था। यहाँसे १२ मील शासनी ठीक दक्षिण दिशामे है। यहाँ पर एक ग्राम है, जिसका नाम पहाडी है। वहाँसे ८ औरते आयी और महान् आग्रह करने लगी कि आज हमारे ग्राममे निवास करो। हमने वहुत समझाया, तव कही उन्हे सतोष हुआ। उन्होने रविवार और एकादशीका ब्रह्मचर्य व्रत लिया। उन औरतोमे एक औरत गरीव थी, उसे एक थान दुसूतीका जो सघके लोगोको अलीगढमे एक श्वेताम्वर भाईने दिया था, दिलवा दिया। वडे आग्रहसे उसने लिया। यहाँसे चलकर अकरावादके कुँवर साहवके वागमे ठहर गये। दूसरे दिन ४ मील चलकर गोपीवाजारके स्कूलमे ठहर गये। यहाँ पर छात्रोकी परीक्षा ली, ५) पडित भँवरीलालजी सरियावालोने छात्रोको परितोषिक दिया। सामायिकके वाद ४ मील चलकर सिकन्दराराऊ आ गये। यहाँ २ घर जैनके है।

सिकन्दराराऊसे ४ मील चल कर रतवानपुर आ गये। ग्रामवाले वहुत मनुष्य आये, सर्व साधारण परिस्थितिके थे, किन्तु सज्जन थे। यहाँसे १ वजे चल कर भदरवासके ग्राम पचायत भवनमे ठहर गये। गाँवके अनेक लोग मिलने आये। भदरवाससे ४ मील चल कर पिलुआ आ गये। यहाँ पर ३ घर पद्मावतीपुरवालोके है, १ मन्दिर है, जो सामान्यतया उत्तम है। प्रेमसे भोजन कराया। दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी आये। इनका अनुराग विशेष है।

पौष वदी ७ स० २००६ को एटा आ गये। यहाँ पर २०० घर

पद्मावतोपुरवालोके है, धर्मवत्सल है। यहाँ प० पन्नालालजी मथुरा सघसे आये। प्रात काल मन्दिरमे प्रवचन हुआ। सायंकाल पार्कमे आम सभा हुई। सभामे सभ्य पुरुष आये। प० पन्नालालजी मथुराका व्याख्यान हुआ, मैने भी कुछ कहा। यहाँ रात्रिको सिविल सर्जन सपत्नीक-आये। मिल कर वहुत प्रसन्न हुए। आपने मगलवारको ब्रह्मचर्य व्रत लिया। एक दिन वडे मन्दिरमे प्रवचन हुआ। मनुष्योके चित्तमे कुछ प्रभाव पडा। यहाँ पर एक कायस्थ रहते है। उन्होने सवको अच्छी तरह फटकारा, फलस्वरूप पाठगाला चालू करनेके लिये ६०००) ध्रौव्यफण्ड तथा ५०) मासिकका चन्दा हो गया। लोगोमे परस्पर सौमनस्य नही और अन्तरङ्गसे विद्यामे रुचि नही।

दूसरे दिन भोजनके पश्चात् सामायिक किया और १ वजे चल कर ६½ मील छिछैनाके वगलामे ठहर गये। यहाँ तक एटासे २५ आदमी आये, पश्चात् लौट गये, कोई प्रामाणिक बात नही हुई। यहाँ चल कर मलावन तथा टटऊ कसवामे ठहरते हुए, पौप वदी १२ को कुरावली आ गये। यहाँ पर २५ घर जैनियोके है। यहाँ पर जो पण्डित है, वे उपादान-को ही मुख्य मानते है, निमित्त हाजिर हो जाता है। हाजिर शब्दका अर्थ क्या ? शून्य। अस्तु, कहाँ तक कहा जावे, विवादके सिवाय कुछ नही। आजकल ही क्या, प्राय सर्व कालमे हठवादका उत्तर यथार्थ होना-कठिन है। सव यह चाहते हैं कि यदि हमारी बात गई तो कुछ भी न रहा अत. जैसे बने तैसे अपनी हटकी रक्षा करना चाहिये, तत्त्व कही जावे। यदि मनुष्योमे हठ न होती तो ३६३ पाखण्ड मत न चलते। आत्माके अभि-प्राय असख्यात है, अत उतने विकल्प मतोके हो सकते है, सग्रहसे ३६३ बतला दिये है। तात्त्विक दृष्टि जब आती है तब सर्व पक्षपात विलय जाते है।

यहाँ पर जसवन्तनगरवाले सुदर्शन सेठ भी आये। आप वहुत सज्जन है, आपके आग्रह से ग्रन्टरोडका मार्ग बदल कर इटावाकी ओर चल दिए। कुरावली ६½ मील चल कर हरिदेवके नगलेमे ठहर गये। यहाँ पर पलालका प्रबन्ध अच्छा रहा। देहातमे आदमी सरल परिणामोके होते है। वोली सादी होती है, परन्तु अभिप्राय निर्मल होते है। नगलासे ७ मील चलकर मैनपुरी आ गये। धर्मशालामे ठहर गये, स्थान मनोज्ञ है, परन्तु जो शान्ति चाहिए, वह नही मिलती, क्योकि मनुष्योका ससर्ग दूर नही होता। दोपहर बाद सभा हुई। पर हमसे वोला नही गया। सरदी का प्रकोप था, अत गला वैठ गया। मनुष्य केवल निमित्त उपा-

दानकी चर्चामे अपना काल बिताते है। पढे लिखे है नही, परिभाषा जानते नही, केवल अनाप-सनाप कह कर समय खो देते है। एक दिन यहाँके कटरा बाजारके मन्दिरमे दर्शनार्थ गये। बहुत विशाल मन्दिर है, इस तरहका मन्दिर हमने नही देखा। सस्कृत ग्रन्थोका भण्डार भी विपुल है, उसमे गोम्मटसार, मूलाचार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, यशस्तिलकचम्पू आदि बडे-बडे ग्रन्थ है। २०० के लगभग सब होगे। हमने अवकाशाभावसे ग्रन्थ नही देखे। शास्त्रमे समागम अच्छा नही। यहाँ बनारससे श्वेताम्बर साधु श्रीकान्तिविजयजी आये, बहुत ही सज्जन प्रकृतिके थे, मन्दिरो के दर्शन किये व साम्यभावसे वार्तालाप किया। यहाँसे १ बजे करहलको चल दिये और ३½ मील चलकर अडसीकी एक धर्मशालामे ठहर गये। वहाँ से १-२ स्थानो पर ठहरते हुए करहल पहुँच गये। यहाँ लमेचू जैनियोके २०० घर हैं, ४ मन्दिर और २ चैत्यालय है, जैनियोके घर सम्पन्न है, १ हाई स्कूल तथा १ औषधालय भी। ऐसे स्थानो पर त्यागीवर्गको रहना चाहिये, बहुत कुछ उपकार हो सकता है। प्राचीन ग्रन्थभण्डार भी है। लोगोने स्वागतका बहुत आडम्बर किया। (वास्तवमे आडम्बरके सामने धर्मकी प्रभावना होती नही। जैनधर्मका जो सिद्धान्त था, उसे गृहस्थोने लुप्त कर दिया, त्यागीवर्ग भी अपने कर्तव्यसे च्युत है। पठन-पाठन करनेका अवसर नही। केवल गल्पवाद रह गया है, सो उससे क्या होने वाला है? लोकप्रशसाके अर्थ ही मनुष्योकी चेष्टाएँ रहती हैं। सार तो निवृत्तिमार्गमे है, सो बनतो नही, गल्पवादसे कर्तव्यवाद अच्छा होता है। जहाँ तक बने धर्मके अर्थ उपयोग निर्मल रखना अच्छा है।)

पौष सुदी ५ स २००६ को जसवन्तनगर आ गये, यहाँ पर जनताने मन प्रसार कर स्वागत किया। बाहरसे भी बहुतसे मनुष्य आये थे। स्त्रीसमाजकी सख्या भी प्रचुर थी। स्त्रीसमाजमे पुरुषसमाजकी अपेक्षा धर्मकी आकाक्षा बहुत है, परन्तु वक्ता महोदय तदनुकूल व्याख्यान नही देते। मेरी समझसे व्याख्यान पात्रके अनुकूल होना चाहिए। भोजनका पाक उदराग्निके अनुकूल होता है। यदि उदराग्निके अनुकूल भोजन न मिले तो, उसकी सार्थकता नही होती। पौष सुदी ६ स० २००६ को बड़ा दिन था। स्कूलोका अवकाश होनेसे बच्चोके हृदयोमे उत्साह था। मेरे मनमे विचार आया कि जिस वस्तुका पतन होता है, एक दिन वह वृद्धि को प्राप्त होती है। दिनका ह्रास जितना होना था, हो गया, अब वृद्धिका अवसर आ गया। यहाँ बनारससे प० कैलाशचन्द्रजी व खुशालचन्द्रजी

आये प० कैलाशचन्द्रजीने शुद्धाचरण पर आध घटा अच्छा व्याख्यान दिया। आज बडे वेगमे ज्वर आ गया, ८वजे तक वडी वेचैनी रही, उसीमे नीद आ गई। एक वार खुली, अन्तमे कुछ शान्ति आई, परन्तु पैरोमे वातकी वहुत वेदना रही। दोनों पैर सूज गये। उपचार जिसके मनमे आता है, सो करता है। मेरा तो यह दृढतम विश्वास है कि जिसके बहुत सहायक होते है, उसे कभी साता नही मिल सकती। अनेकोके साथ सम्वन्ध होना, यह ही महासकट है। जिसके अनेक सम्वन्ध होगे, उसका उपयोग निरन्तर झझटोमे उलझा रहेगा। मनुष्य वही है, जो परको सवसे हेय समझे। हेय ही न समझे, उनमे न राग करे न द्वेप। सवसे वडा दोष यदि हममे है, तो यह है कि हम सवको खुश करना चाहते है, और इसका मूल कारण सव हमको अच्छी दृष्टिसे देखे। अर्थात् सव यह कहे, देखो कैसा शुद्ध आदमी है। इस लोकैपणाने ही हमे पतित कर रक्खा है। जिस दिन इस लोकैपणाको त्याग देगे, उसी दिन सुमार्ग मिल जायगा। सुमार्ग अन्यत्र नही, जिस दिन रागकलकका प्रक्षालन हो जायेगा, उसी दिन आनन्दकी भेरी वजने लगेगी।

आत्माका स्वरूप ज्ञान-दर्शन है, अर्थात् देखना-जानना। जव देखने-जाननेमे विकार होता है, तव पर पदार्थोमे राग-द्वेषकी उत्पत्ति होती है। राग-द्वेषका उदय होने पर, यह जीव किसीमे इष्ट और किसीमे अनिष्ट कल्पना करने लगता है। पश्चात् इष्टकी रक्षाका और अनिष्टके विनाश का सतत प्रयत्न करता है। यही इस जीवके ससार-भ्रमणका कारण है।

प्रात काल मोक्षमार्गप्रकाशकका स्वाध्याय किया। श्रीमान् प० टोडरमल्लजी एक महान् पुरुष हो गये है, उन्होने गोम्मटसारादि अनेक ग्रन्थोको इतनो सुन्दर व्याख्या की है कि अल्पज्ञानी भी उनके मर्मका वेत्ता हो सकता है। इससे भी महोपकार उन्होने मोक्षमार्गप्रकाश ग्रन्थको सरल भाषामे रचकर किया है। उसमे उन्होने चारो अनुयोगोकी शैलीको ऐसी निर्मल पद्धतिसे दर्शाया है कि अल्पज्ञानी उन अनुयोगोके पारगत विद्वान् हो सकते है। तथा भारतमे जो अनेक दर्शन है, उनकी प्रणालीका भी दिग्दर्शन कराया है। इस ग्रन्थका जो गम्भीर दृष्टिसे स्वाध्याय करेगा, वह नियमसे सम्यग्दर्शनका पात्र होगा। पैरोकी वेदना का बहुत वेग वढ गया। जितना-जितना उपचार होता है, उतना-उतना वेग बढता है। यद्यपि वेदना वहुत तीव्र होती थी, परन्तु असन्तोष कभी नही आया। फिर वेदना होती ही क्यो है? इसका पता नही चलता।

इतना अवश्य है कि असाताके तीव्र उदयमे ऐसा समागम स्वयमेव जुड जाता है। जिससे मोही जीव अनेक प्रकारकी कल्पना कर दु ख भोगनेका कर्त्ता बनता है। अस्तु, यहाँके लोग वैयावृत्यमे निरन्तर तत्पर थे। पैरो की वेदना ज्योकी त्यो थी और ज्वर भी यदा-कदा आ ही जाता था। इसलिए लोग पाटे पर बैठाकर इटावा ले आये। यहाँ गाडीपुराकी धर्म-शालामे ठहरे। स्थान अच्छा है। मन्दिर भी इसीमे है। एक कूप भी। यहाँ आने पर असाताका उदय धीरे-धीरे कम हुआ तथा उपचार भी अनुकूल हुआ, इसलिए आरोग्य लाभ हो गया।

इटावा

आठ दश दिन बडी व्यग्रतामे वीते। प्रवचन आदि बन्द था। केवल आत्मशान्तिके अर्थ दैनदिनीमे जब कभी दो चार वाक्य लिख लेता था। जैसे—

आत्मपरिणतिको कलुषित होनेसे बचाओ, परकी सहायतासे किसी भी कार्यकी सिद्धि न होगी और न अकार्यकी सिद्धि होगी। जैसे शुद्धोपयोग निजत्वका साधक है, वैसे ही रागद्वेष ससारके साधक हैं। मेरा न कोई शत्रु है, और न मित्र है। मै स्वकीय परिणति द्वारा स्वय ही अपना शत्रु और मित्र हो जाता हूँ।

'सबसे क्षमा मागनेकी अपेक्षा अन्तरङ्ग क्रोधपर विजय प्राप्त करो। ऐसा वचन मत बोलो कि जिससे किसीको अन्तरङ्ग कष्ट पहुँचे। इसका तात्पर्य यह है कि अपने हृदयमे परको कष्ट पहुँचे, ऐसा अभिप्राय न हो। वचनकी मधुरता और कटुकतासे इसका यथार्थ तत्त्व अनुमित नही होता।'

'लोकवञ्चनाके चक्रमे पडे मानव, उन शब्दोका व्यवहार करते हैं कि जिनसे लोग समझे यह बडा विरक्त है। परन्तु उनमे विरक्तताका अश भी नही। यदि विरक्तताका अश होता, तो स्वप्रतिष्ठाके भाव ही न होते।

'ससारमे सुखका उपाय निराकुल परिणति है। निराकुल परिणतिका मूल कारण अनात्मीय पदार्थोमे आत्मीय बुद्धिका त्याग है। उसके होते ही रागद्वेष स्वयमेव पलायमान हो जाते हैं। सबसे मुख्य पौरुष यह है कि अभिप्रायमे साधुता आ जाये। जब तक परको निज मानता है,

तक असाधुता नही जा सकती। जहाँ असाधुता है, वहाँ रागद्वेषकी संतति निरन्तर स्वकीय अस्तित्व स्थापित करती है।'

'सबको प्रसन्न करनेकी चेष्टा अग्निमें कमल उत्पन्न करनेकी चेष्टा है। अपनी परिणति स्वच्छ रखो, सकोच करना अच्छा नही। सकोच वही होता है, जहाँ परके रुष्ट होनेका भय रहता है। परन्तु विराग दशामे परके तुष्ट या रुष्ट होनेका प्रयोजन क्या है?'

'गुरुदेवसे यह प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! अब तो सुमार्ग पर लगाओ, आपकी उपासना करके भी यदि सुमार्ग पर न आये, तो कब अवसर सुमार्ग पर आनेका आवेगा? गुरुदेवने उत्तर दिया कि अभी तुमने मेरी उपासना की ही कहाँ है? केवल गल्पवादमे समय खोया है। हम तो निमित्त है, तुझे उपादानपर दृष्टिपात करना चाहिए। गुरुदेवका अर्थ आत्माकी शुद्ध परिणति है।

'किसीका सहारा लेना उत्तम नही, सहारा निजका ही कल्याण करनेवाला है। पञ्चास्तिकायमे श्री कुन्दकुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है कि हे आत्मन्! यदि तूँ ससार बन्धनसे छूटना चाहता है, तो जिनेन्द्रकी भक्तिका भी त्याग 'कर', क्योकि वह भी चन्दननगसङ्गत दहनकी भाँति दुखका ही कारण है।'

'निवृत्ति ही कल्याणका मार्ग है अन्ततोगत्वा यही शरण है। पर-पदार्थका सम्बन्ध छोडना ही शान्तिका मार्ग है। शान्तिका उपाय अन्य नही, किन्तु निजत्व दृष्टि है। जिस प्रकार हमारी दृष्टि परकी ओर है, उसी प्रकार यदि आत्माकी ओर हो जाय, तो कल्याण सुनिश्चित है। लोग परकी चिन्तामे व्यर्थ ही कालयापन करते हैं'।

'शान्तिका मूल मत्र अन्तरङ्गकी कलुषताका नाश है, कलुषताका कारण परपदार्थोमे ममता बुद्धि है, ममता बुद्धि ही ससारकी जननी है। जब परपदार्थमे आत्मीय अश भी नही, तब उसमे राग करना व्यर्थ है। परन्तु यह मोही जानकर भी गर्तमे पडता है। इसको दूर करनेका यत्न करो'।

'आत्मतत्त्वकी यथार्थता प्रत्येक व्यक्तिमे होती है, परन्तु उसकी अनुभूतिसे वञ्चित रहते हैं। इसका मूल कारण हमारी अनादिकालीन परानुभूति ही है, क्योकि ज्ञानमे स्वपर्यायका ही सवेदन होता है। किन्तु

मिथ्यात्वकी प्रबलतामे लोग स्वरूपसे वञ्चित हो, परको ही निज मान लेते है।

१० दिन बाद जिनेन्द्रके दर्शन किये। ये दिन बहुत व्यग्रताके थे। परन्तु अन्तरङ्गमे विकलता नही आई। बनारससे श्री सेठ बैजनाथ जी सरावगी, प० कैलाशचन्द्रजी, अधिष्ठाता हरिश्चन्द्रजी झवेरी, लालचन्द्र जी तथा फतहचन्द्रजी साहब आ गये। सबने बहुत ही आत्मीयता दिखलायी। श्री प० कैलाशचन्दजीका मार्मिक प्रवचन हुआ। श्रीयुत ब्र० चादमल्लजी साहब भी उदयपुरसे आ गये, आप बहुत विवेकी पुरुष है, अपने कार्यमे सन्नद्ध रहते है, स्वाध्यायपटु है, प्रवचन समीचीन शैलीसे करते है। हमारे शरीरकी दशा देख, आपने कहा कि अब आप शान्तिसे काल यापन करो, व्यर्थके विकल्पोसे अपनेको सुरक्षित रक्खो। दिल्लीसे श्री ताराचन्द्रजी तथा राजकृष्णजी भी आये। राजकृष्णजी एक कमण्डलु लाये। कमण्डलुको देख मेरे मनमे विचार आया कि परमार्थसे पीछे-कमण्डलु वही रख सकता है जिसके अन्तरङ्गमे ससारसे भीरुता हो। भीरुता भी उसीको हो सकती हे जो इसे दु खात्मक समझे। दु खका कारण परमार्थसे पर नही हमारी कल्पना ही है। वह इन पदार्थोमे निजत्व मान दु खकी जननी बन जाती है। दु खका कारण रागादिक है। जबलपुरसे श्री टेकचन्द्रजी और रॉचीसे सेठ चॉदमल्लजी साहब भी आये। अब चॉदमल्लजी अपनी इस पर्यायमे नही है। आपका बोध सुपुष्ट था। आप अन्तरङ्गसे विरक्त भी थे। आपका आग्रह था कि आप गिरिराज चले, वहाँ पर हमारा भी निवास करनेका अभिप्राय है। मैने कहा—इच्छा तो यही है कि गिरिराज पहुँचकर श्रीभगवान् पार्श्वनाथकी शरण लूँ, पर यह शरीर जब इच्छानुकूल प्रवृत्ति करे, तब कार्य बने। सागरसे श्रीबालचन्द्रजी मलैया, प० पन्नालालजी तथा दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये। प्रात काल आनन्दसे प्रवचन हुआ। हमारे प्रवचनके अनन्तर श्री चाँदमल्लजी ब्रह्मचारीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सामयिक था। लोगोकी दृष्टि सुननेकी ओर तो है, पर करनेकी ओर नही। करनेसे दूर भागते है, परन्तु किये बिना सुनना और बोलना-दोनो ही कुछ प्रयोजन नही रखते। परमार्थ तो यह है कि कषायपूर्वक मन-वचन-कायका जो व्यापार हो रहा है, वह रुक जावे, तो कल्याणका पथ सुलभ हो जावे। धीरे-धीरे शीतकी बाधा कम हो गई और हमारे शरीरमे वातके कारण जो बाधा हो गई थी, वह दूर हो गई। यहाँ स्वर्गीय ज्ञानचन्द्रजी गोलालारेकी धर्मपत्नी धनवन्ती देवी ने ७५०००) पचहत्तर

हजार रुपया जैन पाठशालाके अर्थ प्रदान किया। माघ शुक्ल ५ सोमवार दिनाक २३ जनवरी, १९५० को उसका मुहूर्त्त था। उद्घाटन मेरे हाथो से हुआ। द्वितीय दिन महिला सभाका आयोजन हुआ। श्री धनवन्ती देवीने मुख्याध्यक्षाका पद अङ्गीकार किया। हम लोग भी सभामे गये। जन समुदाय पुष्कल था। प० कैलाशचन्द्रजी बनारसका व्याख्यान समयोचित था। पाठशालाका नाम श्री ज्ञानधन जैन सस्कृत पाठशाला रक्खा गया। आज सर्वत्र पाश्चात्य शिक्षाका प्रचार है, इसलिए लोगोके सस्कार भी उसी प्रकार हो रहे है। लोगोके हृदयसे अध्यात्मसम्बन्धी सस्कार लुप्त होते जा रहे है। यही कारण है कि सर्वत्र अशान्ति ही अशान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। शान्तिका आस्वाद आजतक नही आया। इसका मूल कारण विरोधी पदार्थोमे तन्मयता है। हम क्रोधको त्यागनेमे असमर्थ है और क्षमा का स्वाद चाहते है, यह असम्भव है। सस्कार निर्मल बनानेकी आवश्यकता है। हम आजतक जो ससारमे भ्रमण कर रहे है, इसका मूल कारण अनादि सस्कारोके न त्यागनेकी ही कुटेव है।

२६ जनवरीका दिन आ गया। आजसे भारतमे नवीन विधान लागू होगा, अत सर्वत्र उत्साहका वातावरण था। श्रीयुत महाशय डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी बिहार निवासी इसके सभापति होगे। आप आस्थामय उत्तम पुरुष है। भारतको स्वतन्त्रता मिली, परन्तु इसकी रक्षा निर्मल चारित्रसे होगी। यदि हमारे अधिकारी महानुभाव अपरिग्रहवादको अपनावे तथा अपने आपको स्वार्थकी गन्धसे अदूषित रक्खे तो सरल रीतिसे स्वपरका भला कर सकते है। श्री हुकुमचन्दजी सलावावाले आये। आप योग्य तथा स्वाध्यायके व्यसनी है। एक महाशय कुरावलीसे भी आये, उनकी यह श्रद्धा है कि उपादानसे ही कार्य होता है, इसमे किसीको विवाद नही परन्तु उपादानसे ही होता है यह कुछ सगत नही, क्योकि कार्यकी उत्पत्ति पूर्ण सामग्रीसे होती है, न केवल उपादानसे और न केवल निमित्तसे। शास्त्रमे लिखा है 'सामग्री जनिका कार्यस्य' अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जननी है। यदि निमित्तके बिना केवल उपादानसे कार्य होता है तो मनुष्यपर्यायरूप निमित्तके बिना ही आत्माको सर्वत्र मोक्ष हो जाना चाहिए, क्योकि मोक्षका उपादान आत्मा तो सर्वत्र विद्यमान है। यदि मनुष्यपर्यायाविष्ट आत्मा ही मोक्षका उपादान है, तो मनुष्यरूप निमित्तकी उपेक्षा कहाँ रही। अत अनेकान्तदृष्टिसे पदार्थका विवेचन हो, तो उत्तम है। कानपुरसे भी बहुत लोग आये और आग्रह

करने लगे कि कानपुर चलिये, परन्तु मैं चल सकूँ, इसके योग्य मेरा शरीर नहीं, अत मैंने जानेसे इनकार कर दिया। मेरे मनमे तो अटल श्रद्धा है कि शान्तिका मार्ग न तो पुस्तकोमे है, न तीर्थयात्रादिमे है, न सत्समागमादिमे है और न केवल दिखावाके योग-निरोधमे है। किन्तु कषाय-निग्रह पूर्वक सर्व अवस्थामे है। श्रद्धाकी यह शक्ति है कि उसके साथ सम्यग्ज्ञान हो जाता है और स्वानुभवात्मक निजस्वरूपमे प्रवृत्ति हो जाती है। गिरिडीहसे श्रीयुत कालूरामजी और श्री रामचन्द्रजी बाबू भी आये। आप दोनो ही योग्य पुरुष है। आपका अभिप्राय है कि अब मैं श्री पार्श्व-प्रभुके चरणकमलोमे रहकर अपनी अन्तिम अवस्था शान्तिसे यापन करूँ। मेरी अवस्था इस समय ७६ वर्षकी हो गई है, शरीर दिन-प्रति-दिन शिथिल होता जाता है, स्मरणशक्ति घटती जाती है। केवल अन्तरङ्गमे धर्मका श्रद्धान दृढतम है। किन्तु सहकारी कारणका सद्भाव भी आवश्यक है। सेठी चम्पालालजी गयावालोने भी यही भाव प्रकट किया, परन्तु इच्छा रहते हुए भी मैं शरीरकी अवस्था पर दृष्टिपात कर लम्बा मार्ग तय करनेके लिए सक्षम नही हो सका।

लोग बात तो बहुत करते है, परन्तु कर्तव्यपथमे नही लाते। कर्त्तव्य-पथमे लाना बहुत ही कठिन है। उपदेश देना सरल है, परन्तु स्वय उसपर आरूढ होना दुष्कर है। मैंने यही निश्चय किया कि आत्माकी परिणति जानने-देखनेकी है, अत तुम ज्ञाता-द्रष्टा ही रहो। पदार्थमे जैसा परिणमन होना है हो, उसमे इष्टानिष्ट-कल्पना न करो, क्योकि यही ससारकी जड है। यदि तुम्हे ससारका अन्त करना है, तो परसे आत्मीयता त्यागो। सर्वोत्तम बात यह है कि किसीके चक्रमे न आवे, चक्र ही परिभ्रमणका मुख्य कारण है। मनुष्योसे स्नेह करना ही पापका कारण है, ससारका मूल कारण यही है। जिन्हे बन्धनका उच्छेद करना है, उन्हे उचित है कि वे परकी चिन्ता त्यागें। परकी चिन्ता करना, मोही जीवोका कर्त्तव्य है।

यहाँ नीलकण्ठ नामक स्थान है, जिसके कूपका जल अत्यन्त स्वास्थ्य-प्रद है, यहाँ रहते हुए मैंने उसीका जल पिया। एकान्त शान्त स्थान है। अधिकाश मैं दिनका समय यही व्यतीत करता था। फाल्गुनका मास लग गया और ऋतुमे परिवर्तन दिखने लगा। भिण्डसे मनुष्य आये और उन्होने भिण्ड चलनेका आग्रह किया। शरीर तथा ऋतुकी अनुकूलता देख, मैंने भिण्ड जानेकी स्वीकृति तो दे दी, परन्तु आकाशमे मेघकी घटा छाई हुई थी, इसलिये उस दिन जाना नही हो सका। तीसरे दिन जब आकाश स्वच्छ हो गया, तब फागुन कृष्ण ५ को १॥ बजे प्रस्थान किया।

इटावाके अञ्चलमें

इटावाके पास ही श्रीविमलसागरका समाधिस्थान है। स्थानकी नीरवता देख १५ मिनट वहाँ विश्राम किया। यह धर्मसाधनका उत्तम स्थान है, परन्तु कोई ठहरनेवाला नही। बातोके बनानेवाले बहुत है, कर्तव्य पालन करनेवाले कम है। यहाँसे ३ मील चलकर गोरेनीका नगरोमे ठहर गये। प्रात यहाँसे २ मील चलकर चम्बल नदीके घाटपर ठहर गये। बहुत सुन्दर दृश्य है। नीचे नदी बह रही है, ऊपर सहस्रो टीला है। एक बगला है, २ फर्लांग पर १ ग्राम है, जिसका नाम उदी है। यहाँ पर १ मिडिल स्कूल है। ९ बजे शास्त्रप्रवचन हुआ, अन्य लोग भी आये, स्कूलके मास्टर तथा छात्रगण भी थे। आगत जनतासे मैने कहा कि आप बीडी पीना छोड दें तथा परस्त्रीका त्याग भी कर दे, सुनकर आम जनता प्रसन्न हुई तथा अधिकाशने प्रतिज्ञा ली। यहाँसे चलकर बरहीमे ठहरे और प्रात ५ मील चलकर फूफ आ गये। जैन मन्दिरकी धर्मशालामे ठहरे, यहाँ २० घर जैनियोके है, लोग भद्र जान पडते हैं। श्रीराजारामजी गोलसिगारेके घर भोजन किया। उन्होने जो खर्च हो उस पर एक पैसा प्रति रुपया दान करनेका नियम लिया तथा उनकी गृहिणीने अष्टमी चतुर्दशीको शीलव्रत लिया। आज ईसरीसे पत्र आया कि ब्र० कमलापतिजीका स्वर्गवास हो गया। समाचार जानकर पिछली घटनाएँ स्मृत हो उठी, आप बरायठा (सागर) के रहनेवाले थे। सम्पन्न होने पर भी गृहसे विरक्त थे। आपके साथ बुन्देलखण्डमे मैने बहुत भ्रमण किया था तथा वहाँ प्रचलित कई रूढियाँ बन्द कराई थी। आपको शास्त्रका ज्ञान भी अच्छा था। अष्टमीका दिन होनेसे सम्यक् प्रकार धर्मध्यानमे दिन बीता। स्वाध्याय अच्छा हुआ, (स्वाध्यायका फल स्वपर-विवेकका होना है। इससे सवर और निर्जरा होती है। आगमाभ्याससे उत्तम मोक्षमार्गका अन्य सहायक नही।) यहाँसे दूसरे दिन ४ मील चलकर दोनपुरामे रात्रि बिताई। प्रात २ मील चलकर भिण्डके बाहर एक सुरम्य स्थानमे ठहर गये। यहाँसे १ फर्लांग मन्दिर है, बहुत विशाल है। मध्याह्नके बाद २ बजेसे नसिमामे सभा हुई, जनसख्या अच्छी थी। श्री प० पन्नालालजी काव्यतीर्थ प्रोफेसर हिन्दू विश्व-विद्यालयका व्याख्यान समयानुकूल हुआ, श्री ब्र० चाँदमल्लजीका भी उत्तम व्याख्यान हुआ। तदनन्तर मैने भी कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि महती आवश्यकता विशुद्धिकी है। बिना भेदज्ञानके विशुद्धि

रूप परिणति होना दुष्कर है। भेदज्ञानकी बाधक परपदार्थमे निजत्व कल्पना है। भेदके होनेमे सबसे मुख्य कारण आत्मीय ज्ञानकी प्राप्ति है। जिस प्रकार हम घटपटादि पदार्थोंको जाननेमे मनोवृत्ति रखते है, उसी प्रकार आत्मज्ञानमे भी हमे चेष्टा करना चाहिये। उपदेशका फल तो यह हैकि परलोकके अर्थ प्रयत्न किया जावे। जो मनुष्य आत्मतत्त्वकी यथार्थतासे अनभिज्ञ है वे कदापि मोक्षमार्गके पात्र नही हो सकते। यहाँ कभी गोलसिंघारोके मन्दिरमे और कभी चैत्यालयमे प्रवचन होता था, जनता अच्छी आती थी। यहाँ पर समयसारकी रुचिवाले बहुत है पर विशेषज्ञ गिनतीके है। एक दिन प्रवचनमे चर्चा आई कि क्या सम्यग्दृष्टि कुदेवादिककी पूजा कर सकता है? मेरा भाव तो यह है कि जिसे अनन्त ससारके बन्धनोसे छुटानेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, वह रागद्वेषसे लिप्त कुदेवादिककी पूजा नही कर सकता। वीतराग सर्वज्ञ तथा सभव हो तो हितोपदेशकत्व बिना अन्य किसी भी जीवके सुदेवत्व नही आता। भले ही वह जैनधर्मसे प्रेम रखता हो और जिनशासनकी प्रभावना करता हो, पर है कुदेव ही। समन्तभन्तभद्र स्वामीने इस विषय-मे अपना अभिप्राय निम्न प्रकार दिया है।

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणाम विनय चैव न कुर्यु शुद्धदृष्टय ॥

अर्थात् सम्यग्दृष्टि पुरुप भय, आशा, स्नेह और लोभके वशीभूत होकर कुदेव, कुआगम और कुलिङ्गियोको प्रणाम न करे। लोग न जाने क्यो पक्षव्यामोहमे पड इतनी स्पष्ट बातको भी ग्रहण नही करते? उन्हे देव, अदेवकी परिभाषा भी नही जमती, ऐसा जान पडता है। एक दिन गोलालारोके मन्दिरमे भी प्रवचन हुआ, जनता अच्छी आयी, परन्तु प्रवचनका वास्तविक प्रभाव कुछ नही हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि वक्ता स्वय उसके प्रभावमे नही आता, अन्यको प्रभावमे लाना चाहता है, यह प्रवचनकर्तामे महती त्रुटि है। एक सहस्र वक्ता और व्याख्यान देनेवालोमे एक ही अमल करनेवाला होना कठिन है। यहाँ लोगोमे आपसी वैमनस्य अधिक है। एक पाठशाला स्थापित होनेकी बात उठी अवश्य, पर कुछ लोगोके पारस्परिक सघर्पके कारण काम स्थगित हो गया। धन्य है, उन्हे जिन्होने कषायरूपी शत्रुओ पर विजय प्राप्त करली। एक दिन पुरानी मण्डीमे २ मन्दिरोके दर्शन किये। मन्दिर बहुत ही रमणीय हैं, ५०० मनुष्य इनमे शास्त्र श्रवण कर सकते है। एक मन्दिर भट्टारकजीका बहुत ही स्वच्छ, निर्मल तथा विशाल है। भिण्ड

जैनियोकी प्राचीन वस्ती है, जनसख्या अच्छी है, यदि सौमनस्यसे काम करें, तो जनकल्याणके अच्छे कार्य यहाँ हो सकते हैं। ९–१० दिन यहाँ रहनेके वाद फाल्गुन शुक्लाको चलकर दीनपुरा आ गये और दूसरे दिन दीनपुरासे फूफ आ गये। यहाँ मुरारसे ४ महिलाएँ आई थी। उनके यहाँ हमारा भोजन हुआ। भोजन वडे भावसे कराया। फूफसे ५ मील चलकर वरही आये। यहाँ पर १ मन्दिर प्राचीन वना हुआ है, चम्वलके तटसे ½ मील है। ९० हाथ गहरा कूप है, फिर भी जल क्षार है, यहाँपर ३ घर जैनियोके हैं, अच्छे सम्पन्न हैं, शिक्षा इस प्रान्तमे कम है। यहाँसे चलकर उडूग्राममे ठहर गये। यहाँसे चलकर नगरा ग्राममे आ गये। यहाँ एक व्राह्मण महोदयके घरमे ठहर गये, आप वहुत ही सज्जन हैं, आपने आदर-से व्यवहार किया। भोजनके उपरान्त १ वजे चलकर ३ वजे इटावाकी नशियाँमे आ गये, स्थान रम्य है, यहाँ पर श्री विमलसागरजीकी समाधि हुई थी, किन्तु अव यहाँ पर इटावावालोकी दृष्टि नही। इस तरह इटावा-के अञ्चलमे भ्रमण कर यही अनुभव किया कि सर्व मनुष्योके धर्मकी आकाक्षा रहती है, तथा सवको अपना उत्कर्ष भी इष्ट है, परन्तु मोहके नशामे अन्ध कैसी दशा हो रही है, यही अकल्याणका मूल है। मोह एक ऐसी मदिरा है कि जिसके नशामे यह जीव स्वको भूल परको अपना मानने लगता है। यह विभ्रम ही ससार-परिभ्रमणका कारण है। जिसके यह विभ्रम दूर होकर स्वका यथार्थ वोध हो जाता है वह परसे यथा-संभव शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।

अष्टाह्निकापर्व

फाल्गुन शुक्ला ८ स० २००६ से अष्टाह्निका पर्व प्रारम्भ हो गया। यह महापर्व है। इस पर्वमे देवगण नन्दीश्वर द्वीप जाते है, वहाँ पर ५२ जिनालय है। मनुष्योका गमन वहाँ नही, देवगण ही वहाँ जाते है, मनुष्य चाहे विद्याधर हो, चाहे ऋद्धिधारी मुनि हो, नही जा सकते। किन्तु मनुष्योमे वह शक्ति है कि सयमाशको ग्रहण कर देवोकी अपेक्षा असख्य-गुणी निर्जरा कर सकते है। मन्दिरमे समयसारका प्रवचन हुआ। कुछ वाचो, परन्तु वात वही है, जो हो रही है, ससारके चक्रमे जीव उलझ रहा है, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन सज्ञाओके आधीन होकर आत्मीय स्वरूपसे अपरिचित रहता है। आत्मामे ज्ञायक शक्ति है, जिससे वह स्वपर को जानता है, परन्तु, अनादिकालसे मोहमदका ऐसा प्रभाव है कि

आपापरकी ज्ञप्तिसे वञ्चित्त हो रहा है। ससार एक अशान्तिका भण्डार है, इसमे शान्तिका अत्यन्त अनादर है, वास्तवमे अशान्तिका अभाव ही शान्तिका उत्पादक है। अशान्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत् व्याकुल है। अशान्तिका वाच्यार्थ अनेक प्रकारकी इच्छाएँ है। ये ही हमारे शान्ति स्वरूपमे बाधक हैं। जब हम किसी विषयकी अभिलाषा करते है, तब आकुलित हो जाते है, जब तक इच्छित विषयका लाभ न हो, तब तक दु:खी रहते है। अन्तरङ्गसे यदि यह बात उत्पन्न हो जाय कि प्रत्येक द्रव्य स्वमे परिपूर्ण है, उसे परपदार्थकी आवश्यकता नही। जब तक परपदार्थ-की आवश्यकता अनुभवमे आती है, तब तक इसे स्वद्रव्यकी पूर्णतामे विश्वास नही तो परकी आकांक्षा मिट जाय और परकी आकाक्षा मिटी कि अशान्तिने कूच किया। जो मनुष्य शान्ति चाहते है, वे परजनोके संसर्गसे सुरक्षित रहे। परके ससर्गसे बुद्धिमे विकार आता है, विकारसे चित्तमे आकुलता होती है। जहाँ आकुलता है, वहाँ शान्ति नही, शान्ति बिना सुख नही और सुखके अर्थ ही सर्वप्रयास मनुष्य करता है। अनादिसे हमारी मान्यता इतनी दूषित है कि निजको जानना ही असं-भव है। जैसे खिचडी खानेवाला मनुष्य केवल चावलका स्वाद नही बता सकता, वैसे ही मोही जीव शुद्ध आत्मद्रव्यका स्वाद नही बता सकता। मोहके उदयमे जो ज्ञान होता है, उसमे परज्ञेयको निज माननेकी मुख्यता रहती है। यद्यपि पर निज नही, परन्तु क्या किया जावे। जो निर्मल दृष्टि है, वह मोहके सम्बन्धसे इतनी मलिन हो गई है कि निजकी ओर जाती ही नही। इसीके सद्भावमे जीवकी यह दशा हो रही है, उन्मत्तक (धतूरा) पान करनेवालेकी तरह अन्यथा प्रवृत्ति करता है, अत इस चक्रसे वचनेके अर्थ परसे ममता त्यागो, केवल वचनोसे व्यवहार करनेसे ही सन्तोष मत कर लो। जो मोहके साधक है, उन्हे त्यागो। जैसे पञ्चेन्द्रियोके विषय त्यागनेसे ही मनुष्य इन्द्रियविजयी होगा; कथा करनेसे कुछ तत्त्व नही निकलता। बात असलमे यह है कि हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान है, इस ज्ञानमे जो पदार्थ भासमान होगा, उसी ओर तो हमारा लक्ष्य जावेगा, उसीकी सिद्धिके अर्थ हम प्रयास करेगे, चाहे वह अनर्थकी जड क्यो न हो। अनर्थ की जड बाह्य वस्तु नही, वह तो अध्यवसानमें विषय पड़ती है, अतएव बाह्य वस्तु बन्धका जनक नही। श्रीकुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

वत्थु पडुच्च ज पुण अज्झवसाण तु होदि जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि॥

पदार्थको निमित्त पाकर, जो अध्यवसान भाव जीवोको होता है, वही बन्धका कारण है, पदार्थ बन्धका कारण नही है।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि ऐसा सिद्धान्त है, तो बाह्य वस्तुका त्याग क्यों कराया जाता है ? तो उसका उत्तर यही है कि अध्यवसान न होनेके अर्थ ही कराया जाता है। यदि बाह्य पदार्थके आश्रय बिना अध्यवसान भाव होने लगे तो जैसे यह अध्यवसान भाव होता है कि मैं रणमे वीरसू माताके पुत्रको मारूँगा, वहाँ यह भी अध्यवसान भाव होने लगे कि मैं वन्ध्यापुत्रको प्राणरहित करूँगा, परन्तु नही होता, क्योकि मारणक्रियाका आश्रयभूत वन्ध्यासुत नही है, अत जिन्हे वन्ध न करना हो वे बाह्य वस्तुका परित्याग कर देवे। परमार्थसे अन्तरङ्ग मूर्छाका त्याग ही वन्धकी निवृत्तिका कारण है। मिथ्या विकल्पोको त्याग कर यथार्थ वस्तुस्वरूपके निर्णयमे अपनेको तन्मय करो, अन्यथा इसी भव-चक्रके पात्र रहोगे। तुम विश्वसे भिन्न हो, फिर भी विश्वको अपनाते हो, इसमे मूल जड मोह है, जिनके वह नही वह मुनि है, ये अध्यवसान आदि भाव जिनके नही, वही महामुनि है। वे ही शुभ-अशुभ कर्मसे लिप्त नही होते।

जिस जीवको यह निश्चय हो गया कि मैं परसे भिन्न हूँ, वह कदापि परके संयोगमे प्रसन्न और विषादी नही हो सकता। प्रसन्नता और अप्रसन्नता मोहमूलक है। मोह ही एक ऐसा महान् शत्रु इस जीवका है कि जिसकी उपमा नही की जा सकती, उसीके प्रभावसे चौरासी लाख योनियोमे जीवका भ्रमण हो रहा है अत जिन्हे यह भ्रमण इष्ट नही, उन्हे उसका त्याग करना चाहिए।

खेद करो मत आतमा खेद पाप का मूल।
खेद किये कुछ ना मिले, खेद करहु निर्मूल॥

खेद पापकी जड है, अत. हे आत्मन् ? खेद करना श्रेयस्कर नही किन्तु खेदके जो कारण है, उनसे निवृत्ति पाना श्रेयस्कर है। मैं अनादि कालसे संसारमे भटक कर दुःखी हो रहा हूँ, ऐसा विचार कर कोई खेद करने बैठ जाय, तो क्या वह दुःखसे छूट जायगा ? नही, दुःखसे तो तभी छूटेगा, जब संसार-भ्रमणके कारण मोहभावसे जुदा होगा।

लोग प्रवचनोमे आते है, पर शास्त्रश्रवणका रस नही। इसका मूल कारण आगमाभ्यास नही किया और न उस ओर रुचि ही है। लोगोकी बुद्धि न हो, सो बात नही। सांसारिक कार्योमे तो बुद्धि इतनी प्रबल है कि बालकी भी खाल निकाल दे, परन्तु इस ओर दृष्टि नही। कई श्रोता तो रूढिसे आते है, कई वक्ताकी परीक्षाके अर्थ आते है, कई वक्ताकी

वाणी-कुशलतासे आते है, और कई कौतूहलसे आते है, अधिक भाग महिलाओका होता है। आत्मकल्याणकी भावनासे कोई नही आता, यह बात नही, परन्तु ऐसे जीव विरले है। यदि यह बात न होती, तो शास्त्रश्रवण करते जीवन व्यतीत हो गया, पर प्रवृत्तिमे अन्तर क्यो नही आया? यहाँ तो यह बात है कि शास्त्रमे जो लिखा, सो ठीक, और वक्ता जो कह रहा, सो ठीक, पर काम हम वही करेगे, जो करते चले आ रहे है। एक कहावत है कि आप कहे सो ठीक और वे कहे सो ठीक, पर नरदाका द्वार यही रहेगा) अस्तु, पर्वभर लोगोमे अच्छा उत्साह रहा।

उदासीनश्रम और सस्कृत विद्यालयका उपक्रम

चैत्र कृष्ण ३ संवत् २००६ को प्रात काल यहाँ उदासीनाश्रमको स्थापना हो गई। श्री लक्ष्मण प्रसादजीने १००) मासिक और कई महाशयोने मिलकर १५०) मासिक रुपये दिये। ४ उदासीन भाई आश्रममे प्रविष्ट हुए, साथ ही वहुतसे मनुष्योके भाव इस ओर ऋजु हुए, परन्तु थोडी देरकी उफान है, घर जाकर भूल जाते है। प० फूलचन्द्रजी वनारससे आये थे, आज वनारस वापस चले गये। आप स्वच्छ वात करते है, किंतु समयकी गतिविधि देखकर व्यवहार करे, तव उनका प्रयास सफल हो सकता है। प० पन्नालालजी काव्यतीर्थ भिण्ड गये थे, वहाॅ से उन्हे वर्णी-चेयरके लिए ५०१ मिले थे, वह रुपये प० फूलचन्द्रजीके हाथ भेज दिए। प० झम्मनलालजी तर्कतीर्थ कलकत्तावाले आये। प्राचीन विद्वानोमेसे है, व्युत्पन्न भी है, परन्तु प्रकृतिके तीक्ष्ण है। ३ छात्रोने सस्कृत पढनेका भाव प्रकट किया। (सस्कृत भाषा उत्तम भाषा है, जैनागमका भाव इस भाषाके अध्ययनके विना सुगम रीतिसे लभ्य नही, परन्तु आज लोगोकी दृष्टि पैसेकी ओर लग रही है। इस भाषाके अध्ययनसे पैसाकी प्राप्ति पुष्कल नही होती, इसलिए धनिवर्ग अपने वालकोको इसका अध्ययन नही कराते, परन्तु इतना निश्चित है कि इस भाषासे हृदयमे जो शुद्धि या निर्मलता आती है, वह अन्य भाषाओसे नही) ३ छात्रो द्वारा अभ्यन्तरकी प्रेरणासे सस्कृत भाषाके अध्ययनकी वात सुन हृदयमे प्रसन्नता हुई। यहाॅ पसारी टोलाके मन्दिरमे प्राचीन साहित्य भण्डार है, ग्रन्थोको दीमक और चूहोने वहुत नुकसान पहुँचाया है, (लोग शास्त्रभण्डारोका महत्त्व नही समझते, इसलिए उनकी रक्षाकी ओर विशेष प्रयत्नशील

नही रहते, अपने हुन्डी दस्तावेज आदिको लोग जिस प्रकार सुरक्षित रखते है, उसी प्रकार शास्त्र भी सुरक्षित रखने योग्य है।)

श्री ज्ञानचन्द्रजीकी धर्मपत्नीने जो ७५०००) का दान निकाला था उसके ट्रस्ट होनेमे कुछ लोग वाधा उपस्थित कर रहे थे, तथा कितने ही लोगोकी यह भावना थी कि यह रुपये अग्रेजी स्कूलमे लगाये जावें। मुझे इससे हर्ष विषाद नही था, परन्तु भावना यह थी कि अग्रेजी अध्ययनके लिए तो नगरमे छात्रोको अन्य साधन सुलभ है, अत उसीमे द्रव्य लगाने-से वास्तविक लाभ नही। सस्कृत अध्ययनके और खास कर जैनधर्म सहित सस्कृत अध्ययनके साधन नही, इसलिये उसके अर्थ द्रव्य व्यय करना उत्तम है। अस्तु, मुझे इस विकल्पमे नही पडना ही श्रेयस्कर है, यह विचार कर मै तटस्थ रह गया।

चैत कृष्ण ६ स० २००६ को शामके समय यहाँसे २ मील चल कर श्री सोहनलालजीके बागमे ठहर गये। प्रात काल सामायिक कर चलनेके लिये तैयार हुए। इतनेमे इटावासे बहुतसे सज्जन आ गये। सबने बहुत आग्रह किया कि आप इटावा ही रहिये, क्योकि गर्मी पडने लगी है, अत मार्गमे आपको कष्ट होगा। मैने कहा—मुझे कोई आपत्ति नही श्रीचम्पा लालजी सेठीसे पूछिये। अन्तमे उन लोगोने कहा कि यदि आप रह जावें तो धनवतीबाईका ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया सस्कृत विभागमे लगा देवेगे। सस्कृत विभागका नाम सुन मेरे हृदयमे बहुत प्रसन्नता हुई। अन्ततोगत्वा यही निश्चय किया कि रहना चाहिये। निश्चयानन्तर हम सोहनलालजीके बागसे वापिस आ गये। मनुष्योके चित्तमे उत्साह हुआ, श्री मुन्नालालजीको तो इतना उत्साह हुआ कि उन्होने १२५) प्रतिमास देनेको कहा तथा धनवन्तीके ७५०००) भी पृथक्से इसी कार्यके लिए दिलाये। 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार चैत्र कृष्ण ९ स० २००६ को ही प० झम्मनलालजी द्वारा सस्कृत विद्यालयका काम शुरू हो गया। ५ छात्रोने लघुसिद्धान्तकौमुदी प्रारम्भ की, सेठ भगवानदासजीके सुपुत्रने सर्वार्थसिद्धि प्रारम्भ की। श्री बनवारीलालजी त्यागीने द्रव्यसग्रहका प्रारम्भ किया। अन्तमे श्रीपाल वैद्यने मिष्ठान वितरण किया। सानन्द उत्सव समाप्त हुआ। श्री मुन्नालालजीने इटावामे ही चातुर्मास करने-का आग्रह किया, तो मैने यह बात समक्ष रक्खी कि यदि चैत्र सुदी १५ तक सस्कृत विद्यालयके लिए १ लक्ष रुपयेकी रजिस्ट्री हो जायेगी, तो कार्तिक सुदी २ तक रह जावेगे। चातुर्मासकी बात सुन जनताको बहुत उल्लास हुआ।

जैनदर्शनके लेखपर

जबसे हरिजन मन्दिर-प्रवेशकी चर्चा चली, कुछ लोगोने अपने स्वभाव या पक्ष विशेषकी प्रेरणासे हरिजन मन्दिर-प्रवेशके विधि-निषेध साधक आन्दोलनोको उचित-अनुचित प्रोत्साहन दिया। कुछ लोगोको जिन्हे आगमके अनुकूल किन्तु अपनी धारणाके प्रतिकूल विचार सुनाई दिये, उन्होने कहना प्रारम्भ किया कि 'वर्णीजी हरिजनमन्दिर प्रवेशके पक्षपाती है।' इतना ही नही, दलविशेप और पक्षविशेषका आश्रय लेकर, अपनी स्वार्थ-साधनाके लिये, यद्वा तद्वा आगम प्रमाण उपस्थित करते हुए, मेरे प्रति, जो कुछ मनमे आया, ऊटपटाग कह डाला। इससे मुझे जरा भी रोष नही, परन्तु उन सम्भ्रान्त जनोके भ्रमका निराकरण करनेके लिए, कुछ लिखना आवश्यक हो गया। यद्यपि, इससे मेरी न तो पक्षपाती बननेकी इच्छा है और न विरोधी। किन्तु आत्माकी प्रबल प्रेरणा सदा यही रहती है कि जो मनमे हो, सो वचनोसे कहो। यदि नही कह सकते, तो तुमने अब तक धर्मका मर्म ही नही समझा।

'जैनदर्शन' के सम्पादकने वर्णीलेख पर शूद्रोके विषयमे बहुत कुछ लिखा है, आगम प्रमाण भी दिये है। मै आगमकी बातको सादर स्वीकार करता हूँ, किन्तु आगमका जो अर्थ आप लगावें, वही ठीक है, यह आप जाने। श्री १०८ कुन्दकुन्दमहाराजने तो यहाँ तक लिखा है—

त एयत्तविहत्त दाएह अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाण चुक्किज्ज छल ण घेतव्व॥

(आगममे लिखा है कि अस्पृश्य शूद्रसे स्पर्श हो जावे तो, स्नान करना चाहिये। यहाँ यह जिज्ञासा है कि अस्पृश्य क्या अस्पृश्य जातिमे पैदा होनेसे हो जाता है? यदि यह बात है तो ब्राह्मणादि ३ वर्णोंमे पैदा होनेसे सबको उत्तम होना चाहिये, परन्तु ऐसा देखा जाता हे कि यदि उत्तम जातिका निन्द्य काम करता है, तो वह चाण्डाल गिना जाता है, उससे लोग घृणा करते है, पक्तिभोजनमे उसे शामिल नही करते और वही मनुष्य जो उत्तम कुलमे पैदा हुआ, यदि मुनिधर्म अगीकार कर लेता है, तो पूज्य माना जाता है। देवतुल्य उसकी पूजा होती है, तथा उसके वाक्य आर्षवाक्य माने जाते है। अथवा वह तो मनुष्य है, उत्तम कुलके है, किन्तु जहाँ न तो कोई उपदेष्टा है और न मनुष्योका सद्भाव है ऐसे स्वयभूरमण द्वीप और समुद्रमे असंख्यात तिर्यञ्च मछली, मगर तथा स्थलचारी जीव व्रती होकर स्वर्गके पात्र होते हैं। तब कर्मभूमिके मनुष्य यदि व्रती होकर

जैनधर्म पाले, तो क्या आप रोक सकते है। आप हिन्दू न वनिये, यह कौन कहता है, परन्तु जो हिन्दू उच्च कुलवाले है, वे यदि मुनि वन जावें, तव क्या आपत्ति है ? हिन्दू शव्दका अर्थ मेरी समझमे धर्मसे सम्बन्ध नही रखता। जिस प्रकार भारतका रहनेवाला भारतीय कहता है, इसी तरह देश विशेपमे रहनेवाला हिन्दू कहलाता है। जन्मसे मनुष्य एक सदृश उत्पन्न होते है, किन्तु जिनको जैसा सम्वन्ध मिला, उसी तरह उनका परिणमन हो जाता है।

भगवान् आदिनाथके समय ३ वर्ण थे, भरतने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की, यह आदिपुराणसे विदित है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन तीन वर्णोंसे ही ब्राह्मण हुए। मूलमे ३ वर्ण कहाँसे आये ? विशेप ऊहापोहसे न तो आप ही अपनेको वैश्य सिद्ध कर सकते है, और न मै ही। क्योकि इस विपयमे मै तो पहलेसे ही अपने आपको अनभिज्ञ मानता हूँ। आपने लिखा कि आचार्य महाराज दयालु है, तव क्यो वेचारोपर दया नही करते। आप लोग अपनी त्रुटिको नही देखते। आपका जो उपकार इन शूद्रोसे होता है, वह अन्यसे नही होता। यदि वे एक दिनके लिये भी अपनी-अपनी सेवाएँ छोड देवे, तो पता लग जावेगा। आपने उनके साथ जो व्यवहार किया, यदि उसका वर्णन किया जावे, तो अश्रुपात होने लगे। वे तो तुम्हारे उन कामोको करते है, जिनसे तुम घृणा करते हो, पर तुम उसका जो प्रतिकार करते हो, सो नीचेके वाक्योसे देखो। जव तुम्हारे यहाँ पक्तिभोजन होता है, तव अच्छा-अच्छा माल तो तुम उदरमे स्वाहा कर लेते हो और उच्छिष्ट पानीसे सिंचित पत्तले उनके हवाले करते हो, वलिहारी इस दयाकी। अच्छे-अच्छे फल तो आप खा गये और काने-काने वचे, सो इन विचारोको सौप दिये, फिर इसपर वनते हो हम आर्ष पद्धतिकी रक्षा करनेवाले है।

गृद्धपक्षी मुनिके चरणोमे लोट गया, उसके पूर्व भव मुनिने वर्णन किये, सीता तथा रामचन्द्रजीको मुनि महाराजने उसकी रक्षाका भार सुपुर्द किया। अव देखिए, जहाँ गृद्ध पक्षी व्रती हो जावे वहाँ शूद्र शुद्ध नही हो सकते, यह वुद्धिमे नही आता। यदि शूद्र इन कार्योको त्याग देवे और मद्यादि पान छोड देवे तो वह व्रती हो सकता है। मन्दिर आने दो, मत आने दो, आपकी इच्छा। जिस प्रकार आप उनका वहिष्कार करते है, यदि वे भी कल्पना करो, सर्व सम्मति कर आपके साथ कोई व्यवहार न करे, तो आप क्या करेंगे ? धोवी यदि वस्त्र प्रच्छालन छोड दे, चर्मकार मृत पशु न हटावे, वसौरिन सौरीका काम न करे और

भङ्गिन शौचगृह शुद्ध न करे, तो ससारमे हाहाकार मच जावे। हाहाकारकी तो कोई वात नही, हैजा, प्लेग, चेचक और क्षय जैसे अनेक भयंकर रोगोका आश्रय हो जावेगा, अत बुद्धिसे काम लो, उनके साथ मानवताका व्यवहार करो, जिससे यह भी सुमार्गपर आवे। यह देखा जाता है कि यदि वह अध्ययन करे, तो आपके वालकोंके सदृश वी ए, एम ए, वैरिष्टर हो सकते हैं। फिर जैसे आप पञ्च पाप त्यागकर व्रती वनते हो, यदि वह भी पञ्च पाप त्यागे, तो इसका विरोध कौन कर सकता है ?

मैं मुरारमे था, एक भंगी प्रतिदिन शास्त्र-श्रवण करता था, सुनकर कुछ भयभीत भी होता था। वह हमेगा उत्सुक रहता था कि शास्त्रके समय मैं अवश्य रहूँ। जिस दिन उसका नागा हो जाता था, उस दिन वहुत खिन्न रहता था। मासादिका त्यागी था। एक दिन वह अपने मुखियाको लाया। मुखिया वोला—कुछ कहते हो ? मैंने एक नया उत्तरीय वस्त्र उसे दिया और कहा कि तुम यह वस्त्र अपने साधु महात्माको देना और उनसे हमारा जयराम कहना तथा जो वह कहें, सो उनका सदेशा हमतक पहुँचाना। दूसरे दिन वह अपने साधुका सदेश लाया कि जो वर्णीजी कहे, सो अपनेको करना चाहिए। क्या कहते हो ? मैंने कहा—जो तुम्हारे भोज होनेवाला है, उसमे माँस न वनाना। 'जो आज्ञा' कहता हुआ वह चला गया, फिर २ दिन वाद आया और कहने लगा कि हमारे जो भोज था, उसमे माँस नही वनाया गया।

आप लोगोने यह समझ रक्खा है कि जो हम व्यवस्था करे, वही धर्म है। धर्मका सम्बन्ध आत्मद्रव्यसे है न कि शरीरसे। हाँ, यह अवश्य है कि जब तक आत्मा असज्ञी रहता है, तव तक वह सम्यग्दर्शनका पात्र नही होता, सज्ञी होते ही धर्मका पात्र हो जाता है। आर्ष वाक्य है—चारो गतिवाला सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव इस अनन्त ससारके नाशक सम्यग्दर्शनका पात्र हो सकता है। वहाँ पर यह नही लिखा कि अस्पृश्य शूद्र या हिंसक सिंह या व्यन्तरादिक देव या नरकके नारकी इसके पात्र नहीं होते। जनताको भ्रममे डाल कर हर एकको वावला कह देना, कोई वुद्धिमता नही। आप जानते हैं—ससारमें यावत् प्राणी है, सर्व सुख चाहते है और सुखका कारण धर्म है। यद्यपि धर्मका अन्तरङ्ग साधन निजमे ही है, तथापि उसके विकासके लिए वाह्यसाधनोकी आवश्यकता होती है। जैसे घटोत्पत्ति मृत्तिकामे ही होती है, फिर भी कुम्भकारादि वाह्य साधनोकी आवश्यकता अपेक्षित है एव अन्तरङ्ग साधन तो आत्मामे ही है, फिर भी वाह्य साधनोकी अपेक्षा रखता है। वाह्य साधन देव-शास्त्र-

गुरु है। आप लोगोने यहाँतक प्रतिबन्ध लगा रक्खे है कि अस्पृश्य शूद्रादिको मन्दिर आनेका अधिकार नही। उनके आनेसे मन्दिरमे अनेक प्रकारके विघ्न होनेकी सम्भावना है। यदि शान्त भावसे विचार करो, तो पता लगेगा कि हानि नही लाभ ही होगा। प्रथम तो हिंसादि पाप ससारमे होते है, यदि वह अस्पृश्य शूद्र, जैनधर्मको अगीकार करेंगे तो वह महापाप अनायास कम हो जावेगे। ऐसा न हो, यदि दैवात् हो जावे, तो आप क्या करोगे? चाडालके भी राजाका पुत्र चमर ढुलता देखा गया, ऐसी कथा प्रसिद्ध है, क्या गप्प है? अथवा कथा छोडो, श्री समन्तभद्रस्वामीने रत्नकरण्डमें लिखा है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देव विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्॥

आत्मामे अचिन्त्य शक्ति है, जिस प्रकार आत्मा अनन्त ससारके कारण मिथ्यात्वके करनेमे समर्थ है, उसी प्रकार अनन्त ससारके बन्धन काटनेमे भी समर्थ है। आप विद्वान् है, जो आपकी इच्छा हो, सो लिखिये, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि अन्य कोई लिखे, उसे रोकनेकी चेष्टा करे। आपकी दया तो प्रसिद्ध है, रहो, हमे इसमे आपत्ति नही। आप सप्रमाण यह लिखिए कि अस्पृश्य शूद्रोको चरणानुयोगकी आज्ञासे धर्म करनेका कितना अधिकार है? तब हम लोगोका यह वाद, जो आपको अरुचिकर हो, शान्त हो जावेगा। श्री आचार्यमहाराजसे इस व्यवस्थाको पूछकर लिख दीजिये, जिसमे व्यर्थ विवाद न हो। केवल समालोचनासे कुछ नही, शूद्रोके विषयमे जो भी लिखा जावे, सप्रमाण लिखा जावे। कोई शक्ति नही, जो किसीके विचारोंका घात कर सके, निमित्त तो अपना कार्य करेगा, उपादान अपना करेगा।

एक महाशयने तो जैनमित्रमे यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारा क्षुल्लक पद छीन लिया जावेगा, मानो धर्मकी सत्ता, आपके हाथोमे आ गई हो। यह 'सजद' पद नही, जो हटा दिया। जैनदर्शनके सम्पादकने जो लिखा, उसका उत्तर देना, मेरे ज्ञानका विषय नही है, क्योकि मैं न आगमज्ञ हूँ और न अब हो सकता हूँ, परन्तु मेरा हृदय यह साक्षी देता है कि मनुष्यपर्यायवाला, चाहे वह किसी जातिका हो, कल्याणमार्गका पात्र हो सकता है। शूद्र भी सदाचारका पात्र है। हाँ, यह अन्य बात है कि आप लोगोके द्वारा जो मन्दिर निर्माण किये गये है, उनमे मत आने दो। गवर्नमेट भी ऐसा कानून आपके अनुकूल बना देवे, परन्तु जो सिद्ध क्षेत्र हैं, कोई आपको अधिकार नही, जो उन्हे वहाँ जानेपर रोक लगा सको। जो

आपके मन्दिरमे शास्त्रहै, उन्हे न बाँचने दो, किन्तु जो पब्लिक वाचनालय है, उनमे आप उन्हे नही मना कर सकते। यदि वह पञ्च पाप छोड देवे, और रागादि रहित आत्माको पूज्य मानें, अर्हंत्का स्मरण करें, तो क्या रोक सकते हो ? अथवा, जो आपकी इच्छा हो, सो करो।

मुझे धमकी दी कि पीछी कमण्डलु छीन लेवेगे, छीन लो, सर्व अनुयायी मिल जाओ, चर्या बन्द कर दो, परन्तु जो हमारी श्रद्धा धर्ममे है, उसे भी छीन लोगे ? मेरा हृदय किसीकी वन्दरघुडकीसे नही डरता। मेरे हृदयमे तो दृढ विश्वास है कि अस्पृश्य शूद्र सम्यग्दर्शन और व्रतोका पात्र है, मन्दिर आने-जानेकी वात आप जाने, या जो आचार्य महाराज कहे, उसे मानो। यदि अस्पृश्यताका सम्वन्ध शरीरसे है, तो रहो, आत्माकी क्या हानि है ? यदि आत्मासे है, तो जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया, फिर अस्पृश्यता कहाँ रही ? मेरा तो विश्वास है कि गुणस्थानोकी परिपाटीसे जो मिथ्यागुणस्थानवर्ती है, वह पापी है, चाहे वह उत्तम वर्णका क्यो न हो ? यदि मिथ्यादृष्टि है, तो परमार्थसे पापी है, यदि सम्यक्त्वी है, तो उत्तम आत्मा है। यह नियम शूद्रादि चारों वर्णो पर लागू है। परन्तु व्यवहारमे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शनका निर्णय वाह्य आचरणोसे है, अत जिनके आचरण शुभ है, वे ही उत्तम कहलाते है, जिनके आचरण मलिन है, वे जघन्य है। (एक उत्तम कुलवाला, यदि अभक्ष्य भक्षण करता है। वेश्यागमनादि पाप करता है, तो उसे भी पापी जीव मानो, उसे भी मन्दिर मत आने दो, क्योकि वह शुभाचरणसे पतित है, और एक अस्पृश्य सदाचारी है, तो वह भगवान्के दर्शनका अधिकारी आपके मतसे न हो, परन्तु पचम गुणस्थानवाला अवश्य हो सकता है।)

(पापत्यागकी महिमा है, उत्तम कुलमे जन्म लेनेसे उत्तम हो गये, यह कदाग्रह छोडो। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे है, कदाचारसे नही। नीच कुलीन मलिनाचारसे कलकित है, माँस खाते है, मृत पशुओको ले जाते हैं और आपके शौचगृह साफ करते है, इसीसे तो उन्हे अस्पृश्य कहते हो तथा पक्तिभोजनमे आप उन्हे उच्छिष्ट भोजन देते हो। तत्त्वसे कहो, उन्हे अस्पृश्य वनानेवाले आप लोग है। इन पापोंसे यदि वे परे हो जावे, तव भी आप क्या उन्हे अस्पृश्य मानेगे ? वुद्धिमे नही आता। आज एक भगी यदि ईसाई हो जाता है, और पढ लिखकर डाक्टर हो जाता है, तो आप लोग उसकी दवा गट-गट पीते है या नही ? क्यो उससे स्पर्श कराते हो ?) आपसे तात्पर्य वहुभाग जनतासे है। आज जो पाप करते है, वे यदि

किसी आचार्य महाराजके सानिध्यको पाकर पापोका त्याग कर देवे, तो क्या वे साधु नही हो सकते ? व्याघ्रीने सुकौशल स्वामीके उदरको विदारण किया और वही श्रीकीर्तिधर मुनिके उपदेशसे विरक्त हो समाधिमरण कर स्वर्ग-लक्ष्मीकी भोक्ता हुई। अत सर्वथा किसीका निषेध कर अधर्मके, भागी मत बनो। हम तो सरल मनुष्य हैं, जो आपकी इच्छा हो सो कह दो, आप लोग ही जैनधर्मके ज्ञाता और आचरण करनेवाले रहो, परन्तु ऐसा अभिमान मत करो कि हमारे सिवाय अन्य कोई कुछ नही जानता।

पीछी कमण्डलु छीन लेवेगे, यह आचार्य महाराजकी आज्ञा है, सो पीछी कमण्डलु तो बाह्य चिह्न हैं, इनके कार्य तो कोमल वस्त्र तथा अन्य पात्रसे हो सकते हैं। पुस्तक छीननेका आदेश नही दिया, इससे प्रतीत होता है कि पुस्तक ज्ञानका उपकरण है, वह आत्माकी उन्नतिमे सहायक है उसपर आपका अधिकार नही, जैन दर्शनकी महिमा तो वही आत्मा जानता है, जो अपनी आत्माको कषायभावोसे रक्षित रखता है। अस्तु, हरिजन-विषयक यह अन्तिम वक्तव्य देकर, मै इस ओरसे तटस्थ हो गया।

अक्षय तृतीया

एक दिन श्रीधनवन्तीदेवीके यहाँसे आहार कर धर्मशालामे आये। मध्याह्नकी सामायिकके बाद धवल ग्रन्थका स्वाध्याय किया। श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोंने, जो कि मूलनिवासी इटावाके हैं, बनारस विद्यालयका घाट बनवानेके लिये १०००) एक सहस्र रुपया अपनी धर्मपत्नीके नाम देना स्वीकृत किया। श्रीसोहनलालजी बहुत ही भद्र आदमी हैं। आपने सम्मेदशिखरजीमे तेरहपन्थी कोठीमे एक विशाल मन्दिर बनवाया है, तथा उसमे चन्द्रप्रभ भगवान्‌की शुभ्रकाय विशाल मूर्ति विराजमान कराई है। यदि कोई परिश्रम करता, तो घाटके १०००००) एक लक्ष रुपया अनायास हो जाता। यहाँ पसारी टोलाके मन्दिरमे पुष्कल स्थान है, अत अधिकाश शास्त्रप्रवचन यही होता था।

वैशाख सुदी ३ अक्षय तृतीयाका दिन था, प्रात.काल प्रवचनके बाद कुछ कहनेका अवसर आया, तो मैने कहा कि आजका दिन महान पवित्र और उदारताका दिन है। आज श्रीआदिनाथ तीर्थंकरको श्रेयान्स राजाने इक्षुरसका आहार दिया था, यह वर्णन श्री आदिपुराणमे पाया जाता

है, इसी कारण राजा श्रेयान्सको श्री आदिनाथके अग्रज सुपुत्र भरत चक्रवर्तीने दानतीर्थके आदिविधाताकी पदवी प्रदान की थी। यह पर्व भारतवर्षमे आजतक प्रचलित है, और इसके प्रचलित रहनेकी आवश्यकता भी है, क्योकि हमारा जिस क्षेत्रमे जन्म हुआ है, वह कर्मभूमिके नामसे प्रसिद्ध है (यहाँपर मनुष्य समाज एक सदृश नही है। कोई वैभवशाली है, तो किसीके तनपर वस्त्र भी नही है। कोई आमोद प्रमोदमे अपना समय यापन कर रहा है, तो कोई हाहाकारके शब्दो द्वारा आक्रन्दन कर रहा है। कोई अपने स्त्री, पुत्र, भ्राता आदिके साथ तीर्थयात्रा कर, पुण्यका पात्र हो रहा है, तो कोई उसी समय अपने अनुकूल प्राणियोके साथ वेश्यादि-व्यसनोमे प्रवृत्ति कर, पापपुञ्जका उपार्जन कर रहा है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि कर्मभूमिमे अनेक प्रकारकी विषमता देखी जाती है। यही विषमता 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस सूत्रकी यथार्थता दिखला रही है।) जो ससारसे विरक्त हो गये, और जिन्होने अपनी क्रोधादि विभाव परिणतियो पर विजय प्राप्त कर ली है, उनका यही उपकार है, कि प्रजाको सुमार्ग पर लगावे, और हम लोगोको उनके निर्दिष्ट मार्गपर चलकर उनकी इच्छाकी पूर्ति करनी चाहिये तथा उनकी वैयावृत्य कर अपना जीवन सफल करना चाहिए। वे आहारको आवे, तो यथागम रीतिसे आहारदान देकर उन्हे निराकुल करनेका यत्न करना चाहिये। (जो विद्वान् है, उन्हे उचित है, कि अपने ज्ञानके द्वारा ससारका अज्ञान दूर करनेका प्रयत्न करे तथा हम अज्ञानीजनोको उचित है, कि उनके परिवारादिके पोपणके अर्थ भरपूर द्रव्य दे।) (यदि हमारे धनकी विपुलता है, तो उसे यथोचित कार्योमे प्रदान कर जगत्का उपकार करे, जगत्का यह काम है, कि उसके प्रति कृतज्ञताका भाव रक्खे। यदि सचित्त धनका उपयोग न किया जावेगा, तब या तो उसे दायादगण अपनावेगा या राष्ट्र लेगा। जब ससारकी यह व्यवस्था है, तब पुष्कल द्रव्यवाले आगे आकर बगाल तथा पजाव आदिके जो मनुष्य गृहविहीन होकर दु खी हो रहे है, उन्हे सहायता पहुँचावे। जिनके पास पुष्कल भूमि है उसमे गृहविहीन मनुष्योको वसावे तथा कृषि करनेको देवे। जिनके पास मर्यादासे अधिक वस्त्रादि है, वे दूसरोको देवे, मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि आप जो भोजन ग्रहण करते है, उसमेसे भी कुछ अश निकालकर शरणागत लोगोकी रक्षामे लगा दो। यदि इस पद्धतिको अपनाया जावेगा, तो जनता क्रान्तिसे स्वतः दूर रहेगी, अन्यथा वह दिन शीघ्र आनेवाला है, जिस दिन लोग किसीकी अनावश्यक

सम्पत्तिको सहन नही करेंगे, उसे बलात् छीनकर जनताके उपयोगमे लावेंगे। अत. समयके पहले ही अपनी परिणतिको सुधारो और यथेष्ट दान देकर परलोककी रक्षा करो। धनवन्तीदेवीने आपके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। सचित द्रव्यका, यदि अन्तमे सदुपयोग हो जावे, तो यह दाताकी भावी उत्तम परिणतिका सूचक है। सब लोग यदि यही नियम कर ले, कि हमारे दैनिक भोजन तथा वस्त्रादिमे जो व्यय होता है, उसमेसे १) मे १ पैसा परोपकारमे प्रदान करेंगे, तो मेरी समझसे जैन समाजमे प्रतिवर्ष लाखो रुपये एकत्रित हो जावे और उनसे समाज सुधारके अनेक कार्य अनायास पूर्ण हो जावे।

●

विद्यालयका उद्घाटन और विद्वत्परिषद्की बैठक

श्री प० कमलकुमारजी व्याकरणतीर्थ, जो पहले इन्दौरमे सेठजीके विद्यालयमे थे, इस्तीफा देकर यहाँ आये। आप बहुत ही योग्य और स्वच्छ हृदयके विद्वान् हैं। श्री ज्ञानधन पाठशालाके लिए सुयोग्य विद्वान् की आवश्यकता थी, सो इनके द्वारा पूर्ण हो गयी। पाठशालाका उद्घाटन-समारोह करनेका विचार हुआ, उसी समय अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद्की कार्यकारिणी समिति बुलानेका भी विचार स्थिर हुआ। सर्वसम्मतिसे इसके लिए ज्येष्ठ शुक्ल ५का दिन निश्चय किया गया। उत्सवकी तैयारियाँ की गई। धर्मशालाके प्राङ्गणमे सुन्दर मडप बनाया गया। उद्घाटन-समारोहके अध्यक्ष श्री कलक्टर साहब बनाये गये। बाहरसे श्री प० बशीधरजी न्यायालकार इन्दौर, प० कैलाशचन्द्र जी, पं० फूलचन्द्रजी, प० महेन्द्रकुमारजी, प० खुशालचन्द्रजी बनारस, प० दयाचन्द्रजी, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, प० वर्धमानजी सोलापुर, प० बशीधरजी बीना, प० दरबारीलालजी, प० राजेन्द्रकुमार जी, प० राजकृष्णजी देहली और प० बशीधरजीके सुपुत्र श्री प० धन्य-कुमारजी इन्दौर आदि अनेक विद्वान् पधारे।

उत्सवके प्रारम्भमे भी प० कैलाशचन्द्रजीने ज्ञानधनकी बहुत सुन्दर व्याख्या की। अनेक विद्वानोके उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए। श्री कलक्टर साहबने त्यागपर बहुत बल दिया। उन्होने यह सिद्ध किया कि त्यागसे ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सकता है, आजकल दु खका मूल कारण परिग्रहकी इच्छा है, इसका जिसने परित्याग कर दिया, उसके सुखका वर्णन कौन कर सकता है? सम्यग्ज्ञानकी उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए, मैने भी कुछ कहा। प० राजेन्द्रकुमारजीने जैनधर्मके बन्धतत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला। उद्घाटन-समारोहके अनन्तर विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। उसमे खास चर्चाका विषय यह था कि धवल सिद्धान्तके ९३वे सूत्रमे 'सजद पद आवश्यक है', ऐसा निर्णय सागरमे एकत्रित विद्वत्सम्मेलनने बहुत ही तर्क-वितर्क—ऊहापोहके साथ किया था, उसके लगभग ३ साल बाद श्रीमान् आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने ताम्रपत्रकी प्रतिसे 'सजद' पद हटानेका आदेश दिया। इस आदेशका विचारक विद्वानोके हृदय पर अच्छा प्रभाव नही पडा। कार्य-कारिणीमे इस विषयको लेकर निम्नप्रकार प्रस्ताव पास हुआ—

'फाल्गुन शुक्ला ३ वीर निर्वाण सवन २४७६ को गजपन्थामे आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज द्वारा की गई, जीवस्थान सत्प्ररूपणाके ९३वे सूत्रसे ताडपत्रीय मूल प्रतिमे उपलब्ध 'सजद' पदके निष्कासनकी घोपणापर विचार करनेके वाद भारतवर्षीय दि० विद्वत्परिषद्की यह कार्यकारिणी जून, सन् ४७ मे सागरमे आयोजित विद्वत्सम्मेलनके अपने निर्णयको दुहराती है, तथा इस प्रकारसे ताम्रपत्रीय एव मुद्रित प्रतियोमे 'सजद' पद निष्कासनकी पद्धतिसे अपनी असहमति प्रकट करती है।'

बैठक समाप्त होनेपर, विद्वान् लोग तो अपने-अपने स्थानपर चले गये, पर मेरे मनमे निरन्तर यह विकल्प उठता रहा, कि एक ऐसा अवसर आता जो ५ निष्णात विद्वान् एक निरापद स्थानमे निवास कर जैनधर्मके मार्मिक सिद्धान्तको जनताके समक्ष निर्भीक होकर वचनो द्वारा प्रख्यापन करते, तथा यह कहते आपलोग इसका निर्णय करे। यदि आप महाशयो के परीक्षा-विमर्शमे यह तत्व अभ्रान्त ठहरे, तो उसका प्रचार करिये, यदि किसी प्रकारकी शका रहे, तो निर्णय करनेका प्रयास करिये तथा जो सिद्धान्त लिखे जावे, वहाँपर अन्यने किस रीतिसे उसे माना है, यह भी दिग्दर्शनमे आ जावे। सबसे मुख्य तत्त्व आत्माका अस्तित्व है, इसके उत्तरमे अनात्मीय पदार्थो पर विचार किया जावे। व्याख्यानो द्वारा सिद्धान्तके दिखानेका जितना प्रयास किया जावे, उससे अधिक लेखवद्ध प्रणालीसे भी दिखाया जावे। इन कार्यो के लिए २५०००) वार्षिक व्यय की आवश्यकता है। परीक्षणके तौरपर ४ वर्ष यह कार्य करवाया जावे। जो पण्डित इस कार्यको करे उन्हे २००) नकद और भोजन दिया जावे। इनमे जो मुख्य विद्वान् हो उन्हे २५०) दिये जावे। इस तरह ४ पडितो को ८००) और मुख्य पडितको २५०) तथा सबका भोजन व्यय २५०) सब मिलाकर १३००) मासिक तो विद्वानोका हुआ। इसके बाद ४ अग्रेजी साहित्यके विद्वान् रक्खे जावे, ४००) उन्हे दिया जावे, १००) भोजन व्यय तथा २००) भृत्योको, इस तरह २०००) मासिक यह हुआ। वर्षमे २४०००) हुआ, १०००) वार्षिक यात्राका व्यय। इस प्रकार शान्तिपूर्वक कार्य चलाया जावे तो बहुत कुछ प्रश्न सरल रीतिसे निर्णीत हो जावे। एक आदमी समझ लेवे १ गजरथ यही हुआ। इससे बहुत कालके लिए जैनधर्मके अस्तित्वकी सामग्री एकत्र हो जावेगी।

एक दिन श्री जुगलकिशोरजी मुख्त्यार और प० परमानन्दजी कलकत्तासे लौटकर आये और कहने लगे कि वीरसेवामन्दिरकी नीव दृढतम हो गई। कलकत्तावाले बाबू छोटेलालजी तथा बाबू नन्दलालजी-

की इस ओर अच्छी दृष्टि है। आप साहित्यके महान् अनुरागी है। आप यह चाहते है कि मानवमात्रके हृदयमे जैनधर्मका विकास हो जावे। जैनधर्म तो व्यापक धर्म है, हम किसीको धर्म देते है, यही बडी भारी भूल है। धर्म तो आत्माकी वह परिणतिविशेष है, जो आत्माको ससार बन्धनसे मुक्त करा देती है। वह परिणति शक्तिरूपसे जीव मात्रमे है।
यह सवाद सुनकर हृदयमे प्रसन्नता हुई।

अनेक समस्याओंका हल—स्त्रीशिक्षा

पुरुषवर्गने स्त्रीसमाजपर ऐसे प्रतिबन्ध लगा रक्खे है कि उन्हे मुखको निरावरण करनेमे भी सकोचका अनुभव होता है। कहाँ तक कहा जावे ? मन्दिरमे जब वे श्री देवाधिदेवके दर्शन करती है, तब मुखपर वस्त्रका आवरण रहनेसे वे पूर्णरूपसे दर्शनका लाभ नही ले सकती। यद्वा-तद्वा दर्शन करनेके अनन्तर यदि शास्त्रप्रवचनमे पहुँच गई, तो वहाँ पर भी वक्ताके वचनोका पूर्ण रूपसे कर्णो तक पहुँचना कठिन है। प्रथम तो कर्णो पर वस्त्रका आवरण रहता है तथा पुरुषोसे दूरवर्ती उनका क्षेत्र रहता है। दैवयोगसे किसीकी गोदमे बालक हुआ, और उसने क्षुधातुर हो रोना प्रारम्भ कर दिया, तो क्या कहे ? सुनना तो एक ओर रहा, वक्ता प्रभृति मनुष्योके वाग्वाणोका प्रहार होने लगता है—चुप नही करती बच्चोको ? क्यो लेकर आती है ? सबका नुकसान करती है, बाहर क्यो नही चली जाती इन वचनोको श्रवण कर शास्त्रश्रवणकी जिज्ञासा विलीन हो जाती है। अत पुरुषवर्गको उचित है, कि वह जिससे जन्मा है, वह स्त्री ही तो है, उसके प्रति इतना अन्याय न करे, प्रत्युत सबसे उत्तम-स्थान उन्हे शास्त्रप्रवचनमे सुरक्षित रखे। उनकी अशिक्षा ही उन्हे सदा अपमानित करती है।

मेरा तो ख्याल है कि यदि स्त्रीवर्ग शिक्षित होकर, सदाचारी हो जावे, तो आज भारत क्या जितना जगत मनुष्योके गम्य है, वह सभ्य हो सकता है। आज जिस समस्याका हल उत्तमसे उत्तम मस्तिष्कवाले कर सके, उसका हल अनायास हो जायगा। इस समय सबसे

समस्या 'जनसख्याकी वृद्धि किस उपायसे रोकी जाय' है। शिक्षित स्त्री-वर्ग इस समस्याको अनायास हल कर सकता है। जिस कार्यके करनेमें राजसत्ता भी हार मानकर परास्त हो गई, उसे सदाचारिणी स्त्री सहज ही कर सकती है। वह अपने पतियोको यह उपदेश देकर सुमार्गपर ला सकती है, कि जब बालक गर्भमे आ जावे, तबसे आप और हमारा कर्तव्य है, कि यह बालक उत्पन्न होकर जबतक ५ वर्षका न हो जावे, तबतक विषय-वासनाको त्याग देवे। ऐसा ही प्रत्येक स्त्री सभ्य व्यवहार करे-इस प्रकारकी प्रणालीसे सुतरा वृद्धि रुक जावेगी। इसके होनेसे जो लाखो रुपया डाक्टर तथा वैद्योके यहाँ जाता है, वह बच जावेगा तथा जो टी० बी के चिकित्सागृह है वे स्वयमेव धराशायी हो जावेगे। अन्नकी जो त्रुटि है, वह भी न होगी। दुग्ध पुष्कल मिलने लगेगा। गृहवासकी पुष्कलता हो जावेगी, अत स्त्रीसमाजको सभ्य बनानेकी आवश्यकता हैं। यदि स्त्रीवर्ग चाहे तो बडे-बडे मिलवालोको चक्रमे डाल सकता है। उत्तमसे उत्तम जो धोतियाँ मिलोसे निकलती हैं यदि स्त्रियाँ उन्हे पहिनना बन्द कर देवे, तो मिलवालोंकी क्या दशा होगी? सो उन्हे पता चल जावेगा। करोडोका माल यो ही बरबाद हो जायेगा। यह कथा छोडो, आज स्त्री काचकी चूडी पहिनना छोड दे, और उसके स्थानपर चाँदी-सुवर्णकी चूडी का व्यवहार करने लगे तो चूडीवालोकी क्या दशा होगी? रोनेको मजदूर न मिलेगा। आज स्त्रीसमाज चटक-मटकके आभूषणोको पहिनना छोड दे, तो सहस्रो सुनारोकी दशा कौन कह सकता है? इसी तरह वे पौडर लगाना छोड दे, तो विदेशकी पौडर बनानेवाली कम्पनियोको अपना पाउडर समुद्रमे फेकना पडे। कहनेका तात्पर्य यह है कि स्त्री-समाजके शिक्षित और सदाचारसे सम्पन्न होते ही ससारके अनेक व्यापार बन्द हो सकते हैं। पञ्चम कालमे चतुर्थकालका दृश्य यदि देखना है, तो स्त्रीसमाजकी उपेक्षा न कर उसे सुशिक्षित बनाओ। सुशिक्षितसे तात्पर्य उस शिक्षासे है, जिससे वे अपने कर्त्तव्यका निर्णय स्वय कर सके।

इटावामें चातुर्मासका निश्चय

जब मै ईसरीसे लौटकर सागर गया था, तब वहाँकी समाजने हीरक-जयन्ती-महोत्सव करनेका निश्चय किया था, पर कारणवश उस समय वह आयोजन स्थगित हो गया था। साधारण उत्सव हुआ था। तदनन्तर

सर्व समाजने 'वर्णी अभिनन्दन-ग्रन्थ' समर्पणके साथ-साथ हीरक-जयन्ती महोत्सव करनेका निश्चय किया। व्यवस्थाके लिये समितिका निर्माण हुआ। पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य उसके सयुक्तमत्री हुए तथा प० खुशालचन्द्रजी गोरावाला अभिनन्दन-ग्रन्थके सम्पादक निश्चित हुए। अव तक अभिनन्दनग्रन्थ तैयार होनेकी दशामे आ गया था, इसलिये उसके समर्पण एव हीरक-जयन्ती महोत्सवको सम्पन्न करानेके लिये श्री प० पन्नालालजी इटावा आये। उन्होने यहाँकी समाजके समक्ष यह वात रखी, जिससे समाजको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सवने यह निश्चय किया कि दीपावलीके वाद इस उत्सवका आयोजन किया जावे। प० पन्ना-लालजी वहुत ही श्रद्धालु और कर्मठ जीव हैं। आपकी लोगोने योग्यता नही जानी।

लोगोकी यह दृष्टि बन गई है कि वर्णीजीने हमारा उपकार किया है, इसलिए हमे इनके प्रति कृतज्ञताका भाव प्रकट करना चाहिये। परन्तु यथार्थ वात यह है कि ससारमे सर्वमनुष्य अपने-अपने गीत गाते हैं, कोई किसीका उपकारी नही। केवल आत्मामे जो कषाय उत्पन्न होती है, उसे दूर करनेका प्रयास करते है। कषायसे आत्मामे एक प्रकार-की बेचैनी हो जाती है, वह बेचैनी ही कार्यमे प्रवृत्ति कराती है। जैसे जिस समय हमको क्रोध उत्पन्न होता है, उस समय परका अनिष्ट करनेकी इच्छा होती है। उससे हमको कुछ लाभ नही, परन्तु वह इच्छा जव तक है, तव तक बेचैनीसे विकलता होती है। जव परका अनिष्ट हो गया, तव वह विकलता मिट जाती है। हमारी श्रद्धा तो यह है कि क्रोध-कपायका कार्य ही इसका कारण है। वास्तवमे जो विकलता थी, वह क्रोधकषायसे थी, कार्य होनेसे हमारा क्रोध मिट गया। विचार कर देखो—न हम क्रोध करते, न विकलता होती, अत क्रोधको न होने देना ही हमारा पुरु-पार्थ है। इसका अर्थ यह है कि क्रोध होनेपर उसमे आसक्त न होना। यही आगामी क्रोध न होनेका उपाय है। क्रोध यह उपलक्षण है। मोह-कर्मके उदयसे यावत् (जितने) भाव हो, उन सवमे आसक्त न होना। कहाँ तक कहा जावे? देखने-जाननेमे जो पदार्थ आवें, उनके आनेकी रोक-टोक नही हो सकती। उनमें रागादि नही करना, यही ससार-बन्धनसे मुक्त होनेका अपूर्व मार्ग है—अद्वितीय उपाय है। आत्मद्रव्यकी परिणति आत्मातिरिक्त पदार्थोंके सम्वन्धसे ही कलुषित हो जाती है। कलुषितका अर्थ यह है कि उन पदार्थोंमे निजत्व कल्पनाकर हम किसी पदार्थमे राग करते हैं, और जो हमारे रागके विरुद्ध होता है, उसे पर मानते हैं, तथा

उसके वियोगका यत्न करते हैं। इस प्रक्रियाको करते-करते अन्तमें इस पर्यायका अन्त आ जाता है, अनन्तर जिस पर्यायमे जाते हैं, वहाँ भी यही प्रक्रिया काममे लाते हैं, इस तरह अनन्त ससारके पात्र होते हैं। यथार्थमे न तो अन्य पदार्थ हमारा है, और न हम अन्यके हैं, तव क्यो उनमे निजत्व कल्पना करते हैं? यही कल्पना दूर करनेके अर्थ आगमाभ्यास है। आगममे तो इनका सुन्दर कथन है कि वह हमारे अनुभवमे आ जावे, तो कल्याणमार्ग अति सुलभ हो जावे।

आत्मा नामक एक पदार्थ हैं, उसका अनादि कालसे अजीव पुद्गलके साथ सम्वन्ध है। आत्मा चेतना गुणवाला द्रव्य है, पुद्गल जड है। उसका लक्षण स्पर्श-रस-गन्ध-रूप है—जहाँ ये पाये जावे, उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गलके साथ जीवका ऐसा सम्वन्ध है कि यह जीव उसे निज मान लेता है। निज मानकर उसको सदा रखनेका प्रयास करता है। यदि कोई उसमे वाधा पहुँचाता है, तो उसे निज शत्रु मान लेता है। वास्तवमे यह कषाय ही नाना खेल रचता है, इसलिए इसके निर्मूल करने का प्रयत्न करो।

चातुर्मासका समय निकट आ रहा था, इसलिए कई स्थानोके लोग अपने-अपने यहाँ चातुर्मास करनेकी प्रेरणा करते थे और मैं सकोचके कारण किसीको अप्रसन्न नही करना चाहता था। परमार्थसे यह हमारे हृदयकी बहुत भारी दुर्बलता है। जहाँ चौमासा करना इष्ट नही था, वहाँके लोगोको स्पष्ट मनाकर देनेमे हानि नही थी, परन्तु मैं ऐसा नही कर सका। अन्तमे समाजकी अत्यधिक प्रेरणासे इटावामे ही चातुर्मास करनेका निश्चय कर लिया।

इस वर्ष इटावामे वैसे ही गर्मीका अधिक त्रास था, फिर दो आषाढ हो गये इससे ठीक 'दूवली और दो आषाढवाली' कहावत चरितार्थ हो गई। अस्तु, जिस किसी तरह ग्रीष्मकाल व्यतीत हुआ। आकाशमे श्यामल घन-घटा छाने लगी और जव कभी बूँदा-बाँदी होनेसे लोगोको गर्मीकी असह्य वेदनासे त्राण मिला। कहाँ तो वे मुनिराज थे, जो जेठ मासकी दुपहरियोमे पर्वतकी चट्टानोपर आतापन योग धारण करते थे, और कहाँ मैं, जो बुद्धिपूर्वक शीतलसे शीतल स्थान खोजकर उसमे ग्रीष्मकाल वितानेका प्रयास करता हूँ? वस्तुत शरीरसे ममत्वभाव अभी दूर हुआ नही। मुखसे कहना वात दूसरी है, और अमलमे लाना वात दूसरी है। यदि शरीरसे ममत्व छूट गया होता, तो क्या सर्दी, क्या

गर्मी और क्या वारिस ? सब एक सदृश ही रहते। चातुर्मासका निश्चय करते समय मनमे यह विचार किया कि अन्यत्रकी अपेक्षा इटावामे रहना ही अच्छा है। कारण कि यहाँ जल-वायुकी अनुकूलता है, जनता भी भद्र है। चार मासमे सानन्द अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन करो, गपोडावादसे वचो, केवल स्वात्मचिन्तनामे काल लगाओ। क्षयोपशमज्ञान है, ज्ञेयान्तर-मे जावे, जाने दो, पर राग-द्वेपकी मात्रा न हो, यही पुरुषार्थ करो, व्यर्थ दुखी मत होओ।

सिद्धचक्रविधान

आषाढ शुक्ला अष्टमी स० २००७ से सिद्धचक्रविधानका पाठ हुआ। मनोहररूपसे पूजन सम्पन्न हुई, परन्तु परिणामोमे शान्ति किसीके नही। केवल गल्पवादमे ही सर्व परिणमन हो जाता है। अन्तरङ्गकी निर्मलता होना दूर है। इस समय चिन्तन तो इस वातका होना चाहिये कि हमारे ही समान चतुर्गतिरूप ससारमे परिभ्रमण करनेवाली अनन्त आत्माएँ ज्ञानावरणादि कर्ममलको दूर कर आत्माकी शुद्ध दशाको प्राप्त हुई है, आत्मामे अशुद्धता परपदार्थके सम्बन्धसे आती है। जिस प्रकार स्वर्णमे तामा, पीतल आदि धातुओके समिश्रणसे अशुद्धता आती है, उसी प्रकार आत्मामे कर्मरूप पुद्गलद्रव्यके सम्बन्धसे अशुद्धता आती है। इस अशुद्धताका कारण आत्माकी अनादिकालीन मोह तथा रागद्वेपरूप परिणति है। मोहके कारण यह स्वरूपको भूलकर अपनेको पररूप समझने लगता है (जिस प्रकार शृगालोकी मादमे पला सिहका बालक अपनेको भी शृगाल समझने लगता है। इसी प्रकार मनुष्यादिरूप पुद्गलजन्य पर्यायोंके सम्पर्कमे रहनेवाला जीव अपनेको मनुष्यादि समझने लगता है। मनुष्यादि पर्यायोके साथ इस जीवकी इतनी घनी आत्मीय वुद्धि हो जाती है कि वह उन्हे छोडनेमे वडे कष्टका अनुभव करता है। रागके कारण अन्य अनुकूल पदार्थोमे इष्ट वुद्धि करता है, और द्वेपके कारण अन्य प्रतिकूल पदार्थोमे अनिष्ट वुद्धि करता है। जिसे इष्ट मान लेता है, सदा उसके सयोगकी इच्छा करता है, तथा उसके वियोगसे डरता है, और जिसे अनिष्ट मान लिया है, सदा उसके वियोगकी भावना रखता है, तथा उसके सयोगसे डरता है। मोहकी पुट साथमे रहनेसे वह पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समझनेमे असमर्थ रहता है, इसलिये जिन कारणोसे सुख होना चाहिये, उन कारणोसे यह दुखका अनुभव करता है। जैसे किसी मनुष्यकी स्त्री

मर गई, यहाँ विवेकी मनुष्य तो यह सोचता है कि स्त्रीके निमित्तसे गृहस्थाश्रमकी नाना आकुलताओंका पात्र होना पडता था, अब स्वयमेव वह सम्बन्ध छूट गया, अत आनन्दका अवसर हाथ आया है, और मोही जीव सोचता है कि हाय मैं दु खी हो गया। तत्त्वदृष्टिसे विचार करो, तो यहाँ दु:खका कारण क्या है? उस जीवके हृदयमे स्त्रीके प्रति जो रागभाव था और मोहके कारण जो वह स्त्रीको सुखका कारण मान रहा था, वही तो दु खका कारण था। यदि उसके हृदयमे यह भाव दृढ होता कि सुख हमारी आत्माका गुण है, स्त्री उसका कुछ सुधार-विगाड नही कर सकती, तो उसके मरने पर उसे दु ख नही होता। इस तरह मोहजन्य कलुषित-परिणतिके कारण यह जीव द्रव्यकर्मोको ग्रहण करता है और उसके उदयमे पुन कलुषित-परिणति करता है। जिन्होने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके द्वारा इस विपरीतपरिणतिको दूर कर परद्रव्यसे अपना सम्वन्ध छुडा लिया है, वे सिद्ध कहलाते हैं। जीवकी यह अचिन्त्य अव्यावाधत्व आदि गुणोसे युक्त आत्यन्तिक अवस्था है। सिद्धचक्रका पाठ स्थापित करनेका भाव यही है कि हम उनके गुणोंका स्मरण कर इस वातका प्रयत्न करे कि हम भी उनके समान हो जावे। उनके गुणगानमे ही समययापन किया और उन जैसी अवस्था हमारी न हो सकी, तो इससे क्या लाभ हुआ? आठ दिन तक विधिपूर्वक यह पाठ चला, श्रावणकृष्णा प्रतिपदाके दिन हवन पूर्ण हुआ। इस आयोजनमे पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोका जमाव अधिक रहता था। पुरुषवर्गकी श्रद्धा न हो सो वात नही, परन्तु उन्हे व्यवसायसम्बन्धी कार्योमे व्यस्त रहनेके कारण अवसर कम प्राप्त हो पाता था। मैने इन दिनोमे प्रवचनके अतिरिक्त जनसंपर्कसे दूर रहनेका प्रयास किया और निरन्तर यह विचार किया—

और कार्यकी छोडो आशा
आतम हित कर भाई रे।
यही सार जगतमें है उत्तम
अन्य सकल भव-जाला रे।
परको मान निजातम भूला
सदा भ्रमत भव-वासा रे।
कहे सुखी भ्रमसे निजको तूँ
भाँग पियो वौराया रे।
परको दे उपदेश सुखी हुए
मानत निजको साधू रे।

वक-वक करत वहुत दिन वीते
करत न निजको वाता रे।
शिव सुत अव निजकी निज मानो
परका कर निरवारा रे।

रक्षाबन्धन और पर्यूषण

श्रावण शुल्का २ स० २००७ को १५ अगस्तका उत्सव नगरमे था। सदियोके वाद भारतवर्ष आजके दिन वन्धनसे मुक्त हुआ है, इसलिये प्रत्येक भारतवासीके हृदयमे प्रसन्नताका अनुभव होना स्वाभाविक है। आजके दिन भारतको स्वराज्य मिला, ऐसा लोग कहते है, पर परमार्थसे स्वराज्य कहाँ मिला? जब आत्मा परपदार्थके आलम्बनसे मुक्त हो आत्माश्रित हो जावे, तब स्वराज्य मिला, ऐसा समझना चाहिये। खेद इस वातका है कि इस स्वराज्यकी ओर किसीकी दृष्टि नही जा रही है, हम लोग अपनेको नही सभालते, ससारको उपदेश देते हैं कि कल्याणमार्ग पर चलो, परन्तु हम स्वय कल्याणमार्ग पर नही चलते। अन्यको उपदेश देते हैं कि क्रोध मत करो, पर स्वय क्षमाकी अवलेहना करते है। इस स्थितिमे पारमार्थिक स्वराज्यकी प्राप्ति होना दुर्लभ है।

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा स० २००७ को रक्षाबन्धन पर्व आया। यह पर्व सम्यग्दर्शनके वात्सल्य अङ्गका महत्त्व दिखलानेवाला है। सम्यग्दृष्टिका स्नेह धर्मसे होता है और धर्म विना धर्मीके रह नही सकता, इसलिए धर्मीके साथ उसका स्नेह होता है। जिसप्रकार गौका वछडेके साथ जो स्नेह होता है, उसमे गौको वछडेको ओरसे होनेवाले प्रत्युपकारकी गन्ध भी नही होती, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि धर्मात्मासे स्नेह करता है, तो उसके वदले वह उससे किसी प्रत्युपकारकी आकाक्षा नही करता। कोई माता अपने शिशुसे स्नेह इसलिए करती है कि यह वृद्धावस्थामे हमारी रक्षा करेगा, पर गौको ऐसी कोई इच्छा नही रहती, क्योकि वडा होने पर वछडा कही जाता है, और गौ कही। फिर भी गौ वछड़ेकी रक्षाके लिए अपने प्राणोकी भी वाजी लगा देती है। सम्यग्दृष्टि यदि किसीका उपकार करे, और उसके वदले उससे कुछ इच्छा रक्खे, तो यह एक प्रकारका विनिमय हो गया, इसमें धर्मका अग कहाँ रहा? धर्मका अग

तो निरीह होकर सेवा करनेका भाव है। विष्णुकुमार मुनिने सातसौ मुनियोकी रक्षा करनेके लिए अपने आपको एकदम समर्पित कर दिया—अपनी वर्षोकी तपश्चर्यापर ध्यान नही दिया और धर्मानुरागसे प्रेरित हो, छलसे वामनका रूप धर वलिका अभिमान चूर किया। यद्यपि पीछे चलकर इन्होने भी अपने गुरुके पास जाकर छेदोपस्थापना की, अर्थात् फिरसे नवीन दीक्षा धारण की, क्योकि उन्होने जो कार्य किया था, वह मुनिपदके योग्य कार्य नही था, तथापि सहधर्मी मुनियोकी उन्होने उपेक्षा नही की। किसी सहधर्मी भाईको भोजन, वस्त्रादिकी कमी हो, तो उसकी पूर्ति हो जाय, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। यह लौकिक स्नेह है, सम्यग्-दृष्टिका पारमार्थिक स्नेह इससे भिन्न रहता है।

(सम्यग्दृष्टि मनुष्य हमेशा इस वातका विचार रखता है कि यह हमारा सहधर्मी भाई सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप जो आत्माका धर्म है, उससे कभी च्युत न हो जाय तथा अनन्त ससारके भ्रमणका पात्र न वन जाय। दूसरेके विपयमे ही यह चिन्ता करता हो, सो वात नही, अपने आपके प्रति भी यही भाव रखता है। सम्यग्दर्शनके निःशङ्कित आदि आठ अङ्ग जिस प्रकार परके विपयमे होते है, उसी प्रकार स्वके विपयमे भी होते है। रक्षावन्धन रक्षाका पर्व है, परकी रक्षा वही कर सकता है, जो स्वय रक्षित हो। जो स्वय आत्माकी रक्षा करनेमे असमर्थ है, वह क्या परका कल्याण कर सकता है? रक्षासे तात्पर्य आत्माको पापसे पृथक् करो, पाप ही ससारकी जड़ है। जिसने इसे दूर कर दिया, उसके समान भाग्यशाली अन्य कौन है?

(आज जैन समाजसे वात्सल्य अङ्गका महत्त्व कम होता जा रहा है, अपने स्वार्थके समक्ष आजका मनुष्य किसीके हानि-लाभको नही देखता। हम और हमारे बच्चे आनन्दसे रहे, परन्तु पडौसकी झोपडीमे क्या हो रहा है, इसका पता लोगोको नही। महलमे रहनेवालोको पासमे बनी झोपडियोकी भी रक्षा करनी होती है, अन्यथा उनमे लगी आग उनके महलको भी भस्मसात् कर देती है।) एक समय तो वह था कि जब मनुष्य वडेकी शरणमे रहना चाहते थे, उनका ख्याल रहता था कि बडोंके आश्रयमे रहनेसे हमारी रक्षा रहेगी, पर आजका मनुष्य वडोके आश्रयसे दूर रहनेकी चेष्टा करता है, क्योकि उसका ख्याल वन गया है कि जिस प्रकार एक वडा वृक्ष अपनी छाँहमे दूसरे छोटे पौधेको नही पनपने देता है, उसी प्रकार वडा आदमी समीपवर्ती—शरणागत अन्य मनुष्योंको नही

पनपने देता। अस्तु, रक्षाबन्धन पर्व हमे सदा यही शिक्षा देता है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिन' अर्थात् सब सुखी रहे।

मै कहनेके लिए तो यह सब कह गया, पर सामायिकके बाद अन्तरगमे जब विचार किया, तब यही ध्वनि निकली कि परकी समालोचना त्यागो, आत्मीय समालोचना करो। समालोचनामे काल लगाना भी उचित नही, प्रत्युत वह काल उत्तम विचारमे लगाओ। आत्माका स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, वही रहने दो, उसमे इष्ट-अनिष्ट कल्पनासे बचो। अनादिकालसे यही उपद्रव करते रहे, पर सन्तुष्ट नही हुये। आत्मपरिणतिको स्वच्छ रक्खो सो, तो करता नही ससारका ठेका लेता है। जो मनुष्य आत्मकल्याणसे वचित है, वे ही ससारके कल्याणमे प्रयत्न करते है। ससारमे यदि शाति चाहते हो, तो सबसे पहले परमे निजत्वकी कल्पना त्यागो, अनन्तर अनादि कालसे जो यह परिग्रह-पिशाचके आवेशमे अनात्मीय पदार्थोसे आत्महितका सस्कार है, उसे त्यागो। हम आहारादि सज्ञाओसे आत्माको तृप्त करनेका प्रयत्न करते है, यह सर्व मिथ्या धारणा है, इसे त्यागो। सतोषका कारण त्याग है, उसपर स्वत्व कल्पना करो। प्रतिदिन जल्पवादसे जगत्को सुलझानेकी जो चेष्टा है, उसे त्यागो, और आपको सुलझानेका प्रयत्न करो। ससारमे धर्म और अधर्म तथा खान और पान यही तो परिग्रह है। लोकमे जिसे पुण्यशब्दसे व्यवहृत करते है, वह धर्म तुम्हारा स्वभाव नही, ससारमे ही रखनेवाला है।

धीरे-धीरे पर्यूषण पर्व आ गया। चतुर्थीके दिन श्री पडित झम्मनलालजी आ गये। प० कमलकुमारजी यहाँ थे ही, इसलिये प्रवचनका आनन्द रहा। वृद्धावस्थाके कारण हमसे अधिक बोला नही जाता और न बोलनेकी इच्छा ही होती है। उसका कारण यह है कि जो बात प्रवचनमे कहता हूँ, तदनुरूप मेरी चेष्टा नही। मै दूसरोसे तो कहता हूँ कि रागादिक दुखके कारण है, अत इनसे बचो, पर स्वय उनमे फँस जाता हूँ। दूसरोसे कहता हूँ कि सर्व प्रकारके विकल्प त्यागो, पर स्वय न जाने कहाँ-कहाँके विकल्पोमे फँसा हुआ हूँ।

पर्यूषण पर्व सालमे तीन बार आता है—
परन्तु भाद्रपदके पर्यूषणका प्रचार अधिक है।
अपने अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयास क
जाय तो अभिप्रायकी निर्मलता ही धर्म है
क्रोधादिक कषायोके कारण तिरोहित हो र
को दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। आत

चार कषाय है, इनमे क्रोधसे क्षमा, मानसे मार्दव, मायासे आर्जव और लोभसे शौचगुण तिरोहित है। ये चार कषाय निकल जावे और उनके बदले क्षमा आदि गुण आत्मामे प्रकट हो जावे तो आत्माका उद्धार हो जावे, क्योंकि मुख्यमे यह चार गुण ही धर्म है। आगे जो सत्य आदि छह धर्म कहे है, वे इन्हीके विस्तार है—इन्हीके अग है। क्रोधको वही जीत सकता है, जिसने मान पर विजय प्राप्त कर ली हो। हम कही गये, किसीने सत्कार नही किया, हमारी बात पूछी नही, हमे क्रोध आ गया। हमने किसीसे कोई बात कही, उसने नही मानी, हमे क्रोध आ गया कि इसने हमारी बात नही मानी, इस प्रकार देखते है कि हमारे जीवनमे जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसमे मान प्राय कारण होता है। इसी प्रकार मायाकी उत्पत्ति लोभसे होती है। हमे आपसे किसी वस्तुकी आकाक्षा है, तो उसे पानेके लिए हम इच्छा न रहते हुए भी आपके प्रति ऐसी चेष्टा दिखलावेंगे कि जिससे आपके हृदयमे यह प्रत्यय हो जावे कि यह हमारे अनुकूल है। जब अनुकूलताका प्रत्यय आपके हृदयसे दृढ हो जावेगा, तभी तो अपनी वस्तु देनेका भाव होगा। इस तरह यह किसीका कहना ठीक है कि 'मानात्क्रोध प्रभवति माया लोभात्प्रवर्तते' अर्थात् मानसे क्रोध उत्पन्न होता है और लोभसे माया प्रवृत्त होती है। जब आत्मासे क्रोध लोभ, भीरुत्व तथा हास्यकी परिणति दूर हो जाती है, तो सत्यवचनमे प्रवृत्ति अपने आप होने लगती है। असत्य बोलनेके कारण दो है—१ अज्ञान और २ कषाय। इनमे अज्ञानमूलक असत्य आत्माका घातक नही, क्योकि उसमे परिणाम मलिन नही रहते, परन्तु कषायमूलक असत्य आत्माका घातक है, क्योकि उसमे परिणाम मलिन रहते है। जब आत्मासे क्रोधादि कषाय निकल गई तब असत्य बोलनेमे प्रवृत्ति नही हो सकती। इन्द्रियोके विषयोंसे निवृत्ति हो गई है, यही सयम है। यह निवृत्ति तभी हो सकती है जब लोभ कषायकी निवृत्ति हो जाय तथा यह प्रत्यय हो जाय कि आत्मामे सुखकी उत्पत्ति विषयाभिमुखी प्रवृत्तिसे नही, किन्तु तन्निवृत्तिसे है। मानसिक विषयोकी निवृत्ति हो जाना—इच्छाओ पर नियन्त्रण हो जाना, सो तप है। जब तक मन स्वाधीन नही होगा, तब तक उसमे इच्छाये उठा करेंगी और इच्छाओके रहते परिणामोमे स्थिरता स्वप्नमे भी नही आ सकती। जब इच्छाएँ घट जावेगी, तब उसके फलस्वरूप त्याग स्वत हो जावेगा। भोजन करते-करते जब भोजनविषयक इच्छा दूर हो जाती है, तब भोजनके त्याग करनेमे देर नही लगती। क्षुधित अवस्थामे यह भाव होता था कि पात्रमे भोजन जल्दी आवे और क्षुधाविषयक इच्छा

दूर हो जानेपर भाव होता है कि कोई बलात् पात्रमे भोजन न परोस दे। त्यागके बाद आकिञ्चन्य दशाका होना स्वाभाविक है। जब पुरातन परिग्रहका त्याग कर दिया और इच्छाके अभावमे नूतन परिग्रह अंगीकृत नहीं किया तब आकिञ्चन्य दशा स्वयमेव होनेकी है ही। और जब अपने पास आत्मातिरिक्त किसी पदार्थका अस्तित्व नही रहा—उसमे ममता परिणाम नही रहा, तब आत्माका उपयोग आत्मामे ही लीन होगा, यही ब्रह्मचर्य है, इस प्रकार यह दश धर्मो का क्रम है। दश धर्मो का यह क्रम जीवनमे उतर जावे तो आत्माका कल्याण हो जावे। विचार कीजिए, क्षमा, मार्दव आदि धर्म किसके है और कहाँ है ? विचार करनेपर ये आत्माके है और आत्मामे ही है, परन्तु यह जीव अज्ञानवश इतस्तत भ्रमण करता-फिरता है। लाखोका धनी व्यक्ति जिस प्रकार अपनी निधिको भूल दर-दरका भिखारी हो भ्रमण करता है, ठीक उसी प्रकार हम भी अपनी निधिको भूल उसकी खोजमे इतस्तत भ्रमण कर रहे है।

परम धमको पाय कर सेवत विषय कषाय।
ज्यो गन्ना को पाय कर नीमहि ऊँट चबाय॥

जिस प्रकार ऊँट गन्नाको छोडकर नीमको चबाता है, उसी प्रकार ससारके प्राणी परमधर्मको छोडकर विषय-कषायका सेवन करते है। उनसे सुख मानते है। मोहोदयसे इस जीवकी दृष्टि स्वोन्मुख न हो परकी ओर हो रही है।

पर्वके समय प्रवचन होते है। वक्ता अपने क्षायोपशमिक ज्ञानके आधारपर पदार्थका निरूपण करता है। यहाँ वक्तासे यदि कुछ विरुद्ध कथन भी होता है, तो अन्य समझदार व्यक्तिको समताभावसे उसका सुधार करना चाहिये, क्योकि शास्त्रप्रवचन धर्मकथा है, विजिगीषुकथा नही। धर्मकथाका सार यह है, कि दश आदमी एकत्र बैठकर पदार्थका निर्णय कर रहे है, इसमे किसीके जय-पराजयका भाव नही है। जहाँ यह भाव है, वहाँ वार्तालापमे विषमता आ जाती है। यह विषमता पापका कारण है। वार्तालापके समय वक्ता या श्रोता किसीको यह भाव नही होना चाहिये कि हमारी प्रतिष्ठामे बट्टा न लग जावे। समताभावसे सत्य बातको स्वीकार करना चाहिये और समताभावसे ही असत्य बातका निराकरण करना चाहिये। यहाँ भाद्रपद शुक्ल १० के दिन पण्डितगणोमे परस्पर कुछ वार्तालापकी विषमता हो गई। विषमताका कारण 'परमार्थसे हमारी प्रतिष्ठामे कुछ बट्टा न लगे' यह भाव था।

तत्त्वसे देखो तो आत्मा निर्विकल्प है उसमें यशोलिप्सा ही व्यर्थ है। यश तो नामकर्मकी प्रकृति है। यशसे कुछ मिलता-जुलता नही है। जिस वक्ताने शास्त्रप्रवचनमें यशकी लिप्सा रक्खी, उसका २ घण्टे तक गलेकी नशे खींचना ही हाथ रहा, स्वाध्यायके लाभसे वह दूर रहा, इसी प्रकार जिसे श्रोताने वक्ताकी परीक्षाका भाव रक्खा या अपनी बात जमानेका अभिप्राय रक्खा, उसने अपना समय व्यर्थ खोया। (वक्ताका भाव तो यह होना चाहिये कि हम अज्ञानी जीवोको वीतराग जिनेन्द्रकी वाणी सुनाकर सुमार्ग पर लगावे और श्रोताका भाव यह होना चाहिये कि वक्ताके श्रीमुखसे जिनवाणीके दो शब्द सुन अपने विषय-कषायको दूर करें।)

पर्वके बाद आश्विन कृष्णा प्रतिपदा क्षमावणीका दिन था, परन्तु जैसा उसका स्वरूप है, वैसा हुआ नही। केवल प्रभावना होकर समाप्ति हो गई। (परमार्थसे अन्तरङ्गसे शान्तिभावकी प्राप्ति हो जाना यही क्षमा है, सो इस ओर तो लोगोकी दृष्टि है नही, केवल ऊपरी भावसे क्षमा माँगते है, एक-दूसरेके गले लगते है। इससे क्या होनेवाला है? और खासकर जिससे बुराई होती है, उसके पास भी नही जाते, उससे बोलते भी नही, इसके विपरीत जिससे बुराई नही, उसके पास जाते है, उसके गले लगते है, उसे क्षमावणीपत्र लिखते है आदि। यह सब क्या क्षमावणी उत्सवका प्राणशून्य ढाँचा नही है?)

आश्विन कृष्ण ४ स० २००७ को मेरे जन्मदिनका उत्सव था। प० राजेन्द्रकुमारजी, प० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, प० चन्द्रमौलिजी, प० पञ्चरत्नजी, कवि चन्द्रसेनजी, प० खुशालचन्द्रजी तथा राजकृष्ण आदि बाहरसे आये। जयन्ती उत्सवोमे जो होता है, वही हुआ, सबने प्रशसामे चार शब्द कहे और हमने नीची गरदनकर उन्हे सुना। दूसरे दिन रत्नलालजी मादेपुरिया, महावीरप्रसादजी ठेकेदार दिल्ली तथा फिरोजाबाद से छदामीलालजी भी आये। छदामीलालजीने आग्रह किया कि आप फीरोजाबाद आवे। हम कुछ करना चाहते है और अच्छा कार्य करेंगे। हम वहाँ एक सुन्दर मन्दिर और एक उद्योग विद्यालय खोलना चाहते है। प० राजेन्द्रकुमारजी तथा खुशालचन्द्रजीने भी इस पर जोर डाला तथा यह आग्रह किया कि वर्णी अभिनन्दन-ग्रन्थके समर्पणका समारोह यहाँ न होकर फिरोजाबादमे ही हो। मैंने कहा कि अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पणकी बात मै नही जानता, पर आप लोगोका यदि कुछ काम करने

का भाव है और मेरे वहाँ पहुँचनेमे वह फलीभूत होता है, तो दीपावली बाद मैं चलूँगा। मेरा उत्तर सुन उन्हे प्रसन्नता हुई।

सब लोग अपने-अपने घर गये और पर्यूषणपर्व सम्बन्धी चहल-पहल भी जयन्ती उत्सवके साथ समाप्त हुई। मनमे व्यग्रताका अभाव हुआ तथा निम्नाङ्कित भावना प्रकट हुई—

चाहत जो मन शान्ति-सुख, तजहु कल्पना-जाल।
व्यर्थ भरमके भूतमें, क्यो होते बेहाल ॥ १ ॥
यह जगकी माया विकट, जो न तजोगे मित्र।
तो चहुँगतिके बीचमें, पावोगे दुख चित्र ॥ २ ॥

●

इटावासे प्रस्थान

आश्विन कृष्णा ८ सं० २००७ को राजकोटसे डाक्टर और मोहन भाई आये। तत्त्वचर्चाका अच्छा आनन्द रहा। निमित्त-उपादानकी चर्चा हुई। यद्यपि इस चर्चामें विशेष आनन्द नही, परन्तु फिर भी लोग यही करते है। 'आत्माका कल्याण हो' यह मुख्य प्रयोजन है। वह उपादानकी प्रधानतासे हो या निमित्तकी प्रधानतासे हो, यही मुख्य उद्देश्य है। मेरी समझके अनुसार तो कार्यकी सिद्धिमे न केवल उपादान कुछ कर सकता है और न केवल निमित्त। जब दोनोकी अनुकूलता हो तभी कार्यकी सिद्धि हो सकती है। कुम्भकारके व्यापारसे निरपेक्ष केवल मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नही हो सकती और मृत्तिकासे निरपेक्ष केवल कुम्भकारके व्यापारसे घटकी रचना नही हो सकती। दोनो सापेक्ष रह कर ही कार्य उत्पन्न कर सकते है।

आश्विन कृष्ण १४ सं० २००७ को फिरोजाबादसे प० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य आये। प्रात काल ८½ से ९½ तक उनका प्रवचन हुआ। आपकी कथनशैली अच्छी है, उच्चकोटिके विद्वान् है, आपने श्लोकवार्तिक-के ऊपर भाषाटीका लिखी है। जिसका प्रथम भाग मुद्रित हुआ है। उसको हमने देखा, व्याख्या समीचीन प्रतीत हुई। आपके द्वारा यह अभूतपूर्व कार्य हो गया है।

कार्तिक शुक्ला ६ सं० २००७ के दिन जबलपुरसे बहुतसे मानव आये। सबने आग्रह किया कि जबलपुर चलिये। मै सकोचवश कुछ निश्चित उत्तर नही दे सका, किन्तु मनमे यह बात आई कि वहाँ जानेसे जनताका उपकार बहुत हो सकता है, अत जाना अच्छा है। उस देशमे जानेसे दान अच्छा होगा, तथा सस्थाएँ स्थिर हो जावेगी।

प्रतिदिन प्रात काल मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन, मध्यान्हमे स्वकीय स्थान पर स्वाध्याय और रात्रिको मन्दिरमे प्रवचन यही क्रम यहाँ पर जब तक रहा, चलता रहा। चातुर्मासकी समाप्तिके बाद मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमीको इटावासे भिण्डके लिये प्रस्थान कर दिया। जाते समय अनेक स्त्री-पुरुष आये। १०–११ माह यहाँ रहनेसे लोगोके हृदयमे मेरे प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न हो गया था, इसलिए जाते समय लोगोको बहुत दु ख हुआ। मैंने

कहा कि यह स्नेह ही ससार-बन्धनका कारण है। यदि आप लोगोने इतने समय तक जैनधर्मका कुछ सार ग्रहण किया है, तो उसके अनुसार प्रथम तो किसी परपदार्थमे इष्ट-अनिष्टकी भावना ही नही होना चाहिये और यदि कारणवश किसीमे इष्ट-अनिष्ट भावना हो भी गई है, तो उसके वियोग तथा सयोगमे हर्ष-विषादका अनुभव नही करना चाहिए। इस विषम ससारमे अनादिसे यह जीव परपदार्थमे निजत्वकी कल्पना करता है। जिसमे निजत्व मानता है, उसे अपनानेकी चेष्टा करता है, उसको किसी प्रकार वाधा न पहुँचे, ऐसा प्रयत्न सतत करता है। यदि कोई उसके प्रतिकूल हुआ, तो उससे पृथक् होनेकी चेष्टा करता है। बन्धन ही दु खका मूल है, वन्धन स्नेह—मोहमूलक है और मोह पर-पदार्थोको अपना मानना एतन्मूलक है। इस ससार अटवीमे अनन्त काल भ्रमण करते-करते आज यह अलब्ध मनुष्यपर्यायका लाभ हुआ है। अथवा यह कथनमात्र है, क्योकि अनन्तबार मनुष्यपर्याय पाया है। पर्याय ही नही पाया; अनन्तबार द्रव्यमुनि होकर अनन्तवार ग्रैवेयक तक गया, जहाँ ३१ सागरकी आयु पाई, तत्त्वविचारमे समय गया, किन्तु स्वात्मज्ञानसे वञ्चित रहा। अब अवसर अच्छा है, यदि अन्तरङ्गसे परि-श्रम किया जावे, तो अनायास भेद-ज्ञानका लाभ हो सकता है। भेदज्ञान वह वस्तु है जिसके होते ही यह आत्मा अनन्त ससारके बन्धको छेद सकता है। भेदज्ञानके अभावमे, जो हमारी दशा हो रही है, वह हमको विदित है। उसके बिना ही हम परको अपना मानते हैं और निरन्तर यही प्रयास करते है कि वह पदार्थ हमारे अनुकूल रहे। पदार्थ २ तरहके है, एक चेतन और दूसरे अचेतन। अचेतन पदार्थ तो जड है, उनमे न तो राग है और न द्वेष है। वह न किसीका भला करते हैं, और न किसीका बुरा करते हैं। हम स्वय अपनी रुचिके अनुकूल उन्हे काल्पनिक बुरा-भला मान लेते है। इसमे कारण हमारी रुचि-भिन्नता है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि सर्वपदार्थ अपने-अपने परिणमनसे परिणत होते रहते है। कोई कर्ता-परिणमन करानेवाला नही, परन्तु तो भी हमारी ऐसी धारणा बन गई है कि अमुक निमित्त न होता तो यह न होता, क्योकि लोकमे जो कार्य देखे जाते है, वे सर्व ही उपादान और निमित्तसे ही आत्म-लाभ करते हैं। आप लोगोका हित आपकी आत्मा पर निर्भर है, परन्तु आप लोगोने मुझे उसका निमित्त मान रक्खा है, इसलिए मेरे वियोगमे आपको दु खका अनुभव हो रहा है।

जो ससार समुद्रसे, है तरनेकी चाह।
भेदज्ञान नौका चढो, परकी छोडो हाह॥

इटावासे १½ मील चल कर नलियाजी मिली। वहाँ तक वहुत लोगोका समुदाय रहा। नलियाजीमें दो छोटे-छोटे मन्दिर हैं, दर्शन किये। एक मन्दिरमे प्राचीन प्रतिविम्व है, वहुत मनोज्ञ है, किन्तु हाथ खण्डित है। एक समय ऐसा था जव यवनोके द्वारा अनेक मन्दिर ध्वस्त किये गये। यवनधर्मानुयायी मूर्तितत्त्वको नही समझते। मूर्तिपूजा उन्हे पसन्द नही। न करें, पर ससारकी मूर्तियो और मन्दिरोको ध्वस्त करनेमे कौन-सा धर्म है ? वुद्धिमे नही आता।

फिरोजावादकी ओर

श्री क्षुल्लक वलदेवदासजी, जिनका दूसरा नाम सभवसागर था, तथा क्षुल्लक मनोहरलालजी इटावासे ही साथ हो गये थे। भिण्डमे पहुँचने पर, वहाँ जनताने सवका अच्छा स्वागत किया। श्री नेमिनाथ स्वामीके मन्दिरमे श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजीका प्रवचन हुआ। आपने अति सरल शब्दोंमे, आत्मामे जो रागादिक होते है, उनका विवेचन किया। इसी प्रकरणमे आपने यह भी कहा कि कार्यकी उत्पत्ति सामग्रीसे होती है। सामग्रीमें एक उपादान और इतर सहकारी कारण होते हैं, जो स्वय कार्यरूप परिणमे वह तो उपादान है, और जो सहायक हो, पर तद्रूप परिणमन नही करता, वह सहकारी होता है। सहकारी अनेक होते है। जैसे कुम्भकी उत्पत्तिमे मिट्टी उपादान और कुम्भकारादि सहकारी होते है। इन सहकारियोमे चेतन भी होते है, और अचेतन भी। सहकारी कारण चाहे चेतन हो, चाहे अचेतन, वलात्कारसे कार्यको उत्पन्न नही करते, किन्तु उनकी सहकारिता अति आवश्यक है। प्रवचन सुन जानता वहुत प्रसन्न हुई। एक दिन आदिनाथ स्वामीके मन्दिरमे प्रवचन हुआ।

पिछले समय जब यहाँ आये थे, तव पाठशाला चालू करनेका प्रयत्न कुछ लोगोने किया था, परन्तु परस्परके वैमनस्यसे वह प्रयत्न सफल नही हो सका था। अब मार्गशीर्ष शुक्ला ९ स० २००७ को पाठशालाका उद्घाटन श्री प० झम्मनलालजीने मङ्गलाष्टक पूर्वक सानन्द कराया। आज श्री राजकृष्णजी, प० राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री छदामीलालजी आये। सबका उद्देश्य फिरोजावादमे हीरक-जयन्ती महोत्सव तथा वर्णी अभिनन्दन-ग्रन्थ समारोहकी स्वीकृति प्राप्त करना था। राजकृष्ण हृदय

से बात करते है। पण्डित राजेन्द्रकुमारजी चतुर व्यक्ति है। समाजका हित चाहते है, तथा कार्य भी उसीके अनुरूप करते है, किन्तु अन्तरङ्ग उनका गम्भीर है। उसका निश्चय करना, प्रत्येक व्यक्तिका कार्य नही। कुछ हो, जो वह कार्य करते है, समाजके हितकी दृष्टिसे करते है। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागरवाले आये। यह निश्चय हुआ कि अभिनन्दनग्रन्थका समारोह फीरोजाबादमे हो। हमने यह निश्चय कर लिया कि फिरोजाबादमे उत्सव होनेके बाद सागर जावेगे। आज ही हम लोग भिण्ड छोडकर फूफ आ गये। यह स्थान भिण्डसे ७ मील है। दूसरे दिन फूफसे चल कर चम्बल आये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। ३ बजे चम्बल पार हुए। आधा फर्लाङ्ग पानीमे चलना पडा, तदनन्तर आधा मील चल कर उदीमे आ गये। स्कूलमे रात्रिको ठहर गये। प्रात काल सामायिकका उद्यम किया। इतनेमे श्री क्षुल्लक मनोहरजीने कहा, हम खुर्जा जावेगे। मैने कहा ठीक है। मनमे विचार आया कि मै सघका आडम्बर कर लोगोके सयोग-वियोगके समय व्यर्थ ही हर्ष-विषादका पात्र बनता हू, अत जितने जल्दी बन सके, यह सघका आडम्बर छोड देना चाहिए। परका समागम सुखद नही, क्योकि परके समागममे अनेक विकल्प होते है। विकल्प ही आकुलताके जनक है। आत्मामे ज्ञान है, उसके द्वारा वह उस विकल्पके अनेक अर्थ स्वरुचि के अनुकूल लगाता है और कुछ यथार्थ भी लगाता है तथा उनको रखने की चेष्टा करता है। समागममे अनिष्ट-इष्ट कल्पना मत करो। इष्टानिष्टकल्पना अन्तरङ्गसे होती है, अत यदि समागमको नही चाहते हो, तो अन्तरङ्गकल्पना त्याग दो। परको इष्ट-अनिष्ट माननेकी बात छोडो। दोष आपमे देखो तभी सुमार्ग मिलेगा।

पौष कृष्ण ८ स० २००७ सोमवारको ईसवीय नवीन वर्षका प्रारम्भ हुआ। आज दैनदिनीके प्रथम पृष्ठ पर लिखा कि 'यदि कश्चित् आत्मा ससारसमुद्रादुद्धर्तुमिच्छति तदास्मिन् यावन्त पदार्था सन्ति तै सह ससर्गो न कार्य ' अर्थात् यदि कोई आत्मा ससारसमुद्रसे उद्धार पानेकी इच्छा करता है, तो इसमे जितने पदार्थ है, उनके साथ सपर्क नही करना चाहिए। मनमे विचार आया कि इस वर्षमे यदि शान्तिकी अभिलाषा है तो इन नियमोका पालन करो—

प्रात काल ३½ बजे उठो और १½ घटा स्वाध्यायमे बिताओ। तदनन्तर सामायिक करो। स्वाध्यायमे पुस्तकोकी मर्यादा रक्खो—समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, नियमसार और पुरुषार्थसिद्धयुपाय

इन पुस्तकोको णमोकार मन्त्र बनाओ। रात्रिमे ½ घटा बोलो, ½ घटा शास्त्र-श्रवण करो। प्रात काल स्वाध्यायके समय किसीसे मत बोलो। यदि बोलो तो जिसका स्वाध्याय कर रहे हो, उसी पर बोलो। भोजनकी प्रक्रियाको सरल बनाओ। भृत्यका अभ्यास छोडो आत्मीय कार्यका भार परके ऊपर मत डालो। त्यागका अर्थ यह नही जो अन्य समाजको भार-भूत बनो। सूत्रमे स्वामीने 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' लिखा है, तदनुकूल प्रवृत्ति करो। समाज भोजनादि द्वारा तुम्हारा उपकार करती है, तो तुमको भी उचित है कि यथायोग्य ज्ञानादि दान द्वारा उसका उपकार करो। यदि तुम त्यागी न होते, तो निर्वाहके अर्थ कुछ व्यापारादि करते, उसमे तुम्हारा काल जाता, अत जो तुम्हारा भोजनादि द्वारा उपकार करे, उसका ज्ञानादि द्वारा उपकार कर, उससे उऋण होना चाहिए।

एक वार यहाँ चर्चा उठी कि यह जीव अच्छे बुरे-सस्कार पूर्व जन्मसे लाता है। मेरा कहना था कि सब सस्कार पूर्व जन्मसे नही लाता, बहुतसे सस्कार वर्तमान सपर्कसे भी उत्पन्न होते है। उत्पत्तिके समय मनुष्य नग्न ही होता है और मरणके समय भी नग्न रहता है। मनुष्य जिस देशमे पैदा होता है, उसी देशकी भाषाको जानता है, तथा जिसके यहाँ जन्म लेता है, उसीका आचार उस बालकका आचार हो जाता है। जन्मान्तरसे न तो भाषा लाता है और न आचारादि क्रियाए। किन्तु जिस कुलमे जो जन्म लेता है, उसीके अनुकूल उसका आचरण हो जाता है, अत सर्वथा जन्मान्तर-सस्कार ही वर्तमान आचारका कारण है, यह नियम नही। वर्तमानमे भी कारणकूटके मिलनेसे जीवोके सस्कार उत्तम हो जाते है। अन्यकी कथा छोडो, पशुओके भी मनुष्यके सहवाससे नाना-प्रकारकी चेष्टाएँ देखी जाती है और उन बालकोमे, जो ऐसे कुलोमे उत्पन्न हुए, जहाँ ज्ञानादिके किसी प्रकारके साधन न थे, उत्तम मनुष्योके सहवाससे अच्छे सस्कार देखे गये। वे उत्तम विद्वान् और सदाचारी देखे गये। वर्तमानमे जो डा० अम्बेडकर है, वह विधानसभाका सदस्य है। वह जिस कुलमे उत्पन्न हुआ, यद्यपि उसमे यह सब साधन न थे, तो भी अन्य उत्तम सपर्क मिलनेके कारण उसकी प्रतिभा चमक उठी। यहाँके जो बालक विलायतमे अध्ययन करने जाते है, उनके आचरण प्राय जिस देशके शिक्षकोके सहवासमे रहते है, वहीके हो जाते है। इससे सिद्ध होता है कि जीवके कितने ही सस्कार पूर्व जन्मसे आते है, तो कितने ही इस जन्मके वातावरणसे उत्पन्न होते है।

पौष कृष्ण १२ स० २००७ के दिन इन्दौरवाले यात्री आये। आत्म-

कल्याणकी लालसासे आदमी यत्र-तत्र भ्रमण करते है। जैसे गर्मीकी ऋतुमे पिपासातुर हरिण दो घूट पानीके लिए इधर-उधर दौडता है, उसी प्रकार जगत्के मानव भी धर्मकी लालसासे जहाँ-तहाँ दौड रहे है। कोई तीर्थक्षेत्र जाता हैं, तो कोई किसी मुनि, क्षुल्लक आदि उत्तम पुरुषोकी सगतिमे जाता हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्मपदार्थ इतना व्यापक है कि प्रत्येक व्यक्ति इसे आत्मीय मानता है। (जितने मत संसारमे प्रचलित्त है, धर्म ही उनका प्राण है। इसके विना कोई भी मत जीवित्त नही रह सकता। जिस प्रकार मनुष्यमे इन्द्रियादि प्राण है, उसी प्रकार मत-मतान्तरोमे धर्म प्राण है।) किन्तु उसकी यथार्थताके बिना आज जगत् अनेक सकटोका पात्र वन रहा है। इसका मूल कारण धर्मके स्वरूपको न समझकर उठनेवाली नाना प्रकारकी कल्पनाएँ है। कोई तो पृथिवी विशेषके स्पर्शमे धर्म मानते है, अर्थात् विशेष स्थान (तीर्थ क्षेत्र) का स्पर्श करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है, तो कोई पानीके स्पर्शको ही धर्मका साधन मानते है, अर्थात् अमुक नदी या तडाग आदिके जलका स्पर्श करने—उसमे स्नान करनेसे धर्म मानते हैं और कोई अग्निको ही धर्मका साधन समझ उसकी पूजा करते है। परन्तु यथार्थमे धर्म आत्माकी निर्मल परिणति है। निर्मलता कषायके अभावमे आती है, और कपायका अभाव स्वपरके वास्तविक स्वरूपको समझ लेनेसे होता है अत स्वपरके यथार्थ स्वरूपको समझो। यथार्थ स्वरूपके सामने आत्माको छोड पुद्गल या उसके निमित्तसे उत्पन्न विकारको आत्मा न मानो और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणोका पुञ्ज जो आत्मा है, उसे पृथिवी आदिका विकार मत जानो।

चरणाणुयोगके सिद्धान्त अटल है, उनका तात्पर्य यह है कि पर पदार्थोसे ममता हटाओ। हम लोग परपदार्थोका त्याग कर प्रसन्न हो जाते हैं, और मनसे सोचते हैं कि हमने वहुत उत्तम कार्य किया। यहाँ परमार्थसे विचार करो कि जो पदार्थ हमने त्यागे, वे क्या हमारे थे? आप यही कहेगे कि हमसे भिन्न थे, तब आप जो उनको आत्मीय समझ रहे थे, यही महती अज्ञानता थी। यावत् आपको भेदज्ञान न था, उन्हे निज मान रहे थे। यही अनन्त ससारके वन्धनका भाव था। भेदज्ञान होनेसे आपकी अज्ञानता चली गई। फिर यदि आप उस पदार्थको दान कर फल चाहते है, तो दूसरेको अज्ञान वनानेका ही प्रयास है और तुम स्वय आत्मीय भेदज्ञानको मिटानेका प्रयास कर रहे हो। यह जो दानकी पद्धति है, वह अल्पज्ञानियोके लिये है। भेदज्ञानवाले तो इससे तटस्थ

रहते है, अत दान लेने-देनेका व्यवहार छोडो। वस्तुपर विचार करो। आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा स्वयमेव है। उसमे विकार न आने दो। विकारका अर्थ यह कि ज्ञान-दर्शनका कार्य जानना देखना है उसे मोह-राग-द्वेपसे कलङ्कित मत करो। इसीका नाम मोक्ष है, जहाँ राग-द्वेप-मोह है वहीं ससार है, जहां ससार है, वही वन्धन है और जहाँ वन्धन है, वही पराधीनता है।

पौप कृष्ण १३ स० २००७ को यहाँ मल्लिसागरजी दिगम्बर मुनि आये। आपके आनेका समाचार श्रवण कर वहुत श्रावक-श्राविकाएँ आपके लेनेको गये। ११½ वजे आपका शुभागमन हुआ, आपने मन्दिरमे दर्शन किये। हम लोग नित्य नियमके अनुसार सामायिक करनेके लिये वैठ गये। सामायिकके वाद आये। मुनि महाराज भी सामायिकके अनन्तर वाहर तख्तपर उपदेश देने लगे। लोगोंने चर्याके लिए प्रार्थना की। फिर क्या था? आप कहने लगे कि किसके यहाँ भोजन करें। किसीके शूद्र जलका त्याग है? दस्सोके यहाँ भोजन तो नही करते? परस्पर जातियो मे विवाह तो नही करते? यह सुन भिण्डका एक जैनी वोला—मेरे शूद्र जलका त्याग है। किसके समक्ष लिया? महाराजने कहा। श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराजके पास नियम लिया था उसने कहा। मुनिराज वोले—अरे वह तो उत्तरका मुनि है, प्रतिमाको स्पर्शकर नियम ले। वह मन्दिरमे गया और प्रतिमा स्पर्श करके आया। आपने यह कार्य कराया। फिर नीचे आया, महाराज पडगाए गये। आहार देनेवाली औरतके मुखसे यह नही निकला कि दस्सोके घर भोजन नही करूँगी। इतने पर महाराज भोजन छोडकर चले गये। और स्टेशनपर साथके मनुष्योके यहाँ भोजन किया। ग्राम-ग्राममे चन्दा होता है। यहाँसे भी ९०) का चन्दा हो गया। साथमे मोटर है। हर जगह चन्दा होता है। यह दृश्य देख मुझे लगा कि पञ्चम कालका चमत्कार है। अव यही धर्म रह गया है।

पौप शुक्ला २ स० २००७ को सहारनपुरसे श्री रतनचन्दजी आये। आप योग्य व्यक्ति है। आपको करणानुयोगका अच्छा अभ्यास है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थका आप सरल रीतिसे ज्ञान करा देते है। आपने मुख्त्यारी छोड दी है, तथा युवावस्थामे ब्रह्मचर्य ले रक्खा। आपका स्वभाव सरल है और सरलताके साथ आगमानुकूल प्रवृत्तिपर आपकी दृष्टि रहती है। आपके समागमसे हर्प हुआ। हम निरन्तर इस प्रकारकी चेष्टा करते रहते है कि रागकी सत्तापर विजय प्राप्त कर लेवे, परन्तु आज तक हम उसपर विजय प्राप्त न कर सके। इसका मूल कारण यह ध्यान-

मे आता है कि हमने अभी तक परमे निजत्व कल्पनाको नही त्यागा है। अभी तक हम परसे अपनी प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा मान रहे है। जहाँ किसी व्यक्तिने कुछ प्रशंसा सूचक शब्दोका प्रयोग किया वहाँ हम एकदम प्रसन्न हो जाते है ओर निन्दाके शब्दोका प्रयोग किया कि एकदम अप्रसन्न हो जाते है। इसका मुख्य हेतु हमने यही समझा है कि पर हमारा भला-बुरा कर सकते है। ससारमे अधिकांश मनुष्य ईश्वरको ही कर्ता-धर्ता मानते हैं, स्वतन्त्र हम कुछ नही कर सकते, परन्तु इसपर भी पूर्ण अमल नही। यदि कोई काम अच्छा बन गया, तो अपनेको कर्ता मान लिया। यदि नही बना तो भगवान्‌को यही करना था यह कह सब दोप भगवान्‌के सिर मढ दिया। कुछ स्थिर विचार नही। यदि इस पिण्डसे छूटे तो शुभाशुभ परिणामोसे उपार्जित कर्मका प्रभाव है। हम क्या कर सकते है? ऐसा ही तो होना था ऐसा विश्वास अनेकोका है। यदि उन भले मानवोसे पूछिये कि वह कर्म कहाँसे आये? तो इसका यही उत्तर है कि वह प्राक्तन कर्मका फल है। इस प्रकार यह ससारकी प्रणाली बराबर चल रही है और चली जावेगी। मोक्षका होना अति कठिन है। मै तो अपने विपयमे सदा यही अनुभव करता रहता हूँ कि—

सत्तर छहके योगमें, गया न मनका मेल।
गांठ भरे भुस खात है, बिन विवेकके बैल॥

सर्व पदार्थ अपनी सत्ता लिये परिणमनशील है। कोई पदार्थ किसीके साथ तादात्म्य नही रखता। जिस पदार्थमे जो गुण व पर्याये है, उन्हीके साथ उनका तादात्म्य है। चाहे वह चेतन हो, चाहे अचेतन हो। चेतन पदार्थका तादात्म्य चेतनगुण-पर्यायके साथ है, यह निर्णीत है, किन्तु अनादि कालसे मोहका सम्बन्ध आत्माके साथ हो रहा है। मोह पुद्गलद्रव्यका परिणमन है, किन्तु जब उसका विपाककाल आता है, तब यह आत्मा रागादिरूप परिणमन करता है। आत्मामे चेतना गुण है, उसका ज्ञान-दर्शनरूप परिणमन है। ज्ञानगुणका काम जानना है। जैसे दर्पणमे स्वच्छता है। उसमे अग्निका प्रतिबिम्ब पड़ता है, किन्तु वह्निमे जो उष्णता और ज्वाला है, वह दर्पणमें नही है। एवं ज्ञानगुण स्वच्छ है, उसमे मोहके उदयमे रागादिक होते है। वे यद्यपि आत्माकी उपादानशक्तिसे ही हुए है, तथापि मोहजन्य होनेसे नैमित्तिक है। यह जीव उन्हे स्वभाव मान लेता है, यही इसकी भूल है। यही भूल अनन्त ससारका कारण है। जिन्हे अनन्त ससारसे पार होना हो, वे इस भूलको त्यागे। ससारको निज मत बनाओ और न जिनको ससार बनाओ। न

तुम किसीके हो,और न कोई तुम्हारा है, किन्तु मोहके आवेगमे तुम्हे कुछ सूझता नही। यह विचार निरन्तर मेरे मनमें घूमता रहता है।

सेठ सुदर्शनलालजीका अत्यन्त आग्रह था, इसलिए पौष शुक्ला १४ को जसवन्तनगर आ गये। यहाँ श्री ताराचन्द्रजी रपरिया, बनाडा मटरू-मलजी तथा श्री ख्यालीरामजी आगरा आये थे। सौरीपुरके लिये ५५०) का चन्दा हो गया। सौरीपुरमे श्वेताम्बरो तथा दिगम्बरोंके बीच कुछ सघर्ष है। सघर्षकी जड परिग्रह है। यद्यपि श्वेताम्बर समाजमे वर्तमान साधुसमागम पुष्कल है और वे लोग पठन-पाठनमें अपना समय लगाते है। कई विशिष्ट विद्वान् भी है, किन्तु न जाने दिगम्बर समाजसे इतना वैमनस्य क्यों रखते है। धर्म वह भी अपना जैन मानते है और यह भी मानते है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ही मोक्षका मार्ग है। चरित्रका लक्षण भी राग-द्वेषकी निवृत्ति मानते है। वस्त्र रखकर भी यही अर्थ करते है कि इस परिग्रहमे हमको मूर्च्छा नही। तब समझमे नही आता कि दिगम्बर मुद्रामे इतनी घृणा क्यो करते है? मूर्तिको सपरि-ग्रह बनानेमे कोई प्रयत्न शेष नही रखते तथा कहते है कि यह वीतराग-देवकी मूर्ति है। यह सब पञ्चम कालका महत्त्व है। कल्याणका पथ तो केवल आत्मामे है। जहाँ अन्यकी अणुमात्र भी मूर्च्छा है, वहाँ श्रेयोमार्ग नही। बन्धावस्था ही ससारकी जननी है, अन्यकी कथा छोडो, परमात्मामे अनुराग भी परमात्मपदका घातक है तब वस्त्रमे मूर्च्छा रखकर अपनेको वीतरागी मानना क्या शोभा देता है। अनादि कालमे इसी मूर्च्छाने आत्माको ससारका पात्र बना रक्खा है।

आत्माकी परिणति दो प्रकारकी है—१ विकृति और २ अविकृति। विकृति परिणति ही ससार है। विकृति परिणतिमे ही यह आत्मा परको निज मानता है। और विकृति परिणतिके अभावमे परको पर और आपको आप मानने लगता है। इसीको स्वसमय कहते है। जिस समय आत्मा परसे भिन्न आत्माको मानता है उसी समय दर्शन-ज्ञानमय जो आत्मा उसको छोड़ कर परपदार्थोमे निजत्वका अभिप्राय चला जाता है—नष्ट हो जाता है किन्तु चारित्रमोहके सद्भावमे अभी उनमे रागादि-का सस्कार नही जाता। इतना अवश्य है कि उन रागादि भावोका कर्तृत्व नही रहता। यही अमृतचन्द्रसूरिने कहा है—

> कर्तृत्व न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
> अज्ञानादेव कर्ताय तदभावादकारक ॥

अर्थात् आत्माका स्वभाव कर्तापना नही है । जैसे भोक्तृत्व नही है । अज्ञानसे आत्मा कर्ता बनता है, और अज्ञानके अभावमे नही । चेतना आत्माका निज गुण है, उसका परिणमन शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो तरहका होता है । अशुद्ध अवस्थामे यह आत्मा परपदार्थका कर्ता और भोक्ता बनता है और अज्ञानके अभावमे अपने ज्ञानपनेका ही कर्ता होता है । तदुक्तम्—

'ज्ञानादन्यत्रेद ममेति चेतना अज्ञानचेतना । सा द्विविधा कर्मचेतना कर्मफलचेतना च ।'

अर्थात् ज्ञानसे अतिरिक्तका कर्त्ता आपको मानना यह कर्म-चेतना है और ज्ञानसे अतिरिक्तका भोक्ता अपनेको मानना, यही कर्मफलचेतना है । ऐसा सिद्धान्त है कि—

य परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म ।
या परिणति क्रिया सा त्रयमपि भिन्न न वस्तुतया ॥

इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा जो परिणाम स्वतन्त्र करता है वह परिणाम तो कर्म है और आत्मा उसका कर्ता है तथा जो परिणति होती है वही क्रिया है । ये तीनो परस्पर भिन्न नही । जिन्होने आत्मतत्त्वकी ओर दृष्टि दी, उन्होने परसयोगसे होनेवाले भावोको नही अपनाया । यही बूटी ससार-रोगको नष्ट करनेवाली है । बन्धावस्था दो पदार्थोंके सयोगसे होती है । इस अवस्थामे होनेवाला भाव सयोगज है । वे पदार्थ चाहे पुद्गल हो, चाहे जीव और पुद्गल हो, जहाँ सजातीय २ पुद्गल होते है वहाँपर एक तरहका भी परिणाम होता है और मिश्र भी होता है । जैसे दाल और चावलके सयोगसे खिचडी होती है । उसका स्वाद न चावलका है और न दालका । एव हल्दी चूनामे दोनोका एक तृतीय रग हो जाता है । यद्यपि चूना हल्दी पृथक्-पृथक् है, परन्तु लाल रग दोनोका है । जिस पदार्थमे चाहे, वह चेतन हो, चाहे अचेतन, जो गुण और पर्याय रहते है, वे गुण और पर्याय उसीमे तन्मय हो के रहते है । इतना अन्तर है कि गुण अन्वयी रूपसे निरन्तर द्रव्यके साथ तादात्म्य रखता है, और पर्याय क्रमवर्ती होनेके कारण व्यतिरेक रूपसे द्रव्यके साथ तादात्म्य रखता है । स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कहा है—

'परिणमदि जेण दव्वं तक्काल तम्मय ति पण्णत्त ।'

जैसे आत्मामे चेतना गुण है, और मति, श्रुतादि उसकी पर्याय हैं, सो चेतना तो अन्वयी रूप है और पर्यायें क्रमवर्ती है । पर्याय क्षणभगुर है,

और गुण नित्य है। यदि पर्यायोसे भिन्न गुण न माना जावे, तो एक पर्यायका भग होनेपर जो दूसरी पर्याय देखी जाती है वह विना उपादानके कहाँसे उत्पन्न होती? अत. मानना पड़ेगा कि पर्यायका आधार कोई है। जो आधार है उसीका नाम तो गुण है और उसका जो विकार है वही पर्याय है। जैसे आम्र आरम्भमे हरित होता है। काल पाकर वही पीत हो जाता है। इससे यह सिद्धान्त निर्गत हुआ कि आम्रका रूप हरित अवस्थासे पीत अवस्थामे परिवर्तित हुआ, इसीका नाम उत्पाद और व्यय है। सामान्यरूप गुण ध्रौव्यरूप है ही। इस तरह विवेकपूर्वक विकृतिपरिणतिको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आज लोग धर्म-धर्म चिल्लाते है, पर धर्मके निकट नही पहुँच पाते। वह तो उसके ढाँचेमे ही धर्मबुद्धि कर प्रतारित हो रहे है। परमार्थसे धर्म वह वस्तु है, जो आत्माको ससार-बन्धनसे मुक्त कर देता है। उसके बाधक पाप और पुण्य है। सबसे महान् पाप मिथ्यात्व है। इसके उदयमे जीव आपको नही जानता। परपदार्थोमे आत्मीयताकी कल्पना करता है। कल्पना ही नही उसके स्वत्वमे अपना स्वत्व मानता है। शरीर पुद्गलपरमाणुपुञ्जका एक पुतला है। मिथ्यात्वके उदयमे यह जीव उसे ही आत्मा मान बैठता है, और अहर्निश उसकी सेवामे व्यग्र रहता है। यदि कोई कहे भाई! शरीर तो अनित्य है, इसके अर्थ इतने व्यग्र क्यो होते हो? कुछ परलोककी भी चिन्ता करो। तत्काल उत्तर मिलता है कि न तो शरीरातिरिक्त कोई आत्मा है और न परलोक है। यह तो लोगोकी वञ्चना करनेके अर्थ एक जाल पण्डित महोदयो तथा ऋषिगणोने बना रक्खा है। कहा है—

> यावज्जीवं सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
> भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ॥
> न जन्मन प्राङ् न च पञ्चताया परो विभिन्नेऽवयवे न चान्त ।
> विशन्न निर्यन्न च दृश्यतेऽस्माद्भिन्नो न देहादिह कश्चिदात्मा ॥

चार्वाकका सिद्धान्त है कि पृथिवी जलादिका समुदाय ही एक आत्मा है। जैसे गेहूँ आदि सडकर मादकशक्ति उत्पन्न कर देते है, ऐसे ही पृथिव्यादितत्त्व चेतन-शक्ति उत्पन्न कर देते है। शरीरसे अतिरिक्त जीवपदार्थ न तो जन्मसे पहले और न मरणके पश्चात् किसीने देखा है, फिर उसके पीछे क्यो पडा जाय?

यहाँसे चल कर सिमरा तथा शिरसागजमे खास मुकाम कर माघ शुक्ल ४ सं० २००७ को फिरोजाबाद पहुँच गये। यहाँपर श्रीआचार्य

सूर्यसागरजी महाराजका दर्शन हुआ। आप बहुत ही शान्त तथा उपदेष्टा हैं। आपके प्रवचनसे हमको पूर्ण शान्ति हुई। आपका कहना है, परसे सम्बन्ध त्यागो, परसे सम्बन्ध रखना ही संसारकी जड है। जहाँ परसे सम्बन्ध किया, वहाँ मोह हुआ और मोहके होते ही उसमे निजत्वकी कल्पना हो जाती है। आपके उपदेशका आत्मा पर अत्यन्त प्रभाव पडा, किन्तु श्मशानवैराग्यवत् ही दशा रही। वही पर महाराजसे मोह करने लगे। केवल वचनकी कुशलता और कायकी क्रियासे महाराजको यह प्रत्यय करा दिया कि हमने आपके उपदेश पर अमल किया। देखनेवाले दर्शक भी हमारी क्रियाको देख कर प्रसन्न हुए—शिष्य हो तो ऐसा हो। परन्तु यह सब नाटकका दृश्य था—अन्तरङ्गमे कुछ भी न था। कल्याणका मार्ग यह नही, ऐसी चेष्टा केवल स्वात्मवञ्चनामे ही परिणत हो जाती है।

●

फिरोजाबादमें विविध समारोह

श्री छदामीलालजीने फिरोजाबादमे बहुत भारी उत्सवका आयोजन किया था। इस प्रान्तका यह वर्तमान कालीन उत्सव सबसे निराला था। क्या त्यागी, क्या व्रती, क्या विद्वान्, क्या सेठ, क्या राजनीतिमे काम करनेवाले—सब लोगोके लिये मेलामे एकत्रित करनेका प्रयास किया था। मेलाका बहुत अधिक विस्तार था। रावटी और तम्बुओका नगर अपनी अलग शान दिखा रहा था। रात्रिके समय बिजलीके बल्बोंका अनोखा-चमत्कार देखनेके लिए अनायास जन-समूह एकत्रित हो जाता था। उत्सवका उद्घाटन उत्तरप्रदेशके तात्कालिक प्रधानमत्री श्री पन्तजीने किया था। श्री आचार्य सूर्यसागरजी तथा हम लोगोका नगर-प्रवेशका उत्सव माघशुक्ल ५ स० २००७ को सम्पन्न हुआ। बहुत अधिक मोड तथा जुलूसकी सजावट थी।

इसी समय यहाँ श्रीसूर्यसागरजी महाराजकी अध्यक्षतामे व्रती सम्मेलन, श्री सेठराजकुमारजी सिंह इन्दौरकी अध्यक्षतामे जैन सघ मथुराका अधिवेशन और श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामे हीरक-जयन्ती-महोत्सव तथा वर्णी अभिन्दनग्रन्थ समर्पणका समारोह हुआ था। प्रात काल मुख्यपण्डालके सामने धूपमे प्रवचन प्रारम्भ हुआ। मुनिसघ विराजमान था। बाहरसे ७०–७५ व्रती भी पधारे हुए थे, जो यथायोग्य बैठे थे। अपार जनता एकत्रित थी। महाराजने मुझे प्रवचन-के लिये बैठा दिया। मैने कहा कि प्रवचनका अधिकार तो आचार्य-महाराजका है। उनके समक्ष मुझे बोलनेका अधिकार नही, पर उनकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तव्य है—

प्रकरण समयसारके बन्धाधिकारका था। 'रत्तो बधदि कम्म मुचदि' आदि गाथाका अवतरण देते हुए मैने कहा कि मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरतरूप जो त्रिविध भाव है, यही शुभाशुभ कर्मबन्धके निमित्त है, क्योकि यह स्वय अज्ञानादिरूप है। यही दिखाते है—

जैसे जब यह अध्यवसान भाव होता है कि 'इद हिनस्मि' मै इसे मारता हूँ, तब यह अध्यवसानभाव अज्ञानमय भाव है, क्योकि जो आत्मा सत् है, अहेतुक है तथा ज्ञप्तिरूप एक क्रियावाला है, उसका और रागद्वेष के विपाकसे जायमान हननादि क्रियाओका विशेष भेदज्ञान न होनेसे

भिन्न आत्माका ज्ञान नही होता, अत अज्ञान रहता है, भिन्न-आत्मदर्शन न होनेसे मिथ्यादर्शन रहता है और भिन्न आत्माका चारित्र न होनेसे मिथ्याचारित्रका ही सद्भाव रहता है। इस तरह मोहकर्मके निमित्तसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका सद्भाव आत्मामें है। इन्हीके कारण कर्मरूप पुद्गलद्रव्यका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाहरूप बन्ध होता है।

यदि परमार्थसे विचारा जावे तो आत्मा स्वतन्त्र है, और यह जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाला पुद्गलद्रव्य है, वह स्वतन्त्र है। इन दोनोके परिणमन भी अनादिकालसे स्वतन्त्र है, परन्तु इन दोनोमे जीवद्रव्य चेतनगुणवाला है, और उसमे यह शक्ति है कि जो पदार्थ उसके सामने आता है, वह उसमे झलकता है—प्रतिभासित होता है। पुद्गलमे भी एक परिणमन इस तरहका है कि जिससे उसमे भी रूपी पदार्थ झलकता है, पर मेरेमे यह प्रतिभासित है, ऐसा उसे ज्ञान नहीं। इसके विपरीत आत्मामे जो पदार्थ प्रतिभासमान होता है उसे यह भान होता है कि ये पदार्थ मेरे ज्ञानमे आये। यही आपत्तिका मूल है, क्योंकि इस ज्ञानके साथमे जब मोहका सम्बन्ध रहता है, तब यह जीव उन प्रतिभासित पदार्थोको अपनानेका प्रयास करने लगता है। यही कारण अनन्त ससारका होता है।

प्रत्येक मनुष्य यह मानता है कि परपदार्थका एक अश भी ज्ञानमे नही आता, फिर न जाने, क्यो उसे अपनाता है? यही महती अज्ञानता है। अत जहाँतक सभव हो आत्मद्रव्यको आत्मद्रव्य ही रहने दो। उसे अन्य रूप करनेका जो प्रयास है, वही अनन्त ससारका कारण है। ऐसा कौन वुद्धिमान होगा, जो पर द्रव्यको आत्मीय द्रव्य कहेगा ऐसा सिद्धान्त है कि जो जिसका भाव होता है, वह उसका स्वधन है। जिसका जो स्व है, वह उसका स्वामी है, अत यह निष्कर्ष निकला कि जब अन्य द्रव्य अन्यका स्व नही, तब अन्य द्रव्य अन्यका स्वामी कैसे हो सकता है? यही कारण है कि ज्ञानी जीव परको नही ग्रहण करता। मैं भी ज्ञानी हूँ, अत मैं भी परको ग्रहण नही करूँगा। यदि मैं परद्रव्यको ग्रहण करूँ, तो यह अजीव मेरा स्व हो जावे और मै अजीवका स्वामी हो जाऊँगा। अजीवका स्वामी अजीव ही होगा, अत हमे वलात्कार अजीव होना पडेगा, परन्तु ऐसा नही, मैं तो ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, अत परद्रव्यको ग्रहण नही करूँगा। जब परद्रव्य मेरा नही, तब वह छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे अथवा जिस-किस अवस्थाको प्राप्त हो, पर मैं उसे ग्रहण नही करूँगा। यही कारण है कि सम्यग्ज्ञानी, धर्म-अधर्म, अशन-पान

आदिको नही चाहता)। ज्ञानमय ज्ञायक-भावके सद्भावसे वह धर्मका केवल ज्ञाता-द्रष्टा रहता है। (जब ज्ञानी जीवके धर्मका ही परिग्रह नही तब अधर्मका परिग्रह तो सर्वथा असंभव है। इसी तरहसे न अशनका परिग्रह है, और न पानका परिग्रह है, क्योंकि इच्छा परिग्रह है, ज्ञानी जीवके इच्छाका परिग्रह नही। इनको आदि देकर जितने प्रकारके परद्रव्यके भाव है, तथा परद्रव्यके निमित्तसे आत्मामे जो भाव होते है, उन सबको ज्ञानी जीव नही चाहता। इस पद्धतिसे जिसने सर्व अज्ञानभावोका वमन कर दिया, तथा सर्व पदार्थोके आलम्बनको त्याग दिया, केवल टकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावका अनुभव करता है, उसके बन्ध नही होता।) (योगके निमित्तसे यद्यपि बन्ध होता है, पर वह स्थिति और अनुभागसे रहित होनेके कारण अकिंचित्कर है। जिस प्रकार चूना आदिके श्लेषके बिना केवल ईंटोके समुदायसे महल नही बनता, उसी प्रकार रागादि परिणामके बिना केवल मन-वचन-कायके व्यापारसे बन्ध नही होता।) अत. प्रयत्न कर इन रागादिविकारोके जालसे बचना चाहिये।

शरीरादिसे भिन्न ज्ञाता-द्रष्टा लक्षणवाला स्वतन्त्र द्रव्य हूँ। मेरी जीवनमे जो स्पृहा है, वही बन्धका कारण है। अनादिकालसे जीव और पुद्गलका सम्बन्ध हो रहा है, इससे दोनो ही अपने-अपने स्वरूपसे च्युत हो अन्य अवस्थाको धारण कर रहे है।

हेयोपादेय तत्त्वोका यथार्थ ज्ञान आगमके अभ्याससे होता है परन्तु हम लोग उस ओरसे विमुख हो रहे है। श्री कुन्दकुन्द स्वामीने तो यहाँ तक लिखा है कि—

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू ॥

अर्थात् साधुका चक्षु आगम है, ससारके समस्त प्राणियोका चक्षु इन्द्रिय है, देवोका चक्षु अवधिज्ञान है और सिद्ध परमेष्ठीका चक्षु सर्वदर्शी केवलज्ञान है। इसलिए अवसर पाया है, तो अहर्निश आगमका अभ्यास करो।

हमारे प्रवचनके बाद महाराजने भी जीवकी वर्तमान दशाका वर्णन किया और यह बताया कि देखो अनन्त ज्ञानका धनी जीव अज्ञानी होकर ज्ञानकी खोजमे इधर-उधर भटक रहा है। यह जीव अपनी ओर तो देखता ही नही है, केवल परकी ओर देखता है। यदि अपनी ओर भी देख ले, तो इसका कल्याण हो जावे। एक आदमी था, प्रकृतिका भोला था,

आत्मज्ञानकी इच्छासे किसी विद्वान्के पास गया और आत्मज्ञानकी भिक्षा मागने लगा। विद्वान् समझदार था, इसलिये उसने विचार किया कि यह सीधा है, अत इस तरह नही समझेगा। उसने कह दिया कि उत्तरमे एक तालाव है। उसमे एक मगर रहता है, उसके पास जाओ। वह तुम्हे आत्मज्ञान देगा। भोला आदमी वहाँ गया और मगरसे बोला कि तुम आत्मज्ञान देते हो ? मुझे भी दे दो। मगरने कहा, हाँ देता हूँ। अनेको मानवोको मैंने आत्मज्ञान दिया है। तुम भी ले जाओ, पर एक काम करो, मुझे जोरकी प्यास लग रही है, अत सामनेके कुएँसे एक लोटा पानी लाकर पहले मुझे पिलाओ, पश्चात् पियास शान्त होनेपर, तुम्हे आत्मज्ञान दूँगा। आदमीने कहा कि यह मगर रात-दिन तो पानीमे रह रहा है, फिर भी कहता है कि मैं पिपासातुर हूँ, सामने कूपसे १ लोटा पानी ला दो। यह तो महामूर्ख है। यह क्या आत्मज्ञान देगा ? उस विद्वान्ने मुझे बडा धोखा दिया। मगरने कहा, जिस प्रकार तुम हमारी ओर देख रहे हो, उसी प्रकार अपनी ओर भी तो देखो। जिस प्रकार मै जलमे रह रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी तो अनन्त ज्ञानके बीच रह रहे हो। जिस तरह मुझे कूपके जलकी पिपासा है, उसी तरह तुम्हे भी मुझसे आत्मज्ञानकी पिपासा है। भोला आदमी समझ गया और तत्काल चिन्तन करने लगा कि अहो! मैने आजतक अपने स्वभावकी ओर दृष्टि नही दी, और दरिद्र बन कर चौरासी लाख योनियोमे भ्रमण किया।

महाराजके प्रवचनके बाद सभा समाप्त हुई। सबने आहार ग्रहण किया। माघ शुक्ला ११ स० २००७ को मध्याह्नके बाद १ बजेसे श्री महाराजकी अध्यक्षतामे व्रती-सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमे अनेक विवादग्रस्त विषयोपर चर्चा हुई। एक विषय यह था कि यदि कोई त्रिवर्णवाला जैनधर्मकी श्रद्धासे सहित हो और जैनधर्मकी प्रक्रियासे आहार तैयार करे, तो व्रती उसके घर भोजन कर सकता है या नही ? पक्ष-विपक्षकी चर्चाके बाद यह निर्णय हुआ कि जैनधर्मका श्रद्धालु त्रिवर्ण-वाला यदि जैनधर्मकी प्रक्रियासे आहार बनाता है, तो व्रती उसे ग्रहण कर सकता है।

एक विषय था कि क्षुल्लकको नवधाभक्ति होना चाहिये या नही ? इस विषय पर भी बहुत वाद-विवाद हुआ, परन्तु अन्तमे महाराजने निर्णय दिया कि नवधा भक्तिका पात्र मुनि है, क्षुल्लक नही। क्षुल्लकको पडगाह कर पादप्रक्षालन करना तथा मन, वचन, काय और अन्न-जलकी शुद्धता प्रकट कर आहार देना चाहिये।

एक विपय निमित्त उपादानकी प्रवलताका भी था। इस पर लोगोने अनेक प्रकारसे चर्चा की। वातावरण कुछ अशान्त-सा हो गया, परन्तु अन्तमे यही निर्णय हुआ कि जैनागम अनेकान्तदृष्टिसे पदार्थका निरूपण करता है, अत कार्यकी सिद्धिके लिये निमित्त और उपादान दोनो आवश्यक है। केवल उपादानमे कार्यकी सिद्धि नही हो सकती और न केवल निमित्तसे, किन्तु दोनोकी अनुकूलतासे कार्यकी सिद्धि होती है। यह वात दूसरी है कि कही निमित्तप्रधान और कही उपादानप्रधान कथन हो, पर उसका यह तात्पर्य नही कि दूसरेकी वहाँ सर्वथा उपेक्षा हो।

चरणानुयोगके विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले व्रतियोको महाराजने शान्त भावसे उपदेश दिया कि जैनागममे व्रत न लेनेको अपराध नही माना है, किन्तु लेकर उसमे दोप लगाना या उसे भङ्ग करना अपराध वताया है, अत 'समीक्ष्य व्रतमादेयमात्त पाल्य प्रयत्नत ' अर्थात् पूर्वापर विचार कर व्रत ग्रहण करना चाहिये, और ग्रहण किये हुए व्रतको प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। मनुष्य पर्यायका सवसे प्रमुख कार्य चारित्र-धारण करना ही है, इसलिये यह दुर्लभ पर्याय पाकर अवश्य ही चारित्र-धारण करना चाहिये। उन्होने कहा कि अन्तरङ्गकी वात तो प्रत्यक्षज्ञानगम्य है, पर वाह्यमे हिंसादि पञ्चपापोसे निवृत्ति होना सम्यक्चारित्र है, पापोकी प्रवृत्ति से ही आज ससार दु खसे पीडित हो रहा है। जहाँ देखो, वहाँ हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और परिग्रहासक्तिके उदाहरण देखनेमे आ रहे है। आजका वातावरण ही पञ्च पापमय हो रहा है। इसलिये विवेकी मनुष्यको इस वातावरणसे हट कर अपनी प्रवृत्तिको निर्मल वनाना चाहिये।

इस व्रती सम्मेलनमे यह भी चर्चा आई कि आज त्यागी छोटी-मोटी प्रतिज्ञा लेकर घर छोड देते है और अपने आपको एकदम पराश्रित कर देते है। इस क्रियासे त्यागियोकी प्रतिष्ठा समाजमे कम होती जा रही है। इस विषयपर महाराजने कहा कि समन्तभद्रस्वामीने परिग्रह त्यागका जो क्रम रक्खा है, उसी क्रमसे यदि परिग्रहका त्याग हो, तो त्यागी पुरुषको कभी व्यग्रताका अनुभव न करना पडे। सातवी प्रतिमा तक न्यायपूर्ण व्यापार करनेकी आगममे छूट है, फिर क्यो पहली। दूसरी प्रतिमाधारी त्यागी व्यापारादि छोड, भोजन-वस्त्रादिके लिये परमुखापेक्षी वन जाते है। यद्यपि आशाधरजीने गृहविरत श्रावकका भी वर्णन किया है, पर वह अपने पास इतना परिग्रह रखता है, जितनेमे उसका निर्वाह हो सकता है। यथार्थमे परगृह भोजन १० वी ११ वी प्रतिमासे शुरू होता है। उसके पहले जो व्रती परगृह भोजन सापेक्ष होते है, उन्हे सक्लेशका अनुभव

करना पडता है। पासका पैसा छोड दिया, और यातायातकी इच्छा घटी नही, ऐमी स्थितिमे कितने ही त्यागी लोग तीर्थयात्रादिके वहाने गृहस्थो-से पैसेकी याचना करते है, यह मार्ग अच्छा नही है। यदि याचना ही करनी थी, तो त्यागका आडम्बर ही क्यो किया ? त्यागका आडम्वर करनेके वाद भी यदि अन्त करणमे नही आया तो यह आत्मवञ्चना कहलावेगी।)

महाराजने यह भी कहा कि त्यागीको किसी सस्थावादमे नही पडना चाहिये। यह कार्य गृहस्थोका है। त्यागीको इस दल-दलसे दूर रहना चाहिये। घर छोडा, व्यापार छोड़ा, वाल-बच्चे छोडे, इस भावनासे कि हमारा कर्तृत्वका अहभाव दूर हो, और समताभावसे आत्मकल्याण करे, पर त्यागी होने पर भी वह वना रहा, तो क्या किया ?(इस सस्थावादके दलदलमे फँसानेवाला तत्त्व लोकेषणाकी चाह है। जिसके हृदयमे यह विद्यमान रहती है, वह सस्थाओके कार्य दिखा कर लोकमे अपनी ख्याति वढाना चाहता है, पर इस थोथी लोकेपणासे क्या होने जानेवाला है ? जव तक लोगोका स्वार्थ किसीसे सिद्ध होता है, तव तक वे उसके गीत गाते हैं, और जब स्वार्थमे कमी पड जाती है, तो फिर टकेको भी नही पूछते। इसलिये आत्मपरिणामोपर दृष्टि रखते हुए, जितना उपदेश वन सके, उतना त्यागी हो, अधिककी व्यग्रता न करे।)

एक वात यह भी कही कि त्यागीको ज्ञानका अभ्यास अच्छा करना चाहिये। आज कितने ही त्यागी ऐसे है, जो सम्यग्दर्शनका लक्षण नही जानते, आठ मूलगुणोके नाम नही गिना पाते। ऐसे त्यागी अपने जीवन का समय किस प्रकार यापन करते है, वे जानें। मेरी तो प्रेरणा है कि त्यागीको क्रमपूर्वक अध्ययन करनेका अभ्यास करना चाहिए। समाजमे त्यागियोकी कमी नही, परन्तु जिन्हे आगमका अभ्यास है, ऐसे त्यागी कितने है ? आगमज्ञानके विना लोकमे प्रतिष्ठा नही और प्रतिष्ठाकी चाह घटी नही, इसलिए त्यागी ऊटपटॉग क्रियाएँ वताकर भोली-भाली जनतामे अपनी प्रतिष्ठा वनाये रखना चाहते है, पर इसे धर्मका रूप कैसे कहा जा सकता है ? ज्ञानका अभ्यास जिसे है वह सदा अपने परिणामोकी गति समझे विना(ज्ञानी मानव) कभी प्रवृत्ति नही करता, अत मुनि हो, चाहे श्रावक, सवको अभ्यास करना चाहिये। अभ्यासकी दृष्टिसे यदि दश-वीस त्यागी एकत्र रहकर किसी विद्वान्से अध्ययन करना चाहते है, तो गृहस्थ लोग उसकी व्यवस्था कर दे सकते है। पर ऐसी भावनावाले हो, तव न। व्रती-विद्यालय स्थापित होना चाहिये, ऐसी माँग देख श्री छद [illegible]

कहा कि यदि व्रती विद्यालय कही स्थापित हो, तो हम १५०) मासिक दो वर्ष तक देते रहेगे। एक दो महाशयोने और भी २०) २०), ३०) ३०) रुपया मासिक देते रहनेकी घोषणा की।

महाराजने यह भी कहा कि आजका व्रतीवर्ग चाहे मुनि हो, चाहे श्रावक, स्वच्छन्द होकर विचरना चाहता है, यह उचित नही है। मुनियोमे तो उस मुनिके लिए एकविहारी होनेकी आज्ञा है जो गुरुके सान्निध्यमे रहकर अपने आचार-विचारमे पूर्ण दक्ष हो तथा धर्मप्रचारकी भावनासे गुरु जिसे एकाकी विहार करनेकी आज्ञा दे दे। आज भी यह देखा जाता है कि जिस गुरुसे दीक्षा लेते है, उसी गुरुकी आज्ञापालनमे अपनेको असमर्थ देख नवदीक्षित मुनि स्वय एकाकी विहार करने लगते है। गुरुके साथ अथवा अन्य साथियोके साथ विहार करनेमे इस वातकी लज्जा या भयका अस्तित्व रहता है कि यदि हमारी प्रवृत्ति आगमके विरुद्ध होगी, तो लोग हमे वुरा कहेगे, गुरु प्रायश्चित देगे, पर एकविहारी होने पर किसका भय रहा ? जनता भोली है, इसलिए कुछ कहती नही, यदि कहती है, तो उसे धर्मनिन्दक आदि कहकर चुप करा दिया जाता है। इसतरह धीरे-धीरे शिथिलाचार फैलता जा रहा है। किसी मुनिको दक्षिण और उत्तरका विकल्प सता रहा है, तो किसीको वीसपथ और तेरहपथका। किसीको दस्सावहिष्कारकी धुन है, तो कोई शूद्रजल त्यागके पीछे पडा है। कोई स्त्री-प्रक्षालके पक्षमे मस्त है, तो कोई जनेऊ पहिराने और कटीमे धागा बँधवानेमे व्यग्र है। कोई ग्रथमालाओके सचालक वने हुए हैं, तो कोई ग्रन्थ छपवानेकी चिन्तामे गृहस्थोके घर-घरसे चन्दा माँगते फिरते है। किन्हीके साथ मोटरे चलती है, तो किन्हीके साथ गृहस्थजन, दुर्लभ कीमती चटाइयाँ और आसनके पाटे तथा छोलदारियाँ चलती है। त्यागी, ब्रह्मचारी लोग अपने लिए आश्रय या उनकी सेवामे लीन रहते है। 'बहती गङ्गामे हाथ धोनेसे क्यो चूकें' इस भावनासे कितने ही विद्वान् उनके अनुयायी वन, आँख मीच चुप वैठ जाते है, या हाँ मे हाँ मिला गुरुभक्तिका प्रमाणपत्र प्राप्त करनेमे सलग्न रहते है। ये अपने परिणामोकी गतिको देखते नही है। चारित्र और कषायका सम्बन्ध प्रकाश और अन्धकारके समान है। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नही और जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश नही। इसी प्रकार जहाँ चारित्र है वहाँ कषाय नही और जहाँ कषाय है वहाँ चारित्र नही। पर तुलना करनेपर वाजे-वाजे व्रतियोकी कषाय तो गृहस्थोसे कही अधिक निकलती है। व्रतीके लिए शास्त्रमे नि शल्य वताया है। शल्योमे एक

माया भी शल्य होती है। उसका तात्पर्य यही है कि भीतर कुछ रूप रखना और बाहर कुछ रूप दिखाना। व्रतीमे ऐसी वात नही होना चाहिए। वह तो भीतर-वाहर मनसा-वाचा-कर्मणा एक हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस उद्देश्यसे चारित्र ग्रहण किया है, उस ओर दृष्टि-पात्त करो, और अपनी प्रवृत्तिको निर्मल वनाओ। उत्सूत्र प्रवृतिसे व्रतकी शोभा नही।)

(महाराजकी उक्त देशनाका हमारे हृदयपर बहुत्त प्रभाव पडा। इसी व्रती-सम्मेलनमे एक विषय यह आया कि क्या क्षुल्लक वाहनपर वैठ सकता है? महाराजने कहा कि जब क्षुल्लक पैसेका त्याग कर चुका है, तथा ईर्यासमितिसे चलनेका अभ्यास कर रहा है तब वह वाहनपर कैसे बैठ सकता है? पैसेके लिए उसे किसीसे याचना करनी पडेगी तथा पैसोकी प्रतिनिधि जो टिकट आदि है, वह अपने साथ रखनी पडेगी। आखिर विचार करो, मनुष्य क्षुल्लक हुआ क्यो? इसीलिए तो कि इच्छाये कम हो? यातायात कम हो, सीमित्त स्थानमे विहार हो। फिर क्षुल्लक वननेपर भी इन सब वातोमे कमी नही आई, तो क्षुल्लकपद किसलिए रखा? अमुक जगह जाकर धर्मोपदेश देंगे, अमुक जगह जाकर अमुक कार्य करेगे? यह सब छल क्षुल्लक होकर भी क्यो नही छूट रहा है? तुम्हे यह कपाय क्यो सता रही है कि अमुक जगह उपदेश देंगे? अरे, जिन्हे तुम्हारा उपदेश सुनना अपेक्षित होगा, वे स्वय तुम्हारे पास चले आवेंगे। तुम दूसरेके हितोको व्याज वनाकर, स्वय क्यो दौडे जा रहे हो? यथार्थमे जो कौतुक भाव क्षुल्लक होनेके पहले था, वह अब भी गया नही। यदि नही गया, तो कौन कहने गया था, कि तुम क्षुल्लक हो जाओ? अपनी कषायकी मन्दता या तीव्रता देखकर ही कार्य करना था। यह कहना कि पञ्चम काल है, इसलिए यहाँ ऐसे होते है, यह मार्गका अवर्णवाद है। अस्सी तोलेका सेर होता है, पर इस पञ्चम कालमे आप पौने अस्सी तोलेके सेरसे किसी वस्तुको ग्रहण कर लोगे? 'नही, यहाँ तो चाहते हो, अस्सी तोलेसे रत्ती दो रत्ती ज्यादा ही हो, पर धर्माचरणमें पञ्चम कालका छल ग्रहण करते हो। लोग कहते है, कि दक्षिणके क्षुल्लक तो वैठते है? पर उनके वैठनेसे क्या वस्तुतत्त्वका निर्णय हो जावेगा? वस्तुका स्वरूप तो जो है, वही रहेगा। दक्षिण और उत्तरका प्रश्न वीचमे खडा कर देना हितकी बात नही। अस्तु,

इसके वाद दूसरे दिन श्री भैयासाहव राजकुमारसिंह इन्दौरवालोकी अध्यक्षतामे जैन सघ मथुराका वार्पिक अधिवेशन हुआ। यह प्रयत्न प०

राजेन्द्रकुमारजीका था। अपार भीडके बीच उत्सव प्रारम्भ हुआ। अध्यक्ष महोदयका भाषण हुआ। शुभकामनायें आदि श्रवण कराई गई। दूसरे दिन फिर खुला अधिवेशन हुआ। अनेक प्रस्ताव पास हुए। इसके बाद एक दिन श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामे हीरक-जयन्ती-समारोह तथा अभिनन्दनग्रन्थ-समर्पणका समारोह हुआ। विद्वानोके बाद श्री कालेलकरने हमारे हाथमे ग्रन्थ-समर्पण कर अपना भाषण दिना। उन्होने जैनधर्मकी बहुत प्रशसा की। साथ ही हरिजन-समस्या पर बोलते हुए कहा कि यह स्पर्शका रोग जैनधर्मका नहो, हिन्दू धर्मसे आया है। यदि जैनियोकी ऐसी ही प्रवृत्ति रही, तो मुझे कहना पडेगा कि आप लोग नामसे नही, किन्तु परिणामसे हिन्दू बन जावेगे। जैनधर्म अत्यन्त विशाल है। उसकी विशालता यह है कि उसमे चारो गतियोमे जो सज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी है, वे अनन्त ससारके दु.खोको हरनेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते है। धर्म किसी जातिविशेषका नही। धर्म तो अधर्मके अभावमे होता है। अधर्म आत्माकी विकृत अवस्थाको कहते है। जब तक धर्मका विकास नही, तब तक सर्व आत्माये अधर्म रूप रहती है। चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र हो, शूद्रमे भी चाहे चाण्डाल हो, चाहे भगी हो, सम्यग्दर्शन होते ही यह जीव पुण्यात्मा जीव कहलाता है, अत किसीको हीन मानना सर्वथा अनुचित है।

समारोह समाप्त होनेके बाद आप सन्ध्याकाल हमारे निवास-स्थानपर भी आये। मासाहार आदि विषयोपर चर्चा होती रही। आपने स्वीकृत किया कि समय बडा खराब है। सरकार नवीन है। यदि जनताने पूर्ण सहयोग दिया, तो देशकी परिस्थितिको हमारी सरकार सँभाल लेगी। अभिनन्दन-ग्रन्थके तैयार करने, तथा इस विशाल रूपमे उत्सव सम्पन्न करानेमे श्री प० पन्नालालजी साहित्याचार्य और प० खुशालचन्द्रजी साहित्याचार्यको बडा श्रम करना पडा है। यहाँका उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। श्री लाला छदामीलालजीने स्याद्वाद विद्यालयके घाटका जीर्णोद्धार करानेके लिए १००००) दश हजारका दान घोषित किया।

फाल्गुन कृष्ण १ स० २००७ को आपके यहाँ हमारा आहार हुआ। आप ३ भाई है। आपने अपने मझले भाईका बालक गोद लिया है। आपने २० लाखका दान किया है। एक दो लाखसे ऊपर, मन्दिर बनाने का भी विचार है, जिसकी नींव गिर चुकी है। आप सुशील है। जो वादा करते है, उसे पूर्ण करते है। आपने जो मेला भराया, उसमे बहुत उदारता

से काम लिया। ७५ व्रती महानुभावों का प्रतिदिन भोजन होता था। प० कैलाशचन्द्रजी, पं० फूलचन्द्रजी, प० पन्नालालजी, प० खुशालचन्द्रजी, राजकृष्णजी, महेन्द्रकुमारजी आदि अनेक विद्वान् इस मेलामे आये थे। श्रीमन्त वर्ग भी पुष्कल था। मेलाका प्रवन्ध प० राजेन्द्रकुमार जी द्वारा वहुत उत्तम रीतिसे हुआ। किसीको कोई कष्ट नही होने दिया।

द्वितीयाके दिन श्री प० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्यके घर भोजन किया। तदनन्तर श्री नसियाजीके मन्दिरमे आये। थोडी देर आरामकर सामायिक किया। तत्पश्चात् १ वजे शिकोहावादके लिए प्रस्थान किया। प्रस्थानके पूर्व श्रीआचार्यमहाराजके पास गया, तो उन्होने आशीर्वाद देते हुए कहा कि तेरा अवश्य कल्याण होगा, तू भोला है, तुझसे प्रत्येक मनुष्य अनुचित लाभ उठाना चाहता है। तेरी अवस्था वृद्ध है, अत. अव एक स्थानपर रहकर धर्म-साधन कर इसीमे तेरा कल्याण है, धर्म नि स्पृहतामे है।

श्री प० राजेन्द्रकुमारजी वा श्री छदामीलालजी आदि अनेक सज्जन पहुँचानेके लिए आये। अनेक प्रकारका सलाप हुआ। सवके मुखसे श्री छदामीलालकी प्रशसाके पोषक वाक्य निकले। मेलामे जवलपुरसे अनेक सज्जन तथा सागरसे सेठ भगवानदासजी आदि अनेक महानुभाव पधारे थे, और सवने सागर चलनेकी प्रेरणा की थी, इसलिए मनमे एकवार सागर पहुँचनेका निश्चय कर लिया।

स्वर्णगिरिकी ओर

फिरोजावादसे ६ मील चलकर शिकोहावादमे ठहर गये। अध्यापिकाके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर मन्दिर वहुत सुन्दर और स्वच्छ है। ५० घर पद्मावतीपुरवालोंके है। परस्परमे मैत्रीभाव है। रात्रिको शास्त्रसभा होती है। हम जहाँ पर ठहरे थे, वह जैनपुस्तकालयका स्थान था, परन्तु विशेष व्यवस्था नही। ज्ञानका आदर नही, जो कुछ द्रव्य लोग व्यय करते हैं, वह मन्दिरकी शोभामे लगाते है। ज्ञानगुण आत्माका है। उसके विकासमे न द्रव्य लगाते है, और न समयका सदुपयोग करते है। केवल वाह्यमे सगमर्मर आदिका फर्स लगाकर तथा वेदीमे सुवर्णका चित्राम आदि वनवा नेत्रोके विषयको पुष्ट करते है। (आत्माका स्वभाव

ज्ञाता-द्रष्टा है, उसको दूषित कर राग और द्वेषके द्वारा किसीको इष्ट और अनिष्ट मानकर निरन्तर परको अपनाने और न अपनानेमे ही दु खके पात्र बनते है।)

फाल्गुन कृष्णा ५ स० २००७ को वटेश्वर आ गये। यहाँपर भट्टारकजीके मन्दिरमे ठहर गये। मन्दिर बहुत रम्य और विशाल है। नीचेके भागमे ठहरे। स्नान कर ऊपर आये तथा मूर्तिके दर्शन कर गद्गद हो गये। काले पाषाणकी ४ फुट ऊँची श्री अजितनाथ भगवान्की मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। (वीतराग भावका उदय जिसके दर्शनसे होता है, वह प्रतिमा मोक्षमार्गमें सहायक है। आचार्योंने इसे सम्यग्दर्शनको उत्पत्तिका बाह्य कारण बताया है। यद्यपि वीतरागता वीतरागका धर्म है, और वीतराग आत्मा, मोहके अभावमे होता है। किन्तु जिस आत्मामे वीतरागताका उदय होता है, उसकी मुद्रा भी बाह्यमे शान्तरूप हो जाती है—शरीरके अवयव स्वभावसे ही सौम्य हो जाते है। यह असम्भव बात नही। जिस समय आत्मा क्रोध करता है, उस समय इसके नेत्र आरक्त और मुख भयकर आकृतिको धारण कर लेता है, शरीरमे कम्प होने लगता है, दूसरा मनुष्य देखकर भयवान् हो जाता है। इसीतरह जब इस प्राणीके शृङ्गाररसका उदय आता है, तब उसके शरीरका अवलोकन कर रागी जीवोको रागका उदय हो जाता है। जैसे कालीकी मूर्तिसे भय और हिंसकता झलकती है, तथा वेश्याके अवलोकनसे रागादि भावोंकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही वीतरागके दर्शनसे जीवोके वीतराग-भावोका उदय होता है। वीतरागता कुछ बाह्यसे नही आती। जहाँ राग-परिणतिका अभाव होता है, वही वीतरागताका उदय हो जाता है।)

बटेश्वरसे ५ मील चलकर बाह आगये तथा मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। थकानके कारण ज्वर हो गया। अब शारीरिक शक्ति दुर्बल हो गई, केवल कषायसे भ्रमण करते है। एकबार भोजन करनेवालेको मध्याह्नके बाद गमन करना अपथ्य है। (वैसे तो नीतिमे कहा है, 'अध्वा जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिना जरा' अर्थात् मार्ग चलना मनुष्योका बुढापा लाता है। और मार्ग न चलना घोडोका बुढ़ापा लाता है। यह व्यवस्था प्राचीन ऋषियोने दी है,) किन्तु इसका अमल नही करते, जिसका फल अच्छा नही। बाह अच्छा ग्राम है। यहाँके जैनी भी सम्पन्न है। यदि लोगोमे परस्पर सौमनस्य हो जावे तो एक अच्छा छात्रावास चल सकता है। लोगोसे कहा गया तथा उन्होने स्वीकार भी किया। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुआ। उपस्थिति ४० मनुष्य तथा स्त्रियोकी थी। आगरासे

श्रीयुत ख्यालीरामजी तथा एक महाशय और आ गये। प्रवचन हुआ। इस बात पर बल दिया कि यदि इस प्रान्तमे एक छात्रावास हो जावे तो छात्रोका महोपकार हो। इसके अर्थ २ बजेसे एक सभा बुलाई गई। उपस्थिति ५० के लगभग होगी। अन्ततोगत्वा दो आदमियोने दो कोठा बनवानेका वचन दिया तथा १२००) के लगभग चन्दा हो गया। चन्दा विशेष न होनेका कारण लोगोकी स्थिति सामान्य थी। फिर भी यथा-शक्ति सबने चन्दा दिया। श्री ख्यालीरामजी आगरावालोने कहा कि यदि तुम लोग ७०००) इकट्ठा करलो, तो शेष रुपया हम आगरासे आपको दे देवेगे। किन्तु यहाँ की जनता अभी उसकी पूर्ति नही कर सकती। विश्वास होता है कि यह छात्रावास पूर्ण हो जावेगा। जैनियोमे दानकी त्रुटि नही, परन्तु योग्य स्थानोमे द्रव्यका सदुपयोग नही होता। इस प्रान्तमे शिक्षाकी त्रुटि बहुत है। ऐसे स्थानोमे छात्रावासकी महती आवश्यकता है। यहाँपर ग्रामीण जनता बहुत है। देहातमे शिक्षाके साधन नही। मनुष्य इतने वैभवशाली नही कि छात्रोको नगरोमे भेज सके। आजकलके समयमे २०) मासिक तो सामान्य भोजनको चाहिए।

तीसरे दिन भी यहाँ प्रवचन हुआ। आज उपस्थिति पिछले दिनोसे अधिक थी। तहसीलदार, नायब तहसीलदार तथा वकील आदि विशिष्ट लोग आये। बहुतसे पण्डित महोदय भी उपस्थित थे। प्रवचन सुनकर सब प्रसन्न हुए। जैनधर्म तो प्राणीमात्रका कल्याण चाहता है। उसकी बात सुनकर किसे प्रसन्नताका अनुभव न होगा? केवल आवश्यकता इस बातकी है कि श्रोता सद्भावसे सुने और वक्ता सद्भावसे कहे। फाल्गुन कृष्णा ९ को २ बजे बाद जब यहाँसे सामरमऊ चलने लगे, तब यहाँके उत्साही युवकोने कहा कि यहाँ १ कन्याशाला हो जावे, तो उनका बड़ा उपकार हो। मैने कहा कि करना तो तुमको है, चन्दा करो। १५ मिनटमें ४३) मासिकका चन्दा हो गया। ६ मासका चन्दा पहले देनेका निर्णय हुआ। सब लोगोमे उत्साह रहा। ३॥ बजे यहाँसे चल दिये। १५ युवक सामरमऊतक पहुँचाने आये। यहाँपर १ बुढियाने सबको सायंकालका भोजन कराया। रात्रिको शास्त्रप्रवचन हुआ। यहाँपर बुढ़ियाकी एक लडकी विधवा है। ३० वर्षकी आयु है। नाम जिनमती है, बुद्धिमती है। हमने कहा महावीरजी पढने चली जा। उसने स्वीकार किया कि जाऊँगी, बुढियाने १०) मासिक देना स्वीकार किया। यद्यपि उसकी इतनी शक्ति न थी, तथापि उसने देना स्वीकृत किया। उसका कहना था कि मैं अपनी लडकीको अनाथ क्यो बनाऊँ? जब तक मेरे पास द्रव्य है, उसे दूँगी।

लडकी भी सुशीला है। ससारमे अनेक मनुष्य उपकार करने योग्य है, परन्तु जिनके पास धन है, उनके परिणाम यदि तदनुकूल हो, तो काम बने पर ऐसा हो सकना सभव नही है। यह कर्मभूमि है। इसमे सर्व मनुष्य सदृश नही हो सकते।

सामरमऊसे ५ मील चलकर नदगुवाँ आ गये। ग्राम अच्छा है, मन्दिर विशाल है, भट्टारकका बनाया है। इस प्रान्तमे भट्टारकोंने प्राय अनेक ग्रामोमे मन्दिर बनवाये है, बडे-बडे विशाल मन्दिर है। एक समय था कि जब भट्टारको द्वारा जैनधर्मकी महती प्रभावना हुई, परन्तु जबसे उनके पास परिग्रहकी प्रचुरता हुई, और वे यन्त्र-मन्त्र तथा औषध आदिका उपयोग करने लगे, तबसे इनका चारित्र भ्रष्ट होने लगा और तभीसे इनका चमत्कार चला गया। अब इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। कई गद्दियाँ तो टूट गईं और जो है उनके भट्टारक समाज-मान्य नहीं रहे।

नदगुवाँसे ३ मील चलकर अटेर आ गये। बीचमे २ मील पर चवल-नदी थी। २ फर्लाङ्गका घाट था। प्रवचन हुआ, मनुष्यसख्या अच्छी थी। सायकाल ४ बजे सार्वजनिक सभा हुई, जैन अजैन सभी आये। सबने यह स्वीकार किया कि शिक्षाके बिना उपदेशका कोई असर नही होता, अत सर्वप्रथम हमे अपने बालकोको शिक्षा देना चाहिए। शिक्षाके बिना हम अविवेकी रहते है, चाहे जो हमे ठग ले जाता है, हमारा चारित्रनिर्माण नही हो पाता है, हम अज्ञानावस्थाके कारण पशु कहलाते है। यद्यपि हम चाहते है कि ससारमे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करे, परतु बोधके अभावमे कुछ नही जानते और सदा परके दास बने रहते है। ज्ञान आत्माका गुण है, परन्तु कोई ऐसा आवरण है, कि जिससे उसका विकास रुका रहता है, शिक्षाके द्वारा वह आवरण दूर हो जाता है।

दूसरे दिन प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। पाठशालाके लिए जनताने उत्साहसे चन्दा दिया, परन्तु कुछ आदमी अन्तरङ्गसे देना नही चाहते, अत चन्दा देनेमे बीसो तरहके रोडे अटकाते है। इनकी चेष्टासे सत्कार्यमे बहुत क्षति होती है। अटेरसे ५ मील चलकर परतापपुर आये, यहाँ १ चैत्यालय है, ८ घर जैनी है, बडे प्रेमसे शास्त्रश्रवण किया, २ घर शुद्ध भोजन बना, जिसके यहाँ हमारा आहार हुआ उसने ५१) अटेरकी पाठशालाको दिये। दूसरे घर श्रीसंभवसागरजीका आहार हुआ। उसने भी २१) दिये। यहाँके मनुष्य बहुत सज्जन है। कई मनुष्योंने

अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निका तथा दशलक्षणके दिनोमे ब्रह्मचर्यका नियम लिया। परतापपुरसे ५½ मील चल कर पुरा आये। यह ग्राम १ टीकरी पर बसा है। यहाँ पर १ जिन-मन्दिर है। मन्दिरकी मरम्मत नही। ४ घर जैनी हैं। सबने अष्टमी, चतुर्दशीको ब्रह्मचर्यका नियम लिया। कई ब्राह्मणोने भी रविवार तथा एकादशीको ब्रह्मचर्य रखनेका प्रण किया। यहाँसे चलकर लावन आये। यहाँ पर २० घर जैनी है। १२ गोलालारे और ८ घर गोलसिंगारे हैं। २ जैनमन्दिर है। गोलसिंगारे सूरजपाल मन्दिरके प्रवन्धक हैं। आप भिण्डमे रहते हैं। मन्दिरकी व्यवस्था अच्छी नही, पूजनका भी प्रवन्ध ठीक नही, परस्परमे सौमनस्य नही। जो मनुष्य मन्दिरके द्रव्यका स्वामी बन जाता है, वह शेषको तुच्छ समझने लगता है, और मन्दिरका जो द्रव्य उसके हाथमे रहता है, उसे वह अपना समझने लगता है। समय पाकर वह दरिद्र हो जाता है, और अन्तमे जनताकी दृष्टिमे उसकी प्रतिष्ठा नही रहती। अत मनुष्यताकी रक्षा करनेवालेको उचित है कि मन्दिरका द्रव्य अपने उपयोगमे न लावे। द्रव्य वह वस्तु है कि इसके वशीभूत हो मनुष्य न्यायमार्गसे च्युत होनेकी चेष्टा करने लगता है। न्यायमार्गका अर्थ यही है कि आजीविकाका इस रीतिसे अर्जन करे कि जिसमे अन्यके परिणाम पीड़ित न हो, आत्मपरिणामसे जहाँ सक्लेशताका सम्बन्ध हो जाता है, वहाँ पर विशुद्धपरिणामोका अभाव हो जाता है, और जहाँ विशुद्धपरिणामोका अभाव होता है, वहाँ शुद्धोपयोगको अवकाश नही मिलता।

लावनसे चल कर वरासो आये। यहाँ पर २ मन्दिर हैं। एक मन्दिर वहुत प्राचीन है। दूसरा उसकी अपेक्षा वडा है। वहुत सुन्दर वना हुआ है। २० फुटकी कुरसी होगी। उसके ऊपर धर्मशाला है, जिसमे २०० आदमी निवास कर सकते है। धर्मशालासे ६ फुट ऊँचाईपर मन्दिर है, मन्दिरके चौकमे ५०० मनुष्य सानन्द शास्त्र-श्रवण कर सकते है। मन्दिर मे ३ स्थानो पर दर्शन हैं। विम्व वहुत मनोहर है। १२४४ सम्वत्‌की प्रतिमा है। शिल्पकार वहुत ही निपुण था। विम्वकी मुद्रासे मानो शान्ति टपक रही है। देखते-देखते चित्त गद्‌गद् हो गया। कोई पद्मासन विम्व है, और कोई खड्गासन है। दोनो तरहके विम्व मनोज्ञ हैं। वर्तमानमे वह कला नही। मन्दिर मनोज्ञ है, परन्तु वर्तमानमे कोई जैनी विशेषज्ञ नही। सामान्य रूपसे पूजनादि कर लेते हैं। यहाँ पर आवश्यकता १ गुरुकुलकी है, जिसमे १०० छात्र अध्ययन करें।

वरासौसे वीचमे छैकुरी ठहरते हुए मौ आ गये। यहाँ पर ४० घर

खरौआ गोलालारोके है, इनमे श्री सुक्कीलालजी पुष्कल धनी है। आपके द्वारा १ मन्दिर सोनागिरिमे निर्माण कराया गया है। १ धर्मशाला भी आपने वहाँ निर्माण कराई है। आप सज्जन है। यदि आपकी रुचि ज्ञानमे हो जावे तो आप बहुत कुछ कर सकते है। परन्तु यही होना कठिन है, हो भी जावे असम्भव नही। मोह ऐसा प्रवल है कि अपनी उन्नतिके अर्थ समर्थ होते हुए भी यह जीव कुछ नही कर सकता। ज्ञानअर्जन करना प्राणीमात्रके लिये आवश्यक है, और अवकाश भी प्रत्येकके पास है, परन्तु यह मोही उसमे प्रयत्न नही करता। इधर-उधरकी कथाएँ करके निज समयको विता देना ही, इसका कार्य है।

आज अष्टाह्निकाका प्रथम दिवस अर्थात् अष्टमी थी। मन्दिरमे प्रवचन हुआ, उपस्थिति अच्छी थी। लोगोमे स्वाध्यायकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम हो रही है। जो है भी, वह व्यवस्थित नही, इसीलिए जीवनभर स्वाध्याय करने पर भी कितने ही लोगोको कुछ नही आता। स्वाध्याय और उसके फलका विवेचन करतेहुए मैंने कहा—वाचना और पृच्छना यह स्वाध्यायके अङ्ग हैं। स्वाध्याय सज्ञा तपकी है। तपका लक्षण इच्छा-निरोध है, अतएव तप निर्जराका कारण है। वैसे देखा जाय, तो स्वाध्यायसे तत्त्वबोध होता है तथा सुननेवाला भी इसके द्वारा बोध प्राप्त करता है। वोधका फल न्याय-ग्रन्थोमें हानोपादानोपेक्षा तथा अज्ञान-निवृत्ति वतलाया है। जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेपस्यादानहानधी।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे॥

यहाँ केवलज्ञानका फल उपेक्षा और शेष चार ज्ञानोका फल हान और उपादान कहा है। अर्थात् हेयका त्याग और उपादेयका ग्रहण है। यहाँ पर यह आशका होती है, कि ज्ञान चाहे पूर्ण हो, चाहे अपूर्ण हो, उसका फल एक तरहका ही होना चाहिये। तव जो फल केवलज्ञानका है, वही फल शेप चार ज्ञानोका होना चाहिये। इसीसे श्री समन्तभद्राचार्यने शेप चार ज्ञानका फल वही लिखा है—'पूर्वा वा।' यहाँ पर यह वात उठती है कि उपेक्षा तो मोहके अभावमे द्वादश गुणस्थानमे हो जाती है, और केवलज्ञान तेरहवे गुणस्थानमे होता है, अत केवलज्ञानका फल उपेक्षा उचित नही और शेप चार ज्ञानका फल आदान हान भी उचित नही, क्योकि आदान और हान मोहके कार्य हैं, इससे ज्ञानका फल अज्ञान निवृत्ति ही है।

मौ से ४ मील चलकर असौना आये। यहाँ ३ घर जैनियोके है, १ छोटा-सा वरडा है। उसीमे जिनेन्द्रदेवके ३ छोटे विम्व है। ग्राम अच्छा है। यहाँपर गेहूँ अच्छा उत्पन्न होता है। सव लोग सुखी है। हमारे साथ १० आदमी थे, ग्रामवासियोने सवको भोजन कराया। ग्रामीण जन वहुत ही सरल व उदार होते है। इनमे पापाचारका प्रवेश नही होता। ये विपयोके लोलुपी भी नही होते। इसके अनुकूल कारण भी ग्रामवासियोको उपलब्ध नही होते, अत उनके सस्कार अन्यथा नही होते। यहाँ १ वजेसे प्रवचन हुआ। ग्रामके वहुत मनुष्य आये। सुखपूर्वक शास्त्र-श्रवण किया। मेरी वुद्धिमे तो आता है कि इस आत्माके अन्तर्गत अनेक सामर्थ्य है, परन्तु अपनी अज्ञानतासे यह उन्हे व्यक्त नही कर पाता। यहाँसे चलकर मगरौल ठहर गये और मगरौलसे प्रात ६॥ वजे सौडा ग्रामके लिये चल दिये। मार्गमे दोनो ओर गेहूकी उत्तम कृषि थी। २ मील चलकर १ अटवी मिली। १ मील वरावर अटवी रही। यहाँपर करदी लकडीका घना जगल था, परन्तु दतिया सरकारने वेच दिया, इससे लकडी काट दी गई। अव नाम मात्र अटवी रह गई है। यहाँ अटवीके नीचे बहुत कोयला वनता है। यहाँसे १ मील चलकर कालीसिन्धु नदी मिली। बहुत वेगसे पानी बहता है। १ स्थानपर ऊपरसे जल प्रपात पडता है। नीचे एक वहुत भारी कुण्ड है। पत्थरकी वहुलता होनेसे कुण्डके चारो ओर दहलाने वनी है। कई मन्दिर है। एक मन्दिर महादेवजीका है। अनेक घाट वने हुए है। पानी अत्यन्त स्वच्छ तथा पीनेमे स्वादिष्ट है। शतश स्त्री और मनुष्य स्नान करते है। स्थान अत्यन्त रम्य और चित्ताकर्पक है। ऐसे स्थान पर यदि कोई धर्मध्यान करे, तो वहुत ही उपयोग लगे। परन्तु वर्तमानमे लोगोकी इस तरहकी विपम परिस्थिति है कि वे अपनी आवश्यकताओकी पूर्तिमे ही अहर्निश निमग्न रहते है तथा व्यग्रताके कारण प्रसन्नतासे वञ्चित रहते है।

सौडामे १० बजे पहुँच स्नानादिसे निवृत्त हो, रामदयाल छोटेलालजी खरौआके यहाँ भोजन किया। आगामी दिन मेघका प्रकोप अधिक था, अत प्रात कालका प्रयाण स्थगित कर सौडामे ही १ घण्टा स्वाध्याय किया। तदनन्तर भोजन कर सामायिक किया, और आकाशको निर्मल देख, आगेके लिये चल पडे। वीचमे वस्मी और नहला ग्राममे ठहरते हुए रामपुरा आ गये। यहाँ पर १ घर जैसवाल जैनका है। इनके घरमे १ चैत्यालय है। नीचे मकान है, ऊपर अटारीमे चैत्यालय है। वहुत स्वच्छ

है। श्रीजोका विम्ब भी निर्मल है। हमारा भोजन इन्हीके घर हुआ। मध्यान्हकी सामायिकके वाद २ मील चल कर १ साधुके स्थान पर ठहर गये। साधु महन्त तो इन्द्रगढ गये थे। उनका शिष्य था, जो भद्र मनुष्य था। वडे प्रेमसे स्थान दिया। मुझे अनुभव हुआ कि अन्य साधुओमे शिष्टता होती है—आतिथ्य-सत्कार करनेमे पूर्ण सहयोग करते हैं। जैन-धर्म विश्वधर्म है। प्राणीमात्रके कल्याणका कारण है, परन्तु उसे आज-कलके मनुष्योने अपना धर्म समझ रखा है। किसीको उच्च दृष्टिसे नही समझते। धर्म कोई ऐसी वस्तु नही, जो आत्मासे वाह्य उसका अस्तित्व पाया जावे। वह तो कषायके अभावमे आत्मामे ही व्यक्त होता है।

रामपुरसे चल कर सेंतरी ठहरे और वहाँसे ५ मील चल कर इन्द्रगढ आ गये। ग्रामके चारो ओर प्राचीन कोट है। ग्रामके वाहर शीतला देवीका मन्दिर था, उसीमे ठहर गये। इन्द्रगढसे भडौल, कैती तथा जुजारपुर ठहरते हुए, चैत्र कृष्ण १ स० २००७ को सोनागिर आ गये। आनेमे विलम्व हो जानेसे आज पर्वत पर वन्दनाके लिये नही जा सके। जनता वहुत एकत्रित थी। सायकाल सामायिकादि क्रियाके अनन्तर जनता आ गई। पञ्चास्तिकायका स्वाध्याय किया। वहुत ही अपूर्व ग्रन्थ है। इसका प्रमेय वहुत ही उपयोगी है। मूलकर्ता श्री कुन्दकुन्द महाराज हैं। इस ग्रन्थकी वृत्ति श्री अमृतचन्द्र सूरि द्वारा वनाई गई है, जिससे मानो अमृत ही टपकता है। चैत्र कृष्ण २ को श्री १०८ विमलसागरजी आये। आप वहुत ही उत्तम विचारके मनुष्य है। इनके गुरु बहुत ही सरल है, कुछ पढे नही हैं, परन्तु अपने आचरणमे निष्णात है। मेरा तो यह ध्यान है कि सर्वथा आगमके जाननेसे ही आचरण होता हो, यह नियम नही। ऐसे भी मनुष्य देखे जाते है, जिन्हे आगमका अंशमात्र भी ज्ञान नही और अहिंसादि व्रतोका सम्यक् पालन करते हैं। 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिसा' इस सूत्रको वाँच नही सकते, परन्तु फिर भी इस हिसासे अपनी आत्माको रक्षित रखते है। इसी प्रकार 'असदमिधानमनृतम्' इस सूत्रको पढ नही सकते, फिर भी मिथ्याभापण कभी नही करते। 'अदत्तादानमस्तेयम्' इस सूत्रकी व्याख्या आदि कुछ नही जानते किन्तु स्वप्नमे परायी वस्तुके ग्रहणके भाव नही होते। 'मैथुनव्रह्म' इसके आकारको नही जानते, किन्तु स्वकीय परिणतिमे स्त्रीविषयक भोगका भाव नही होता। एव 'मूर्च्छा परिग्रह' इसका अर्थ नही जानते, फिर भी पर पदार्थोमे, मूर्च्छा नही करते। इससे सिद्ध हुआ कि आगममे जो

लिखा गया है, वह आत्माके विशिष्टपरिणामोका ही शब्दरचनारूप विन्यास है।

श्री ब्रह्मचारी छोटेलालजी तथा भगत सुमेरुचन्द्रजी भी यहाँ आ गये, जिससे मुझे परमहर्ष हुआ। इनके साथ चतुर्थीको सानन्द वन्दना की। यह क्षेत्र अत्यन्त रम्य और वैराग्यका उत्पादक है। श्री चन्द्रप्रभके मन्दिरके सामने सङ्गमर्मरके फर्संसे जडा हुआ एक वहुत रमणीय चवूतरा है। सामने सुन्दर मानस्तम्भ है। चवूतरा वडा है कि उसपर ५ सहस्र मनुष्य सानन्द धर्म श्रवण कर सकते हैं। यहाँसे दृष्टिपात करनेपर पर्वत-की अन्य काली-काली चट्टाने वहुत भली मालूम होती है। प्रात काल सूर्योदयके पूर्व जव लाल-लाल प्रभा सङ्गमर्मरके श्वेत फर्सपर पडती हे, तव वहुत सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। मन्दिरके अन्दर पूजन आदिकी सुन्दर व्यवस्था है, किन्तु यह सव होते हुए भी तीर्थक्षेत्रोपर ज्ञानार्जनका कोई साधन नही। केवल धनिकवर्ग, अपना रुपया वाह्य सामग्रीकी सजावटमे व्यय करता है। इसीमे वह अपना प्रभुत्व मानता है। प्रतिवर्ष मेलामे हजारो व्यक्ति आते हैं, पर किसीके भी यह भाव नही हुए कि यहाँ पर १ पण्डित स्वाध्याय करनेके लिये रहे, हम इसका भार वहन करेगे। केवल पत्थर आदि जडवाकर ऊपरी चमक-दमकमे प्राणियोके मनको मोहित करनेमे रुपयेका उपयोग करते हैं। प्रथम तो इन वाह्य वस्तुओके द्वारा आत्माका कुछ भी कल्याण नही होता। द्वितीय कल्याणका मार्ग जो कषायकी कृशता है, सो इन वाह्य वस्तुओसे उसकी विपरीतता देखी जाती है। कृशता और पुष्टतामे अन्तर है। विषयोके सम्वन्धसे कषाय पुष्ट होती है, और ज्ञानसे विषयोंमे प्रेम नही होता, सो इन क्षेत्रोमे ज्ञान साधनका एकरूपसे अभाव है।

पञ्चमीके दिन पुन पर्वतपर जानेका भाव हुआ, परन्तु शारीरिक शक्तिकी शिथिलतासे सव मन्दिरोके दर्शन नही कर सका। केवल चन्द्रप्रभ स्वामीके दर्शनकर सुखका अनुभव किया। पश्चात् ½ घण्टा वही प्रवचन किया। मैने कहा—मैं तो कुछ जानता नही, परन्तु श्रद्धा अटल है कि कल्याणका मार्ग केवल आत्मतत्त्वके यथार्थ भेदज्ञानमे है। भेदज्ञानके फलसे ही आत्मा स्वतन्त्र होती है, स्वतन्त्रता ही मोक्ष है। पारतन्त्र्य-निवृत्ति और स्वातन्त्र्योपलब्धि ही मोक्ष है। मोक्षमार्गका मूल कारण परपदार्थकी सहायता न चाहना है। कर्मका सम्वन्ध अनादि कालसे चला आया है, उसका छूटना परिश्रमसाध्य है। परिश्रमका अर्थ मानसिक, कायिक, वाचनिक व्यापार नही किन्तु आत्मतत्त्वमे जो अन्यथा

कल्पना है, उसको त्यागना ही सच्चा परिश्रम है। त्याग बिना कुछ सिद्धि नही, अत सबसे पहले अपना विश्वास करना ही मोक्षमार्गकी सीढी है। विश्वासके साथ ज्ञान और चारित्रका भी उदय होता है, क्योकि ये दोनो गुण स्वतन्त्र है, अत उसी कालमे उनका भी परिणमन होता है। हमे आवश्यकता श्रद्धागुणकी है, परन्तु वह श्रद्धा, सामान्य-विशेष रूपसे जब तक पदार्थोका परिचय न हो, तब तक नही होती।

सप्तमीके दिन नीचे लश्करवालोके मन्दिरमे प्रवचन हुआ। उपस्थिति अल्प थी, परन्तु जितने महानुभाव थे, विवेकी थे। शान्तिसे सब लोगोने शास्त्रश्रवण किया। पश्चात् स्थानपर आये, व चर्याके लिये गये। एक स्थानपर चर्या की। लोग निरन्तर चर्या करानेकी इच्छा करते है, परन्तु विधिका बोध नही। परमार्थसे चर्या तो उसके यहाँ हो सकती है, जो स्वय शुद्ध भोजन करे। जिनके शुद्ध भोजनका नियम नही, उनके यहाँ भोजन करना आम्नायके प्रतिकूल है। परन्तु हम लोगोने तो केवल शास्त्र पढना सीखा है, उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना नही, अत हम स्वय अपराधी है। उचित तो यह था कि हम उनको प्रथम उपदेश करते, पश्चात् उनकी प्रवृत्ति देखते। यदि वह अनुकूल होती, तो उनके यहाँ भोजन करते, अन्यथा स्थानान्तर चले जाते। अथवा यह बात विदित हो जाती कि इस घरमे भोजन हमारे उद्देश्यसे बनाया गया है, तो अन्तराय कर चले जाते। केवल गल्पवादसे कुछ तत्त्व नही। हम गल्पवादके भण्डार है—करनेमे नपुसक है। जब हम स्वय आगमानुकूल चलनेसे असमर्थ है, तब अन्यको उपदेश क्या देवेगे? अथवा देवे भी तो उसका क्या प्रभाव जनतापर हो सकता है? जो जल स्वय अग्नि सम्बन्धसे उष्णावस्था धारण किये है, क्या वह जल शीतलता उत्पन्न करेगा? कदापि नही सोनागिरिमे आठ दिन रहा।

बरुआसागरमें ग्रीष्मकाल

चैत्रकृष्णा ९ सवत् २००७ को १ बजे श्रीसिद्धक्षेत्रस्वर्णगिरिसे दतियाके लिये प्रस्थान कर दिया। ५ बजे डांकबगलामे ठहर गये। बगलामे जो चपरासी था वह जातिका ब्राह्मण था, बहुत निर्मल मनुष्य था, निर्लोभी था। उसने हमारे प्रति शिष्ट व्यवहार किया। वहाँ पर रात्रिभर सुखपूर्वक रहे। यह स्थान सोनागिरिसे ७½ मील है। धूपका वेग बहुत था, अत मार्गमे बहुत ही कष्ट उठाना पडा। शरीरकी शक्ति हीन थी, किन्तु अन्तरङ्गकी बलवत्तासे यह शरीर इसके साथ चला आया। (तत्त्वदृष्टिसे वृद्धावस्था भ्रमणके योग्य नही। दौलतरामजीने कहा है 'अर्धमृतक सम बूढापनौ कैसे रूप लखे आपनौ' पर विचार कर देखा, तो वृद्धावस्था कल्याणमार्गमे पूर्ण सहायक है। युवावस्थामे प्रत्येक आदमी बाधक होता है। कहता है—भाई! अभी कुछ दिन तक ससारके कार्य करो। पश्चात् वीतरागका मार्ग ग्रहण करना। इन्द्रियाँ विषय-ग्रहणकी ओर ले जाती है, मन निरन्तर अनाप-सनाप सकल्प-विकल्पके चक्रमे फँसा रहता है। जब अवस्था वृद्ध हो जाती है, तब चित्त स्वयमेव विषयोसे विरक्त हो जाता है।)

दूसरे दिन प्रात ६½ बजे डाकबगलासे ४½ मील चलकर एक नदीके पार महादेवजीके मन्दिरमे ठहर गये। पास ही जलकूप था। मन्दिरकी अवस्था कुछ जीर्ण है, परन्तु पासमे ग्राम न होनेसे, इसका सुधार होना कठिन है। यहाँ पर चिरगाँवसे २ आदमी आये और वहाँ चलनेके लिये बहुत आग्रह करने लगे। हमने स्वीकार कर लिया और कहा कि यदि झाँसी आ जाओगे, तो आपके साथ अवश्य चलेगे। सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए तथा घर चले गये। हम लोगोने भोजन किया, तदनन्तर सामायिकसे निवृत्त हो १ घण्टा बनारसीविलासका अध्ययन किया। बहुत ही सुगम रीतिसे पदार्थका निरूपण किया है। पुण्य-पाप दोनोको दिखाया है। पुण्यके उदयमे ऐठ और पापके उदयमे दीनता होती है। दोनो ही आत्माके कल्याणमे बाधक है। अत जिन्हे आत्मकल्याण करना है, वे दोनोसे ममता भाव छोडे। काञ्चन-कालायसकी बेडीके समान दोनो ही बन्धनके कारण है। मनुष्यजन्मकी सार्थकता तो इसीमे है कि दोनो बन्धन तोड दिये जावे। दूसरे दिन प्रात काल ६ बजे चलकर ८ बजे कारारीगाँवके वनमे सडकके ऊपर निवास किया। यहाँ झाँसीसे गुलाब-

चन्द्रजी आ गये। उन्होंने भक्तिपूर्वक आहार दिया। यहाँ ३ वजे चल कर ४ मील पर झाँसीके वाहर नत्थू मदारीका वँगला था, उसमे ठहर गये। सानन्द रात्रि व्यतीत की। प्रातः ६½ वजे चलकर ८ वजे झाँसी आगये और स्नानादि कर श्री मन्दिरजीमे प्रवचन किया। पश्चात् श्री राजमल्लजीके यहाँ भोजन हुआ।

यहाँ राजमल्ल एक प्रतिभाशाली विद्वान् है। धर्ममें आपका रुचि अच्छी है। आप मन्दिरमे अच्छा काल लगाते हैं। स्वाध्याय करानेमें आपकी वहुत रुचि है। आपके भाई चाँदमल्ल तो एक प्रकारसे पण्डित ही हैं। आपका अधिक काल ज्ञानार्जनमे ही जाता है। आप लोगोने १ मारवाडी मन्दिरका, जो मारवाडी पचायतके नामसे प्रसिद्ध हैं, निर्माण कराया है। यहाँ पर श्रीमक्खनलालजी खण्डेलवाल भी हैं। आप १ धर्मशाला वनवा रहे हैं। उसमे १ कलाभवन भी खोल रहे है। आपका विचार विशेष दान करनेका है। एक कोठी, जिसकी आमदनी २५०) मासिक है, दानमे देना चाहते हैं। आपका विचार अति उत्तम है, परन्तु अभी कार्यमे परिणत नही हुआ। अनेक मनुष्य इस कार्यमे विघ्नकर्ता भी है, परन्तु मक्खनलालजी हृदयके स्वच्छ है। आपने जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूर्ण करेंगे, ऐसी मेरी धारणा है। होगा वही जो वीरप्रभुने देखा है।

चैत्र कृष्ण १२ स० २००७ को सीपरी गये, वही प्रवचन हुआ, जनता अल्पसख्यामे थी। यहाँ पर श्री स्व० मूलचन्द्रजीका एक वडा वाड़ा है। जिसमे ५००) मासिक भाडा आता है, आप वहुत ही विवेकी थे। यहाँ आते ही पिछले दिन स्मरणमे आ गये, जव हम महीनो उनके सम्पर्कमें रहते थे। अस्तु, अव आपके २ नाती हैं। पुत्र श्रेयासकुमार वहुत ही भद्र तथा योग्य था, परन्तु वह भी कालके गालमे चला गया। पुत्रकी धर्मपत्नी वहुत कुशल है। उसने यहाँ धर्मसाधनके लिए एक चैत्यालय भी वनवा लिया। प्रतिदिन पूजा स्वय करती है। २ वालक हैं, उन्हे पढाती है—दोनों योग्य है। आशा है, थोडे ही कालमे घरकी परिस्थिति सभाल लेंगे। सभव है, काल पाकर इनकी प्रभुता सर्राफके सदृश हो जावे।

अगले दिन ७ वजे चलकर ८ वजे सदरवाजार आ गये। यहाँ पर ½ घण्टा स्वागतमे गया। कन्याओ द्वारा स्वागत गीत गाया गया, एक छात्राने वहुत ही सुन्दर तवला वजाया। उसका कण्ठ भी मधुर था। पश्चात् श्री जिनालयमे जिनदेवके दर्शनकर निरतम शान्ति रसका आस्वाद किया। मूर्ति वहुत ही सुन्दर और योग्य सस्थान विशिष्ट थी। तदनन्तर १ घण्टा प्रवचन हुआ। जनताने शान्त चित्तसे श्रवण किया।

अपनी-अपनी योग्यतासे सबने लाभ उठाया। हम स्वय जो कहते है, उसपर अमल नही करते, फिर सुननेवालोको क्या कहे? जिस वृक्षमे छाया नही, वह इतरको छाया देनेमे असमर्थ है। आज तक वह शान्ति न आई, जिसको हमने आगममे पढा है। वास्तविक बात यह है कि आगममे शान्ति नही है, और न अशान्ति ही है। आगम तो प्रतिपादन करनेवाला है। इसी प्रकार न तीर्थमे शान्ति-अशान्ति है, और न सत्समागममे शान्ति-अशान्ति है। वह तो आत्मामे है। वहाँ हम खोजते नही, उसके प्रतिबन्धक कारणोको हटाते नही, केवल निमित्तकारणोको पृथक् करनेकी चेष्टा करते है। उसके प्रतिबन्धक कारण क्रोधादिक कषाय है। हम उनको तो हटाते नही, किन्तु जिन निमित्तोसे क्रोधादिक होते है, उन्हे दूर करनेका प्रयत्न करते है। एक दिन गुदरीके मन्दिरमें भी प्रवचन हुआ।

चैत्र कृष्ण अमावस्या स० २००७ के दिन प्रात झाँसीसे ३ मील चलकर श्री परशुरामजीके बागमे ठहर गये। स्थान रम्य था, परन्तु ठहरनेके योग्य स्थान था। दहलानमे भोजन हुआ, मक्खियाँ बहुत थी। भोजन निरन्तराय हुआ। ४ आदमी उनके उडानेमे सलग्न रहे। यही पर श्री फिरोजीलालजी दिल्लीसे आ गये। आप बहुत ही सरल और सज्जन प्रकृतिके है। आप गरमीके मौसमका चद्दर लाये। प्राय आप निरन्तर आया करते है। जबसे मैने दिल्लीसे प्रस्थान किया, तबसे १० स्थानो पर आये और हर स्थानपर आहार दान दिया। आपके कुटुम्बका बहुत ही उदारभाव है। राजकृष्णजीसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजकृष्णकी धर्मपत्नी आपकी बुआ है। वह तो साक्षात् देवी है। आपके यहाँ जो पहुँच जाता है, उसका आप बहुत ही आतिथ्यसत्कार करते हैं। फिरोजीलालजी झाँसी चले गये, और हम बागसे २ मील चलकर परशुरामके बँगला पर ठहर गये। स्थान रम्य था। १ छोटी कुईया वा १ नाला है। चारो तरफ करोदाका वन है। यहाँ पर धर्मध्यानकी योग्यता है, परन्तु कोई रहना नही चाहता। आजकल धर्मका मर्म दम्भमे रह गया है, इसीलिये दम्भी पूजे जाते है।

चैत्र शुक्ल १ विक्रम स० २००८ का प्रथम दिन था। आज प्रात परशुरामके बँगलासे ३ मील चलकर वेत्रवती नदीको छोटी नौका द्वारा पार किया। १ नाविक मेरा हाथ पकड शनै-शनै मुझे स्थलपर पहुँचा आया। उसका हृदय दयासे परिपूर्ण था। मैने उसे उपकारी मान, अपने पास जो २ गज खादीका दुपट्टा था, वह दे दिया। उसे लेकर वह बहुत

प्रसन्न हुआ तथा धन्यवाद देता हुआ चला गया। वहाँपर जो मानव समुदाय था, वह भी प्रसन्न हुआ। यद्यपि मेरी यह प्रवृत्ति विशेष प्रशंसाकी पोषक नही, परन्तु मै प्रकृतिपर अपना प्रभाव नही डाल सकता। ससारमे वही मनुष्य इस संसारसे मुक्त होनेका पात्र है, जो परपदार्थका सपर्क त्याग दे। परपदार्थका न तो हम कुछ उपकार ही कर सकते हैं, और न अनुपकार ही। ससारके यावन्मात्र पदार्थ आत्मीय-आत्मीय गुण-पर्यायोसे पूरित है, उनके परिणमन उनके स्वाधीन है। उस परिणमनमे उपादान और सहकारी कारणका समूह ही उपकारी है, परन्तु कार्यरूप परिणमन उपादानका ही होता है।

यहाँसे १ मील चलकर श्री स्वर्गीय फूलचन्द्रजीके बागमे आ गये। बाग रम्य है, परन्तु अवस्था अवनतिपर है। यही पर भोजन किया। भोजनके अनन्तर सामायिकसे सम्पन्न हो बैठे ही थे कि बाबू रामस्वरूपजी आ गये। ३ बजे चलकर ५ बजे बरुआसागर आ गये। श्री मन्दिरजीके दर्शनके अनन्तर श्री बाबू रामस्वरूपजी द्वारा निर्मापित गणेशवाटिका नामक स्थान पर निवास किया। रात्रि सानन्द बीती। प्रात मन्दिरजी गये। दर्शनकर चित्त प्रसन्न हुआ। १ घण्टा प्रवचनके अनन्तर श्री बाबू रामस्वरूपजीके यहाँ भोजन हुआ। आप बहुत ही भद्रव्यक्ति है। मध्याह्नकी सामायिकके बाद २ घण्टा स्वाध्याय किया। स्वाध्यायका फल केवल ज्ञानवृद्धि ही नही, किन्तु स्वात्मतत्त्वको स्वावलम्बन देकर शान्तिमार्गमें जाना ही उसका मुख्य फल है। आजकल हमारी प्रवृत्ति इस तरहसे दूषित हो गई है कि ज्ञानार्जनसे हम जगतकी प्रतिष्ठा चाहते हैं, अर्थात् ससारसे मुक्त नही होना चाहते। अन्यको तुच्छ और अपनेको महान् बनानेके लिए उस ज्ञानका उपयोग करते हैं, जिस ज्ञानसे भेदज्ञानका लाभ था। आज उससे हम गर्वमे पडना चाहते हैं। दूसरे दिन प्रात काल मन्दिरजीमे पुन. प्रवचन हुआ।

श्री कुन्दकुन्ददेवका कहना है कि शुभोपयोगसे पुण्यबन्ध होता है, और उससे आत्माको देवादि सम्यक् पदकी प्राप्ति होती है, जो तृष्णाका आयतन है, अत शुभोपयोग और अशुभोपयोगको भिन्न समझना शुद्धोपयोगकी दृष्टिमे कुछ विशेषता नही रखता। दोनो ही बन्धके कारण है। लौकिक जन शुभ-कर्मको सुशील और अशुभ कर्मको कुशील मानते है, परन्तु कुन्दकुन्द महाराज कहते है कि शुभकर्म सुशील कैसे हो सकता है, वह भी तो आत्माको ससारमे पात करता है। जिस प्रकार लोहेकी बेडी पुरुषको बन्धनमे डालती है, उसी प्रकार सुवर्णकी बेडी भी पुरुषको

वन्धनमे डालती है, एतावता उन दोनोमे कोई भिन्नता नही। लोकमे कोई पुरुष जब किसीकी प्रकृतिको स्वविरोधिनी समझ लेता है, तो उसके संपर्कसे यथाशीघ्र दूर हो जाता है। इसीतरह जब कर्मप्रकृति आत्माको ससारबन्धनमे डालती है, तब ज्ञानी वीतराग, उदयागत शुभाशुभ प्रकृतिके साथ राग नही करता। सम्यग्दृष्टि मनुष्यके भी शुभाशुभ प्रशस्ताप्रशस्त। मोहोदयसे होते है। विषयोसे अणुमात्र भी विरक्ति नही तथा मन्दकपायमे दानादि-कार्य भी शुभोपयोगसे करता है, परन्तु उसे परिणाममे अनुराग नही। जिस प्रकार रोगी मनुष्य न चाहता हुआ भी औषध सेवन करता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी पुण्य-पापादि कार्योंको करता है, परमार्थसे दोनोको हेय समझता है। उपादेयता और हेयता यह दोनो मोही जीवोके होते हैं। परमार्थसे न कोई उपादेय है, और न हेय है, किन्तु उपेक्षणीय है। उपेक्षणीय व्यवहार भी औपचारिक होता है। मोहके रहते हुए जिन पदार्थोंमे उपादेयता और हेयताका व्यवहार था, मोह जानेके वाद वे पदार्थ उपेक्षणीय सुतराँ हो जाते हैं। फिर यह विकल्प ही नही उठता कि वे पदार्थ अमुक रूपसे हमारे ज्ञानमे आते। मोहके वाद ज्ञान जिस पदार्थको विषय करता है, वही उसका विपय रह जाता है। मोहका अभाव होते ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय ये तीन कर्म रक्षकके अभावमे अनन्यशरण हो अन्तर्मुहूर्तमे नष्ट हो जाते हैं। इनका नाश होते ही ज्ञानगुणका शुद्ध परिणमन हो जाता है। जो ज्ञान पहले पराश्रित था, वही अब केवलज्ञान पर्याय पाकर आदित्यप्रकाशवत् स्वय प्रकाशमान होता हुआ, समस्त पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है, और कभी स्वरूपसे च्युत नही होता। अतएव धनञ्जय कविने विषापहार स्तोत्रके प्रारम्भमे लिखा है।

स्वात्मस्थित सर्वगत समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्ग।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्य पायादपायात्पुरुप पुराण॥

उसकी महिमा वही जाने, हम ससारी परके द्वारा अपनी उन्नति ज्ञातकर परपदार्थोंके संग्रह करनेमे अपनी परिणतिको लगा देते हैं, और अनन्तससारके पात्र वनते रहते हैं। वैपयिक सुखके लिये स्त्री, पुत्र, मित्र, धनादि पदार्थोंका सग्रह करनेमे जो-जो अन्याय करते हैं, वह किसीसे गुप्त नही। यहाँ तक देखा जाता है कि इस तरह प्राणियोका जीवन भी आपत्तिमे आता हो और हमारा निजका प्रयोजन सिद्ध होता हो, तो हम उस आपत्तिको मङ्गलरूप अनुभव करते है। अस्तु।

दूसरे दिन नगरमे आहारके लिये गये। श्री जैनमन्दिरकी वन्दना
ी। दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ। मन्दिर जानेका यह प्रयोजन है कि
ीतरागदेवकी स्थापना देखकर वीतरागभावकी प्राप्तिके लिये स्वय
व्य निक्षेप वनो। वीतरागके नाम पाठ करनेसे, वीतराग न हो जावेगे।
न्होंने जिस मार्गका अवलम्वनकर वीतरागताकी प्राप्ति की है, उस मार्ग-
र चलकर स्वय वीतराग होनेका पुरुपार्थ करो। क्या पुरुपार्थ हमारे
ाथकी वात है ? अवश्य है। जो रागादिक भाव तुममे हों, उनका आदर
करो। आने दो, क्योकि उन्हे तुमने अर्जित किया, अव उनसे तटस्थ
हो। दर्शनके पश्चात् १ घण्टा प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी, परन्तु
पयोग नही लगा। अनन्तर आहारको निकले। हृदयमे अनायास
ल्पना आई कि आज स्व० प० देवकीनन्दनजीके घर आहार होना
ाहिये। उनके गृहपर कपाट वन्द थे, वहाँसे अन्यत्र गये, वहाँ पर कोई
था, उसके वाद तीसरे घर गये, तव वहाँ स्वर्गीय पण्डितजी की धर्म-
त्नी द्वारा आहार दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध परिणाममे
ो कल्पना की जाती है, उसकी सिद्धि अनायास हो जाती है।

चैत्र शुक्ला १० स० २००८ को यहाँकी पाठशालाके छात्रोंके यहाँ
ोजन हुआ। वडे भावमे भोजन कराया। भोजन क्या था ? अमृत था।
सका मूल कारण उन छात्रोंका भाव था। स्वच्छ और अस्वच्छ भाव
ी शुभाशुभ कर्मका कारण होता है। इन दोनोसे भिन्न, जो सर्वथा शुद्ध
, वह ससार-वन्धनके उच्छेदका कारण है। संसारसन्ततिका मूल कारण
ासना है। वासना आत्मामे ही होती है और उसका उत्पादक मोह है।

चैत्र शुक्ला १३ स० २००८ को भगवान् महावीरस्वामीके जन्म-
ःवसका उत्सव था। अनेक व्याख्यान हुये। मैने तो केवल यह कहा कि
ात्मीय परिणतिको कलुषित न होने दो। कलुषित परिणामोका अन्तरङ्ग
ारण मोह-राग-द्वेष हैं, तथा ब्राह्य कारण पञ्चेन्द्रियोके विषय है। विपय
ामित्त कारण है, परन्तु ऐसी व्याप्ति नही, जो परिणतिको वलात् कलु-
ात वना ही देवे। विषय तो इन्द्रियोके द्वारा जाने जाते है। उनमे जो
ष्टानिष्ट कल्पना होती है, वह कषायसे होती है। कषाय क्या है ? जो
ात्माको कलुषित करता है। यह स्वय होती है। अनादिसे आत्मामे
सका परिणमन चला आरहा है। हम निरन्तर इसका प्रयास करते है
क आत्मामे स्वच्छ परिणाम हो, परन्तु न जाने कौनसी ऐसी शक्ति
ात्मामे है कि जिससे जो भाव आत्माको इष्ट नही, वे ही आते हैं। इससे
ही निश्चय होता है कि आत्मामे अनादिसे ऐसे सस्कार आ रहे है कि

जिनसे उसे अनन्त-वेदनाओका पात्र बनना पडता है। यदि हमने आत्मा-को पहिचानकर विकारोपर विजय प्राप्त कर ली, तो हमारा महावीर-जयन्तीका उत्सव मानना सार्थक है।

सागरसे श्री 'नीरज' आये। आप श्री लक्ष्मणप्रसादजी रीठीके सुपुत्र हैं। आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। आपके अच्छा व्यापार होता था, परन्तु आपने व्यापार त्याग दिया, अब आप प्रेसका काम करते हैं। कवि हैं, हँसमुख है, होनहार व्यक्ति हैं। मुझसे मिलनेके लिए आये थे। एक दिन रहकर चले गये।

श्री नाथूरामजी बजाज मवईवाले आये। २ घटा रहे, पश्चात् चले गये। आपने अपने यहाँ सिद्धचक्र विधानका आयोजन किया है। उसी समय पपौरा विद्यालयके लिए २५०००) देनेका वचन दिया है। मुझे आमन्त्रण देने आये थे। विद्यादानकी वात सुन, मैंने गरमीकी तीव्रता होने पर भी जाना स्वीकृत कर लिया, परन्तु अन्तमे शारीरिक दुर्बलता के कारण, हम जा नही सके। नरेन्द्रकुमार आया था। वह ज्येष्ठ कृष्ण ७ को सागर गया। स्वाभिमानी है, जैनधर्ममे दृढ श्रद्धा है, उद्योगी है, परोपकारी भी है, लालची नही, किसीसे कुछ चाहता नही, स्कालर्शिपको आदरके साथ लेता है, प्रत्येक मनुष्यसे मेल कर लेता है। अभी आयु विशेष नही, अत स्वभावमे बालकता है। ऐसा बोध होता है कि काल पाकर यह बालक विशेष कार्य करेगा। आजकल विज्ञानका युग है। इसमे जो पुरुषार्थ करेगा, वह उन्नति करेगा। जो मनुष्य पुरुषार्थी है, वे आत्मीय-उन्नतिके पात्र हो जाते हैं। जो आलसी मनुष्य हैं, वे दु खके पात्र होते है। मनुष्यजन्म पानेका यही फल है। स्वपरका हित किया जाय। वैसे तो ससारमे श्वान भी अपना पेट पालन करते है। मनुष्यकी उत्कृष्टता इसीमे है कि अपनेको मनुष्य बनावे, मनुष्यका ज्ञान और विवेक इतर योनियोमे जन्म लेनेवाले जीवोकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। तिर्यञ्चो मे तो पर्यायसम्बन्धी ज्ञान होता है। यद्यपि देव, नारकी विशिष्टज्ञानी होते है, परन्तु उनका ज्ञान भी मर्यादित रहता है, तथा वे देव, नारकी सयम भी धारण नही कर सकते। तिर्यञ्च देशसयमका पात्र हो सकता है, परन्तु इतना ज्ञान उसका नही कि अन्य जीवोका कल्याण कर सके। मनुष्यका ज्ञान परोपकारी है, तथा उसका संयमगुण भी ऐसा निर्मल हो सकता है कि इतर मनुष्य उसका अनुकरण कर अपनेको सयमी बनानेके पात्र हो जाते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला ३ स० २००८ को ललितपुरसे वहुतसे प्रतिष्ठित सज्जन

आये और आग्रहपूर्वक कहने लगे कि आपको क्षेत्रपाल-ललितपुरका चातुर्मास करना चाहिये। हमने उनके प्रस्तावको स्वीकृत किया तथा निश्चय किया कि वर्षामें ललितपुर रहना ही उत्तम है। वहाँ रहनेमें प्रथम तो सागर सन्निहित है। यहाँवाले विरोध करते हैं—यह स्वाभाविक बात है। जहाँ रहो, वहाँ समुदायमें स्नेह हो जाता है तथा व्यक्ति विशेषमें भी घनिष्ठता बढ़ जाती है, परमार्थसे यह स्नेह ही संसारका कारण है। यद्यपि लोग इसे धार्मिक स्नेह कहते हैं, परन्तु पर्यावसानमें उसका फल उत्तम नहीं। जहाँ श्री अर्हंदनुरागको चदननगसगत अग्निकी तरह दाहोत्पादक कहा है, वहाँ अन्य स्नेहकी गिनती ही क्या है? मेरा निश्चय पाकर ललितपुरके लोग प्रसन्न हो चले गये।

श्रुतपञ्चमी

ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी सं० २००८ को श्रुतपञ्चमीका उत्सव था। पं० मनोहरलालजीने सम्यग्दर्शनकी महिमाका दिग्दर्शन कराया। मैंने कहा कि आजका पर्व हमको यह शिक्षा देता है कि यदि कल्याणकी इच्छा है, तो ज्ञानार्जन करो। ज्ञानार्जनके विना मनुष्य-जन्मकी सार्थकता नहीं। देव और नारकियोंके यद्यपि तीन ज्ञान होते हैं, परन्तु उनके जो ज्ञान होते हैं, उन्हें वे विशेष वृद्धिगत नहीं कर सकते। जैसे देवोंके देशावधि है, वे उसे परमावधि या सर्वावधिरूप नहीं कर सकते। हाँ, इतना अवश्य है कि मिथ्यादर्शनके उदयमें जिनका ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता था, सम्यग्दर्शन होनेपर उनका वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। परन्तु देव-पर्यायमें संयमका उदय नहीं, इसलिए आपर्याय वही अविरतावस्था रहती है। मनुष्यपर्यायकी ही यह विलक्षण महिमा है कि वह सकलसंयम धारण कर संसार-बन्धनको समूल नष्ट कर सकता है। यदि संसारका नाश होगा, तो इसी पर्यायमें होगा। इस पर्यायकी महत्ता संयमसे ही है, यह निरन्तर संसारको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यजन्मकी सार्थकता इसीमें है कि फिर संसार-बन्धनमें न आना पड़े। इस उपदेशका तात्पर्य केवल सम्यग्दर्शनसे नहीं, क्योंकि सम्यग्दर्शन तो चारों गतियोंमें होता है। यदि इस ही को प्राप्त कर संतोष धारण किया, तो मनुष्यजन्मकी क्या विशेषता हुई? अतः इससे उत्तम संयम धारण करना ही इस पर्यायकी सफलता है।

(आजकल बडे-वडे विद्वान् यह उपदेश देते है कि स्वाध्याय करो यही आत्मकल्याणका मार्ग है। उनसे प्रश्न करना चाहिए—हे महानुभाव! आपने आजन्म विद्याभ्यास किया, सहस्रोको उपदेश दिया, और स्वाध्याय तो आपका जीवन ही है, अत हम जो चलेंगे सो आपके उपदेश पर चलेंगे, परन्तु देखते है कि आप स्वय स्वाध्यायके करनेका कुछ लाभ नही लेते, अत हमको तो यही श्रद्धा है—स्वाध्यायसे यही लाभ होगा कि अन्यको उपदेश देनेमे पटु हो जावेगे, सो प्रात जितनी वातोका आप उपदेश करते है, हम भी कर देते है, प्रत्युत एक वात आप लोगोकी अपेक्षा हममे विशेष है। वह यह कि हम अपने वालकोको यथाशक्ति जैनधर्मके जाननेके लिए प्रयत्न करते है, परन्तु आपमे यह वात नही देखी जाती। आपके पास चाहे पचासो हजार रुपया हो जावे, परन्तु आप उसमेसे दान न करेंगे। अन्यकी कथा छोडिये, आप जिन विद्यालयो के द्वारा विद्वान् हो गये, कभी उनके अर्थ १००) भी नही भेजे होगे। अथवा निजकी वात छोडो, अन्यसे यह न कहा होगा भाई! हम अमुक विद्यालयसे विद्वान् हुए, उसकी सहायता करना चाहिए। तथा जगत्को धर्म जाननेका उपदेश देंगे, अपने वालकोको एम० ए० बनाया होगा, परन्तु धर्मशिक्षाका मिडिल भी न कराया होगा। अन्यको मद्य, मास, मधुके त्यागका उपदेश देते है, पर आपसे कोई पूछे—अष्टमूलगुण है? हँस देवेगे। व्याख्यान देते-देते पानीका गिलास कई बार आ जावे, कोई वडी वात नही। हमारे श्रोतागण इसीमे प्रसन्न है कि पण्डितजीने सभा को प्रसन्न कर लिया।)

(त्यागियोकी वात कौन कहे? वह तो त्यागी है, किसके त्यागी है, सो दृष्टि डालिये, पता चलेगा। यदि यह पण्डितवर्ग चाहे तो समाजका वहुत कुछ हित कर सकता है। जो पण्डित है, वे यह नियम कर लेवे कि जिस विद्यालयमे हमने प्रारम्भसे विद्या अर्जित की है, और जिसमे अन्त स्नातक हुए, अपनेको कृतज्ञ वनानेके लिये उन्हे २) प्रति मास देंगे। १) प्रारम्भ विद्यालयको और १) अन्तिम विद्यालयको प्रतिमास भिजवावेंगे। यदि २००) मासिक उपार्जन होगा, तो २॥)-२॥) प्रतिमास भिजवावेंगे तथा एक वर्षमे २० दिन दोनो विद्यालयोके अर्थ देवेगे। अथवा यह न दे सके, तो कमसे कम जहाँ जावे, उन विद्यालयोका परिचय तो करा देवे। जिन्हे १००) से कम आय हो, वे प्रति वर्ष ५)-५) ही विद्याजननीको पहुँचा देवे तथा यह सब न वने तो एक वर्ष कम-से-कम जिस ग्रामके हो, वहाँ रहकर लोगोमे धर्मका प्रचार तो कर देवे।)

(त्यागीवर्गको यह उचित है, कि जहाँ जावें, वहाँपर यदि विद्यालय होवे तो ज्ञानार्जन करे, केवल हल्दी, धनिया, जीरेके त्यागमे ही अपना समय न वितावे। गृहस्थोके वालक जहाँ अध्ययन करते है, वहाँ अध्ययन करे तथा शास्त्रसभामे यदि अच्छा विद्वान् हो तो उसके द्वारा शास्त्र-प्रवचन प्रणालीकी शिक्षा लेवे। केवल शिक्षा-प्रणाली तक न रहे, किन्तु ससारके उपकारमे अपनेको लगा दे। यह तो व्यवहार है, अपने उपकारमे इतने लीन हो जावे, कि अन्य वात ही उपयोगमे न लावे। कल्याणका मार्ग परपदार्थोसे भिन्न, जो निज द्रव्य है, उसीमे रत हो जावे। इसका अर्थ यह है कि परमे जो राग-द्वेप विकल्प होते हैं, उनका मूलकारण मोह है। यदि मोह न हो, तो यह वस्तु मेरी है, यह भाव भी न हो। तव उसमें राग हो, यह सर्वथा नही हो सकता। प्रेम तभी होता है, जव उसमे अपना अस्तित्व माना जावे। देखो, मनुष्य प्राय: कहते हैं कि हमारा विश्वास अमुक धर्मसे है, हमारी तो प्रीति इसी धर्ममे है। विचार कर देखो—प्रथम उस धर्मको निज माना, तभी तो उसमे प्रेम हुआ और यदि धर्मको निज न माने, तो उसमे अनुराग होना असम्भव है। यही कारण है, कि १ धर्मवाला अन्य धर्मसे प्रेम नही करता, अत जिनको आत्म-कल्याण करना है, वे ससारके कारणोसे न राग करें, न द्वेप करे।

आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है, ज्ञान-दर्शनवाला है अथवा वाला क्यो ज्ञान-दर्शनरूप है, क्योकि निश्चयसे गुण-गुणीमे अभेद है। उसका बोध होनेसे यह जीव ससारसे मुक्त हो जाता है—

आप रूपके बोधसे मुक्त होत सब पाप।
ज्यो चन्द्रोदय होत ही मिटत सकल सताप ॥

(कहनेका भाव यह है कि विवेकसे कार्य करो, विना विवेकके कोई भी मनुष्य श्रेयोमार्गका पथिक नही वन सकता। प्रथम तो विवेकके बल-से आत्मतत्त्वकी दृढ श्रद्धा होना चाहिये, फिर जो भी कार्य करो, उसमे यह देखो कि इस कार्यके करनेमे हमको कितना लाभ है, कितना अलाभ है? जिस लाभके अर्थ मैंने परिश्रम किया वह परिश्रम सुखपूर्वक हुआ या दु:खपूर्वक हुआ? यदि उस कार्यके करनेमे सक्लेशकी प्रचुरता हो, तो उस कार्यके करनेमे कोई लाभ नही। जब प्रथमत ही दु ख सहना पडा, तव उसके उत्तरमे सुख होगा, कुछ ध्यानमे नही आता। दो प्रकारके कार्य जगतमे देखे जाते हैं, एक लौकिक और दूसरे अलौकिक लौकिक कार्य किन्हे कहते है? जिनसे हमको लौकिक सुखका लाभ होता है, उसे हम पुरुषार्थ

द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते है। परन्तु परमार्थसे वह सुख नही, क्योकि सुख तो वह वस्तु है, जहाँ आकुलता न हो। वहाँ तो आकुलताकी बहुलता है। आकुलताकी परिभाषा कुछ बना लो, परन्तु अनुभवसे इसका परिचय सहज ही हो जाता है। जब हम किसी कार्यके करनेका प्रयत्न करते है, तब हमे भीतरसे जबतक वह कार्य न हो जावे, चैन नही पडती, यही आकुलता है। इसके दूर करनेके अर्थ हम जो व्यापार करते है उसका उद्देश्य यही रहता है कि नानाप्रकारके उपायो द्वारा कार्यकी सिद्धि हो। कहाँतक लिखे ? प्राण जावे, परन्तु कार्य-सिद्धि होना चाहिए।

श्रुतपञ्चमीके दिन हमलोग शास्त्रोकी सम्भाल करते है, पर झाड-पोछकर या धूप दिखाकर अलमारीमे रख देना ही उनकी सम्भाल नही है। शास्त्रके तत्त्वको अध्ययन-अध्यापनके द्वारा ससारके सामने लाना, यही शास्त्रोकी सभाल है। आज जैन-मन्दिरोमे लाखोकी सम्पत्ति रुकी पडी है जिसका कोई उपयोग नही। यदि उपयोग होता भी है, तो सङ्ग-मर्मरके फर्श लगवाने तथा सोने-चाँदीके उपकरण बनवानेमे होता है, पर वीतराग जिनेन्द्रकी वाणीके प्रचार करनेमे उसका उपयोग करनेमे मन्दिरोके अधिकारी सकुचाते है। यदि एक-एक मन्दिर एक-एक ग्रन्थ प्रकाशनका भार उठा ले, तो समस्त उपलब्ध शास्त्र एक वर्षमे प्रकाशित हो जावे। मन्दिरोमे बहुमूल्य-उपकरण एकत्रित कर चोरोके लिये स्वय आमन्त्रण देगे, और फिर हाय-हाय करते फिरेगे। यदि आपकी अरहन्तदेवमे भक्ति है तो उनकी वाणीरूप जो शास्त्र है उनमे भी भक्ति होना चाहिये और उनकी भक्तिका रूप यही हो कि वे अच्छेसे अच्छे रूपमे प्रकाशित हो ससारके सामने लाये जावे। प्रसन्नताकी बात है कि इस समय लोगोका धार्मिक-सघर्ष बहुत कम हो गया है। एक समय तो वह था, जब कोई किसी अन्य धर्मकी बातको श्रवण ही नही करना चाहता था, पर आजके मानवमे इतनी सहनशीलता आ गई है कि यदि उसे कोई अपनी बात प्रेमसे सुनाना चाहता है, तो वह उसे सुननेके लिये तैयार है। अब आपके धर्मकी बातको दुनियाँ सुननेके लिये तैयार है, जाननेके लिये उत्सुक है, तब आप ज्ञानके साधन जो शास्त्र है उन्हे सामने क्यो नही लाते ? शास्त्रसग्रह करनेकी प्रवृत्ति आपलोगोमे क्यो नही जागृत होती ? एक-एक महिलाकी पेटियोमे बीस २ पच्चीस २ साडियाँ निकलेगी, पर शास्त्रके नामपर २) रुपयेका शास्त्र भी उसकी पेटीमे नही होगा। हमारा पुरुषवर्ग भी अपनी शान-

शौकीन या वैभव बनानेके लिये नाना प्रकारकी सामग्री इकट्ठी करता है, पर मैंने देखा है कि अच्छे-अच्छे धनपतियोंके घर दस-बीस रुपयेके भी शास्त्र नहीं निकलते। क्या बात है? इस ओर रुचि नहीं। यदि रुचि हो जाय, तो जहाँ सालमें हजारों खर्च करते हैं, वहाँ सौ-पचास रुपये खर्च करना कठिन नहीं। गृहस्थ लोग शास्त्र खरीद कर संग्रह करने लगें, तो छपानेवाले अपने-आप सामने आ जावें। अस्तु, भैया! बुराई न मानना मेरे मनमें तो जो बात आती है, वह कह देता हूँ, पर मेरा अभिप्राय निर्मल है, मैं कभी किसी जीवका अहित नहीं चाहता।

बरुआसागरसे प्रस्थान

ज्येष्ठशुक्ला ११ सं० २००८ के दिन श्री सि० धन्यकुमारजी कटनी-वाले आये। बहुत ही सहृदय मनुष्य हैं, २ घण्टा रहे। आपके विचार प्रौढ और गम्भीर हैं। आपका कहना है कटनी आकर रहिये। जबलपुरकी व्यवस्था भी आपने श्रवण कराई। मैंने कहा अभी कटनी तो बहुत दूर है। वह सुनकर चुप रह गये। मुझे अन्तरङ्गसे लगा कि यदि कल्याणकी अभिलाषा है, तो इन संसर्गोंको त्यागो। जितना संसर्ग बाह्यमें अधिक होगा, उतना ही कल्याणमार्गका विरोध होगा। कल्याण केवल आत्म-पर्यायमें है, जो परके निमित्तसे भाव होते हैं वे सब स्वतत्त्व परिणतिकी निर्मलतामें बाधक हैं। निर्मलता वह वस्तु है, जहाँ परकी अपेक्षा नहीं रहती। यद्यपि ज्ञायकसामान्यकी अपेक्षा सर्वदा आत्माकी स्वभावमें अवस्थिति है, परन्तु अनादिकालसे आत्मा और मिथ्यात्वका संसर्ग चला आ रहा है, इसमें कर्मजन्य जो मिथ्यात्वादि भाव हैं उनको निज मानता है, उन्हींका अनुभव करता है अर्थात् उन्ही भावोंका कर्त्ता बनता है। जिस कालमें मिथ्यात्व-प्रकृतिका अभाव हो जाता है उस कालमें आपको आप मानता है, उस कालमें ज्ञानमें जो ज्ञेय आते हैं उन्हें जानता है, परन्तु ज्ञेयके निमित्तसे ज्ञानमें जो ज्ञेयाकार परिणमन होता है उसे ज्ञेयका न मान ज्ञानका ही परिणमन मानता है, यही विशेषता अज्ञानी-की अपेक्षा ज्ञानीके हो जाती है।

ज्येष्ठशुक्ला १२ सं० २००८के शास्त्र-प्रवचनके समय चित्तमें कुछ क्षोभ हो गया। क्षोभका कारण यही था कि आजकल मनुष्य जैनधर्मकी प्रक्रियाको जाननेका प्रयास नहीं करते। जैनधर्मकी प्रक्रिया इतनी स्वा-

भाविक है कि इसका अनुसरणकर जीव ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्रकारके सुखोसे वञ्चित न हो। देखिये—जैनधर्ममे यह कहा है कि ससारमे जितने पदार्थ है वे सब भिन्न-भिन्न सत्ताको लिए हुए है, अत जब दूसरा पदार्थ हमारा है नही, तब उसमे हमारा ममत्व-परिणाम न होगा। ममतापरिणाम ही वन्धका जनक है। यदि परपदार्थमे निजत्व कल्पना न हो, तो हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह आदि भाव स्वयमेव विलय जावे। हम दूसरे पदार्थको तुच्छ देखते है, उससे घृणा करते है। इसका मूल कारण यही है कि हमने अपने स्वरूपको नही जाना। परमार्थसे कोई पदार्थ न तो वुरा है और न अच्छा है, हम अपनी रुचिके अनुसार ही उनके विभाग करते है। जैसे देखो, जिस मलको धोकर हम मृत्तिकासे हस्त-प्रक्षालन करते है। शूकर उसी मलको वडे प्रेमसे खा जाता है। क्या वह जीव नही है ? है, परन्तु उस पर्यायमे इतना विवेक नही कि वह उसे त्यागे। वही जीव, यदि चाहे तो उत्तम गतिका भी पात्र हो सकना है। ऐसी कथा आई है कि एक सिंह मुनिको मारनेके अर्थ चला और शूकरने मुनि-रक्षाके लिए सिंहका सामना किया, दोनो मर गये, शूकर स्वर्ग और सिंह नरक गया। यथार्थमे शान्तिका मार्ग कही नही, आपमे ही है। आपसे तात्पर्य आत्मासे है। जो हम परसे शांति चाहते है, यही महती अज्ञानता है, क्योकि यह सिद्धान्त है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्यमे नवीन-गुण उत्पन्न नही कर सकता। पदार्थोकी उत्पत्ति उपादान कारण और सहकारी कारणोसे होती है। उपादान एक और सहकारी अनेक होते है। जैसे घटकी उत्पत्तिमे उपादान कारण मृत्तिका और सहकारी कारण दण्ड-चक्र-चीवर-कुलालादि है। यद्यपि घटकी उत्पत्ति मृत्तिकामे ही होती है, अत मृत्तिका ही उसका उपादान कारण है, फिर भी कुलालादि कारण कूटके अभावमे घटरूप पर्याय मृत्तिकामे नही देखी जाती, अत ये कुलालादि घटोत्पत्तिमे सहकारी कारण माने जाते है। इसीलिए प्राचीन आचार्योने जहाँ कारणके स्वरूपका निर्वचन किया है, वहाँ 'सामग्री जनिका कार्यस्य नैक कारण' अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जनक है, एक कारण नही, यही तो लिखा है। अत. इस विषयमे कुतर्क करना विद्वानोको उचित नही। यहाँ पर मुख्य-गौण न्यायकी आवश्यकता नही। वस्तु स्वरूप जाननेकी आवश्यकता है, 'अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभाव' अर्थात् कार्यकारणभाव अन्वय और व्यतिरेक दोनोसे जाना जाता है, अत दोनो ही मुख्य है। जव उपादानकी अपेक्षा कथन करते है तव घटका उपादान मिट्टी है और निमित्तकी अपेक्षा निरूपण

किया जावे तो कुलालादि कारण है। यदि इस प्रक्रियाको स्वीकार न करोगे तो कदापि कार्यकी सत्ता न बनेगी। इस विषयमे वाद-विवाद कर मस्तिष्कको उन्मत्त बनानेकी पद्धति है। इसी प्रकार जो भी कार्य हो उनके उपादान और निमित्त देखो, व्यर्थके विवादमे न पडो। निमित्तमे ही यह प्राणी न उलझ जाय, कुछ मूल तत्त्वकी ओर भी दृष्टि करे, इस भावनासे प्रेरित होकर कह दिया जाता है कि सिद्धि उपादानसे होती है। जब तक उत्पादनकी ओर दृष्टिपात न होगा, तब तक केवल निमित्तोमे उलझे रहनेसे काम नही होता। और जब कोई उपादानको ही सब कुछ समझ प्राप्त निमित्तका उपयोग करनेमे अकर्मण्य हो जाता है, तब निमित्तकी प्रधानतासे कथन होता है और कहा जाता है कि विना निमित्त जुटाए कार्य नही होता।

आकाशमे काली-काली घनावली आच्छादित होने लगी तथा कभी जल-वृष्टि होनेसे ग्रीष्मकी भयकरता कम हो गई, इसलिए बरुआसागरसे प्रस्थान करनेका निश्चय किया। आषाढ शुक्ल १० स० २००८के दिन मध्याह्नकी सामायिकके बाद ज्यो ही प्रस्थान करनेको उद्यत हुआ कि बहुतसे स्त्री-पुरुष आ गये और स्नेहके आधीन ससारमे जो होता आया है, करने लगे। सबकी इच्छा थी कि यहाँ पर चातुर्मास्य हो, पर मै एक बार ललितपुरका निश्चय कर चुका था, इसलिए मैने रुकना उचित नही समझा। लोगोके अश्रुपात होने लगा तब मैने कहा—

ससार एक विशाल कारागृह है। इसका सरक्षक कौन है? यह दृष्टिगोचर तो नही, फिर भी अन्तरङ्गसे सहज ही इसका पता चल जाता है। वास्तवमे इसका सरक्षक मोह है। उसके दो मत्री है, एक राग और दूसरा द्वेष। इनके द्वारा आत्मामे क्रोध, मान, माया और लोभका प्रकोप होता है। क्रोधादिकोके आवेगमे यह जीव नाना-प्रकारके अनर्थ करता है। जब क्रोधका आवेग आता है, तब परको नाना प्रकारके कष्ट देता है, स्वय अनिष्ट करता है तथा परसे भी कराता है, अथवा उसका स्वय अनिष्ट होता हो तो हर्षका अनुभव करता है। यद्यपि परके अनिष्टसे इसका कुछ भी लाभ नही, पर क्या करे? लाचार है। यदि परका पुण्योदय हो और इसके अभिप्रायके अनुकूल उसका कुछ भी बाका न हो, तो यह दाहमे दु खी होता रहता है। यहाँ तक देखा गया है कि अभिप्रायके अनुकूल कार्य न होने पर मरण, तक कर लेता है। मानके उदयमे यह इच्छा होती है कि पर मेरी प्रतिष्ठा करे, मुझे उच्च माने। अपनी

प्रतिष्ठाके लिए यह दूसरेके विद्यमान गुणोको आच्छादित करता है, और अपने अविद्यमान गुणोको प्रगट करता है। परकी निन्दा और अपनी प्रशसा करता है। मानके लिए बहुत कष्टसे उपार्जन किए हुए, धनको व्यय करनेमे सकोच नही करता। यदि मानकी रक्षा नही हुई, तो बहुत दु खी होता है। अपघात तक कर लेनेमे सकोच नही करता। यदि कोईने, जैसी आपने इच्छा की थी, वैसा ही मान लिया, तो फूलकर कुप्पा हो जाता है। कहता है, हमारा मान रह गया। पर मूर्ख यह विचार नही करता कि हमारा मान नष्ट हो गया। यदि नष्ट न होता, तो वह भाव सर्वदा बना रहता। उसके जानेसे ही तो आनन्द आया, परन्तु विपरीत श्रद्धामे यह मानता है कि मानकी रक्षासे आनन्द आ गया।

एव माया कषाय भी जीवको इतने प्रपञ्चोमे फँसा देती है कि मनमे तो और है, वचनसे कुछ कहता है और कायके द्वारा अन्य ही करता है। मायाचारी आदमीके द्वारा महान् महान् अनर्थ होते है। मायावी आदमी ऊपरसे तो सरल दीखता है, और भीतर अत्यन्त वक्र परिणामी होता है। जैसे बगुला ऊपर तो शनै -शनै पैरो द्वारा गमन करता है, और भीतरसे जहाँ मछलीकी आहट सुनी, वही उसे चोचसे पकड लेता है। मायाचारके वशीभूत होकर जो न करे, सो अल्प है। इसी तरह लोभके वशीभूत होनेसे ससारमे जो-जो अनर्थ होते है वे किसीसे अविदित नही। आज सहस्रावधि मनुष्योका सहार हो रहा है, वह लोभकी ही वदौलत तो है। आज एक राज्य दूसरेको हडपना चाहता है। वर्षोसे शान्ति-परिषद् हो रही है, लाखो रुपया बर्वाद हो गये, परन्तु टससे मस नही हुआ। शतश नीतिके विद्वानोने गम्भीर विचार किये। अन्तमे परिग्रही मनुष्योने एक भी विषय निर्णीत न होने दिया—लोभकषायकी प्रवलता कुछ नही होने देती। सब ही मिल जावे, परन्तु जव तक अन्तरङ्गमे लोभ विद्यमान है, तव तक एक भी वात तय न होगी। राजाओसे प्रजाका पिण्ड छुडाया, परन्तु अधिकारीवर्ग ऐसा मिला कि उनसे बदतर दशा मनुष्योकी हो गई। यह सव लोभकी महिमा है, लोभकी महिमा अपरम्पार है, अत जहाँ तक वने लोभको कृश करो। क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय ही आत्माके सबसे प्रबल शत्रु है। इनसे पिण्ड छुडानेका प्रयत्न करो। हमे यहाँ रोककर क्या करोगे। ३ माह रोकनेसे तो यह दशा हो गई कि नेत्रोसे अश्रुपात होने लगा, अब चार माह और रोकोगे, तो क्या होगा। स्नेह दु खका कारण है, अत उसे दूर करनेका प्रयास करो। इतना कह कर हम चल पडे, लोग बहुत दूर तक भेजने आये। आज वरुवासागरसे चल कर नदी पर विश्राम किया।

ललितपुरकी ओर

सूर्यकी सायकालीन सुनहली-किरणोसे अनुरञ्जित हरी-भरी झाडियोसे सुशोभित वेत्रवतीका तट बडा रम्य मालूम होता था। सन्ध्याकालीन सामायिकके बाद रात्रिको यही विश्राम किया, यहाँ पर जो मुन्शी रहता है, वह योग्य है। दूसरे दिन प्रात ८ बजे बाद नौका चली, ९ के बाद नदीके उस पार पहुँच सके। मल्लाह बडे परिश्रमसे कार्य करते है, मिलता भी उन्हे अच्छा है, परन्तु मद्यपानमे सब साफ कर देते है। कितने ही मल्लाह तो दो-दो रुपये तककी मदिरा पी जाते है, अत इनके पास द्रव्यका संचय नही हो पाता। यद्यपि राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री आदि इनकी उन्नति मे प्रयत्नशील है, परन्तु इनका वास्तविक उद्धार कैसे हो, इस पर दृष्टि नही। जो लोग वर्तमानमे श्रेष्ठ है, उनसे कहते है कि इनके प्रति घृणा न करो, परन्तु जब तक इन लोगोमे मद्य-मासका प्रचार है, तब तक न तो लोग समानताका व्यवहार करेगे और न इनका उत्कर्ष होगा। देशके नेता केवल पत्रोमे लेख न लिख कर या बडे-बडे शहरोमे भाषण न देकर, इन गरीबोकी टोलियोमे आकर बैठे, तथा इन्हे इनके हितका मार्ग दिख-लावे, तो ये सहज ही सुपथ पर आ सकते है। स्वभावके सरल है, परन्तु अज्ञानके कारण अपना उत्कर्ष नही कर सकते।

राज्यकी ओरसे मद्यविक्री रोकी जावे, गाजा चरस आदिका विरोध किया जावे। राज्य सरकार भी तभी रोक सकती है, जब वह इनके कारण होनेवाली आयसे अपनी इच्छा घटा ले। इनसे करोडो रुपयेकी आय सरकारकी होती है, परन्तु इनके सेवनसे होनेवाले रोगोको दूर करनेके लिये अस्पतालोमे भी करोडो रुपये व्यय करना पडते है। राज्य चाहे तो सब कर सकता है, क्योकि उसके पास सत्ताका बल है। अथवा सत्ताका बल ही सर्वोपरि बल नही है। आज राजकीय अनेक कानूनोका प्रतिबन्ध होने पर भी लोग अन्याय करते है। उसका करण यही है कि राजकीय कानूनोसे लोगोका हृदय आतकयुक्त तो होता है, पर उस पापसे घृणा नही होती। राजके जो अधिकारी वर्ग है, वे भी स्वय इन पापोमे प्रवृत्ति करते है। कीमती-से-कीमती मदिरा इन्हीके उपयोगमे आती है। सिगरेट पीना, तो आजकी सभ्यताका नमूना हो गया है। ऐसे अधिकारियोसे लोगोके हृदय नही बदलते, बल्कि उस पापके करनेके लिये अनेक प्रकार

की छल, क्षुद्रताएँ लोग करने लगते है। कही-कही तो यहाँतक देखा गया है कि अध्यापक लोग कक्षाओमे बैठकर सुकुमारमति वालकोके समक्ष सिगरेट या बीडीका सेवन करते है। इसका क्या प्रभाव उन वालकोपर पडता होगा, यह वे जाने। अस्तु,

आषाढकृष्णा १२ स० २००८ को झाँसी पहुँच गये तथा सेठ मक्खन-लालजीके यहाँ ठहर गये। मन्दिरमे प्रवचन हुआ। मनुष्य-सख्या पर्याप्त थी। धर्मश्रवणकी इच्छा सबको रहती है—सब मनोयोगपूर्वक सुनते भी है, परन्तु उपदेश कर्तव्य-पथमे नही आता। इसका मूल कारण वक्तामे आभ्यन्तर आर्द्रता नही है।

गरजनेवाले मेघ और निरर्थक उपदेश देनेवाले वक्ता सर्वत्र सुलभ है। ये वृथा ही सामने आ जाते है, परन्तु जिनका अन्तरङ्ग आर्द्र है तथा जो जगत्का उद्धार करना चाहते है, ऐसे मेघ तथा उपदेशक नर दुर्लभ है। यदि वक्ता चाहता है कि हमारे वचनोका प्रभाव लोगो पर पडे, तो उस कार्यको उसे स्वय करना चाहिये। मुनिधर्मकी दीक्षा मुनि ही दे सकते है, तथा जिस पद्धतिसे मुनिधर्मका निरूपण मुनि करनेमे समर्थ होते है विद्वान् अविरत-सम्यग्दृष्टि उस पद्धतिसे निरूपण नही कर सकते। आजकल सिद्धान्तके ज्ञाता तो बहुत हो गये है, परन्तु उसपर आचरण नही करते। इससे उनके उपदेशका कोई प्रभाव नही होता। पदार्थका ज्ञान होना अन्य बात है, और उस पदार्थरूप हो जाना अन्य बात है। हम अपनी कथा कहते है—जितनी कथा कहते है, उसका शताश भी पालन नही करते। यही कारण है कि शान्तिके स्वादसे वञ्चित है। शान्तिका आना कोई कठिन नही। आज शान्ति आ सकती हे, परन्तु शान्तिके वाधक जो रागादि दोष है, उनको हम त्यागते नही। रागादिके जो उत्पादक निमित्त है, सिर्फ उन्हे त्यागते है, परन्तु उनके त्यागसे रागादिक नही जाते। उनका अभाव तो उनकी उपेक्षासे ही हो सकता है।

त्रयोदशीको प्रात.काल चलनेका विचार था, परन्तु मूसलाधार वर्षा होनेसे चल नही सके। ११ वजेतक वर्षा शान्त नही हुई। ऐसा दिखने लगा कि अव ललितपुर पहुँचनेमे विघ्न आ रहा है, परन्तु मध्याह्नके वाद आकाश स्वच्छ हो गया। जिससे १ वजे झाँसीसे निकल कर ४ वजे विजौली पहुँच गये। स्थान रम्य था। एक स्कूलमे ठहर गये। यह स्थान सदर (झांसी) से ६ मील दूर है। वीचमे ४ मीलपर एक डेयरीफार्म दिखा। महिषी और गायोकी स्वच्छता देख चित्त प्रसन्नतासे भर गया। दूसरे दिन विजौलीसे २ मील चल कर १ उपवनमे निवास किया। शौचादिसे निवृत्त हो पाठ किया। तदनन्तर सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थका प्रवचन

किया। उपवनका शान्तिमय वातावरण देख चित्तमे बहुत प्रसन्नता हुई, और हृदयमे विहारके निम्नाकित लाभ अनुभवमे आये।

(विहारमे अनेक गुण है। प्रथम तो एक स्थान पर रहनेसे प्राणियोके साथ जो स्नेह होता है, वह नही होता, तथा देशाटन करनेसे अनेक देशोके वन, उपवन, नदी, नाले आदि देखनेका सुअवसर प्राप्त होता है, शरीरके अवयवोमे सचालन होनेसे क्षुधा आदिकी शक्ति क्षीण नही हो पाती, अन्नका परिपाक ठीक होता रहता है, आलस्यादि दुर्गुणोसे आत्मा सुरक्षित रहती है, अनेक तीर्थक्षेत्रादिके दर्शनका अवसर मिलता है, किसी दिन अनुकूल स्थानादि न मिलनेसे परीषह सहन करनेकी शक्ति आजाती है, कभी दुर्जन मनुष्योके समागमसे क्रोधादि कषायके कारणोके सद्भावमे क्षमाका भी परिचय हो जाता है।) इत्यादि अनेक लाभोकी विहारमे सम्भावना है। यह स्थान झाँसीके सुन्दरलाल सेठका है। २०००) वार्षिक व्यय है। उपवनमे आम्रादिके वृक्ष हैं। उनसे विशेष आय नही। यह रुपया यदि विद्यादानमे खर्च किया जाता, तो ग्रामीण जनताको बहुत लाभ होता, परन्तु लोगोकी दृष्टि इस ओर नही। आज भारतवर्ष अपनी पूर्व गुण-गरिमासे गिर गया है। जहाँ देखो, वहाँ पैसेकी पकड है। पश्चिमी देशकी सभ्यताको अपनाकर लोगोने अपने व्ययके मार्ग बहुत विस्तृत कर लिये है, इसलिए रात-दिन व्ययकी पूर्तिमे ही सलग्न रहना पड़ता है। पश्चिमी सभ्यताके केवल विपयपोषक कार्योको भारतने अपनाया है। जहाँ प्रथमावस्थामे मद्य, मांस, मधुका त्याग कराया जाता था, वहाँ अब तीनो अमृतरूपमे माने जाने लगे है। इनके बिना गृहस्थोका निर्वाह नही होता। थोडे दिन पहले कोई साबुनका स्पर्श नही करता था, पर आज उसके विना किसीका निर्वाह नही। अंग्रेजोमे जो गुण थे, उन्हे भारतने नही अपनाया। वह समयका दुरुपयोग नही करते थे, उन्होने भारतवर्षकी महिलाओके साथ सम्बन्ध नही किया। प्राचीन वस्तुओकी रक्षा की, विद्यासे प्रेम बढाया, स्वच्छताको प्रधानता दी इत्यादि। मुसलमानोमे भी बहुतसे गुण है। जैसे एक बादशाह भी अपनी जातिके अदना आदमीके साथ भोजनादि करनेमे सकोच नही करता। यदि किसीके पास एक रोटी हो, और १० मुसलमान आ जावे, तो वह एक-एक टुकडा खाकर सन्तोप कर लेंगे। नमाजके समय कही भी हो, वहीपर नमाज पढ लेंगे, परस्परमे मैत्रीभावना रक्खेंगे, एक दूसरेको अपनाना जानते है इत्यादि। परन्तु हमारे देशके लोग, किसीसे गुण ग्रहण न कर अधिकाश उसके दोप ही ग्रहण करते है।

वागसे चलकर ववीना ग्राममे आगये। यहाँपर २५ घर जैनियोके है। ५ स्थानो पर दर्शन है। दूसरे दिन ३ वजे जब यहाँसे चलने लगे, तव ५० मनुष्य और ५० महिलाएँ आ गई। कुछ उपदेश हुआ। पाठशालाके लिए ४०) मासिकका चन्दा हो गया। यहाँ एक मनुष्यको पञ्चायतने १२ माससे जाति च्युत कर दिया था। उसने जो अपराध किया था, उसकी क्षमा माँगी। लोगोने क्षमा दी। यदि इतनी नम्रता पहले ही व्यवहारमे लाता, तो इतना परेशान क्यो होता, परन्तु कषायका वेग भी कुछ चीज है। ववीनासे ८ मील चलकर घिसोली आये, यहाँपर सडकके किनारे एक जैनमन्दिर है। उसीकी दहलानमे ठहर गये। मन्दिरमे भगवान्‌के दर्शन किये। यहाँपर कोई जैनी नही रहता। इस ग्राममे ठाकुर (क्षत्रिय) लोग रहते है। उनका दवदवा है, अत कोई रहना नही चाहता। फिर वैश्य जाति स्वभावसे भीरु है। यह द्रव्य उपार्जन करना जानते है, परन्तु अन्य गुणोसे भयभीत रहते है। लोभके वशीभूत हो, आत्मीय प्रतिष्ठासे च्युत रहते है। यह दान करनेमे शूर है, परन्तु सर्वोपयोगी कार्योमे व्यय नही करेगे। यही कारण है कि सामान्य जनताको आकर्षित नही कर पाते। व्यापार इनकी आयका साधारण निमित्त है, कृपि करनेको हेय मानते है। यद्यपि वैश्यका कृपिकर्म आगम विहित है, परन्तु उसे हिंसाका कार्य वनाकर दयाका पालन करते है, परन्तु ऐसे-ऐसे व्यापार करेंगे, जिनमे हजारो मन चर्वीका उपयोग होता है, उससे नही डरते। अस्तु, ससार स्वार्थी है। यहाँसे चलकर पुलिस चौकीके समीप एक कूप था, वहीपर ठहर गये। ववीनासे एक चौका आया था, उसीमे निरन्तराय आहार हुआ। यहाँ दो फर्लांगपर वेत्रवती नदी है। घाट अकृत्रिम है। उस पार जानेको दो नौकाये रहती है, बिना किरायेके पार उतार देते है। वीचमे पत्थरोकी चट्टाने है, नौका बडी सावधानीसे ले जाते है, आधा घण्टा नदी पार करनेमे लगता है, पहाडी नदी है, पानी अत्यन्त निर्मल है, स्थान धर्मध्यानके अनुकूल है।

प्रात ५½ नदीके घाटसे चलकर ७½ वजे कडेसरा पहुंच गये। यहाँ १० घर गोलालारे जैनोके है। मन्दिरके पास हम लोग ठहर गये। यहाँसे पवाक्षेत्र २½ मील है। ग्रामीण जनतामे धर्मका प्रचार हो सकता है, परन्तु प्रचारक हो, तव वात वने। अगले दिन कडेसरासे चलकर पवाक्षेत्र मे आये। यहाँ-पर पृथिवीके १० फुट नीचे जिन मन्दिर है, जिसमे काले पत्थरकी ४ मूर्त्तियाँ है। १ मूर्त्ति आदिनाथस्वामी, १ पार्श्वनाथभगवान्‌की तथा १ नेमिनाथभगवान्‌ की है। सभी प्रतिमाएँ अतिमनोज्ञ चमक-

दार काले पत्थर की है। आदिनाथ भगवान्की मूर्ति वि० स० १३४५ मे भट्टारक शुभकीर्तिदेवके द्वारा प्रतिष्ठापित है। यहाँ पर एक नया मन्दिर नयेगाँवकी सिंघेनने बनवाया है। उसमे एक वेदिका सगमर्मरकी है, तथा उस वेदिका पर सुवर्णका चित्राम हो रहा है। मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। मन्दिरमे सगमर्मरका पत्थर लग जानेसे बहुत ही सुन्दरता आ गई है। मन्दिरके चारो तरफ एक प्राकार है। पूर्व दिशामे एक महान् द्वार है। उसके बगलमे एक बगला बना हुआ है। पूर्व दिशामे यात्रियोके निवासके लिए दरवाजेके दोनो ओर कोठा बने हुए है। पूर्व प्रवेशद्वारसे थोडी दूर पर एक बडा कूप है, जिसका जल अतिशय मधुर है। मन्दिरके चारो ओर रमणीय अटवी है। उत्तरकी ओर पवा ग्राम है, जहाँ ७ घर जैनियो के है। यह स्थान यदि श्रावक घरसे उदासीन हो, परिग्रहकी मूर्च्छा न हो और स्वतन्त्र भोजन बना सकता हो, तो रहकर धर्मसाधन करनेके योग्य है। विद्याध्ययनके उपयुक्त भी है, परन्तु (वर्तमान जैन जनताकी इस ओर दृष्टि नही। दृष्टि जाती भी है, तो लौकिक शिक्षाकी ओर ही जाती है, उसका कारण लौकिक शिक्षामे अर्थ-प्राप्तिका विशेष सम्बन्ध है, किन्तु जिस शिक्षासे पारमार्थिक हित होता है, उस ओर ध्यान नही, और न हो भी सकता है। प्रत्यक्ष सुखके साधन धनकी प्राप्ति जिसमे हो, उसे छोड लोग अन्य साधनोमे अपनेको नही लगाना चाहते। इसका कारण अनादि कालसे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह सज्ञाके जालमे इतने उलझे है कि उससे निकलना कफमे उलझी मक्खीके सदृश कठिन है। जिसका महाभाग्य हो वही इस जालसे अपनी रक्षा कर सकता है। यह जाल अन्य द्वारा नही बनाया गया है, किन्तु हमने स्वय इसका सृजन किया है।)

प्रात काल प्रवचन हुआ। २५ मनुष्य थे। इस पवाक्षेत्र पर उपयोग निर्मल रहता है। दूसरे दिन यहाँसे प्रात काल ५½ बजे चलकर पुन कडेसरा आगये, और अपरान्ह समय यहाँसे ४ मील चलकर तालबेहट आगये, तथा मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। प्रात काल मन्दिरजीमे जिनदेवका दर्शन किया। स्वच्छ स्थान था। चित्त प्रसन्न हुआ। यहाँ पर खेतसिंहजी सिंठया बहुत सज्जन है, धनी भी है, तथा पुत्रादिसे सम्पन्न हैं। यहाँ एक रामस्वरूप योगी सस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं, साहित्यके आचार्य है। आप योगी हैं, अत ब्राह्मण लोग इनसे वह प्रेम नही रखते, जो सजातीय ब्राह्मणसे रखते है। आप हाईस्कूलमे सस्कृत अध्यापक है। १२०) मासिक मिलता है। एक सस्कृतपाठशाला प्राइवेट चलाते है।

उसमे कई हरिजनोको विशारद, मध्यमा तक परीक्षा उत्तीर्ण करा चुके है। आपका यह सब काम उच्चवर्णवालोको अप्रिय प्रतीत होता है। न जाने लोगोने इतनी सकीर्णता क्यो अपनाई है? विद्या किसी व्यक्ति विशेषकी नही, फिर भी इतनी सकीर्णता क्यो? यह सब मोहका कार्य है, मोहमे ही यह भाव होता है कि हम ही उच्च कहलावे, चाहे कितना ही नीच कार्य क्यो न करे? अन्य ऋषियोने तो यहाँ तक लिख दिया है कि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयेयाताम्' अर्थात् स्त्री और शूद्रको नही पढाना चाहिए। यह अन्याय नही तो क्या? (न जाने इन मनुष्योने कितने प्रतिबन्ध लगा रक्खे है? अन्य कथा छोडो, यहाँ तक आज्ञा दे डाली कि एकान्तमे अपनी माँसे भी मत वोलो। माँ यह उपलक्षण है, अत स्त्रीमात्रका ग्रहण है। वास्तविक वात यह है कि परिणामोकी मलिनता जैसे-जैसे वृद्धिको प्राप्त होती गई, वैसे-वैसे यह सर्व नियम वनते गये) तालवेहटमे तालाव बहुत सुन्दर है, तालावके जलसे एक प्रपात पडता है, जो वहुत ही मनोहर है, एक छोटी पहाडी भी पासमे है।

अषाढ शुक्ला ९ स० २००८ को यहाँसे चल कर वीचमे जमालपुर ठहरते हुए वाँसी आगये। यह वडा कसवा है। ३००० के करीव मनुष्य सख्या होगी। यहाँ २ घर गोलालारे जैनोके है, जिनमे १ घर सम्पन्न है। २ घर विनेकावाल जैनोके भी है। २ मन्दिर विशाल है। इस समय ऐसे मन्दिर वनवानेमे लाख रुपयेसे कम नही लगेगा। एक मन्दिरकी शिखर जीर्ण है। उसकी मरम्मतके लिए एक जैनी भाईने १००) तथा ५ वोरी सीमेट दी और भी कई लोगोने यथाशक्य दिये। २१) सिं० कुन्दनलालजी सागरवालोने दिये। यह ग्राम किसी समय सम्पन्न रहा होगा। यहाँकी जैनेतर जनता भी आई। उसके समक्ष मैने सुझाव रक्खा कि यहाँ १ मिडिल स्कूल हो जावे तो अति उत्तम होगा। लोगोके मनमे आगई। श्री शिवप्रसाद भट्ट, गोकुलदास तमोली तथा केशवदास दुबे आदिने प्रयत्न किया। हमने कहा—यदि यहाँ मिडिल स्कूल हो जावे, तो हम सागरसे सिंघई कुन्दनलालजी द्वारा १०१) भिजवा देवेगे। लोगोने वताया कि सरकारने आदेश दिया है, कि यदि ग्रामके लोग १७००) एकत्रित कर लेवे, तो यहाँ सरकार मिडिल स्कूल स्थापित कर देवेगी। जनता प्रयत्नशील है, अत आशा है १७००) कोई वडी वात नही।

यहाँसे वीचमे देवरान ठहरते हुए ललितपुरके निकट एक ग्राममे पहुँच गये। यहाँ पर १ चैत्यालय तथा ३ घर जैनियोके है। ३ घर होते

हुए भी इन्होंने आतिथ्यसत्कार अच्छा किया। यहाँ ललितपुरसे करीव २०० पुरुष आ गये। आज यहाँ विश्राम करनेकी इच्छा थी, पर लोगोके आग्रहसे विश्राम नही कर सका। ४ वजे यहाँसे चल दिया। यद्यपि घामका पूर्ण प्रकोप था, परन्तु समुदायमे परस्पर वार्तालाप करते हुए १½ मील चलकर वृक्षोकी सघन छायामे वैठ गये। तदनन्तर वहाँसे चलकर ६ वजे ललितपुर पहुँच गये। ललितपुरमे प्रवेश नही कर पाये थे, कि स्त्रियो और पुरुषोकी वहुत भारी भीड़ एकत्रित हो गई। जाकर वड़े मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँ पर धर्मशालाका विशाल चौक स्त्री और पुरुषो द्वारा पहलेसे ही भर गया था। प० परमेष्ठीदासजी-ने व्याख्यान देकर शिष्टाचारपूर्वक वर्णीको योगी वना दिया। इसप्रकार आषाढ शुक्ला १२ स० २००८ को सध्या समय ललितपुरमे आकर चार माहके लिए भ्रमण सम्वन्धी खेदसे मुक्त हो गये।

●

क्षेत्रपालमें चातुर्मास

आषाढ शुक्ला १३ सं० २००८ को प्रातःकाल ७½ बजेसे ८½ बजे तक मन्दिरके चौकमें प्रवचन हुआ। प्रथम श्री पं० लक्ष्मीचन्द्रजीका प्रवचन हुआ। फिर ध्वनिविस्तारकयन्त्रके आनेसे ½ घंटा मेरा प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। ५०० के ऊपर स्त्री-पुरुष थे। प्रायः सबने मनोयोग लगाकर प्रवचन सुना। ८ आदमियोंने ४ मास तक ब्रह्मचर्यका नियम लिया। अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निका पर्वमें तो प्रायः सबने नियम लिया। सन्तोषसे सभा विसर्जित हुई। तदनन्तर श्री नये मन्दिरजीमें दर्शनार्थ गये। यहाँ पर भी रम्य वेदिकाएँ हैं। उनमें विराजमान मनोज्ञ प्रतिमाओंके दर्शन किये। पश्चात् जहाँ शास्त्रप्रवचन होता है, वहाँ पर जनता बैठ गई। १५ मिनट तत्त्वचर्चा होती रही।

पश्चात् भोजनके लिए गये। टडैयाके घर भोजन हुआ। दो भाई हैं, सुशील हैं, धर्ममें रुचि है। यहाँ ४ बजे शामको समारोहके साथ चलकर क्षेत्रपाल आ गये। १००० के लगभग आदमी थे। पं० श्यामलालजी और पं० परमेष्ठीदासजीका समयोचित भाषण हुआ। पश्चात् ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ। मेरा तो भाषणकर्ताओंसे सर्वप्रथम यही कहना है कि जो अभिप्राय है, उसे ही व्यक्त करो। व्यक्ति प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं, प्रत्युत हानि है। दूसरे दिन समयसारका स्वाध्याय किया। जनता प्रसन्न थी। सेठ अभिनन्दनकुमारजी टडैयाके यहाँ भोजन हुआ। कुछ त्यागधर्मका विचार हुआ। मध्यान्ह सामायिकके बाद परस्पर तत्त्वचर्चा करते रहे। ३ बजे प्रतिक्रमण किया तथा कार्तिक सुदी प्रतिपदा तक ललितपुरमें रहनेका नियम किया। साथ ही यह भी नियम किया कि प्रातःकाल शास्त्रप्रवचनके बाद गल्पवादमें नहीं पड़ना, मध्यान्हकी सामायिकके बाद अध्ययनमें काल लगाना और रात्रिको प्रायः नहीं बोलना। प्रायः का अर्थ आवश्यकता पड़ने पर बोलनेकी छूट थी। यहाँ पर ५ बजे सब स्कूलोंके छात्र आये। उन्हें यहाँ वाले भाइयोंने लाडू बाँटे। बालक प्रसन्न थे। १००० से ऊपर होंगे। यह अवसर सबके लिए मनोहर था—सब ही प्रसन्नचित्त थे। यदि ऐसे उत्सव, जिनमें निज और परका भेद न हो, होते रहें, तो नागरिक जनताका पारस्परिक सौहार्द बना रहे।

क्षेत्रपाल ललितपुरका सर्वाधिक मनोरम स्थान है। एक अहातेके

अन्दर भव्य मन्दिर है। श्री अभिनन्दनस्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमाके दर्शन करनेसे चित्त आल्हादित हो उठता है। यह प्रतिमा यहाँ महोवासे लाई गई थी, ऐसा सुना जाता है। मन्दिरोके साथ एक धर्मशाला तथा एक विशाल बाग भी सलग्न है। यहाँ पहले संस्कृत पाठशाला चलती थी, जो अब टूट चुकी है। यह स्थान शहरमे १ मील स्टेशनके करीब है। सामने हरा-भरा पुष्कल मैदान पडा है। ललितपुर स्थान भी बुन्देलखण्ड प्रान्तका प्रमुख नगर है। जैनियोके सातसौ-आठसौ घर हैं। प्राय सम्पन्न है। श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ तथा पपौराजीका रास्ता यहाँसे होनेके कारण लोगोका प्राय आवागमन जारी रहता है। व्यापारका अच्छा स्थान है। लोगोमे धर्म-कर्मकी रुचि भी अच्छी है। यही नही, इस प्रान्तके सभी लोग सरल तथा ससारसे भीरु रहते है। श्री प० श्यामलालजी न्यायकाव्यतीर्थ तथा प० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ अच्छे विद्वान् हैं। श्री हुकमचन्द्रजी तन्मय बुखारिया और हरिप्रसादजी 'हरि' अच्छे कवि हैं। इनकी कवितामे माधुर्य तथा ओज रहता है। केन्द्र स्थान होनेसे विचारक विद्वानोका समागम होता रहता है। जनताके आग्रहवश बनारससे यहाँ प० फूलचन्द्रजी शास्त्री भी आगये। आप बहुत ही स्वच्छ तथा विद्वान् हैं। किसी कामको उठाते हैं, तो उसके सम्पन्न करने-करानेमे अपने आपको तन्मय कर देते हैं। किसी प्रकारका दुर्भाव इनमे देखनेमे नही आया। प्रात कालके प्रवचनमे शहरसे १ मील दूर होने पर भी अधिक सख्यामे जनता दौडी आती थी। हमारा भी उद्देश्य रहा कि जनताके हाथ कुछ तो भी लगे। इसी उद्देश्यसे सागारधर्मामृतका प्रवचन शुरू कराया। प्रवचन स्थानीय विद्वान् तथा अन्य आगन्तुक विद्वानोमेसे कोई विद्वान् करते थे, और उसके बाद हम भी कुछ थोडा कह देते थे। स्त्री-पुरुष दोनो ही श्रवणमे उपयोग लगाते थे।

सभी स्त्री-पुरुष आत्महित चाहते हैं, परन्तु उस ओर लक्ष्य नही देते। केवल कथा कर या श्रवण कर आत्महित चाहते हैं। आत्महित क्या है, यह कुछ कठिन नही, परन्तु प्राप्त नही होता, इसलिये कठिन भी है। अनादिसे यह जीव शरीरको निज मानता आता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार सज्ञाओमे ही इस जीवका समग्र समय निकल जाता है। आत्महितकी ओर इसका लक्ष्य ही नही जाता। संज्ञाओकी परिपाटीसे निकल जाना किसी विरले निकट भव्यका कार्य है। ससारके यावन्मात्र प्राणी आहारकी अभिलाषासे सत्रस्त है। आहारके अर्थ ही उसके समस्त उपाय है। यदि आहार प्राप्तिकी आकाक्षा मुनिके हृदयमे

न होती, तो वन छोडकर शहरके दूषित वातवरणमे क्यो आते ? भय होने पर जीव भागनेकी इच्छा करते हैं। वृद्धावस्थासे शरीर जर्जर है। अनेक रोगोकी असह्य वेदना भी उठा रहा है, फिर भी इस जीवको भय लगा रहता है कि मर न जाऊँ, यह पर्याय छूट न जाय। मैथुन सज्ञामे विषयरमणकी इच्छा होती है। विषयेच्छासे जो अनर्थ होते हैं, वे किसीसे गुप्त नही। यह विषयलिप्सा इतनी भयकर है कि यदि इसकी पूर्ति न हो तो यह प्राणी मृत्यु तकका पात्र हो जाता है। इसका लोभी मनुष्य निन्द्यसे निन्द्य कार्य करनेमे भी सकोच नही करता। यहाँ तक देखा गया है कि पिताका सम्बन्ध साक्षात् पुत्रीसे हो गया। उत्तमसे उत्तम राजपत्नी नीचोके साथ ससर्ग करनेमे सकोच नही करती। जिसने इस सज्ञा पर विजय प्राप्त कर ली, वही महापुरुष है। वैसे तो सभी उत्पन्न होते हैं और मरते है। परिग्रहकी सज्ञा भी इस जीवको उन्मत्त बना रही है। आजकल जो मनुष्य इसके पीछे पागल होकर पडा है। त्यागी, व्रती, विद्वान, अविद्वान् जो देखो, वही इसके पीछे चक्र लगा रहा है। सागारधर्मामृतके प्रारम्भमे ही प० आशाधरजीने सागारका लक्षण लिखते हुए कहा है कि जो उक्त चार सज्ञारूपी ज्वरसे आतुर है, जिस प्रकार ज्वराक्रान्त मनुष्य दु खी हो जाते है, उसीप्रकार इन सज्ञाओंके द्वारा जो दु खी हो रहे हैं और इनसे दु खी होनेके कारण जो निरन्तर स्वज्ञान—आत्मज्ञानसे विमुख रहते है, इन 'सज्ञाओं' की चपेटमें [illegible] विचार भी नही कर पाते कि मेरा स्व क्या है ? उसका स्वरूप [illegible] और इसी कारण जो विषयोमे उन्मुख रहते हैं, उन्हे ही [illegible] मान रात-दिन उनके एकत्रित करनेमे लीन रहते हैं, वे [illegible] है। इन सज्ञाओका कारण भी प० आशाधरजीने [illegible] दिया है, 'अनाद्यविद्यादोषोत्थ' अर्थात् अनादि काल[illegible] दोषोसे उत्पन्न है। जिस प्रकार ज्वर वात-पित्त-[illegible] होता है, उसी प्रकार चार सज्ञारूपी ज्वर मि[illegible] हुआ है। परमार्थसे प० आशाधरजीने साग[illegible] किया है, वह गृहस्थोमे पूर्ण रूपसे घटित हो [illegible] है। [illegible] श्लोकमें मोही—मिथ्यादृष्टि गृहस्थका लक्षण [illegible] है, [illegible] अनन्तर दूसरे श्लोकमे सम्यग्दृष्टि गृहस्थका लक्षण [illegible] है। [illegible] होनेसे जिसे आत्माका भान तो हो गया है, [illegible] मोहके उदयसे परिग्रह सज्ञाका परित्याग कर[illegible] नही है और उसी कार[illegible] प्राय विषयोमे मूर्च्छित रहते हैं। [illegible] गृहस्थ तो [illegible]

विषयोन्मुख रहते हैं, पर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मिथ्यात्वरूपी तिमिरके दूर हो जानेसे इतना समझने लगता है कि विषय-प्राप्ति हमारे जीवनका लक्ष्य नही, परन्तु चारित्रमोहके उदयसे उनका त्याग नही कर पाता, इस लिये प्राय उनमे मूर्छित रहता है। देखो, मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा। मिथ्यात्वके उदयमे तो यह मनुष्य विषयोको ही सुखका कारण मान अहर्निश उन्हीमे उन्मुख रहता है, पर सम्यक्त्वके होनेपर इसकी दृष्टिमे यह बात आजाती है कि विषय सुखके कारण नही, अत उनमे उसकी मूर्छा पूर्ववत् नही रहती। प० श्यामलालजीकी प्रवचन करनेकी शैली उत्तम है। अधिकाश सागारधर्मामृतका प्रवचन वही करते थे।

लोगोके हृदयमे धर्मके प्रति श्रद्धा है, परन्तु उन्होने जो लीक पकड ली है, या जिन कार्योको उन्होने धर्म मान रक्खा है, उससे भिन्न कार्यमे वे अपना योग नही देना चाहते। उससे भिन्न बात सामने आने पर उन्हे रुचिकर नही होती। (वर्तमानमे यथार्थ बात कहनेकी आवश्यकता है, क्योकि लोग जिन कार्योमे धर्म मानते आ रहे हैं, उनसे भिन्न कार्योमे आवश्यकता होने पर भी, पैसा व्यय नही करना चाहते। देखा गया है कि मन्दिरमे नवीनवेदिकाकी आवश्यकता नही, फिर भी उसमे वेदी जडवा देंगे। उसमे १००००) तक व्यय कर देवेंगे। पडोसमे जैनी आजीविकासे रहित होगा, उसे १०) भी पूँजीको न देवेंगे। सिद्धचक्रविधानमे हजारो रुपया व्यय कर देवेंगे, किन्तु १ छात्रको पढानेमें १००) भी न देवेंगे। कल्याणककी आवश्यकता न होने पर ५००००) व्यय करनेमे विलम्ब न करेंगे। परन्तु ग्राममे बालकोको धर्मशिक्षा देनेके अर्थ १ अध्यापकको ५०) देनेमे इनका हृदय द्रवीभूत न होगा। देशमे लाखो मनुष्य अन्नके कष्टसे पीडित होने पर भी लोग विवाहादि कार्यो मे लाखो रुपया बारूदकी तरह फूँक देनेमे सकोच न करेंगे, परन्तु अन्न-वस्त्र विहीनोकी रक्षामे ध्यान न देवेंगे। देवदर्शनादि करनेमे समय नही मिलता, ऐसा वहाना कर देवेंगे, परन्तु सिनेमा आदि देखनेमे ऑख भले ही खराव हो जावे, इसकी परवाह न करेंगे।)

लोग शान्ति-शान्ति चिल्लाते है और मै भी निरन्तर उसीकी खोजमे रहता हूँ, पर उसका पता नही चलता। परमार्थसे शान्ति तो तव आवे, जव कषायका कुछ भी उपद्रव न रहे। कषायातुर प्राणी निरन्तर पर-निन्दाके श्रवणमे आनन्द मानता है। जिसे परकी निन्दामे प्रसन्नता होती है, उसे आत्मनिन्दामे स्वयमेव विषाद होता है। जिसके निरन्तर हर्ष-विषाद रहते हो, वह सम्यग्ज्ञानी कैसा ? यद्यपि आत्मा ज्ञान-दर्शनका

पिण्ड है फिर भी न जाने क्यो उसमे राग-द्वेप होते है ? वस्तुत. इनका मूलकारण हमारा सकल्प है, अर्थात् परमे निजत्व कल्पता है। यही कल्पना रागद्वेषका कारण है। जव परको निज मानोगे तव अनुकूलमें राग और प्रतिकूलमे द्वेप करना स्वाभाविक ही है। अत स्वरूपमे लीन रहना उत्तम वात है। अपना उपयोग वाहर भ्रमाया तो फँसे। होलीके दिन लोग घरमे छिपे वैठे रहते है। कहते है, कि यदि बाहर निकलेगे तो लोग कपड़े रग देगे। इसीप्रकार विवेकी मनुष्य सोचता रहता है कि मै अपने घरमे—अपने स्वरूपमे लीन रहूगा तो वचा रहूगा। अन्यथा ससारके राग-रगमे फँस जाऊँगा।

जगमें होरी हो रही वाहर निकले कूर।
जो घरमे वैठा रहे तो काहे लागे धूर॥

त्रिविध विद्वानोंका समागम

ललितपुरकी समाजका निमन्त्रण पाकर प० फूलचन्द्रजी वनारससे यहाँ आ चुके थे, यह मै पहले लिख आया हूँ। इनके सिवाय अन्यान्य विद्वानोका समागम भी यहाँ होता रहा। विद्वानोने अपने प्रवचनोके द्वारा यहाँकी समाजको यथाशक्य लाभान्वित किया। श्रावण शुक्ल १ के दिन श्री प० हीरालालजी शास्त्रीने प्रात काल प्रवचन करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका विशद वर्णन किया। आपने सम्यग्ज्ञान-को तराजू और सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्रको तराजूके दो पलडे वताकर मोक्षमार्गका अच्छा विवेचन किया। आपकी वाचनाशैली उत्तम है। श्रोतागण प्रसन्न हुए। सम्यग्दर्शनका विवेचन करते हुए आपने खास वात यह वताई कि सम्यग्दृष्टि मूल कारण को पकडता है और मिथ्या-दृष्टि वाह्य कारणोमे उलझता है। सम्यग्दृष्टिकी प्रवृत्ति सिहके समान है, अर्थात् जिसप्रकार सिह वन्दूककी ओर न झपट कर मारनेवालेकी ओर झपटता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि वाह्य कारणोमे उलझ कर, उनसे रागद्वेप नही करता, किन्तु अन्तरङ्ग कारण जो कर्मोदय है, उसकी ओर दृष्टि देता है। मिथ्यादृष्टिकी प्रवृत्ति कुक्कुरके समान है अर्थात् जिस प्रकार कुक्कुरको कोई लाठी मारे, तो वह लाठीको चवाने लगता है। मारनेवालेसे कुछ नही कहता, इसीप्रकार किसीके द्वारा इष्ट या अनिष्ट होने पर, मिथ्यादृष्टि उसपर राग-द्वेष करता है। उस इष्ट या अनिष्टका मूलकारण जो कर्मोदय है, उस पर दृष्टि नही देता।

श्रावण शुक्ल ४ सं० २००८ को पं० फूलचन्द्रजीका प्रवचन बहुत मनोहर हुआ। आपने कहा कि आत्माको संसारमें रखनेवाली यदि कोई वस्तु है, तो पराधीनता है और संसारसे पार करनेवाली कोई वस्तु है, तो स्वाधीनता है। हम स्वतन्त्र चैतन्यपुञ्ज आत्मद्रव्य हैं। हमारा आत्मद्रव्य अपने आपमें परिपूर्ण है। उसे परकी सहायताकी अपेक्षा नहीं है। फिर भी यह जीव अपनी शक्तिको न समझ, पद-पदपर परद्रव्यके साहाय्यकी अपेक्षा करता है, और सोचता है कि इसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। यही इसकी पराधीनता है। जिस समय परकी सहायताकी अपेक्षा छूट जावेगी उस दिन मुक्ति होनेमें देर न लगेगी। (अविवेकी मनुष्य, स्त्री-पुत्रादिकको अपना हितकारी समझकर, उनमें राग करता है परन्तु विवेकी मनुष्य समझता है कि यह स्त्री-पुत्रादिका परिकर संसारचक्रमें फँसानेवाला है, इसलिये उसमें तटस्थ रहता है। मनुष्य पुत्रको बहुत प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं, किन्तु यथार्थ बात इसके विपरीत है। मनुष्य सबसे अधिक प्रेम स्वस्त्रीसे रखता है। इसीसे उसने स्त्रीका नाम प्राणप्रिया रक्खा है। स्त्री भी इसकी आज्ञाकारिणी रहती है। वह प्रथम पतिको भोजन कराती है, पश्चात् आप भोजन करती है। पहले पतिको शयन कराती है। पश्चात् आप शयन करती है। उसकी वैयावृत्त्य करनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं करती। यह सब है, परन्तु पुत्रके होने पर यह बात नहीं रहती। यदि भोजनमें विलम्ब हो गया, तो पति कहता है—विलम्ब क्यों हुआ? स्त्री कहती है कि पुत्रका काम करूँ या आपका। पुत्र ज्यों-ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता है, त्यों-त्यों पिता ह्रासको प्राप्त होता है। समर्थ होने पर तो पुत्र समस्त सम्पदाका स्वामी बन जाता है। अब आप स्वयं निर्णय कीजिये कि पुत्रने उत्पन्न होते ही आपकी सर्वाधिक प्रेमपात्र स्त्रीके मनमें अन्तर कर दिया, पीछे आपकी समस्त संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया तो वह पुत्र कहलाया या शत्रु? आपकी संपत्तिको कोई छीन ले, तो उसे आप मित्र मानेंगे या शत्रु? परन्तु मोहके नशामें यथार्थ बातकी ओर दृष्टि नहीं जाती है। यह मोह दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इन तीनों गुणोंको विकृत कर देता है, इसलिये हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि जिससे सर्व प्रथम मोहसे पिण्ड छूट जावे।)

श्रावण शुक्ला १३ सं० २००८ को ब्र० सुमेरुचन्द्रजी भगतका व्याख्यान हुआ। आपने पुद्गलसे भिन्न आत्माको दर्शाया। परमार्थसे सर्वद्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। कोई द्रव्यके साथ तन्मय नहीं होता। फिर भी जीव

और पुद्गल ये दो द्रव्य पृथक्-पृथक् होने पर भी परस्पर इस प्रकार मिल रहे हैं कि जिनसे अखिल विश्व दृष्टिपथ हो रहा है । यह विश्व न तो केवल पुद्गलका कार्य है, और न केवल जीवका, किन्तु उभय द्रव्य मिल कर यह खेल दिखा रहे हैं । चूना अपने आपमे सफेद पदार्थ है और हल्दी अपने आपमे पीली है। परन्तु दोनो मिलकर एक तीसरा लाल रग उत्पन्न कर देते है, इसी प्रकार जीव और पुद्गलके सम्बन्धसे यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न हुआ है । आज जो मानवीय शरीर अपनेको उपलब्ध है, इसकी तुलना देवोंका शरीर भी नही कर सकता, फिर नारकी और तिर्यञ्चकी तो वात ही क्या है ? इस मानवशरीरमे वह योग्यता है कि अन्तर्मुहूर्तमे ससारसे बेडा पार करा दे, पर देवोके शरीरमे यह वात नही । अत हमे उचित है कि इस मानवशरीरसे ऐसा कार्य किया जाय कि जिससे आत्मा ससारके बन्धनसे मुक्त हो जाय ।

श्रावणशुक्ला १४ स० २००८ को क्षेत्रपालमे रक्षावन्धनका उत्सव हुआ । श्री० प० फूलचन्द्रजीका प्रवचन हुआ । अनन्तर प० श्यामलालजी और श्री सुमेरुचन्द्रजी भगतके रक्षावन्धनपर व्याख्यान हुये । सबका सार यही था कि अपराधीसे अपराधी व्यक्तिकी भी उपेक्षा न कर, उसके उद्धारका प्रयत्न करना चाहिए । श्री अकम्पनाचार्यने बलि आदि मन्त्रियो के द्वारा घोर कष्ट भोगकर भी उनकी आत्माका उद्धार किया है । जैनधर्मकी क्षमा वस्तुत , अपनी उपमा नही रखती । पूर्णिमाके दिन शहरके वडे मन्दिरमे प्रवचन हुआ । प० राजधरलालजीने रक्षावन्धनकी मनोहर गाथा सबको सुनाई । सबका चित्त प्रसन्न हुआ ।

भाद्रपद कृष्णा ४ स० २००८ को प० वशीधरजी व्याकरणार्य वीनाका सम्यग्दर्शनपर सुन्दर विवेचन हुआ । आपने समयसारकी व्याख्या सुन्दर की । समय शब्दका अर्थ आत्मा है । उसका जो सार है, वह समयसार है । इस तरह समयसारका अर्थ सिद्धपर्याय है । उसकी प्राप्ति हो जाय, इसीके लिए मनुष्यके प्रयत्न हैं । इसीतरह भाद्रपद कृष्ण ७ के दिन आपने वहुत वारीकीसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोका वर्णन किया । वर्णन रोचक था ।

भाद्रपद कृष्णा ८ स० २००८ को महरौनीके प० गोविन्ददासजीका व्याख्यान हुआ । आपने सत्समागम पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया । सत्समागमसे ही मनुष्यमे मनुष्यता आती है । अत उचित है कि ज्ञानादि गुणोसे जो मनुष्य वृद्ध हैं, उनकी सेवा करे । आपने कुरल काव्यका हिन्दी

तथा सस्कृत अनुवाद किया है। व्युत्पन्न विद्वान है, परन्तु कर्मोदयकी विपरीततामे नेत्रविहीन हो गये।

भाद्रपद कृष्ण १४ स० २००८ को पण्डित शीतलप्रसादजी शाहपुर वालोका व्याख्यान हुआ। आपका प्रवचन बहुत ही मनोहर था। आपने जनताके हृदयमे समीचीन रूपसे धर्मकी भावना भर दी। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमे धर्मका वास्तविक परिचय हो गया। आपने बताया कि धर्म कोई ऐसी वस्तु नही, जो कहीसे भिक्षामे मिल जाय। हम स्वय इतने कातर हो गये है कि उसके होते हुए भी परसे याचना करते हुए लज्जित नही होते। धर्मका घातक अधर्म है। अधर्मके सद्भावमे धर्मका विकास नही हो सकता। जैसे अन्धकारके प्रभावमे प्रकाश नही, क्योकि अन्धकार और प्रकाश ये दोनो परस्पर विरोधी है। किन्तु जब रात्रिका अन्त आता है, तथा सूर्योदय होता है, तब अन्धकार पर्याय स्वयमेव विलय जाती है। इसी प्रकार हमारी प्रवृत्ति अनादिकालसे परमे निजत्व कल्पना कर मिथ्याज्ञानका पात्र बन रही है, और इसीके द्वारा अन्य पदार्थोको निज मान आत्मचारित्रको क्रोध, मान, माया, लोभरूप बना रही है। इनमे तन्मय होनेसे आत्मीय क्षमा, मार्दव, आर्जव और शौचका घात कर रही है। जब क्षमादिक पर्यायोका उदय नही, तब आप ही बताओ शातिरसका आस्वाद कैसे मिले।

भाद्रपदकृष्णा ३० स० २००८ को प० मुन्नालालजी समगौरया सागरने शास्त्र-प्रवचन किया। भक्तिपर सम्यक् विवेचन किया। परमार्थ से विचार किया जाय, तो भक्तिसे ही आत्मा आत्मगुणोके विकासमें कारण होती है। गुणोमे अनुराग होना भक्तिका लक्षण है।

भाद्रपद शुक्ला १ को श्री प० शीलचन्द्रजी साढूमलका प्रवचन हुआ। आप प्रकृत्या शान्त तथा सुबोध विद्वान् है। आपने सम्यक् प्रकार यह सिद्ध किया कि मनुष्यको भावना निर्मल बनाना चाहिए। भावना ही भवनाशिनी है। अनन्तससारका कारण असद्भावना और अनन्त ससारका विध्वस करनेवाली सद्भावना है। जो आत्माकी यथार्थतासे अनभिज्ञ है, वे आत्मस्वरूपसे वञ्चित है। परमे निजत्वका व्यामोह कर निरन्तर दु.खके पात्र रहते है। दु खका लक्षण आकुलता है। आकुलता जहाँ होती है, वहाँ अशान्ति अवश्य रहती है। आत्मा भीतरमे शान्ति चाहता है, परन्तु शान्तिका अनुभव तभी हो सकता है, जब किसी प्रकार की व्यग्रता न हो। इस जीवको सबसे महती व्यग्रता शारीरिक स्वास्थ्य

की रहती है। यह शरीर पुद्गल समुदायसे निष्पन्न हुआ है, परन्तु हम इसे अपना मानते है। प्रथम तो यह मान्यता मिथ्या है, फिर जब इसे आत्मीय माना, तब इसके रक्षणकी चिन्ता रहने लगी। रक्षणके लिए अनेक पदार्थोका सग्रह करना पड़ता है। उस सग्रहमे अनेक प्रकारके अनर्थो का आश्रय लेना पड़ता है। इसके लिए ही जीवहिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार तथा परिग्रह इन पञ्च पापोसे अपनेको नही बचा सकता। शरीरके अर्थ बडे-बडे प्राणियोका घात करता देखा जाता है तथा अनेक प्राणियोका माँस खा जाता है। जिनके द्वारा अल्प भी भय हुआ, तो उन्हे शीघ्र ही नष्ट करनेका उपाय करता है। इस तरह विचार किया जाय, तो ससारका मूलकारण शरीरमे निजत्वकी कल्पना है। इसे नष्ट करने का प्रयत्न सबसे पहले करना चाहिये। किसी वृक्षको उखाडना है, तो उसकी जडपर प्रहार होना चाहिए। केवल पत्तोंके लोचनेसे वृक्ष नही उखाडा जा सकता।

इस चातुर्मास्यके समय सागरसे सिंघई डालचन्द्रजी सर्राफ आये। आप एक धार्मिक पुरुष हैं। आपका तत्त्वज्ञान निर्मल है। आपकी धर्ममे अधिक प्रवृत्ति रहती हैं। दिल्लीसे लाला मक्खनलालजी ठेकेदार, जो कि वर्त्तमानमे गृहवाससे पूर्णरीत्या उदासीन है, आये। टीकमगढसे प० ठाकुरदासजी बी ए आये। आप सस्कृत तथा अग्रेजीके योग्य विद्वान् है। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द्रजी वकील आये। आप बहुत ही विद्वान् है। करणानुयोगके अच्छे ज्ञाता है। अल्प अवस्था होने पर भी ब्रह्मचर्य-का पालन करते हैं। श्री जैनेन्द्रकिशोरजी दिल्ली तथा राजकृष्णजी दिल्ली सकुटुम्ब आये। जानसरसे श्री तहसीलदार साहब आये। इस प्रकार अनेक विद्वानो तथा अन्य विशिष्ट महानुभावोके समागमसे वर्षा-कालका समय सम्यक् रीत्या व्यतीत हुआ। जल-वायु उत्तम तथा शरीरके अनुकूल रहा।

इण्टरकालेजका उपक्रम

ललितपुर बुन्देलखण्ड प्रान्तका केन्द्र स्थान है, जैनियोकी अच्छी बस्ती है, और व्यापारका अच्छा स्थान है। यहाँपर शिक्षाका आयतन न होना, हृदयमे चोट करता रहता था। एक पाठशाला पहले क्षेत्रपालमे थी, जिससे प्रान्तके छात्रोको लाभ होता था, परन्तु अब बन्द हो चुकी

है। इच्छा थी कि यहाँ पर ज्ञानका एक अच्छा आयतन स्थिर हो तो प्रान्तके बालकोका बहुत कल्याण हो। आजकल लोगोकी रुचि अंग्रेजी विद्याकी ओर अधिक है, अत उसीके आयतन स्थापित करना चाहते है। मुझे इसमे हर्ष-विषाद नही। भाषा उन्नतिका साधन है। यदि हृदयकी पवित्रताको न छोड़ा जाय, तो किसी भाषासे मनुष्य अपनी उन्नति कर सकता है। मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि प० फूलचन्द्रजी की विशिष्ट प्रेरणासे नगरके लोगोमे इण्टर कालेज खोलनेकी चर्चा धीरे-धीरे जोर पकडती जाती है। वे इस विषयमे बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। उनके प्रयत्नसे श्री सर्राफ मुन्नालाल भगवानदासजीने १०१०१) और श्री निहालचन्द्रजी टडैयाने ७०१०१) देना स्वीकृत किया है। अन्य महानुभावोने भी रकमे लिखाई। भादो तक १०००००) का चन्दा हो जावेगा, और कालेजकी स्थापना हो जावेगी। इसी प्रकरणको लेकर क्षेत्रपाल कमेटीके सदस्योका यह विचार हुआ कि कमेटीको मकानोके किरायेसे जो आमदनी होती है, उसे मन्दिर सम्बन्धी कार्योसे बचनेपर कालेजके लिए दे देगे। ज्ञानप्रचारमे सम्पत्तिका व्यय हो, इससे बढकर क्या उपयोग हो सकता है? सगमर्मरके पत्थर जडवानेकी अपेक्षा मन्दिरो-की सम्पत्तिका उपयोग शास्त्र-प्रकाशन तथा ज्ञान-प्रचारमे होने लगे, तो यह मनुष्योकी बुद्धिका परिचायक है। कमेटीके इस विचारसे नवयुवको-को बहुत हर्ष हुआ और वे कालेजके लिये भरसक प्रयत्न करने लगे, जिससे बहुत कुछ सभावना हो गई कि यहाँ कालेज खुलकर ही रहेगा।

पर्यूषण पर्व आगया। प० फूलचन्द्रजी यहाँ थे ही। अत सूत्रजीपर उनका सारगर्भित व्याख्यान होता था। उनके व्याख्यानके बाद मैं भी कुछ कह देता था। मेरे कहनेका सार यह था कि यह आत्मा स्वभावत शुद्ध-निरञ्जन होनेपर भी मोहके द्वारा विडम्बनाको प्राप्त हो रहा है—

> अहो निरञ्जन' शान्तो बोधोऽहं प्रकृते पर।
> एतावन्तमह काल मोहेनैव विडम्बित॥

कैसे आश्चर्यकी बात है कि मै निरञ्जन हूँ, रागादि उपद्रवोसे रहित हूँ, शान्त हूँ, बोधस्वरूप हूँ, फिर भी इतना काल मैने मोहके द्वारा व्यर्थ ही बिता दिया। अनादिकालसे जो पर्याय पाई, उसीमे अपनत्वकी कल्पना कर ली। यद्यपि यह मनुष्यपर्याय असमान जातीय पुद्गल और जीवके सम्बन्धसे उत्पन्न है, तो भी मोहजन्य विडम्बनाके कारण मै अपने स्वरूप-को न जान इस सयोगज पर्यायको अपनी मानता रहा। कभी अपनेको

ब्राह्मणादिक माना, कभी आश्रमवासी माना, कभी किसी रूप माना और कभी किसी रूप। परन्तु इन सबसे परे जो आत्मा शुद्ध-विविक्त जात्यजाम्बूनदवत् उज्वल स्वरूप है, उसकी ओर दृष्टि नही दी।

न त्व विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचर'।
असगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव ॥

वास्तवमे विचारकर देखा जावे तो आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न शूद्र है, और न किसी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी आश्रमका धारक है। यह सब तो शरीरके धर्म है—शरीरकी अवस्थाये है। इन रूप आत्माको मानना मोहका विलास है। 'यह मै हूँ' इत्यादि अहकार-ममकारके द्वारा ठगाया गया, चेतनाके विलाससे परिपूर्ण जो आत्मा उसके व्यवहारसे च्युत होकर अन्य कार्योमे उलझ रहा हूँ।

शान्तिसे पर्वके दिन व्यतीत हुए। पर्वके अनन्तर जयन्ती उत्सवका आयोजन हुआ, जिसमे बाहरसे श्री प० वशीधरजी इन्दौर, प० राजेन्द्र-कुमारजी दिल्ली, प० दयाचन्द्रजी सागर, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर आदि विद्वान् भी पधारे। सागर तथा अन्य अनेक स्थानोसे महानुभाव आये। मुझे क्षेत्रपालसे जुलूस द्वारा नगरमे ले जाया गया। वहाँ जयन्ती उत्सव हुआ। मैने शिर झुका कर श्रद्धाञ्जलिके शब्द सुने। अन्तमे जब मेरे कहनेका अवसर आया तब मैने कहा कि सस्कृतमे एक श्लोक है। जिसका भाव यह है—चन्द्रमाका उदय होने पर कमल बन्द हो जाता है। क्यो हो जाता है? इसकी कल्पना एक कविने की है। लोग कमलको लक्ष्मीका घर कहते है। इसी प्रसिद्धिसे चन्द्रमाने अपना कर अर्थात् हाथ कमलके पास प्रसारित किया कि इसके पाससे कुछ लक्ष्मी मुझे भी मिल जायगी, पर कमलने देखा कि मेरे पास लक्ष्मी तो है नही। लोग मुझे व्यर्थ ही लक्ष्मीका निवास कहते है। मै द्विजराज—चन्द्रमाको क्या दे दूँ इस सकोचके कारण ही मानो कमल चन्द्रोदय होने पर बन्द हो जाता है। सो यह तो कवियोकी बात रही, पर जब मै अपनी ओर देखता हूँ, तो यही अवस्था अपनी पाता हूँ। आप लोग बढा-बढा कर गुणगान करते है, पर मेरेमे वह गुण अशमात्र भी नही, अत नीचा मुख कर बैठ जाता हूँ। ससारकी बात क्या कहूँ? वहाँ तो लोग पत्थरको देवता बना कर उससे अपना कल्याण कर लेते है, फिर मैं तो सचेतन प्राणी हूँ। यह निश्चित है कि आपका कल्याण हमारे क्या साक्षात् जिनेन्द्रदेवके गुणगान करनेसे भी नही होगा। कल्याणका मार्ग तो

आत्मामेसे विकार-परिणतिको दूर कर देना है। जब तक इस विकार परिणतिको आप दूर न करेंगे, तब तक कल्याणकी बात दूर है। स्वर्गादिकका वैभव भले ही मिल जावे, पर इससे कल्याण नही। कल्याण तो जन्म-मरणके सकटसे दूर हो जाने पर ही हो सकता है। जन्म-मरण-का कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है। इनसे अपने आपकी रक्षा करो। जिस समय इनसे आत्मा निवृत्त हो जायगी उस समय अन्यके गुणगान करनेकी आवश्यकता नही रहेगी) अस्तु,

अबतक कालेज खोलनेका दृढ निश्चय हो गया था, और उसकी इस उत्सवमे घोषणा कर दी गई। कालेजका नाम 'वर्णी इण्टर कालेज' रखा गया। उत्सवमे आगत जनताने भी यथायोग्य सहायताके वचन दिये। एक दिन रात्रिको कवियोके कविता-पाठ भी हुए। यहाँ कवि बहुत है। अच्छी कविता करते है। अश्विन शुक्ला ६ के दिन सागरवालो-के यहाँ आहार हुआ। मै सागर बहुत समय तक रहा हूँ। इसलिये यहाँके लोग मेरे साथ आत्मीयके सदृश व्यवहार करते है। उत्सवमे आगत विद्वान् यथास्थान चले गये। केवल प० बशीधरजी इन्दौर रह गये। आपके २-३ प्रवचन हुए। आप जैन वाङ्मयके उच्चकोटिके ज्ञाता है, तथा पदार्थका विवेचन बहुत सूक्ष्म रीतिसे करते है। विवेचन करते-करते आप इतने तन्मय हो जाते है कि अन्य सुध-बुध भूल जाते है। उस समय आपकी ध्वनि गद्गद् हो जाती है। तथा नेत्रोसे अश्रुधारा बहने लगती है। सुनकर जनता भी द्रवीभूत हो जाती है।

दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी सकुटुम्ब आये। आपका न जाने क्यो हमारे साथ इतना आत्मीय भाव हो गया है कि आप यथासमय हमारे पास आते रहते है। आश्विन कृष्णा अमावस्याके दिन आपके यहाँ आहार हुआ। अनेक प्रकारकी सामग्री थी। इसमे उनका अपराध नही। अपराध हमारी लालसाका है। यदि मै लालसा पर विजय प्राप्त कर सीधा-साधा भोजन ग्रहण करने लगूँ तो यह सब प्रपञ्च आज दूर हो जावे। रागादि निवृत्तिके अर्थ जो बात हम अन्यसे कहते है, यदि उसका शताश भी स्वय पालन करे तो हमारा कल्याण हो जावे। दो तीन दिन रह कर आप चले गये। विजया दशमीके दिन आपका पत्र आया कि श्री क्षुल्लक निजानन्दजी (कर्मानन्दजी) देहलीके वेदान्त आश्रम मे चले गये है। इस घटनासे बहुतसे मनुष्योको खेद हुआ, परन्तु इसमे खेदकी बात नही। प्रत्येक जीवके अभिप्राय भिन्न-भिन्न होते है। आज तक उन्हे जैनधर्मसे प्रेम था। अब उनका विश्वास वेदान्त पर हो गया।

मोहकी सत्ता तबतक आत्मामे विद्यमान रहती है, जबतक इस आत्माकी परिणति नानाप्रकारकी होती रहती है। यदि यह व्यक्ति भावावेशमे आकर क्षुल्लकपद ग्रहण न करता और शक्तिके अनुसार चारित्रका पालन करता रहता तो यह अवसर न आता। मनुष्य वही है, जो किसी बातको श्रवणकर उसपर पूर्वापर विचार करे। ससार एक विचित्र जाल है। इस जालमे प्राय सभी फँसे है। जो इससे निकल जावे, प्रशसा उसीकी है। जालमे फँसनेका सबसे प्रबल कारण अहबुद्धि और ममबुद्धि है। इस जीवको अनादिकालसे यह अहकार लगा हुआ है कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति हूँ, मेरे समक्ष अन्य सब तुच्छ हैं। यह अहकार ही मनुष्यकी प्रगतिमें सर्वाधिक वाधक है।

कार्तिक कृष्ण ७ स० २००८ से श्री नये मन्दिरमे सिद्धचक्रविधान-का पाठ हुआ। विधि करानेके लिए श्रीयुत पण्डित मुन्नालालजी इन्दौर-से आये, आप उत्तम विधिसे कार्य कराते है। पहले व्याख्यान देते हैं, फिर क्रिया कराते है। आपका उच्चारण स्पष्ट और मधुर होता है। जनता प्रसन्न रहती है। मै भी प्रारम्भके दिन १½ घण्टा मन्दिरमे रहा। पाठ सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। यदि व्यवहार धर्मका प्रयोजन यथार्थ दर्शाया जावे, तो उसका श्रोतागणोपर उत्तम प्रभाव पडता है। जो वक्ता तत्त्वको यथार्थ नही दिखा सकते, वह श्रोताओके भी समयको लेते है, और अपना भी समय प्राय खो देते हैं। आजकल व्यवहारधर्मकी प्रभुता है। अन्तरङ्गकी ओर अणुमात्र भी दृष्टि नही, अन्यथा उस ओर लक्ष्य अवश्य जाता। बाह्य द्रव्यसे आजतक किसीका कल्याण न हुआ और न होगा। जबतक हमारी निर्बलता है, तबतक यह परद्रव्य हमारे लिए जो-जो अनर्थ न करे, अल्प है।

तीव्र वेदना

कार्तिक कृष्णा ११ स० २००८ को शारीरिक अवस्था यथोचित नही रही—एक फोडा उठनेके कारण कष्ट रहा। फिर भी स्वाध्याय किया। स्वाध्याय थोडे ही समय हुआ। उसका सार यह था कि मनुष्य अपना हित चाहते है, परन्तु अनुकूल प्रवृत्ति नही करते। परपदार्थोके संग्रह करनेमे निरन्तर व्यग्र रहते है और इसी व्यग्रताके आवेगमे पूर्ण आयु व्यय कर देते है। कल्याणकी लालसासे मनुष्य परका समागम करता है, परन्तु उससे कल्याण तो दूर रहा, अकल्याण ही होता है। प्रथम तो परके समागममे अपना समय नष्ट होता है। द्वितीय जिसका समागम होता है, उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना पडती है। अनुकूल प्रवृत्ति न करने पर अन्यको कष्ट देनेकी सम्भावना हो जाती है, अत परका समागम सर्वथा हेय है। जिस समय आत्मा अपनेको जानता है, उस समय निज-स्वरूप—ज्ञान-दर्शनरूप ही तो रहता है। दर्शन-ज्ञानका काम देखना-जानना है। इससे अतिरिक्त मानना आत्माको ठगना है। आत्मा तो ज्ञाता-द्रष्टा है। उसे रागी, द्वेषी, मोही बनाया, यह कार्य आत्मासे सर्वथा स्वयमेव नही होता। यदि परकी निमित्तता इसमे न मानी जावे तो आत्मा ही उपादान हुआ और आत्मा ही निमित्त। इस दशामे यह सतत होते रहेगे। कभी भी आत्मा इनसे अलिप्त न होगी, अत किसी भी आत्मामे ये जो रागादि भाव है वे विकारी भाव है। जो विकारी भाव होता है वह निमित्तके दूर होनेपर स्वयमेव पृथक् हो जाता है। जैसे अग्निका सम्बन्ध पाकर जलमे जो उष्णता आ जाती है वह उसका स्वाभाविक भाव नही, किन्तु औपाधिक भाव है, अत अग्निका सम्बन्ध दूर होनेपर वह स्वयमेव विलीन हो जाती है, इसी प्रकार मोह दूर होनेपर आत्मासे रागादिभाव स्वयमेव विलीन हो जाते है—दूर हो जाते है।

द्वादशीसे पीडा अधिक बढ गई, अतः स्वाध्यायमे समर्थ नही हो सका। शरीर यद्यपि पर है, और हम तथा अन्य वक्ता भी यही निरूपण करते है। श्रद्धा भी यही है कि यह पर है, परन्तु जब कोई आपत्ति आती है, तब ऊपरसे तो वही बात रहती है, किन्तु अन्तरङ्गमें वेदन कुछ और ही होने लगता है। श्रद्धा तथा ज्ञान मात्रसे कल्याण नही। साथमे चारित्र गुणका भी विकास होना चाहिए। हम अन्तरङ्गसे चाहते है। हम भी

क्या प्रायः अधिकतर प्राणी चाहते है कि रागादि दोषोकी उत्पत्ति न हो, क्योकि ये समान आकुलताके उत्पादक हैं। आकुलता ही दु ख है। ऐसा कौन है, जो दु खके कारणको इष्ट मानेगा ? किन्तु लाचार है। जव रागादिक होते है, और तज्जन्य पीडा नही सहन कर सकता, तव चाहे किसीसे प्रतिकूल हो, चाहे अनुकूल हो, उन्हे शान्त करनेके लिये यह जीव चेष्टा करता है। जैसे पिता जव पुत्रके कपोलोका चुम्बन करता है, तव उसकी कडी मूछोका स्पर्श पुत्रको यद्यपि कष्टप्रद होता है तो भी वह कपोलोका चुम्वनकर प्रसन्न होता है।)

इसी फोडाके रहते हुए ५ वर्ष वाद हमारे अत्यन्त प्राचीन मलेरिया मित्रने दर्शन दिया। उसने कहा तुम भूल गये हमको। तुमने कितने वादे किये, पर एकका भी पालन नही किया। उसीका यह फल है कि आज मैंने तो तुम्हे दर्शन दिया, चार दिन पहले मैने अपने लघुमित्र फोड़ाको भेजा और उसके हाथ आदेश दिया था कि चार मासका वर्षायोग पूर्ण होनेके पहले कही नही जावो, परन्तु तुमने अवहेलना की और एकदम आज्ञा दे दी कि हम अपने वादाके अनुसार टीकमगढ जावेगे। कितना निराधार साहस ? यदि प्रतिज्ञा ही करना थी, तो यह करता कि यदि नीरोग रहा, तो आपके उत्सवमे सम्मिलित होऊँगा। परन्तु तुमको पुरुषार्थका इतना मद कि व्यर्थकी प्रतिज्ञा लेकर अपने आपकी वञ्चना की। मलेरियाकी प्रवलता तथा फोडाकी तीव्र वेदनासे चित्तमे बहुत खिन्नता हुई। उपचारके लिये फोडापर मिट्टीकी पट्टी वाँधी, पर उससे पीडामे रञ्चमात्र भी कमी नही हुई। हमारी वेदना देख सब लोग दु खी थे।

टीकमगढसे डाक्टर सिद्दी साहव आये। फोढा देखकर उन्होने कहा कि फोडा खतरनाक है। विना आप्रेशनके अच्छा होना असभव है और जल्दी आप्रेशन न किया गया तो इसका विष शरीरमे अन्यत्र फैल जाने की सभावना है। डाक्टरकी वात सुनकर सव चिन्तामे पड गये। सव लोगोने आप्रेशन करानेकी प्रेरणा की, परन्तु मैंने दृढतासे कहा कि कुछ हो मासभोजीसे मै आप्रेशन नही कराना चाहता। डाक्टरने मेरी वात सुनी, तो उसने वडी प्रसन्नतासे कहा कि मै जीवन पर्यन्तके लिए मासका त्याग करता हूँ। आप्रेशनकी तैयारी हुई तो डाक्टर वोला कि आप्रेशनमे समय लगेगा। विना कुछ सुँघाये आप्रेशन कैसे होगा ? मैने कहा कि कितना समय लगेगा ? उसने कहा कि १५ मिनट। मैने कहा—आप निश्चिन्ततासे आप्रेशन कीजिए, सुँघानेकी चिन्ता न करे। यह कह कर मैं निश्चल पड रहा। १५ मिनटमे आप्रेशन हो गया।

फोडाके भीतर जो विकृत पदार्थ था, वह निकल गया, इसलिए शान्तिका अनुभव हुआ। आप्रेशनके समय प० फूलचन्द्रजी पासमे थे।

दीपावलीके बाद मनोहरलालजी वर्णी भी आगये थे। आपके आनेसे आनन्द रहा। लोगोका प्रवचनका काम चलता रहा। आपके ज्ञान और चारित्रकी निरन्तर वृद्धि रहती है, किन्तु समागम जितना उत्तम चाहिए, उतना नही। प्राय जितने आदमी मिलते हैं, सर्व प्रशसा द्वारा साधुको उत्तम रूप देना चाहते है। मेरा यह अनुभव है कि प्रशसासे आदमीकी गुरुता लघुतामे परिणत हो जाती है। जहाँ प्रशसा हुई, वहाँ उसे सुन आदमी प्रसन्न हो जाता है, और जहाँ निन्दा हुई, वहाँ दु खी हो उठता है। वस्तुत प्रशसा और निन्दा दोनों ही विकृत रूप है। इन्हे निज मानना ही भयकर भ्रम है, इस भ्रमका फल संसार है, ससार ही दु खमय है। ससारमे प्राणीमात्रके स्निग्ध परिणाम होते है। जितने प्राणी है, प्राय वे सब परको निज मान अपनानेका प्रयत्न करते है। डाक्टर ताराचन्द्रजी बहुत ही सज्जन और योग्य पुरुष है। टीकमगढसे कम्पोटरके आनेमे विलम्ब देख, आपने उत्तम रीतिसे पट्टी बाँध दी। पट्टी बाँधनेके बादमे मन्दिर गया। वहाँसे आकर स्वाध्याय किया, पश्चात् भोजन कर बैठा था कि इतनेमे टीकमगढ़से कम्पोटर आगया, और बलात्कार फिर पट्टी बाँध दी। बहुत गप्पे उडाई। प्रयोजन केवल इतना था कि द्रव्य हाथ आवे। संसारमे द्रव्यके अर्थ जो-जो अनर्थ न हो, थोडे है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य आत्मा स्वरूपको भूल जाता है। अथवा आत्मस्वरूपकी कथा छोडो, आज जितने मनुष्य रणक्षेत्रमे जाते या जानेकी चेष्टा करते है, वे केवल एक अर्थार्जनके लिए ही प्रयास करते है। इस अर्थके लिए आदमी अदालतमे मिथ्या साक्षी दे आता है। इस अर्थके लिए भाई भाईके लिए विष देकर मारनेका प्रयास करता है, इस अर्थके लिए मनुष्य गरीबो की रोटी तक छीन लेता है, इस अर्थके लिए आज हजारो स्थलोपर पण्डा लोग जलकी पूजा कराकर तृप्त नही होते, इस अर्थके लिए हजारो स्थान तीर्थरूपमे परिणत हो गये, इस अर्थके लिए ही प्रचार किया जाता है कि अमुक स्थानपर धन देनेसे सीधा स्वर्ग मिल जाता है। अस्तु।

फोडामे आराम तो आप्रेशनके दिनसे ही होने लगा था, परन्तु घाव के भरनेमे एक मासके लगभग लग गया। इस बीचमे दिल्लीसे राजकृष्ण, सागरसे बालचन्द्र मलैया, प० पन्नालाल, बरुवासागरसे बाबू रामस्वरूप तथा प० मनोहरलालजी आदि स्नेही लोग आये। न जाने ससारमे स्नेह कितनी बला है। इसके आधीन होकर यह प्राणो परको प्रेमदृष्टिसे अवलोकन करता है। केवल अवलोकन ही नही करता, परको अपनाना

चाहता है। जब कि यह अपनानेका अभिप्राय मिथ्या है। कोई पदार्थ किसीका नही होता। जितने पदार्थ जगत्मे है, सब अपनी सत्ता लिए भिन्न-भिन्न है। धीरे-धीरे मार्गशीर्षका मास आ गया। मनोहरलालजी वर्णी मेरठ चले गये। केवल क्षुल्लक सभवसागरजी हमारे साथ रह गये। फोडा अच्छा हो गया। चलनेमे कोई प्रकारकी बाधा नही, इसलिए हमने मार्गशीर्ष ३० को ललितपुरसे जानेका निश्चय कर लिया।

इसके एक दिन पूर्व चौधरीजीके मन्दिरमे प्रात काल जनताका सम्मेलन हुआ। समूह अच्छा रहा, किन्तु सब प्रयोजनकी बात कहते है, तात्त्विक बात नही। मनमे और वचनमे और यह लोगोकी बात करनेकी आज परम्परा बन गई है, परन्तु हमारा तो यह विचार है कि मनमे हो, सो वचनसे कहिये और जो कहिये, उसे उपयोगमे लाइये। केवल वचनमे लानेसे कल्याणका मार्ग विशद न होगा। जबतक अमल (चारित्र) मे न आवेगा, तबतक कल्याण होनेका नही। प० फूलचन्द्रजीका भी व्याख्यान हुआ, और आपने इस बातका प्रयास किया कि सब सौमनस्यके साथ कालेजका काम आगे बढावे।

जब ललितपुरसे प्रस्थान करनेका समय आया, तब लोग बहुत दु खी हुए। ५३ माहके करीब एकत्र वास करनेसे लोगोका स्नेह बढ गया, इसलिए जाते समय दु ख होने लगा। मैने कहा—ससारमे सब पदार्थोका परिणमन अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार होता है। हम चाहते है कि यहाँसे पपौरा जावें। आप चाहते है कि वर्णीजी यही रहे। आपका परिणमन आपके आधीन, हमारा परिणमन हमारे आधीन। दोनोका परिणमन सदा एकसा नही रहता। कदाचित् निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जुटनेपर हो भी जाता है। जब यह प्राणी दूसरे पदार्थके परिणमनको अपनी इच्छानुसार परिणत करानेका प्रयास करता है और अन्य पदार्थका परिणमन उसकी इच्छाके अनुरूप होता नही, तब यह दु खी होने लगता है—अशान्तिका अनुभव करने लगता है, इसलिए मोहकी परिणति छोडो, और शान्तिसे अपना समय यापन करो। कालेजका आपने जो उपक्रम किया है, वह प्रशस्त कार्य है। यह आगे बढता रहे, ऐसा प्रयास करे। ज्ञान आत्माका धन है। आपके बालक उसे प्राप्त करते रहे, यह भावना आपकी होना चाहिए। इतना कहकर मै आगे बढ गया। बहुत जनता भेजने आयी, पर क्रम-क्रमसे निवृत्त हो गई।

पपौरा और अहार क्षेत्र

कचरोदा ललितपुरसे ११ मील है। वहीपर मडावरावाले राजधर सोरयाके पुत्रकी स्त्रीने आहार दिया। यहाँसे ११ मील चलकर वानपुर आये। यहाँपर एक मन्दिर महान् है। वर्तमानमे तो कई लाख रुपया लगाकर भी नही वन सकता। यहाँपर रात्रि विताई। प्रात काल एक मील महरोनीके मार्गमे क्षेत्रपाल है। वहाँ जिनेन्द्रदेवके दर्शन किये। स्थान बहुत प्राचीन है, परन्तु जैन जनताकी विशेष दृष्टि नही, इससे जीर्ण-अवस्थामे है। यहाँ पर अहारक्षेत्रकी मूर्तिके सदृश एक विशाल मूर्ति है, परन्तु जिस स्थान पर है, वह जीर्ण हो रहा है। यहाँसे चलकर ग्राममे मन्दिरके चवूतरे पर बैठ गये। कई सज्जन ग्रामवाले आये। विद्यादानकी चर्चा की गई। कई जैन-बन्धुओने दान देनेका विचार किया, और यहाँ तक साहस किया कि इतर समाज भी इनके सदृश दान देवे, तो यहाँ एक हाईस्कूल हो सकता है, परन्तु लोग इस ओर दृष्टि नही देते। यहाँके मास्टर गहोई वैश्य है। वहुत ही निर्मल परिणामवाले है।

यहाँसे टीकमगढ पहुँचे। मन्दिरमे प्रवचन किया। सख्या अच्छी थी। भोजन किया। पश्चात् प० ठाकुरदासजीके यहाँ गया। उनका स्वास्थ्य खराब था। योग्य व्यक्ति है। धर्मकी श्रद्धा अटल है। बीमारीका वेग थम गया है। आशा है जल्दी अच्छे हो जावेगे। मार्गशीर्ष शुक्ला ५ स० २००९ को पपौरा गये। स्नानादिसे निवृत्त होकर पाठ किया। तदनन्तर श्रीक्षुल्लक क्षेमसागरजीके साथ समस्त जिनालयोकी वन्दना की। मेला-का उत्सव था, अत बाहरसे जनता वहुत आई थी। पण्डित जगन्मोहन-लालजी कटनी और प० फूलचन्द्रजीके पहुँच जानेसे मेलाकी बहुगुणी उन्नति हुई। पपौराका उत्सव हुआ। बीचमे मन्दिरोके जीर्णोद्धारकी चर्चा को अवसर मिल गया। सागरसे समगौरयाजी भी पहुँच गये थे। आपने वहुत ही उत्तम व्याख्यान दिया। जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। सभा-पति महोदयने १००) जीर्णोद्धारमे दिया। अन्य लोगोने भी दिया, जिससे चन्दा अच्छा हो गया। इसके वाद समयकी त्रुटि होनेसे विद्यालयका उत्सव नही हुआ। अगले दिनके लिये स्थगित कर दिया गया।

यह क्षेत्र अति उत्तम है, परन्तु यहाँके मानवगण उत्साहसे दान नही करते, अन्यथा जहाँ ७५ गगनचुम्बी मन्दिर है, वहाँ स्वर्गलोककी छटा दिखती। दूसरे दिन विद्यालयके उत्सवके समय बताया गया कि यहाँ स्वर्गीय मोतीलालजी वर्णी एक विद्यालय खोल गये। जिसके द्वारा वहु-

संख्यक विद्वान् समाजमे कार्य कर रहे है, जिनमे साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य तथा न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ है। वर्तमानमे विद्यालयका कोप वहुत अल्प है। इसका दिग्दर्शन कराया गया। जनता पर अच्छा प्रभाव पडा, जिससे १००००) दस हजारका चन्दा हो गया। अभी समाजमे कर्मठ व्यक्ति नही तथा एक यह महान् दोष है कि एक ही साथ अनेक उत्सवोकी सयोजना कर लेते है, जिससे एक भी कार्य पूर्णरूपसे नही हो पाता।

मार्गशीर्प शुक्ला ८ स० २००८ मेलाका अन्तिम दिवस था। आज पण्डालमे परवारसभाका अन्तिम उत्सव था। अच्छा हुआ, ५००)के करीव परवार सभाको आय हुई। लोग वहुत ही प्रसन्न हुए। प्रचार वहुत ही उत्तम हुआ। यदि इन जातीय सभाओके वदले प्रान्तीय सभाएँ होती और उनमे प्रान्तमे बसनेवाले सव जातियोंके लोग सम्मिलित रहते तथा सौमनस्य भावसे काम करते, तो वहुत ही उत्तम होता। इस क्षेत्रकी उन्नति तब हो सकती है, जव कोई दानी महाशय एक लक्ष १०००००) लगावे। आजकल नवीन मन्दिर निर्माणकी लोग इच्छा करते है, पर प्राचीन मन्दिरोका उद्धार नही कराते। नवीन मन्दिर निर्माणमे उनका निर्माताके रूपमे गौरव होता है और प्राचीन मन्दिरोके उद्धारमे नही। यही प्रतिष्ठाकी आकाक्षा लोगाको इस कार्यकी ओर प्रवृत्त नही होने देती। इस क्षेत्रपर एक ऐसा उच्चकोटिका औपधालय होना चाहिए, जिससे प्रान्तके मानवोको विना मूल्य औपध मिले तथा एक ऐसा विद्यालय हो, जिसमे १०० छात्र अध्ययन कर सकें। पठनक्रम नवींन पद्धतिसे होना चाहिए, जिसमे धर्मशिक्षण अनिवार्य रहे।

मेला समाप्त होनेपर जनता चली गई। वातावरण शान्तिमय हो गया। प्रात काल सवरका स्वरूप वाचा। वास्तवमे मोक्षमार्ग सवर ही है। अनादिकालसे हमने मोहके वशीभूत होकर आस्रवको ही अपनाया है। आत्मतत्त्वकी श्रद्धा नही की। इसीका यह फल हुआ कि निरन्तर परपदार्थोंके अपनानेमे ही समय गमाया। यद्यपि यह पदार्थ आत्माके स्वरूपसे भिन्न है, पर मोही जीव उसे निज मानकर अपनानेकी चेष्टा करता है। आत्माका स्वभाव देखना-जानना है, परन्तु क्रोधादि-कपाय उसके इस स्वभावको कलुषित करते रहते है। इस कलुषतासे यह आत्मा निरन्तर व्यग्र रहती है। ज्ञानका कार्य इतना है कि पदार्थको प्रतिभासित कर दे। ज्ञान पदार्थरूप त्रिकालमें नही होता। जिस प्रकार दर्पण घट-पटादि पदार्थको प्रतिभासित कर देता है, परन्तु घट-पटादिरूप नही होता। दर्पणमे जो घट-पटादि प्रतिभासित हो रहे है, वह दर्पणका ही परिणमन

है, दर्पणकी स्वच्छताके कारण ऐसा जान पडता है, इसी प्रकार आत्माके ज्ञानगुणमे उसकी स्वच्छताके कारण घट-पटादि पदार्थ प्रतिभासित होते हैं परन्तु ज्ञान तद्रूप नही होता। मेलाके बाद ४-५ दिन पपौरामे निवास किया। परिणाम अत्यन्त उज्ज्वल रहे।

मार्गशीर्ष शुक्ला १३ सं० २००८ को २ बजे यहाँसे चलकर ३ बजे टीकमगढ पहुँच गये। आज यहाँके कालेजमे प्रवचन था। कालेज बहुत ही भव्य स्थानपर बना हुआ है। सामने महेन्द्रसागर सरोवर है तथा उसके बाद अटवी। ३ मीलपर ७५ जिन मन्दिरोसे रम्य पपौरा क्षेत्र है। यह सब पूर्व दिशामे है। पश्चिममे महेन्द्र बाग है; उत्तरमे टीकमगढ नगर है और दक्षिणमे कुण्डेश्वर क्षेत्र है। विद्यालय कालेजका भव्य भवन ५ खण्डोसे शोभित है। इसमे २०० छात्र अध्ययन कर सकते है। कालेजके प्रिंसपल महोदय बहुत ही भव्य और विद्वान् है। आप बगाली है। एम० ए० है। आपकी आयु ४० वर्षसे ऊपर होगी, फिर भी ब्रह्मचारी है। बडे दयालु और तत्त्ववेत्ता है। आपकी विचारधारा अति पवित्र है। व्यवहार निष्कपट है। मूर्ति सौम्य है। ऐसे मनुष्य चाहे, तो वे जगत्का उत्थान कर सकते है।

आजकल जो शिक्षापद्धति है, उसमे भौतिकवादको खूब प्रोत्साहन मिलता है। साइंसका इतना प्रचार है कि बालकी खाल निकालते हैं। यहाँतक आविष्कार विज्ञान (साइंस) ने किया है कि बिना चालकके वायुयान चला जाता है तथा ऐसा अणुबम बनाया है कि जिसके द्वारा लाखो मनुष्योका युगपद् विध्वस हो जाता है। ऐसी चीर-फाड करते है कि पेटका बालक निकालकर बाहर रखके पेटका विकार निकाल देते है, पश्चात् बालकको उसी स्थानपर रख देते है। यक्ष्मा रोगवालेकी पसली बाहर निकाल देते है, किन्तु ऐसा आविष्कार किसीने नही किया कि यह आत्मा शान्तिका पात्र हो जावे। अशान्तिका मूलकारण परिग्रह है और सबसे महान् परिग्रह मिथ्यादर्शन है, क्योकि मिथ्यात्वके उदयमे यह जीव विपरीत अभिप्राय पोषण करता है। अजीवको जीव मानता है। शरीरमे आत्मबुद्धि करता है। जैसे कामला रोगवाला शङ्खको पीला मानने लगता है। एकबार मुझे श्री कुण्डलपर क्षेत्रपर चौमासा करनेका सुअवसर आया था। उस समय मुझे बडे वेगसे मलेरिया ज्वर आगया और बिगडते बिगडते पित्तज्वर हो गया। एक वैद्यने कहा तुम गन्ना चूसो, ज्वर शान्त हो जायगा। मैने चूसा, किन्तु चिरायता व नीमसे भी अधिक कडवा लगा। मैने उसे फेंक दिया। बाईजीने कहा—बेटा चूस लो।

मैंने उत्तर दिया—कैसे चूसूँ ? यह तो चूसा ही नही जाता। यद्यपि गन्नाका रस मीठा था, परन्तु मेरे रोग था, इसलिए वह कटुक लगता था। इसी प्रकार जिनके मिथ्यात्वरूपी रोग है, उन्हे मोक्षमार्गका उपदेश देना हितकर नही होता। मोक्षमार्गमे तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। उसमे परको निज माननेका अभिप्राय मिट जाता है तथा पश्चात् सर्वको त्याग स्वात्मामे लीन हो जाता है, अत जिनके यह हो गया उनका सर्व-कार्य सम्पन्न हो गया। आत्माका हित मोक्ष है। मोक्षका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है अत सर्व द्वन्द्वको छोड इसीमे लगो।

टीकमगढसे चलकर पौष कृष्ण ६ सं० २००८ को अहार क्षेत्र पहुँच गये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। श्रीशान्तिनाथ और कुन्थुनाथ भगवान्की मूर्ति है। अरहनाथ भगवान्की भी मूर्ति रही होगी, पर वह उपद्रवियोके द्वारा नष्ट कर दी गई। उसका स्थान रिक्त है। श्रीशान्तिनाथ भगवान्की मूर्ति वहुत ही सौम्य तथा शान्तिदायिनी है। इसके दर्शनसे श्रवणवेलगोलाके बाहुवली स्वामीका स्मरण हो आता है। यहाँ किसी समय अच्छी वस्ती रही होगी। प्राचीन मूर्तियाँ भी खण्डित दशामे वहुत उपलब्ध हैं। सग्रहालय वनवाकर उसमे सवका सग्रह किया गया है। मुख्य मन्दिरके सिवाय एक छोटा मन्दिर और भी है। पास ही मदनसागर नामका विशाल तालाव है। एक पाठशाला भी है। प० वारे-लालजी पठावाले निरन्तर इस क्षेत्र तथा पाठशालाके लिये प्रयत्न करते रहते है। यदि साधन अनुकूल हो तो यहाँ शान्तिसे धर्मसाधन किया जा सकता है।

पौष कृष्णा ८ स० २००८ को प्रात काल श्रीशान्तिनाथ स्वामीका अभिषेक हुआ। यथाशक्ति चन्दा किया गया। आजकल केवल द्रव्य प्राप्तिके लिये ही धर्मकार्य होते हैं। जिसने द्रव्य दिया उसकी प्रशसा होने लगी। तीर्थस्थानोपर आयके अन्य साधन नही, अत व्यवस्थापकोको इस रीतिसे विवश होकर द्रव्य एकत्र करना पडता है। यथार्थमे तीर्थस्थान धर्मसाधनके आयतन थे। यहाँ आकर मन्दकषाय होती थी। जो कोई स्वाध्यायमे शका होती थी, वह पण्डितोके द्वारा निर्णीत हो जाती थी तथा नवीन पदार्थ श्रवणमे आते थे। कई त्यागी महाशय मेलामे आते थे। उन्हे पात्रदान देनेका अवसर मिलता था। एक दूसरेको देखकर, जो कुछ अपने चारित्रमे शिथिलता होती थी। वह दूर हो जाती थी। कई महानुभाव व्रतादिक ग्रहण करते थे, परस्परके कई मनोमालिन्य

१५

मिट जाते थे। इसके सिवाय लौकिककार्य भी बहुतसे बन जाते थे, परन्तु अब आजकल मेला इस वास्ते होता है कि जनतासे रुपया आवे। सभामे १५ मिनट भी धार्मिक व्याख्यानके लिये अवसर नही मिलता। रुपयेकी अपील होने लगती है। यह भी होता, कोई हानि नही थी, किन्तु विद्यालयको छोड क्षेत्रकी व्यवस्थाका कुछ दिग्दर्शन कराके उसके अर्थ द्रव्य सचय करनेकी अपील होने लगती है। बीचमे कई दुर्दशापात्र व्यक्ति आजाते है, जा बीचमे तग करते रहते है।

मन्दिरोंके पास ही अहार नामका छोटा-सा गाँव है। २ घर जैनियोके है। एक दिन प० गोविन्ददासजीके यहाँ आहार हुआ। मेला सानन्द हुआ। मथुरासे पं० दयाचन्दजी व भैयालालजी भजनसागर आये थे। ये लोग जहाँ जाते है, वहाँ व्याख्यानो द्वारा जनताको प्रसन्न कर लेते है। मेलामे २००० हजार जनता आई होगी। प्रबन्ध अच्छा था। यहाँपर पाठशालामे २० छात्र अध्ययन करते है। प० प्रेमचन्द्रजी, प० गोविन्ददासजी तथा प० मौजीलालजी योग्य व्यक्ति है।

●

द्रोणगिरि और रेशन्दीगिरि

अहारसे ५ मील चलकर लार आ गये। मार्गमे बहुत कण्टक है, किन्तु यहाँके मनुष्य इसी स्थानमे रहते हैं, अत उन्हे आने-जानेमे आपत्ति नही होती। लारमे १ मन्दिर है। यहाँ आते ही ग्रामीण जनता इकट्ठी हो गई। श्री नाथूरामजी वर्णीने समयोपयोगी व्याख्यान दिया। आपने जनताको समीचीन पद्धतिसे समझाया कि ससारमे ज्ञानके बिना कोई कार्य नही चलता। यदि हमको ज्ञान न हो तो हम अपना हित नही जान सकते। हमारा क्या कर्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? तथा यह भक्ष्य है, यह अभक्ष्य है, यह माँ है, यह वहिन है, यह भ्राता है, यह सुत है, यह पिता है, इत्यादि जितने व्यवहार हैं, सर्व लुप्त हो जावेगे। अत आवश्यकता ज्ञानार्जनकी है। ज्ञानका अर्जन गुरुद्वारा होता है। इसीसे उनकी शुश्रूषा करना हमारा कर्तव्य है। विना गुरुकी कृपाके हमारा अज्ञानान्धकार नहीं मिट सकता। जैसे सूर्योदयके विना रात्रिका अन्धकार नही जाता, वैसे ही गुरुके उपदेश विना हमारा अज्ञान नही जाता। यही कारण है कि हम गुरुको माता-पितासे अधिक मानते है। माता-पिता तो जन्म देनेके ही अधिकारी हैं, किन्तु गुरु हमको इस योग्य वना देते हैं कि हम ससारके सर्वकार्य करनेमे पटु बन जाते है। आज ससारमे गुरु न होता, तो हम पगुतुल्य हो जाते।

यहाँ शान्तिनाथ भगवान्की सवत् १८७२ की प्रतिष्ठित प्रतिमा बहुत मनोहर है। मन्दिर भी बहुत विस्तारसे है। २ मन्दिर है। २० घर जैनियोके है। प्राय सम्पन्न है। १ धर्मशाला है। उसमे १ कूप भी है। लोगोमे ज्ञानकी न्यूनता है क्योकि उसके साधन नही। अब जबसे विन्ध्यप्रदेश हुआ है, तबसे एक प्रायमरी स्कूल हो गया है, अत कुछ समय बाद पठन-पाठन होने लगेगा। कुछ मनुष्य स्वाध्याय करते है, परन्तु विशेष ज्ञान नही। यहाँके कुछ बालक पपौरामे पढते हैं। इन गाँवोमे कोई त्यागी रहे तो बहुत उपकार हो सकता है, परन्तु इस प्रान्तमे प्रथम तो त्यागी नही फिर जो है, वे विशेष पढे नही। इसका मूल कारण जैन जनतामे विद्याका प्रचार नही। इस प्रान्तके जैनी प्राय पूजा आदिमे द्रव्य व्यय कर देते हैं। जो कुटुम्ब निर्धन है, उनकी कोई सहायता करानेवाला नही। छात्रोको भी कोई सहायता नही देता। इनका उद्धार वही कर सकता है,

जो दृढप्रतिज्ञ हो, ज्ञानी हो, सद्वृत्त हो तथा कुछ कल्याण करनेकी भावनासे युक्त हो।

लारसे चलकर वडेगाँवमे रहे। भोजनके पश्चात् सब महाशय एकत्र हुए। यहाँ एक औषधालयकी स्थापनाके अर्थ ३००) का चन्दा हो गया। यहाँके आदमी भद्र है। यहाँ अमृतलाल गोलापूर्व तथा उनका भाई दोनो ही कर्मठ व्यक्ति है, राजनैतिक कार्यमे सलग्न है। भाव देशकल्याणके है, किन्तु जितना बोलते है, उसका अश भी कार्य यदि करे तो बहुत ही अच्छा हो। न जाने क्या कारण है कि वर्तमान युगमे परका कल्याण करनेकी भावना तो प्राय सबमे रहती है, परन्तु हमारा भी कल्याण हो, इसका ध्यान नही रहता। राजनैतिक कार्य करनेवाले प्राय धर्मकी श्रद्धासे च्युत हो जाते है। धर्मको ढोग बताने लगते है। ऐसे लोग यदि महात्मा गाँधीसे कुछ ग्रहण करते तो उत्तम होता।

वडेगाँवसे चलकर घुवारा आगये। यहाँके लोग अच्छी स्थितिमे है। १ पाठशाला है, जिसमे प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण अध्यापक है। यथाशक्ति बालकोको अध्ययन कराता है। शिक्षक बहुत ही योग्य होना चाहिए, परन्तु वर्तमानमे शिक्षा बहुत मँहगी होगई है। १००) के विना उत्तम अध्यापक नही मिलता। लोग यथाशक्ति चन्दा नही देते। जिनके पास पुष्कल द्रव्य है वे विवेकसे व्यय नही करते और जिनके पास नही है वे बातोके सिवाय और कर ही क्या सकते है? ऐसे लोग प्राय. यह कहते देखे जाते है कि यदि हमारे पास पुष्कल धन होता तो हम ऐसा करते, वैसा करते, परन्तु धन पानेपर उनके परिणाम भी धनिकोके ही समान हो जाते है। इसीसे किसी कविने बहुत ही समयोपयोगी दोहा कहा है—

कहा करूँ धन है नही होता तो किम काम।
जिनके हैं तिन सम कहा होते नहिं परिणाम॥

पौष कृष्ण १४ स० २००८ को दोपहरके बाद एक अत्यन्त प्राचीन खड्गासन प्रतिमाका, जो कि काले पत्थरकी बहुत ही मनोज्ञ है, अभिषेक हुआ। जनता अच्छी एकत्रित हुई। कलशाभिषेक, फूलमाला तथा ज्ञानमालामें १००) के करीब आय हो गई। तदनन्तर व्याख्यान हुए। हमको भी व्याख्यान देनेके लिए कहा गया। व्याख्यान देना कुछ कठिन नही, परन्तु तारतम्यसे कहना कठिन है। परमार्थसे हमको व्याख्यान देना आता नही, और न उसके लिए हम परिश्रम ही करते है। इसका कारण प्रथम तो हमने किसी शास्त्रका साङ्गोपाङ्ग अभ्यास किया नही, और न

ही व्याख्यान-कलाका अभ्यास किया, अत यदि कोई महाशय हमको किसी विषय पर व्याख्यान देनेका आग्रह करे, तो हम खडे तो हो जावेगे, परन्तु निर्वाह नही कर सकेगे। 'कहीकी ईंट कहीका रोरा भानुमतीने कुरमा जोरा' वाली कहावतके अनुसार कुछ कहकर समय पूरा कर देगे। अस्तु, इसका हमको कुछ भी हर्ष-विषाद नही, किन्तु अपने समयका हम दुरुपयोग करते है, इसका खेद रहता है। यह हमारी मोहनिमित्तक महती जडता है। यदि आज हम लोक प्रशसाको त्याग देवे तो, अनायास सुखी हो सकते है, परन्तु लोकैपणाके प्रभावसे वञ्चित है, यही हमारे कल्याण में बाधक है। यहाँ ३ दिन रहे।

तदनन्तर घुवारासे ४ मील चलकर भोहरे ग्राम आगये। यहाँपर ८ घर जैनियोके है, व १ मन्दिर है। मन्दिरमे अन्धकार था, अत उसके सुधारके लिये ४००) का चन्दा हो गया। प्रवचनमे ग्रामके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी लोग आये व सुन कर प्रसन्न हुए। जैनधर्म तो प्राणी-मात्रका कल्याण चाहनेवाला है। उसे सुनकर किसे हर्ष न होगा? भोजन के उपरात यहाँसे चलकर गोरखपुर आगये। गाँवके सब लोगोने स्वागत किया। श्री नाथूरामजी ब्रह्मचारी तथा श्री क्षुल्लक क्षेमसागरजीका व्याख्यान हुआ। आप लोगोने यह बताया कि धर्मका मूल दया है, अत सभीको उसका पालन करना चाहिए। यहाँ १ मन्दिर है। उसमे पार्श्वनाथ भगवान्की एक बहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है। शास्त्र-प्रवचन हुआ। एक छोटी-सी पाठशाला है, जिसमे प० रामलालजी दरगुवाँवाले छात्र-छात्राओको अध्ययन कराते है। बहुत सुशील मनुष्य है। परिश्रमी भी है। यहाँसे चलकर धनगुवाँ आये। ग्राम साधारण है, पर लोग उत्साही है। नरेन्द्रकुमार बी० ए०, जो निर्भीक वक्ता व लेखक है, यहीके है। श्री लक्ष्मणप्रसादजी जो सागरविद्यालयमे काम करते है, वे भी यहीके है। शास्त्रप्रवचन हुआ, जिसमे ग्रामके सबलोग सम्मिलित हुए। देहातके लोगोमे सौमनस्य अच्छा रहता है। यहाँसे चलकर श्री द्रोणगिरि क्षेत्रपर पहुँच गये। बहुत ही रमणीय व उज्ज्वल क्षेत्र है। यहाँ पहुँचने पर न जाने क्यो अपने आप हृदयमे एक विशिष्ट प्रकार आह्लाद उत्पन्न होने लगता है। ग्रामके मन्दिरमे श्री ऋषभनाथ भगवान्के दर्शन कर चित्तमे अत्यन्त हर्ष हुआ।

पौषशुक्ला ५ सवत् २००८ को श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की। यद्यपि शारीरिक शक्ति दुर्बल थी, तो भी अन्तरङ्गके उत्साहने यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न करा दी। साथमे श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजी व

ब्रह्मचारी नाथूराम तथा बालचन्द्र थे। यात्राके बाद गुफाके आगे प्राङ्गण मे शान्तचित्तसे बैठे। सामने गाँवका तथा युगल नदियोका सगम दिख रहा था। दूर-दूर तक फैली हुई खेतोकी हरियाली दृष्टिको बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। ब्र० नाथूरामने प्रश्न किया कि शान्ति तो आत्मासे आती है, पर अशान्ति कहाँसे आती है? इसके उत्तर मे मैने कहा—शान्तिवत् अशान्ति भी बाहरसे नही आती, केवल निमित्तका भेद है। उपादानकारण दोनोंका आत्मा है। जिसतरह समुद्रमे तरङ्ग और निस्तरङ्ग अवस्था होती है। उसमे समीरका सचरण और असचरण निमित्त है। इसी तरह आत्मामे पुद्गल कर्मके विपाकका निमित्त पाकर अशान्ति और उसके अभावमे शान्तिका लाभ होता है। अत जिनको शान्तिकी अभिलाषा है, उन्हे परपदार्थोसे सम्बन्ध त्याग देना चाहिये, क्योकि सुख और शान्ति केवल अवस्थामे ही होती है। परके आधीन रहना सर्वथा दु.खका बीज है।

द्रोणगिरिमे प० गोरेलालजी सज्जन व्यक्ति हैं। द्रोणगिरिसे चलकर भगवाँ गये। यहाँ एक असाटी अच्छे सम्पन्न हैं। सामान्यरीतिसे इनका व्यवहार अच्छा है। यह जैनधर्मसे प्रेम रखते हैं। जब चन्दाका समय होता है, तब कुछ न कुछ दे ही देते हैं। यहाँसे चलकर बरेंठी पहुँचे। पद्मपुराणका स्वाध्याय किया। रोचक कथा है। यहाँ ६ घर जैनियोके हैं। सबने यथाशक्ति द्रोणगिरिकी पाटशालाको दान दिया। इनके पास विशेष विभूति नही, अन्यथा यह बहुत कुछ दे सकते है? यहाँ सतपारासे हीरालाल पुजारी तथा ४ आदमी और आगये, जिससे भोजनके बाद वहाँ गये। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर पद्मपुराणका स्वाध्याय किया। राम-रावणके सग्रामकी चर्चा थी। रावणने अमोघ शक्तिका प्रयोग कर लक्ष्मणके उर स्थलमे आघात किया। श्रीरामने बहुत ही शोक किया। बहुत ही मार्मिक उद्गार उनके हृदयसे निकले। यह सब मोहका प्रताप है कि एक मोक्षगामीके हृदयसे इस प्रकारके वाक्य निकले। मोहके उदयमें आत्माकी यही दशा हो जाती है। ठीक है, परन्तु जिनके हृदयमे विवेक है, वे बाह्यमे कुछ आलाप करे, परन्तु अन्तस्तलमे उनकी श्रद्धामे अणुमात्र भी अन्तर नही आता। द्रोणगिरिके अञ्चलमे भ्रमणकर पुन द्रोणगिरि आगये।

पौष शुक्ला १२ स० २००८ को प० दुलीचन्द्रजी बाजना तथा मलहरासे कई सज्जन शास्त्रसभामे आगये। धनगुवाँसे भी कई सज्जन आये। मलहरा जानेका विचार था, परन्तु मेघवृष्टिके कारण जा नही

सके। निश्चिन्ततासे प्रवचन किया। प्रवचनका सार यह था कि यद्यपि ससारमे प्रेमकी बहुत प्रगसा होती है, परन्तु ससारमे चक्रवत् परि-भ्रमण करानेवाला यही प्रेम है। सर्वबन्धनोमे कठिन बन्धन प्रेम—स्नेहका है। इसपर विजय प्राप्त करना नरसिंहका काम है। श्यालप्रकृतिके मनुष्य आप कायर होते हैं तथा अन्यको कायर बनाते हैं। अनादिकालीन प्रकृतिका निवारण करना अतिदुर्लभ है। कहना सरल है, परन्तु कार्यमे परिणत करना कठिन है, प्राय उपदेश देनेका प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न करता है, किन्तु उस पर अमल करनेवाला ही शूर होता है। ऐसे मनुष्यकी ही गणना उत्तम मनुष्योमे होती है। प्रथम तो सिद्धान्त यह है कि कोई किसीका उपकार नही कर सकता, क्योकि सब द्रव्योके परिणमन स्वीय स्वीय इत्यादि चतुष्टयके अनुरूप होते हैं। इतर तो निमित्त मात्र होते हैं। जिसमे अचेतन पदार्थ तो उदासीन ही होकर कार्य करते है। उदासीन-से तात्पर्य अभिप्रायशून्यसे है। जिनके अभिप्राय है, वे चेतन हैं। वह चेतन जो कार्य करते है, वह भी कषायके अनुरूप ही करते है। आत्मा नामक एक द्रव्य है। इसमे ही चेतना गुण है। इस चेतना गुणके द्वारा ही यह पदार्थोको देखता जानता है। परमार्थसे न देखता है, न जानता है। केवल अपने स्वरूपमे मग्न रहता है, किन्तु आत्मामे अनादिकालसे मोहकी सगति है जिससे आत्मामे विपरीताभिप्राय होता है। उस विप-रीताभिप्रायके कारण यह परपदार्थोमे निजत्वका अनुभव करता है। अथवा पर और निज यह कल्पना भी मोहके प्रभावसे ही होती है। जिस दिन यह कल्पना मिट जावेगी, उसी दिन शान्तिका साम्राज्य अनायास हो जावेगा।

पौष शुक्ला १४ स० २००८ को प्रात काल ४ मील चल कर मलहरा आ गये। गुरुकुलमे ठहर गये। यहाँ सिंघई वृन्दावनलाल बहुत ही विवेकी, उदार तथा हृदयके स्वच्छ हैं। आपके प्रतापसे यहाँ गुरुकुल बन गया। प्रान्तमे अशिक्षाका प्रचार बहुत है। पहले देशी रजवाडे थे, इसलिये प्रजाकी उन्नतिके विशेष साधन राज्यकी ओरसे नही थे। अब विन्ध्य-प्रदेशमे यह सब स्थान आ गये हैं तथा राज्यकी ओरसे शिक्षाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। आशा है, आगे चलकर यहाँकी प्रजा भी उन्नति करेगी। यहाँ १६ दिन रहे। प्रात काल प्रवचन हुए। इसीके बीच एक दिन माघ कृष्णा १४ को गंज गये। वहाँ एक बाईके यहाँ पंक्ति भोजन था। २०० आदमी आये होगे। श्रीजीका जल-विहार हुआ। प्रान्तमे सरलता बहुत है।

मलहरासे ९ मील चलकर माघशुक्ला ४ को दरगुवाँ आ गये। यह ब्र० नाथूरामका ग्राम है। दूसरे दिन इन्हीके यहाँ भोजन हुआ। यहाँ पर जो व्यय हो उस पर)। एक पैसा रुपया विद्यादानमे देना लोगोने स्वीकृत किया। यहाँ पर दिल्लीसे लाला मक्खनलालजी आगये। विरक्त मनुष्य है, गृहसे उदासीन है, सर्वसम्पन्न होकर भी विरक्त होना ऐसे ही शूरका काम है। दरगुवाँसे चलकर हीरापुर आ गये। मन्दिरके सामने धर्मशाला है, उसीमे ठहरे। सामने कूप है। उसके बाद चौक है। फिर मन्दिर है। मन्दिर स्वच्छ है। मूर्तियाँ स्वच्छ है। रात्रिको शास्त्र होता है। यहाँ पर तिगोडासे पण्डित पद्मकुमारजी आगये। आप त्यागी कमलापति सेठ वरायठाके पुत्र है, सुबोध है, अन्तर आर्द्र है। रात्रिको ब्र० नाथूराम-ने सबको शास्त्र-श्रवण कराया।

हीरापुरसे चलकर शाहगढ आये। बडा ग्राम है। जनसख्या अच्छी है? लोगोमे सौमनस्य भी है। मन्दिरमे प्रवचन हुआ। जनता अच्छी उपस्थित थी। ज्ञानार्णवमे अन्यत्व और एकत्व भावनाका विषय था। एकत्व भावनाका यह अर्थ है कि मनुष्य स्वकृत कर्मके अच्छे-बुरे फलको अकेला ही भोगता है। किसीके सुख-दु खमे कोई शामिल नही होता, अत परके पीछे आत्मपरिणामोको विकृत नही होने देना, यही बुद्धिमत्ता है। अन्यत्व भावनाका अर्थ यह है कि आत्मा शरीरसे भिन्न है, अत शरीरके विकारको आत्माका विकार मान व्यर्थ ही रागी-द्वेषी मत बनो। यहाँ २ मन्दिर है। रात्रिको शास्त्र-प्रवचन होता है। शाहगढसे बमौरी गये। यह श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजीका ग्राम है। लोगोमे धार्मिक रुचि है। एक मन्दिर है। प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनका सार यह था कि भूल अज्ञानसे होती है। यह आत्माका मोह जन्य विकार है। जैसे भ्रमज्ञान मिथ्या है, वैसे ही अज्ञान मिथ्या है। इस भूलको त्यागनेवाला ही मनुष्यताका पात्र है। अनादिकालसे हम जिस पर्यायमे गये, उसे ही अपनाया। यद्यपि उसे अपनाना पर्यायापेक्षया सर्वथा मिथ्या नही, परन्तु उसे ही सर्वथा निजस्वरूप मान लिया, इसलिये शुद्धद्रव्यसे विमुख हो अनादिकालसे पर्यायोमे ही उलझते रहे।

बमौरीसे १ मील चलकर बेरखेरी आये। यहाँ एक क्षत्रिय महाशय रहते है, जो बहुत ही सरल परिणामी है। मासके त्यागी है। इनके वशमे शिकारका भी त्याग है। यहाँसे ५ मील चलकर सिद्धक्षेत्र नैनागिरि (रेशन्दीगिरि) आ गये। सुन्दर स्थान है। पाठशालाके छात्रोने स्वागत किया। यहाँ पर्वत पर पार्श्वनाथ समवसरणके नामसे एक

विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है। श्री पार्श्वनाथ भगवान्की शुभ्रकाय विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। माघ शुक्ला १५ को श्री १०८ क्षीरसागरजी मुनि यहाँ आये।

रेशन्दीगिरिमें पञ्चकल्याणक

फाल्गुन कृष्णा ३ स० २००८ से पञ्चकल्याणकका मेला रेशन्दीगिरिजीमे था। नाला पार करके मैदानमे विशाल पण्डाल बनाया गया था। एक छोटा पण्डाल नीचेके मन्दिरोके पास भी बना था। धीरे-धीरे मेला भरना शुरू हो गया। विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी बैठक थी, अत विद्वत्मण्डली उपस्थित थी। खास कर प० बशीधरजी इन्दौर, प० कैलासचन्द्रजी, खुशालचन्द्रजी, जगन्मोहनलालजी, दयाचन्द्रजी आदि सभी प्रमुख विद्वान् थे। प्रतिष्ठाके कार्यके लिए श्री प० बारेलालजी पठा तथा समगौरयाजी आये हुए थे। डेरा-तम्बुओका भी अच्छा प्रबन्ध था।

पञ्चकल्याणक उस महान् आत्माका होता है, जो पूर्व जन्ममे दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओका चिन्तवन करता है तथा अपायविचय नामक धर्मध्यानमे बैठकर लोककल्याणकी सातिशय भावना भाता है। ऐसे जीव भरतक्षेत्रमे दस कोडा-कोडी सागरके एक युगमे केवल २४ ही उत्पन्न हो पाते हैं। समग्र अढाई द्वीपमे एक साथ १७० से अधिक ऐसे व्यक्ति नही हो पाते। तीर्थंकरप्रकृति सातिशय पुण्यप्रकृति है। इसका जिसके बन्ध होता है, उसके जन्म लेते ही तीनो लोकोमे क्षोभ मच जाता है। फाल्गुन कृष्णा ३ को भगवान्का गर्भकल्याणक हुआ, ४ को जन्मकल्याणक हुआ, इन्द्र-इन्द्राणी जब भगवान्को ऐरावत हाथी पर विराजमान कर टेकडी पर चढे, तब बडा सुन्दर दृश्य था। रात्रिको विद्वानोके सारगर्भित भाषण होते थे। प्रात काल नीचेके मन्दिरोके पास जो पण्डाल बना था, उसमे शास्त्रप्रवचन होता था। मुनि क्षीरसागरजीका भी व्याख्यान हुआ। सामयिक व्याख्यान था। परन्तु आपने एक तत्त्वार्थसूत्र प्रकाशित कराया, जिसके बीच-बीचमे अनेक पाठ मिला दिये। उमास्वामीकी रचनाको प्रक्षिप्त कर दिया तथा यह आलोचना की कि आचार्य उमास्वामी इस आवश्यक बातको छोड गये। महाराजकी यह कृति विद्वानोको पसन्द नही आई। उनका कहना था कि आपको यदि कोई बातकी त्रुटि मालूम होती है, तो उसे अलगसे दे। एक ऐसे आचार्यकी रचनाको, जिसे पूज्यपाद, अकलक, विद्यानन्द,

श्रुतसागर आदि आचार्योंने परिपूर्ण मान अपनी टीकाओ तथा भाष्योंसे अलकृत किया है, प्रक्षिप्तकर दूषित न करे। परन्तु महाराज दूसरेकी बात या अभिप्रायको न सुननेका प्रयास करते है और न समझनेका।

पञ्चमीको पडालमे राज्यगद्दीका उत्सव होनेके बाद वट वृक्षके नीचे दीक्षाकल्याणकका उत्सव हुआ। समारोह अच्छा था। व्रती-सम्मेलन होनेसे मेलामे अनेक व्रती पधारे थे, अत उन्होने तथा अन्य अनेक लोगोने व्रत ग्रहण किये। (हमने कहा कि यह ससार है और हमारे ही प्रयत्नका फल है। इसका अन्त करनेमे हम ही कारण है। इसका बनानेवाला यदि कोई है, तो अन्त करनेवाला भी वही होगा। हम उभयथा निर्दोप है, ऐसा मानना न्यायसगत नही। हम निर्दोप भी हो सकते है, और सदोप भी। अत तत्त्वज्ञ बनो और आज तक जो परमे ससार तथा मोक्षके माननेका अज्ञान है, उसे त्यागो। यथार्थ पथ पर आओ। ससारमे वही महापुरुप वन्दनीय होते है, जिन्होने ऐहिक और पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ होकर आत्मकल्याणके अर्थ स्वकीय परिणति-को निर्मल बना दिया है। विषयका मार्ग ऊपरसे मनोरम दिखता है, पर उसका अन्तस्तल बहुत ही कण्टकापूर्ण है। इससे जो बच निकले उनका बेड़ा पार हो गया। यदि विषय-सुखमे आनन्द होता, तो भगवान् आदि जिनेन्द्र ही उसे क्यो त्यागते ? जब तक चारित्रमोहका उदय था, तब तक वे भी अन्य ससारी प्राणियोके समान विषयके गर्तमे पड़े रहे। तीर्थंकर प्रवर्तक पुरुप कहलाते है। इन्हे तीर्थकी प्रवृत्ति करना होती है। फिर यदि यही ससारके अन्य प्राणियोके समान विषयमे निमग्न रहे, तो तीर्थकी क्या प्रवृत्ति करेगे ? यह विचार कर सौधर्मेन्द्र इनके वैराग्यके निमित्त, जिसकी आयु अत्यल्प रह गई थी, ऐसी नीलाञ्जनाको नृत्य करनेके लिए खडा कर देता है। थोडी देरमे उसकी आयु समाप्त हो जाती है, जिससे उसका शरीर विद्युत्के समान विलीन हो गया। रसमे भग न हो, इस भावनासे इन्द्रने झटसे दूसरी देवी उसीके समान रूपवाली खडी कर दी, परन्तु भगवान् उसके अन्तरको समझ गये। इस घटनासे भगवान्के ज्ञानमे आ गया कि ससार क्षणभगुर है। हमने अपनी आयुके ८३ लाख पूर्व व्यर्थ ही खो दिये। कहाँ तो हम पूर्व भवमे यह चिन्तवन करते थे कि त्रिलोकके जीवोको अपायसे कैसे मुक्त करे, और कहाँ हम स्वय ही अपायमे फँस गये। भगवान्के ऐसा चिन्तवन करते ही लौकान्तिक देव आ गये और उन्होने बारह भावनाओका पाठकर भगवान्की श्लाघा की। कैसा वह समय होता होगा कि जब जरासा

निमित्त मिलने पर आदमी विरक्त हो जाते थे और ऐसे आदमी जिनके वैभवके साथ स्वर्गका वैभव भी ईर्ष्या करता था। आज तो वैभवके नाम पर फटी लगोटी लोगोके पास है, पर उसे भी त्यागनेका भाव किसीका नही होता।)

रात्रिको परवारसभामे एकीकारण बावत जो प्रस्ताव पपौरामे हुआ था, उसपर प० जगन्मोहनलालजीने प्रकाश डाला। चर्चा बहुत हुई, परन्तु लोगोका कहना था कि यदि वास्तवमे एकीकरण चाहते हो तो इन जातीय-सभाओको समाप्त करो। इन सभाओने जनताके हृदयमे फूट डालनेके सिवाय कुछ नही किया है। इन सभाओके पहले जहाँ लोग आपसमे एक दूसरेसे मिल-जुलकर रहते थे, वहाँ अब अपने परायेका भेद होगया। अन्तमे कुछ हुआ नही। इतना उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनानेके लिए लोगोमे क्षमता नही।

आगामी दिन मध्याह्नके बाद ज्ञानकल्याणकका उत्सव हुआ। कृत्रिम समवसरणके बीच भगवान् आदि जिनेन्द्र विराजमान थे। विद्वानोने दिव्य-ध्वनिके रूपमे जैनागम सम्मत तत्त्वोका वर्णन किया। जिसका जनतापर अच्छा प्रभाव पडा। रात्रिको यहाँकी पाठशालाका अधिवेशन था। प० कैलाशचन्द्रजीने पाठशालाकी अपील की। क्षेत्र तथा प्रान्तकी स्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला, जिससे लोगोके परिणाम द्रवीभूत हो गये। कुछ चन्दा भी हो गया, परन्तु विद्याकी ओर जैसी रुचि लोगोकी होनी चाहिए, वह नही प्रकट हुई। इसका कारण विद्याका रस अभी इनके जीवनमे आया नही। फाल्गुन शुक्ला ७ को निर्वाण-कल्याणकका दृश्य प्रात काल पडालकी वेदीपर दिखाया गया। कुछ समय पूर्व कैलाश-पर्वतपर योग निरोध किये हुए भगवान् विराजमान थे, पर कुछ ही समयके अनन्तर उनका प्रतिबिम्ब वहाँसे उठा लिया गया और चन्दन की समिधाओमे कपूर द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर यह दृश्य दिखाया गया कि भगवान् मोक्ष चले गये। यह दृश्य देखकर जनता मुखसे तो जय-ध्वनिका उच्चारण करती थी, परन्तु नेत्रोसे उसके अश्रुधार प्रवाहित हो रही थी। मेरा परिणाम भी गद्गद् हो गया, जिससे अधिक तो नही कह सका, पर इतना मैंने अवश्य कहा कि जन्मापाय ही मोक्ष है। जन्मके कारणोके अभावमे जीव स्वय मुक्त हो जाता है। जन्मका कारण आयु है। जिस जीवका मोक्ष होना है, उसके आयु बन्ध नही होता। जो आयु है, उसका अन्त होनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है।

बात सरल है, परन्तु यह जीव मोहमदसे इतना उन्मत्त हो रहा है कि आपको जनता ही नही। जो बात करेगा वह विपरीत अभिप्रायसे रिक्त नही होती। पण्डालकी समस्त व्यवस्था पं० पन्नालालजी सागर सम्हाले हुये थे, जिससे समयानुकूल सब कार्य होनेमे रुकावट नही होती थी। मेलामे लगभग १५-२० हजार जैन जनता आई होगी। किसीकी कुछ हानि नही हुई, और न वर्षा आदिका किसीको कुछ कष्ट हुआ। सब सानन्द अपने-अपने घर गये। मैं भी यहाँसे चलकर दलपतपुर आगया।

•

सागर

फाल्गुन कृष्णा १० सं० २००८ को दलपतपुरसे ७ मील चलकर वण्डा आ गये। यहाँपर ८५ घर जैनियोके है। प्राय सर्व सम्पन्न है। थक गये, इसलिए रात्रिमे प्रवचन नही किया। श्री कुञ्जीलालजी सराफ आदि सागरसे कई महानुभाव आये, जिनने सागरके समाचार श्रवण कराये। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ। जनताकी उपस्थिति अच्छी थी। पाठशालाके लिए अर्थका प्रयास किया। ४०००) का चन्दा हुआ। यहाँ पर एक प्रभुदयाल दरोगा, जो कि वर्तमानमे रिटायर्ड है, योग्य मनुष्य है। आप प्रत्येक कार्यमे योगदान देते है। श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजीने चन्दामे हृदयसे योग दिया। आप जहाँ भोजनको गये, वहाँसे प्रेरणा कर ५७०) पाठशालाको दिलाया। यहाँसे चलकर भडराना आगये, और वहाँसे ६ मील चलकर शाहपुर पहुँच गये।

यहाँ कलशारोहणका उत्सव हो रहा था। बाहरसे करीब ५०० जनता आई होगी। रात्रिको पाठशालाका उत्सव हुआ। अपील होनेपर १००००) दस हजारका चन्दा होगया। शाहपुरके मनुष्योमे देनेका उत्साह बहुत था। सबके परिणाम उदार थे। सबने मर्यादासे अधिक द्रव्य दिया। इस कार्यमे भैयालाल भजनसागर और दयाचन्द्रजीने बहुत परिश्रम किया। द्वितीय दिन मध्यान्होपरान्त पाठशालाका पुन उत्सव हुआ। श्री हरिश्चन्द्रजी मोदीका उत्साह एकदम उमडा। उन्होने ५०००) पाँच हजार पाठशालाको देना स्वीकृत किया, २०००) दो हजार उनके भाई टीकारामजीने दिये और उनके बडे भाई घप्पेरामजीने २५१) दिये, समगौरयाजी, भजनसागरजी तथा प० दयाचन्द्रजीने सबको मधुर शब्दो मे धन्यवाद दिया और सिंघई लक्ष्मणप्रसादजी हरदोवालोने सिंघईपद का तिलक किया तथा सब भाईयोने भेट की। बडा आनन्द रहा। अमावास्याके दिन पण्डालमे श्रीमान् ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द्रजी नायक जबलपुरवालोने स्वरचित रामायणमेसे दशरथ-वैराग्यका प्रकरण जनता को श्रवण कराया। श्रवणकर जनता बहुत प्रसन्न हुई। मेरे चित्तमे बहुत उदासीनता आई, परन्तु स्थायी शान्ति न आई। इसका मूलकारण भीतरकी दुर्बलता है। अनादिकालसे परमे निजत्वकी कल्पना चली आ रही है। उसका निकलना सहज नही। ससार स्थिति अल्प रह जाय, तो

यह कार्य अनायास हो सकता है। कलशारोहणका समारोह समाप्त हो गया। लोग अपने-अपने घर गये और हम शान्त-भावसे १६-१७ दिन यहाँ रहे। भगवानदास भायजी तत्त्वज्ञ तथा आसन्न भव्य पुरुष हैं। इनके साथ स्वाध्याय करते हुए शान्तिसे समययापन किया।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा सं० २००८ के दिन सागरसे सिंघईजी आदि आये और सागर चलनेकी प्रेरणा करने लगे। हमने मना किया, परन्तु अन्तमे मोहकी विजय हुई, हम पराजित हुए। सागर जाना स्वीकृत करना पडा। (मुझे अनुभव हुआ कि संकोची मनुष्य सदा दुःखी रहता है। सबको खुश करना असम्भव बात है। प्रथम तो कोई ऐसा उपाय नही, जो सबको प्रसन्न कर सके। द्वितीय सबकी एक सदृश भावना करना कठिन है। अतः एक यही उपाय है कि सबको खुश करनेकी अभिलाषा त्याग दी जाय। अभिलाषा ही दुःखदायिनी है।)

चैत्र कृष्णा ३ सं० २००८ को १ बजे शाहपुरसे चले। धर्मशालासे चलकर श्री अनन्दीलालकी दुकानपर विश्राम किया। यहाँ सब जैन-जनता आ गई। बालिकाओने मंगल-गान गाया। पश्चात् पं० अमर-चन्द्रजीने गान पढा। उसके उपरान्त पं० श्रुतसागरजीने ५ मिनट व्याख्यान दिया। सुनकर लोग गद्गद् कण्ठ हो गये। पश्चात् बहुत कठिनतासे चल पाये। आधा मील तक जनता आई। यहाँसे ९ मील चलकर सानोधा आगये। यहाँ पर ८-१० घर जैनी है। एक मन्दिर है। अगले दिन भोजन कर सागरके लिए प्रस्थान कर दिया और शामके ६ बजे तक गोपालगंज (सागर) पहुँच गये।

चैत्र कृष्णा ५ को गोपालगंजमे आहार किया। ३ बजे प्रचुर जनता के साथ गोपालगंजसे चले और ४ बजे कटरा बाजार पहुँच गये। यहाँ पर दो मन्दिर हैं। उनके दर्शन किये, मन्दिर स्वच्छता पूर्ण तथा निर्मल है, विस्तृत भी है, परन्तु जनसंख्या बहुत होनेसे स्थानमे कमी पड जाती है। एक मन्दिर प्राचीन है। दूसरा स्व० सिं० अनन्तरामजी दलालकी धर्मपत्नीने अपने मकानको मन्दिररूपमे परिणतकर कुछ समय हुआ बनवाया है। मन्दिरोके दर्शनकर वेदान्तीपर श्री गुलाबचन्द्रजी जौहरी का जो बाग है उसमे निवास किया। आपने यह बाग उदासीनाश्रमके लिए प्रदान किया है। उदासीनाश्रम संस्था इसीमे है। रात्रिको स्वागत-समारोहके उद्देश्यसे मोराजी भवनमे सभा एकत्रित हुई।

सागर बडी बस्ती है। जैनियोके हजारसे ऊपर घर हैं। बडे-बडे १६ मंदिर हैं। संस्कृत विद्यालय हे ही। महिलाश्रम भी खुल चुका है। लोगो

मे सरलता है। यहाँ हमारा वहुत समय व्यतीत हुआ है। वाईजीका भी यही निवास था, अत' घूम फिरकर मैं यही आ जाता था। यहाँका जल-वायु हमारे शरीरके अनुकूल पडता है। लोगोमे भद्रता भी अधिक है। यहाँ आकर कुछ समयके लिए भ्रमण-सम्वन्धी आकुलतासे मुक्त हो गया।

यहाँकी समग्र जनताको लाभ मिल सके, इस उद्देश्यसे आठ-आठ दिन समस्त मदिरोमे प्रवचनका क्रम जारी किया। पहले कटराके मदिर मे प्रवचन हुआ। फिर चौधरनवाईके मदिरमे, फिर सिंघईजोके मदिरमे। इसी क्रमसे सव मन्दिरोमे यह क्रम चलता रहा। यहाँ तारण समाजका भी चैत्यालय है। उस आम्नायके लोगोमे प्रमुख सेठ भगवानदासजी शोभालालजी वीडीवाले, मुन्नालालजी वैशाखिया तथा मथुराप्रसादजी आदि हैं। इन सवके आग्रहसे चैत्यालयमे भी प्रवचन हुये।

चैत्र शुक्ला १३ स० २००९ को वर्णी भवन (मोराजी भवन) मे महावीर-जयन्तीका उत्सव था। प० दयाचन्द्रजी, माणिकचन्द्रजी, पन्ना-लालजी आदिके व्याख्यान हुये। कुछ इतर समाजके वक्ता भी वोले। जनता अधिक थी। समारोह अच्छा हुआ। दूसरे दिन सर्वधर्मसम्मेलनका आयोजन था, जिसमे जैन, हिन्दू, मुसलमान और ईसाई धर्मवालोके व्याख्यान हुये। अन्तमे मैंने भी वताया कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार आत्माकी उस निर्मल परिणतिको मलिन किये हुये है। जिस दिन यह मलिनता दूर हो जायगी, उसी दिन आत्मामे धर्म प्रकट हुआ कहला-वेगा। किसी कुल या जातिमे उत्पन्न होनेसे कोई उस धर्मका धारक नही हो जाता। कुलमे तो शरीर उत्पन्न होता है, सो इसे जितने परलोक-वादी है, सव आत्मासे जुदा मानते हैं। शरीर पुद्गल है। उसका धर्म तो रूप, रस, गन्ध स्पर्श है। वह आत्मामे कहाँ पाया जाता है? आत्माका धर्म ज्ञान, दर्शन, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि गुण हैं। ये सदा आत्मामे पाये जाते है। आत्माको छोडकर अन्यत्र इनका सद्भाव नही होता।

इतना तो सव मानते है कि इस समय ससारमे कोई विशिष्ट ज्ञानी नही। विशिष्ट ज्ञानीके अभावमे लोग अपने-अपने ज्ञानके अनुसार पदार्थ-को समझनेका प्रयास करते है। जिस प्रकार सूर्यके अभावमे घर-घर दीपक जल जाते हैं, कोई विजलीका वडा वल्व जलाता है, तो कोई मिट्टीका छोटा-सा टिमटिमाता हुआ दीपक ही जलाता है। जिसकी

जितनी सामर्थ्य है, वह उतना साधन जुटाता है। इसी प्रकार सर्वज्ञ—विशिष्ट ज्ञानीके अभावमे लोग अपने-अपने ज्ञानके दीपक जलाते हैं। फिर भी एक सूर्य ससारका जितना अधकार नष्ट कर देता है, उसको पृथ्वीके छोटे वडे सव दीपक भी मिलकर नष्ट नही कर सकते। ज्ञान थोडा हो, इसमे हानि नही, परन्तु मोहमिश्रित ज्ञान हो तो वह पक्ष खडाकर देता है। यही कारण है कि इस समय उपलव्ध पृथिवीपर नाना धर्म, नाना मत-मतान्तर प्रचलित हैं। यह कलिकालकी महिमा है। इस कालका यही स्वभाव है। आज लोगोमे इतनी तो समझ आई है कि विभिन्न धर्मवाले एक स्थानपर वैठकर दूसरेके धर्मकी वात सुनते है, सुनाते है। जैनधर्मका अनेकान्तवाद तो इसीलिए अवतीर्ण हुआ है कि वह सव धर्मो का सामञ्जस्य वैठाकर उनके पारस्परिक सघर्षको कम कर सके। आयोजक समितिने सव वक्ताओके लिए एक-एक वर्णी *अभिनन्दन-ग्रन्थ* भेट किया।

समय यापन

प० फूलचन्द्र जी वनारसवाले आये हुए थे। वैशाख कृष्णा २–४ और ५ को आपका शास्त्र प्रवचन हुआ। इन तिथियोमे प्रवचनकी व्यवस्था तालाबके मन्दिरमे थी। मन्दिर छोटा है, परन्तु व्यवस्थित है। पण्डितजी-के प्रवचन मार्मिक होते हैं। आपका कहना था कि मनुष्यका कल्याण निज ज्ञानसे होता है, पुस्तकज्ञानसे नही। खाली पुस्तकीय ज्ञान तो वैलपर लदी शक्करके समान है। अर्थात् जिस प्रकार पीठपर लदी हुई शक्करका स्वाद वैलको नही मिलता उसी प्रकार केवल पुस्तकीय ज्ञानका स्वाद निज ज्ञानसे शून्य मनुष्योको नही मिलता। आत्मज्ञानके साथ पुस्तकीय ज्ञान अधिक न हो तो भी काम चल जाता है, परन्तु आत्म-ज्ञानके विना अनेक शास्त्रोका ज्ञान भी वेकार है। प्रत्येक मानवको यदि शरीरादि परपदार्थोसे भिन्न आत्माका ज्ञान हुआ है तो उसे उसका सदुपयोग करना चाहिये। ज्ञानका सदुपयोग यही है कि उसमे मोह तथा राग-द्वेषका सम्मिश्रण न होने दे। ज्ञाता-द्रष्टा आत्माका स्वभाव है। जव तक यह जीव ज्ञाता-द्रष्टा रहता है, तव तक स्वस्थ कहलाता है, और जब ज्ञाता-द्रष्टाके साथ-साथ रागी, द्वेषी तथा मोही भी हो जाता है, तव अस्वस्थ कहलाने लगता है। ससारमे अस्वस्थ रहना किसीको पसन्द

नही, अत ऐसा प्रयत्न करो कि सतत स्वस्थ अवस्था ही वनी रहे। कल्याणका मार्ग उपेक्षामे है। उपेक्षाका अर्थ राग-द्वेषका अप्रणिधान है। अर्थात् उस ओर उपयोग नही जाने देना। रागादि कारणोके द्वारा कल्याण-मार्गकी आकाक्षा करना सर्पको दुग्ध पिलानेके समान है। ससारका आदि कारण आत्मा ही तो है। वही उसके अन्तका कारण भी है। छोटे-छोटे वच्चे मिट्टीके घरोदे वनाकर खेलते है, और खेलते-खेलते अपने ही पदाघातसे उन घरोदोको नष्ट कर देते हैं। इसी तरह मोही जीव मोहवश नानाप्रकारके घरोदे वनाता है, परपदार्थको अपना मान अनेक मंसूबे वनाता है, परन्तु मोह निकल जानेपर उन सवको नष्ट कर देता है।

श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजी भी विहार करते हुए सागर पधारे। नि स्पृह व्यक्ति है, तत्त्वज्ञानकी अभिलाषा रखते है, सस्कृत जानते है, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखते है। आपके दर्शन कर मेरे मनमे यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस कलिकालमे दिगम्वरत्वकी रक्षा करना सामान्य मनुष्यका काम नही। धन्य है, आपके पुरुषार्थको जो इस विषमकालमे साक्षात् मोक्षमार्गकी जननी दिगम्वर मुद्राका निरतिचार निर्वाह कर रहे है। आपकी शान्तिमुद्रा देखकर अन्य जन्तु भी शान्तभावको धारणकर मोक्षमार्गके पात्र हो सकते है।

सागरमे वालचन्द्र मलैया श्रद्धालु जीव है। सम्पप्न होनेपर भी कोई प्रकारका व्यसन आपको नही। श्रावकके षट्कर्ममे निरन्तर आपकी प्रवृत्ति रहती है। आपने सागरसे २ मील दूर दक्षिणमे तिलीग्राममे एक विस्तृत तथा सुन्दर भवन वनवाया है। पूजाके लिये चैत्यालय भी निर्माण कराया है। एकान्तप्रिय होनेसे अधिकाश आप वही पर रहते हैं। आपका आग्रह कुछ दिनके लिये अपने वागमे ले जानेका हुआ। मैंने स्वीकृत कर लिया, अत वैशाख शुक्ला १३ को श्रीक्षुल्लक क्षेम-सागरजीके साथ वहाँ गया। वहुत ही रम्य स्थान है। सर्व तरहके सुभीते है। यदि कोई यहाँ तत्त्व-विचार करना चाहे, तो कोई उपद्रव नही। ३ दिन यहाँ रहा। पण्डित पन्नालालजी साथ रहते थे। शान्तिसे समय व्यतीत हुआ। वहाँसे आकर दिनमे गरमी अधिक पडती थी, अत भोजनोपरान्त ५ वजे तक श्री भगवान्दासजीकी हवेलीके नीचे भागमे रहता था। यहाँ सूर्यका आताप नही पहुँच पाता था, इसलिये शान्ति रहती थी। ५ वजे शान्ति-निकेतन—उदासीनाश्रममे चला जाता।

सागरमे अनेक मन्दिर है। तथा विद्यालय और महिलाश्रम इस प्रकार २ सस्थाएँ हैं। सवकी व्यवस्थापक समितियाँ जुदी-जुदी है, इसलिये

अपनी-अपनी ओर लोगोका खिंचाव रहा करता है। हमने सुझाव रक्खा कि समस्त सागर समाजकी एक प्रतिनिधि-सभाका निर्माण होना चाहिये। वही सब मन्दिरो तथा सस्थाओकी व्यवस्था करे। अलग-अलग खिचडी पकानेमे शोभा नही। जनताको सुझाव पसन्द आ गया और ८४ प्रतिनिधियोकी एक प्रतिनिधि सभा बन गई। परन्तु देखनेमे यह आया कि कार्यकर्ताओके हृदय स्वच्छ नही, अत विश्वास नही बैठा कि ये लोग आगे चलकर सम्मिलित रूपसे व्यवस्था बनाये रखेगे। सबसे जटिल प्रश्न मन्दिरो सम्बन्धी द्रव्यके सदुपयोग तथा उसकी सुव्यवस्थाका है। परिग्रह एक ऐसा मद्य है कि वह जहाँ जाता है, वही लोगोके हृदयमे मद उत्पन्न कर देता है। परिग्रह चाहे घरका हो, चाहे मन्दिरका, विकारभाव उत्पन्न करता ही है। जब तक मनुष्य परिग्रहको अपनेसे भिन्न अनुभव करता रहता है, तब तक इसका बन्धन नही होता, परन्तु जिस क्षण वह उसे अपना मानने लगता है, उसी क्षण बन्धनमें पड जाता है। (सरकारी खजानेमे कार्य करनेवाला व्यक्ति ड्यूटीके अवसर पर खजानेका स्वामी है, पर वह उसे अपना नही मानता। यदि कदाचित् सौ पचास रुपयेमे उसका मन ललचा जावे और उन्हे वह निकाल कर जेबमे रख ले—उनके साथ ममत्वभाव करने लगे, तो तत्काल उसके हाथमे बेडी (हथकडी) पड जाती है)

कण्डया वशमे श्री ताराचन्द्रजीका एक विस्तृत मकान, जो कि इत-वारा बाजारमे था, बिकनेवाला था। लोगोने सुझाव रक्खा कि यह मकान महिलाश्रमके लिये खरीद लिया जाय, क्योकि महिलाश्रम अभी तलावके मन्दिरके पीछे किरायेके मकानमे है, जहाँ सकीर्णता बहुत है, तथा मच्छरोकी अधिकता है। मकानकी कीमत २२०००) बाईस हजारके लगभग थी। महिलाश्रमके पास इतना फण्ड नही कि जिससे वह स्वय खरीद सके। मकान निजका होनेसे सस्थामे स्थायित्व आ जाता है, अत मत्री चाहता था कि मकान महिलाश्रमका हो जाता तो उत्तम था। परन्तु कहा किससे जावे ? कुछ लोग फुटकर चन्दा करनेके लिये निकले, तो दो चार हजारसे अधिकके वचन न मिले। सागरमे सिघई कुन्दन-लालजी एक सहृदय तथा आवश्यकताका अनुभव करनेवाले व्यक्ति है। उन्होंने पिछले समयमे महिलाश्रमको ११०००) ग्यारह हजार नकद दान दिये थे। उन्होंने कहा कि यदि महिलाश्रमकी कमेटी ग्यारह हजार रुपये हमारे पहलेके मिला दे, तो मै ग्यारह हजार और देता हूँ। इन बाईस हजारसे उक्त मकान खरीद लिया जावे। 'भूखेको क्या चाहिये ? दो

रोटियाँ' वाली कहावतके अनुसार महिलाश्रमकी कमेटीने उक्त वात स्वीकार कर ली, जिससे २२५७०) हजारमे उक्त मकान खरीद कर सिंघेन दुर्गाबाईके नामसे महिलाश्रमको सौप दिया गया। ग्रीष्मावकाशके वाद जब आश्रम खुला, तब वह अपने निजके मकानमे पहुच गया। इस मकानमे इतनी पुष्कल जगह है कि यदि व्यवस्थित रीतिसे वनाई जावे तो ५०० छात्राए सानन्द अध्ययन कर सकती है।

ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको गौरावाई जैन मन्दिर कटरामे श्रुतपञ्चमी का उत्सव था। भीड वहुत थी। प० पन्नालालजीने शास्त्रप्रवचन द्वारा पर्वका पूर्ण परिचय जनताको करा दिया और इस वातपर वल दिया कि मन्दिरोंमे जो चादी आदिके व्यर्थ उपकरण है, उन्हे गलाकर शास्त्र-भण्डारोकी पूर्णता होनी चाहिये तथा जो शास्त्र अद्यावधि प्रकाशमे नही आये, उनका जनताके समक्ष आना वहुत आवश्यक है। बात मार्मिक थी, परन्तु यह तव हो सकता है जब जनताके नेत्र खुले। आजकल तो मन्दिरोका द्रव्य सगमर्मर पत्थर या चूना ईंटोके जडवानेमे जाता है। लोगोके हृदयमे अज्ञान समाया हुआ है। शास्त्रज्ञानकी ओर उनकी रुचि नही।

कटरामे एक मन्दिर कारे भायजीका था, जो जीर्ण हो जानेके कारण गिरा दिया गया था तथा उस स्थानपर नवीन मन्दिर निर्माण करानेका विचार था। मन्दिरके नीचेका भाग वडा मन्दिरके आधीन और ऊपर अटारी पर मन्दिर था। वडा मन्दिरके प्रबन्धकोने मन्दिरके बनानेमे आपत्ति की, जिससे मन्दिर गिरा हुआ बहुत दिनोसे पडा रहा। कारे-भायजीके मन्दिरमे जो रुपया था, उन्होने वह रुपया वडा मन्दिरके व्यव-स्थापक श्री लक्ष्मीचन्दजी मोदीको दे दिया और कहा कि आप ही वनवा दो। वहुत समयसे काम रुका था और लोग प्रेरणा भी बहुत करते थे, इसलिये ज्येष्ठ शुक्ला ६ को नवीन मन्दिर वनवानेका मुहूर्त किया गया। मुझे भी लोग ले गये। जन-समुदाय वहुत था। लोगोको प्रसन्नता थी कि अब मन्दिर वन जावेगा, परन्तु लोगोकी परिणति निर्मल नही, अत मुझे विश्वास नही हुआ कि यह मन्दिर शीघ्र वन जावेगा। धर्मायतनोंके विषयमें जो छल-क्षुद्रताका व्यवहार करते है, वे आत्मवञ्चना करते हैं, और उसका कटुक परिपाक उन्हे भोगना पडता है। इस पापके करनेवाले कभी फलते-फूलते नही देखे गये।

श्री १०५ क्षुल्लक क्षेमसागरजी चातुर्मास करनेके लिए जवलपुर

गये। हमारा भी विचार था, परन्तु हम लोगोका सकोच नही तोड सके और सागरमे ही रह गये। आषाढ शुक्ला १४ के दिन हमने सागरमे चातुर्मासका नियम ग्रहण किया तथा कार्तिक सुदी २तक दुग्ध, घृत, नमक तथा बादामका रोगन मात्र इतने रस लेनेका नियम किया।

आषाढ शुक्ला पूर्णिमा स० २००२ को विद्यालयमे गुरुपूर्णिमाका उत्सव था। समस्त छात्रवृन्द तथा अध्यापकगण एकत्रित थे। मुझे भी वुलाया गया। छात्रोके कवितापाठ तथा व्याख्यान आदि हुए। अध्यापकोके भी भापण हुए। मुझे यह दृश्य देख बहुत प्रसन्नता हुई। मैने कहा कि गुरुका अर्थ तो दिगम्वर मुद्राके धारी तपोधन मुनि है। श्रावण कृष्णा १ से चातुर्मास प्रारम्भ हो जाता है, अत पूर्णिमा तक जहाँ जिनका चातुर्मास सम्भव होता, वहाँ सब गुरु पहुच जाते थे और गृहस्थ लोग उनके आगमनका समारोह मनाते थे। परन्तु आज दिगम्वर मुद्राधारी लोगोकी कमी हो गई, इसलिए गुरुका अर्थ विद्यागुरु रह गया। यह भी वुरा नही, क्योकि एक अक्षरके देनेवालेके प्रति भी मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिये। 'न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति' किये हुये उपकारको साधुजन भूलते नही। माता-पिताकी अपेक्षा विचार करो, तो गुरुका स्थान सर्वोपरि है, क्योकि उसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्वन्धी हितकी प्राप्ति होती है।

छात्रका हृदय जितना अधिक निर्मल होगा, वह उतना ही अधिक व्युत्पन्न बनेगा। छात्रको निर्द्वन्द्व होकर अध्ययन करना चाहिये। आजका छात्र पढना अधिक चाहता है, पर पढता बिलकुल नही है। अनेक शास्त्रोका अध्ययन करनेके बाद भी आज छात्र उस योग्यताको नही प्राप्त कर पाते, जिस योग्यताको पहले छात्र एक दो पुस्तकोको पढकर प्राप्त कर लेते थे। कितने ही छात्रोमे वुद्धि स्वभावत प्रवल होती है, पर उन्हे अनुकूल साधन नही मिल पाते, इसलिये वे आगे वढनेसे रह जाते हैं। जिन्हे साधन अनुकूल प्राप्त हो जाते है, वे आगे वढ जाते है। इस समय उन्हे चिन्ता ही किस वातकी है, आरामसे वना वनाया भोजन प्राप्त होता है और गुरुजन तुम्हारे स्थानपर आकर पढा जाते है। एक समय वह था कि जव हम विद्याध्ययन करनेके लिए मीलो दूर गुरुओके स्थानपर जाया करते थे, हाथसे रोटी वनाकर खाते थे, गुरुओकी शुश्रूपा करते थे, तव कही कुछ हाथ लगता था, पर आज तो सव सुविधाएँ है, फिर भी अध्ययन न हो तो दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

'ज्ञान सुखस्य कारणम्' ज्ञान सुखका कारण है, परन्तु परिपक्व

ज्ञानसे ही सुख होता है, यह निश्चय रखना चाहिए। जिसका ज्ञान अपरिपक्व है, वह 'न इधरका न उधरका'—कहीका नही रहता। उसे पद-पदपर त्रास उठाना पडता है। अत जिस विषयको पढो, मनोयोगसे पढो और खूब पढो। अनेक विषयोकी अपेक्षा एक ही विषयका परिपक्व ज्ञान हो जावें, तो उत्तम है।

श्रावणकृष्णा १० स० २००९ को समाचार मिला कि डालमियाँ नगरमे श्रावण कृष्णा ८ सोमवारकी रात्रिको १२ बजकर १५ मिनटपर श्री सूर्यसागरजी महाराजका समाधिपूर्वक देहावसान हो गया। समाचार सुनते ही हृदयपर एक आघात-सा लगा। आप एक विशिष्ट आचार्य थे, फिरोजाबादके साक्षात्कारके अनन्तर तो आपमे हमारी अत्यन्त भक्ति हो गई थी। इसके पहले जव आपकी रुग्णावस्थाके समाचार श्रवण किये थे तब मनमे आया था कि एक वार उनके चरणोमे पहुँचकर उनकी वैयावृत्त्य करे, परन्तु बाह्यत्यागके सकोचमे पड गये। हमारा मनोरथ मनका मनमे रह गया। श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजीके नेत्रोसे तो अश्रुधारा बहने लगी, क्योकि आपने उन्हीसे दीक्षा ली थी। मुनि महाराज तथा हमने आज उपवास रक्खा। कटरामे मन्दिरके सामने शोकसभा हुई, जिसमे वहुत भारी जनता आई। विद्वानोने समाजको उनका परिचय कराया तथा उनका गुणगानकर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

दिल्लीसे श्रीराजकृष्णजी, जैनेन्द्रकिशोरजी तथा लाला मुन्शीलालजी आदि और कलकत्तासे छोटेलालजी आये। सव वर्णीभवनके हालमे ठहरे। रक्षाबन्धन पर्वकी आज चर्या श्रीराजकृष्ण तथा जनेन्द्रकिशोरके यहाँ हुई, किन्तु भाग्यवश कटोरी भर भी दुग्धपान न कर पाया कि कटोरीमे मृत मक्षिका निकल गई। भोजनमे अन्तराय हो गया। इसके पूर्व चतुर्दशीका उपवास किया था। लोगोको बहुत दु ख हुआ। द्वितीय दिन श्रीराजकृष्णजीके यहाँ भोजन हुआ। श्रीजैनेन्द्रकिशोरजोने अनारका रस दिया। २ दिनके बाद आज पारणा हुई। लोगोको अत्यन्त आनन्द हुआ। इसी समय श्रीछोटेलालजी (कलकत्ता) ने १०००) विद्यादानमे अर्पित किये, जिनमे मैने विद्यालयको ६००), विधवाश्रमको ३००) और उदासीनाश्रमको १००) दिला दिये। श्रीमुन्शीलालजी देहलीवालोने एक लाख रुपया समन्तभद्र विद्यालयको दिया। यह विद्यालय दिल्लीमे अनाथाश्रमके पास सामने जो भूमि है, उसीपर वनेगा। चौधरन वाईके मन्दिर मे उनके १ लाखके दानकी घोषणा हुई। उन्हे समाजकी ओरसे पगडी

बँधायी गई। श्रीसिंघई कुन्दनलालजीके द्वारा पगडीका कार्य सम्पन्न हुआ। सेठ भगवानदासजीने पुष्पमाला पहिनाई। श्रीछोटेलालजीने अच्छा व्याख्यान दिया। आप १ पुरातनवेत्ता हैं। आपने पुराने तीर्थक्षेत्रो तथा प्रतिमाओंकी फिल्म ली है। एक दिन रात्रिको उनका प्रदर्शन किया। सिं० डालचन्द्रजीने सब आगन्तुकोको भोजन कराया। प्रसन्नता से सब लोग अपने-अपने स्थान गये। हम शान्तिसे समययापन करते रहे।

पर्यूषण पर्व आनेवाला था, इसलिये समग्र समाजमे उत्साह भर रहा था।

■

यहाँ श्री चौधरनबाईके मन्दिरमे पुष्कल स्थान है, इसलिये प्रात.काल-के प्रवचनकी व्यवस्था इसी मन्दिरमे रहती थी। प्रात ८॥ बजेसे श्री मुनि आनन्दसागरजीका प्रवचन उसके बाद प० द्वारा तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ और उसके बाद धर्मपर हमारा प्रवचन होता था। प्रवचनोकी कापी प० पन्नालालजी साहित्याचार्यने की थी। जन-कल्याणकी दृष्टिसे उन प्रवचनोको यहाँ दे देना उपयुक्त समझता हूँ।

आज पर्वका प्रथम दिन है, ३५० दिन बाद यह पर्व आया है। क्षमा सबसे उत्तम धर्म है। (जिसके क्षमा धर्म प्रकट हो गया उसके मार्दव, आर्जव और शौच धर्म भी अवश्यमेव प्रकट हो जावेगे। क्रोधके अभावसे आत्मामे शान्ति गुण प्रकट होता है। वैसे तो आत्मामे शान्ति सदा विद्यमान रहती है, क्योकि वह आत्माका स्वभाव है—गुण है। गुण गुणीसे दूर कैसे हो सकता है? परन्तु निमित्त मिलनेपर वह कुछ समयके लिए तिरोहित हो जाता है। स्फटिक स्वभावत स्वच्छ होता है, पर उपाधिके ससर्गसे अन्य रूप हो जाता है। हो जाओ, पर क्या वह उसका स्वभाव कहलाने लगेगा? नही, अग्निका ससर्ग पाकर जल उष्ण हो जाता है। पर वह उसका स्वभाव तो नही कहलाता। स्वभाव तो शीत-लता ही है। जहाँ अग्निका सम्बन्ध दूर हुआ कि फिर शीतलका शीतल। क्या बतलावें? पदार्थका स्वरूप इतना स्पष्ट और सरल है, परन्तु अनादिकालीन मोहके कारण वह दुरूह हो रहा है।)

क्रोधके निमित्तसे आदमी पागल हो जाता है और इतना पागल कि अपने स्वरूप तकको भूल जाता है। वस्तुकी यथार्थता उसकी दृष्टिसे लुप्त हो जाती है। एकने एकको घूँसा मार दिया। वह उसका घूँसा काटनेको तैयार हो गया, पर इससे क्या? घूँसा मारनेका जो निमित्त था उसे दूर करना था। वह मनुष्य कुक्कुरवृत्ति पर उतारू हुआ है। कोई कुत्तेको लाठी मारता है, तो वह लाठीको दाँतोसे चबाने लगता है, पर सिंह बन्दूककी ओर न झपट कर बन्दूक मारनेवालेकी ओर झपटता है। विवेकी मनुष्यकी दृष्टि सिंहकी तरह होती है। वह मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है। आज हम क्रोधका फल प्रत्यक्ष देख रहे है। लाखो निरपराध प्राणी मारे गये और मारे जा रहे है। क्रोध चारित्र-

मोहकी प्रकृति है। उससे आत्माके सयम-गुणका घात होता है। क्रोधके अभावमे प्रकट होनेवाला क्षमा-गुण सयम है, चारित्र है। राग-द्वेषके अभावको ही तो चारित्र कहते हैं'।'

ज्ञानसूर्योदय नाटककी प्रारम्भिक भूमिकामे सूत्रधार नटीसे कहता है कि आजकी यह सभा अत्यन्त शान्त है, इसलिये कोई अपूर्व कार्य इसे दिखलाना चाहिये। वास्तवमे शान्तिके समय कौन-सा अपूर्व कार्य नही होता ? मोक्षमार्गमे प्रवेश होना ही अपूर्व कार्य है। शान्तिके समय उसकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। आप लोग प्रयत्न कीजिये कि मोक्षमार्गमे प्रवेश हो और ससारके अनादि बन्धन खुल जाँय। आजके दिन जिसने क्षमा धारण नही की, वह अन्तिम दिन क्षमावणी क्या करेगा ? 'मै तो आज क्षमा चाहता हूँ' इस वाचनिक क्षमाकी आवश्यकता नही है। हार्दिक क्षमासे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। क्षमाके अभावमे अच्छेसे अच्छे आदमी बरबाद हो जाते है।

मैं नदिया (नवद्वीप) मे दुलारझाके पास न्याय पढता था। वे न्याय-शास्त्रके बडे भारी विद्वान् थे। उन्होने अपने जीवनमे २५ वर्ष न्याय ही न्याय पढा था। वे व्याकरण प्राय नही जानते थे। एक दिन उन्होने किसी प्रकरणमे अपने गुरुजीसे कहा, कि जैसा 'वक्ति' होता है, वैसा 'ब्रोति' क्यो नही होता ? उनके गुरुजी उनकी मूर्खता पर बहुत क्रुद्ध हुए, और बोले, कि तू बैल है, भाग जा यहाँसे। दुलार झाको बहुत बुरा लगा। उनका एक साथी जो व्याकरण अच्छा जानता था, और न्याय पढ़ता था। दुलार झाने कहा कि यहाँ क्या पढते हो ? चलो, हम तुम्हे घर पर न्याय बढिया पढा देगे। साथी इनके गाँवको चला गया। वहाँ उन्होने उससे एक सालमे तमाम व्याकरण पढ डाला और एक साल बाद अपने गुरुके पास आकर क्रोधसे कहा कि तुम्हारे बापको धूल दी, पूछ ले व्याकरण कहाँ पूछना है ? गुरुने हँसकर कहा—आओ बेटा। मै यही तो चाहता था कि तुम इसी तरह निर्भीक बनो। मैं तुम्हारी निर्भीकतासे बहुत सन्तुष्ट हुआ, पर मेरी एक बात याद रक्खो—

अपराधिनि चेत्कोध क्रोधे क्रोध कथ न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणा चतुर्णा परिपन्थिनि ॥

दुलारझा अपने गुरुकी क्षमाको देखकर नतमस्तक रह गये। क्षमासे क्या नही होता ? अच्छे-अच्छे मनुष्योका मान नष्ट हो जाता है। दर-भगामे दो भाई थे। दोनो इतिहासके विद्वान् थे। एक बोला कि आला

पहले हुआ है, और दूसरा बोला कि ऊदल पहले हुआ है। इसीपर दोनोमे लडाई हो गई। आखिर मुकदमा चला और जागीरदारसे किसानकी हालतमे आ गये। क्षमा सर्व गुणोकी भूमि है। इसमे सब गुण सरलतासे विकसित हो जाते हैं। क्षमासे भूमिकी शुद्धि होती है। जिसने भूमिको शुद्ध कर लिया, उसने सब कुछ कर लिया। एक गाँवमे दो आदमी थे—एक चित्रकार और दूसरा अचित्रकार। अचित्रकार चित्र बनाना तो नही जानता था, पर था प्रतिभाशाली। चित्रकार बोला कि मेरे समान कोई चित्र नही बना सकता। दूसरेको उसकी गर्वोक्ति सह्य नही हुई, अत उसने झटसे कह दिया कि मै तुमसे अच्छा चित्र बना सकता हूँ। विवाद चल पडा। अपना-अपना कौशल दिखानेके लिये दोनो तुल पडे। तय हुआ कि दोनो चित्र बनावे, फिर अन्य परीक्षकोसे परीक्षा कराई जावे। एक कमरेकी आमने सामनेकी दीवालो पर दोनो चित्र बनानेको तैयार हुए। कोई किसीका देख न ले, इसलिए बीचमे परदा डाल दिया गया। चित्रकारने कहा कि मैं १५ दिनमे चित्र तैयार कर लूँगा। इतने ही समयमे तुझे भी करना पडेगा। उसने कहा—मैं पौने पन्द्रह दिनमे कर दूँगा, घबडाते क्यो हो ? चित्रकार चित्र बनानेमें लग गया और दूसरा दीवाल साफ करनेमे। उसने १५ दिनमे दीवाल इतनी साफ कर दी कि काचके समान स्वच्छ हो गई। १५ दिन बाद लोगोके सामने बीचका परदा हटाया गया। चित्रकारका पूरा चित्र उस स्वच्छ दीवालमे प्रतिबिम्बित हो गया, और इस तरह कि उसे स्वय अपने मुहसे कहना पडा कि तेरा चित्र अच्छा है। क्या उसने चित्र बनाया था ? नही, केवल जमीन ही स्वच्छ की थी, पर उसका चित्र बन गया, और प्रतिद्वन्द्वीकी अपेक्षा अच्छा रहा। आप लोग क्षमा धारण करे, चाहे उपवास, एकाशन आदि न करें। क्षमा ही धर्म है और धर्म ही चारित्र है। कुन्दकुन्द स्वामीका वचन है—

> चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
> मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

यह जीव अनादिकालसे परपदार्थको अपना समझ कर व्यर्थ ही सुखी दु खी होता है। जिसे यह सुख समझता है, वह सुख नही है। वह ऊचाई नही, जहाँसे फिर पतन हो। वह सुख नही, जहाँ फिर दु खकी प्राप्ति हो। यह वैषयिक सुख पराधीन है, बाधा सहित है, इतने पर भी नष्ट हो जानेवाला है, और आगामी दुःखका रण है। इसे सुख कहेगा ? इस शरीरसे आप स्नेह

है ? आप ही बताओ। माता-पिताके रज-वीर्यसे इसकी उत्पत्ति हुई। यह हड्डी, मास, रुधिर आदिका स्थान है। उसीकी फुलवारी है। यह मनुष्य-पर्याय साटेके समान है। साटेकी जड तो सडी होनेसे फेक दी जाती है, वाड भी बेकाम होता है, और मध्यमे कीडा लग जानेसे वेस्वाद हो जाता है। इसी प्रकार इस मनुष्यकी वृद्ध अवस्था शरीर शिथिल हो जानेसे बेकार है। बाल अवस्था अज्ञानीकी अवस्था है, और मध्यदशा अनेक रोग सकटोसे भरी हुई है। उसमे कितने भोग भोगे जा सकेंगे ? पर यह जीव अपनी हीरा-सी पर्याय व्यर्थ ही खो देता है। जिस प्रकार बातकी व्याधिसे मनुष्यके अङ्ग-अङ्ग दु खने लगते हैं। कषायसे—विषयेच्छासे इसकी आत्माका प्रत्येक प्रदेश दु खी हो रहा है। यह दूसरे पदार्थको जब तक अपना समझता है, तभी तक उसे अपनाये रहता है। उसकी रक्षा आदिमे व्यग्र रहता है, पर ज्यो ही उसे परमे परकीय बुद्धि हो जाती है, उसका त्याग करनेमे उसे देर नही लगती। एक बार धोबीके यहाँ दो मनुष्योने कपडे धुलानेको दिये। दोनोके कपडे एक समान थे, धोबी भूल गया, वह बदल कर दूसरेका कपडा दूसरेको दे आया। एक खास परीक्षा किये विना दुपट्टाको अपना समझ ओढ कर सो गया, पर दूसरेने परीक्षा की तो उसे अपना दुपट्टा वदला हुआ मालूम हुआ। उसने धोबीसे कहा। धोबीने गलती स्वीकार कर उसका कारण बतलाया और झटसे उस सोते हुए मनुष्यके दुपट्टेका अंचल खीचकर कहा—जरा जागिये, आपका कपडा बदल गया है। आपका यह है, वह मुझे दीजिये। धोबीके कहने पर ज्यो ही उसने लक्षण मिलाये, त्यो ही उसे उसकी बात ठीक जँची। अब उसे उस दुपट्टेसे, जिसे वह अपना समझ मु ह पर डाले हुए था, घृणा होने लगी, और तत्काल उसने धोबीको वापिस कर दिया। आपके शुद्ध चैतन्य भावको छोडकर सभी तो आपसे परपदार्थ है, परन्तु आप नीदमें मस्त हो, उन्हें अपना समझ रहे हैं। स्वपरस्वरूपोपादानापोहनके द्वारा अपनेको अपना समझो और पर को पर। फिर कल्याण तुम्हारा निश्चित है।

आप लोग कल्याणके अर्थ सही प्रयाण तो करना नही चाहते और कल्याणकी इच्छा करते है, सो कैसे हो सकता है ? जैनधर्म यह तो मानता नही है कि किसीके वरदानसे किसीका कल्याण हो जाता है। यहाँ तो कल्याणके इच्छुक जनको प्रयत्न स्वय करना होगा। कल्याण कल्याणके ही मार्गसे होगा। मुझे एक कहानी याद आती है। वह यह कि एक बार महादेवजीने अपने भक्तपर प्रसन्न होकर कहा—बोल, तूँ क्या चाहता है ? उसके लडका नही था, अत उसने लडका ही माँगा। महादेवजीने 'तथास्तु' कह दिया। घर आनेपर उसने स्त्रीसे कहा—आज सब काम

वन गया, साक्षात् महादेवजीने वरदान दे दिया कि तेरे लडका हो जायगा। भगवान्के वचन तो झूठ होते नही। अव कोई पाप क्यो किया जाय? हम दोनो व्रह्मचर्यसे रहे। स्त्रीने पतिकी वात मान ली। पर व्रह्मचारीके सन्तान कहाँ? वर्षोपर वर्ष व्यतीत हो गई, परन्तु सन्तान नही। स्त्रीने कहा—भगवान्ने तुम्हे धोखा दिया। पुरुष बेचारा लाचार था। वह फिर महादेवजीके पास पहुँचा और बोला भगवन्! दुनिया झूठ बोले सो तो ठीक है, पर आप भी झूठ वोलने लगे। आपको वरदान दिये १२ वर्प होगये, पर आज तक लडका नही हुआ, ठगनेके लिये मै ही मिला। महादेवजीने कहा—तुमने लडका पानेके लिए क्या किया? पुरुषने कहा—हम लोग तो आपके वरदानका भरोसाकर व्रह्मचर्यसे रहे। महादेवजीने हँसकर कहा भाई मैंने वरदान दिया था, सो सच दिया था, पर लडका लडकेके रास्ते होगा। व्रह्मचारीके सतान कैसे होगी? तू ही वता, मै आकाशसे तो गिरा नही देता। ऐसा ही हाल हम लोगोका है, कल्याण कल्याणके मार्गसे ही होगा।

यह मोह दु खदायी है—शास्त्रोमे लिखा है, आचार्योने कहा है, हम भी कहते है, पर वह झूठा तो है ही नही। प्रयत्न जो हमारे अधूरे होते है। पूज्यपाद स्वामी समाधितन्त्रमे कहते है कि—

यन्मया दृश्यते रूप तन्न जानाति सवथा।
यज्जानाति न तद् दृश्य केन साक व्रवीम्यहम्॥

जो दिखता है वह जानता नही है, और जो जानता है वह दिखता नही, फिर मै किसके साथ वातचीत करूँ? अर्थात् किसीके साथ बोलना नही चाहिये, यह आत्माका कर्तव्य है। वे ऐसा लिखते है, पर स्वय बोलते है, स्वय दूसरोको ऐसा करनेका उपदेश देते है। तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन आपने सुना। उसकी भूमिकामे उसके वननेके दो तीन कारण वतलाये है, पर राजवार्तिकमे अकलकदेवने जो लिखा है, वह बहुत ही ग्राह्य है। वे लिखते है कि इस सूत्रकी रचनामे गुरु-शिष्यका सवध अपेक्षित नही है किंतु अनन्त ससारमे निमज्ज जीवोका अभ्युद्धार करनेकी इच्छासे प्रेरित हो आचार्यने स्वय वैसा प्रयास किया है। कहनेका तत्पर्य है कि मोह चाहे छोटा हो, चाहे वडा, किसीको नही छोडता। भगवान् ऋषभदेव तो युगके महान् पुरुष थे, पर उन्होने भी मोहके उदयमे अपनी आयु ८३ लाख पूर्व विता दिये। आखिर, इन्द्रका इस ओर ध्यान गया कि १८ कोडाकोडी सागरके वाद इस महापुरुषका जन्म हुआ और यह सामान्य जीवोकी तरह ससारमे फँस रहा है, स्त्रियो और पुत्रोके स्नेहमे डूव रहा है,

ससारके प्राणियोका कल्याण कैसे होगा ? उसने यह सोचकर नीलञ्जनाके नृत्यका आयोजन किया और उस निमित्तसे भगवान्‌का मोह दूर हुआ। जब मोह दूर हुआ तब ही उनका और उनके द्वारा अनन्त ससारी प्राणियोका कल्याण हुआ। रामचन्द्रजी सीताके स्नेहमे कितने भटके, लडाई लडी, अनेकोका सहार किया, पर जब स्नेह दूर हो गया तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितना प्रयत्न किया उन्हे तपसे विचलित करनेका। पर क्या वह विचलित हुए ? मोह ही ससारका कारण है, मेरा यही अटल श्रद्धान है।

हम मोहके कारण ही अपने आपको दुनियाका कर्ता-धर्ता मानते है। पर यथार्थमे पूँछो तो कौन कहाँका ? कहाँकी स्त्री ? कहाँका पुत्र ? कौन किसको अपनी इच्छानुसार परिणमा सकता है। 'कहीकी ईट कहीका रोडा भानमतीने कुनबा जोडा' ठीक हम लोग भी भानमतीके समान ही कुनबा जोड रहे है। नही तो कहाँका मनुष्य, कहाँका क्या ? इसलिए जो ससारके बन्धनसे छूटना चाहते है, उन्हे मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आप लोग बिना कुछ किये कल्याण चाहते हो, पर वह इस तरह होनेका नही। आपका हाल ऐसा है कि 'अम्मा मैं तैरना सीखूँगा, पर पानीका स्पर्श नही करूँगा।

: २ :

मार्दवका अर्थ कोमलता है। कोमलतामे अनेक गुण वृद्धि पाते है। यदि कठोर जमीनमे बीज डाला जाय, तो व्यर्थ चला जायगा। पानीकी वारिसमे जो जमीन कोमल हो जाती है, उसीमे बीज जमता है। बच्चोको प्रारम्भमे पढाया जाता है—

विद्या ददाति विनय विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं तत सुखम्॥

(विद्या विनयको देती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रतासे धन मिलता है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है। जिसने अपने हृदयमे विनय धारण नही किया, वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है? विनयी छात्रपर गुरुका इतना आकर्षण रहता है कि वह उसे एक साथ सब कुछ वतलानेको तैयार रहता है।)

एक स्थानपर एक पण्डितजी रहते थे। पहले गुरुओके घरपर ही छात्र रहा करते थे तथा गुरु उनपर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। पण्डितजीका एक छात्रपर विशेष स्नेह था, पण्डितानी उनको वार-वार कहा करती कि सभी लडके तो आपकी विनय करते है, आपको मानते है, फिर आप इसी एककी क्यो प्रशसा करते है। पण्डितजीने कहा कि इस जैसा कोई मुझे नही चाहता। यदि तुम इसकी परीक्षा ही करना चाहती हो, तो मेरे पास बैठ जाओ। आमका सीजन था, गुरुने अपने हाथपर एक पट्टीके भीतर आम वाँध लिया। और दु खी जैसी सूरत वनाकर कराहने लगे। समस्त छात्र गुरुजीके पास दौडे आये। गुरुने कहा दुर्भाग्यवश भारी फोडा हो गया है। छात्रोने कहा मै अभी वैद्य लाता हूँ, ठीक हो जावेगा। गुरुने कहा वेटो! यह वैद्यसे अच्छा नही होता—एक वार पहले भी मुझे हुआ था। तव मेरे पिताने इसे चूसकर अच्छा किया था, यह चूसनेसे ही अच्छा हो सकता है। मवादसे भरा फोडा कौन चूसे? सब ठिठक कर रह गये। इतनेमे वह छात्र आ गया, जिसकी गुरु वहुत प्रशसा किया करते थे। आकर वोला—गुरुजी क्या कष्ट है? वेटा! फोडा है, चूसनेसे ही अच्छा होगा गुरुने कहा। गुरुजीके कहनेकी देर थी कि उस छात्रने उसे अपने मुँहमे ले लिया। फोडा तो था ही नही, आम था। पण्डितानीको अपने पतिके वचनोपर विश्वास हुआ। आजका छात्र तो

गुरुको नौकर समझ उसका वहुत ही अनादर करता है। यही कारण है कि उसके हृदयमे विद्याका वास्तविक प्रवेश नही हो रहा है। क्या कहे आजकी वात ? आज तो विनय रह ही नही गया। सभी अपने आपको वडेसे वडा अनुभव करते हैं। मेरा मान नही चला जाय, इसकी फिकरमे सव पडे हैं, पर इस तरह किसका मान रहा है ? आप किसीको हाथ जोडकर या शिर झुकाकर उसका उपकार नही करते, वल्कि अपने हृदयसे मानरूपी शत्रुको हराकर अपने आपका उपकार करते हैं। किसीने किसीकी वात मान ली, उसे हाथ जोड लिये, शिर झुका दिया, उतनेसे ही वह खुश हो जाता है और कहता है कि इसने हमारा मान रख लिया। अरे मान रख क्या लिया ? अपि तो खो दिया। आपके हृदयमे जो अहकार था उसने उसे अपनी शारीरिक क्रियासे दूर कर दिया ?

दिल्लीमे पञ्चकल्याणक हुआ था। पञ्चकल्याणकके वाद लाडू बाँटनेकी प्रथा वहाँ थी। लाला हरसुखरायजीने नौकरके हाथ सवके घर लाडू भेजा, लोगोने सानन्द लाडू ले लिया; पर एक गरीव आदमीने जो चना गुड आदिकी दुकान किये था, यह विचार कर लाडू लेना अस्वीकृत कर दिया कि मैं कभी लालाजीको पानी नही पिला सकता, तव उनके लाडूका व्यवहार कैसे पूर्ण कर सकूँगा ? शामके समय जब लालाजीको पता चला तो दूसरे दिन वे स्वय लाडू लेकर नौकरके साथ गाडीपर सवार हो उसकी दूकानपर पहुचे और वडी विनयसे दूकानपर वैठकर उसकी डालीमेसे कुछ चने और गुड उठाकर खाने लगे। खानेके वाद वोले—लाओ पानी पिलाओ। पानी पिया, तदनन्तर बोले कि भाई अव तो मै तुम्हारा पानी पी चुका, अव तो तुम्हे हमारा लाडू लेना अस्वीकृत नही करना चाहिये। दूकानदार अपने व्यवहार और लालाजीकी सौजन्यपूर्ण प्रवृत्तिसे दङ्ग रह गया। लाडू लिया और आँखोसे आँसू गिराने लगा कि इनकी महत्ता तो देखो कि मुझ जैसे तुच्छ व्यक्तिको भी ये नही भुला सके। आजका वडा आदमी क्या कभी किसी गरीवका इस प्रकार ध्यान रख सकता है ?

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, वल, ऋद्धि, तप और शरीरकी सुन्दरता इन आठ बातोको लेकर मनुष्य गर्व करता है, पर जिनका वह गर्व करता हैं, क्या वे इसकी है ? सदा इसके पास रहनेवाली है ? क्षायोपशमिक ज्ञान आज है, कल इन्द्रियोमे विकार आ जानेसे नष्ट हो जाता है। जहाँ चक्रवर्तीकी भी पूजा स्थिर नही रह सकी, वहाँ अन्य लोगोकी पूजा स्थिर रह

सकेगी, यह सम्भव नही है। कुल और जातिका अहङ्कार क्या है ? सबकी खान निगोदराशि है। आज कोई कितना ही बडा क्यो न वना हो, पर निश्चित है कि वह किसी न किसी समय निगोदसे ही निकला है। उसका मूल निवास निगोदमे ही था। वलका अहकार क्या ? आज शरीर तगडा है पर जोरका मलेरिया आ जाय तथा चार छह लँघने हो जावे, तो सूरत वदल जाय, उठते न बने। धन-सम्पदाका अभिमान थोता अभिमान है, मनुष्यकी सम्पत्ति जाते देर नही लगती। इसी प्रकार तप और शरीरके सौन्दर्यका अभिमान करना व्यर्थ है।

कलके दिन प्रथमाध्यायमे आपने सम्यग्दर्शनका वर्णन सुना था। जिस प्रकार अन्य लोगोके यहाँ ईश्वर या खुदाका माहात्म्य है, वैसा ही जैनधर्ममे सम्यग्दर्शनका माहात्म्य है। सम्यग्दर्शनका अर्थ आत्मलब्धि है। आत्मीक स्वरूपका ठीक-ठीक वोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। आत्मलब्धिके सामने सव सुख धूल हैं। सम्यग्दर्शनसे आत्माका महान् गुण जागृत होता है, विवेकशक्ति जागृत होती है। आजकल लोग हर एक बातमे 'क्यो ? क्यो ?' करने लगते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि उनमे श्रद्धा नही है। श्रद्धाके न हानेसे ही हर एक बातमे कुतर्क उठा करते हैं। एक आदमीको 'क्यो' का रोग हो गया। उससे बेचारा बडा परेशान हुआ। पूछने पर किसी भले आदमीने सलाह दी कि तू इसे किसीको बेच डाल, भले ही सौ पचास लग जाय। बीमार आदमी इस विचारमे पडा कि यह रोग किसे बेचा जाय ? किसीने सलाह दी कि स्कूलके लडके बडे चालाक होते है, ५०) देकर किसी लडकेको बेच दे। उसने ऐसा ही किया। एकने ५०) लेकर उसका वह रोग ले लिया। सव लडकोने मिलकर ५० की मिठाई खाई। जब लडका मास्टरके सामने गया, और मास्टरने पूछा कि कलका सवक सुनाओ, तब लडका वोला—क्यो ? मास्टरने कान पकड कर लडकेको वाहर निकाल दिया। लडका समझा कि 'क्यो' का रोग तो वडा खराव है, वह उसको वापिस कर आया। अबकी वार उसने सोचा कि चलो अस्पतालके किसी मरीजको बेच दिया जाय तो अच्छा है। ये लोग तो पलग पर पडे-पडे आनन्द करते ही हैं। ऐसा ही किया, एक मरीजको वेच आया। दूसरे दिन डाक्टर आये। पूछा—तुम्हारा क्या हाल है ? मरीजने कहा—क्यो ? डाक्टरने उसे अस्पतालसे वाहर कर दिया। उसने भी समझा कि दर असल यह रोग तो वडा खराव है। वह भी वापिस कर आया। अबकी बार उसने सोचा कि अदालती आदमी वडे

टँच होते है, उन्हीको वेचा जाय। निदान, एक आदमीको वेच दिया। वह मजिस्ट्रेटके सामने गया। मजिष्ट्रेटने कहा कि तुम्हारी नालिशका ठीक-ठीक मतलव क्या है ? आदमीने कहा—क्यो ? मजिष्ट्रेटने मुकद्दमा खारिज कर कहा कि घरकी राह लो। यह तो कहानी है, पर विचार कर देखा जाय, तो हर एक वातमे कुतर्कसे काम नही चलता। युक्तिके वलसे सभी वातोका निर्णय नही किया जा सकता। कितनी ही वाते ऐसी है, जिनका आगमसे निर्णय होता है और कितनी ही वाते ऐसी है, जिनका युक्तिसे निर्णय होता है। यदि आपको धर्ममे श्रद्धा न होती तो हजारोकी सख्यामे क्यो आते ?

आचार्योने सवसे पहले यही कहा कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। आचार्यकी करुणावुद्धि तो देखो। अरे, मोक्ष तो तव हो जव पहले वन्ध हो। यहाँ पहले वन्धका मार्ग वतलाना था, फिर मोक्षका, परन्तु उन्होने मोक्षमार्गका पहले वर्णन किया है। उसका कारण यही है कि ये प्राणी अनादिकालसे वन्ध जनित दु खका अनुभव करते-करते घवडा गये है, अत पहले इन्हे मोक्षका मार्ग वतलाना चाहिये। जैसे जो कारागारमे पडकर दु खी होता है, वह यह नही जानना चाहता है कि मै कारागारमे क्यो पडा ? वह तो यह जानना चाहता है कि मै इस कारागारसे छूटूँ कैसे ? यही सोच कर आचार्यने पहले मोक्षका मार्ग वतलाया है। सम्यग्दर्शनके रहनेसे विवेकशक्ति सदा जागृत रहती है। वह विपत्तिमे पड़ने पर भी कभी अन्यायको न्याय नही समझता। रामचन्द्रजी सीताको छुडानेके लिये लङ्का गये थे। लकाके चारो ओर उनका कटक पडा था। हनुमान आदिने रामचन्द्रजीको खवर दी कि रावण जिनमन्दिरमे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि उसे यह विद्या सिद्ध हो गई, तो फिर वह अजेय हो जायगा। आज्ञा दीजिये कि जिससे हम लोग उसकी विद्यासिद्धिमे विघ्न करे। रामचन्द्रजीने कहा कि हम क्षत्रिय है, कोई धर्म करे और हम उसमे विघ्न डाले, यह हमारा कर्तव्य नही है। सीता फिर दुर्लभ हो जायगी यह हनुमानने कहा। रामचन्द्रजीने जोरदार शब्दोमे उत्तर दिया—हो जाय, एक सीता नही दशो सीताएं दुर्लभ हो जाँय, पर मै अन्याय करनेकी आज्ञा नही दे सकता। रामचन्द्रजीको इतना विवेक था, उसका कारण क्या था ? कारण था उनका सम्यग्दर्शन—विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन।

सीताको तीर्थयात्राके वहाने कृतान्तवक्र सेनापति जगलमे छोडने

गया। क्या उसका हृदय वैसा करना चाहता था ? नही, वह तो स्वामी की परतन्त्रतासे गया था। उस वक्त कृतान्तवक्रको अपनी पराधीनता काफी खली। जब वह निर्दोष सीताको जगलमे छोड अपने अपराधकी क्षमा माँग वापिस आने लगा, तव सीता उससे कहती है—सेनापते! मेरा एक सन्देश उनसे कह देना। वह यह कि जिस प्रकार लोकापवादके भयसे आपने मुझे त्यागा है, इस प्रकार लोकापवादके भयसे जैनधर्मको नही छोड देना। उस निराश्रित अपमानित स्त्रीको इतना विवेक बना रहा। इसका कारण क्या था ? उसका सम्यग्दर्शन। आजकलकी स्त्री होती तो पचास गालियाँ सुनाती और अपने समानताके अधिकार वताती। इतना ही नही, सीता जव नारदजीके आयोजन द्वारा लवणा-कुशके साथ अयोध्या आती है। एक वीरतापूर्ण युद्धके वाद पिता-पुत्रका मिलाप होता है, सीता लज्जासे भरी हुई राजदरवारमें पहुँचती है। उसे देखकर रामचन्द्रजी कह उठते है कि दुष्टे ? तू बिना शपथ दिये—विना परीक्षा दिये यहाँ कहाँ ? तुझे लज्जा नही आई ? सीताने विवेक और धैर्यके साथ उत्तर दिया कि मै समझी थी कि आपका हृदय कोमल है पर क्या कहूँ ? आप मेरी जिस प्रकार चाहे, शपथ ले ले। रामचन्द्रजीने उत्तेजनामे आकर कह दिया कि अच्छा अग्निमे कूद कर अपनी सचाईकी परीक्षा दो। वडे भारी जलते हुए अग्निकुण्डमें कूदनेके लिये सीता तैयार हुई। रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते है कि सीता जल न जाय। लक्ष्मणने कुछ रोषपूर्ण शब्दोमे उत्तर दिया कि यह आज्ञा देते समय न सोचा ? यह सती है, निर्दोष है। आज आप इसके अखण्ड शीलकी महिमा देखिये। इसी समय दो देव केवलीकी वन्दनासे लौट रहे थे। उनका ध्यान सीता-का उपसर्ग दूर करनेकी और गया, सीता अग्निकुण्डमे कूद पडी और कूदते ही साथ जो अतिशय हुआ, सो सब जानते हो। सीताके चित्तमे रामचन्द्रजीके कठोर शब्द सुनकर ससारसे वैराग्य हो चुका था, पर 'नि शल्यो व्रती' व्रतीको नि शल्य होना चाहिये। यदि बिना परीक्षा दिये मै व्रत लेती हूँ, तो यह शल्य निरन्तर वनी रहेगी। इसलिये उसने दीक्षा लेनेसे पहले परीक्षा देना आवश्यक समझा था। परीक्षामे वह पास हो गई, रामचन्द्रजी उससे कहते है—देवि! घर चलो। अब तक हमारा स्नेह हृदयमे था, पर अब आँखोमे आ गया है। सीताने नीरस स्वरमे कहा—

कहि सीता सुन रामचन्द्र ससार महादुख वृक्षकन्द।
तुम जानत पर कुछ करत नाहि .... ॥

रामचन्द्रजी । यह घर दुःखरूपी वृक्षकी जड है । अब मैं इसमें न रहूँगी। सच्चा सुख इसके त्यागमें ही है। रामचन्द्रजीने बहुत कुछ कहा—यदि मैं अपराधी हूँ तो लक्ष्मणकी ओर देखो, यदि यह भी अपराधी है, तो अपने बच्चों लवणाकुशकी ओर देखो और एक बार पुनः घरमें प्रवेश करो। परन्तु सीता अपनी दृढ़तामें च्युत नहीं हुई। उसने उसी वक्त केश उखाड कर रामचन्द्रजीके सामने फेंक दिये और जङ्गलमें जाकर आर्या हो गई। यह सब काम सम्यग्दर्शनका है। यदि उसे अपने कर्मपर, भाग्यपर विश्वास न होता, तो वह क्या यह सब कार्य कर सकती ?

अब रामचन्द्रजीका विवेक देखिये। जो रामचन्द्र सीताके पीछे पागल हो रहे थे, वृक्षोंसे पूछते थे—क्या तुमने मेरी सीता देखी है ? वही जब तपश्चर्यामें लीन थे, तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितने उपसर्ग किये, पर वह अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। शुक्ल ध्यान धारणकर केवली अवस्थाको प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शनसे आत्मामें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं जो सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यदि आपमें ये गुण प्रकट हुए हैं, तो समझ लो हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या बतलायगा कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि ? अप्रत्याख्यानावरणी कषायका संस्कार छह माहसे ज्यादा नहीं चलता। यदि आपकी किसीसे लडाई होनेपर छह माहसे अधिक काल तक बदला लेनेकी भावना रहती है, तो समझ लो कि अभी हम मिथ्यादृष्टि हैं। कषायके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। उनमें मनका स्वरूपसे ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अवस्थामें इस जीवकी विषय-कषायमें जैसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति होती है, वैसी सम्यग्दर्शन होने पर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चारित्रमोहके उदयसे यह उसे छोड नहीं सकता हो, पर प्रवृत्तिमें शैथिल्य अवश्य आ जाता है। प्रशमका अर्थ यह भी है, जो पूर्वकी अपेक्षा अधिक ग्राह्य है। वह यह कि सद्यःकृतापराध जीवोंपर भी रोष उत्पन्न नहीं होना प्रशम कहलाता है। बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करते समय रामचन्द्रजीने रावणपर जो रोष नहीं किया था, वह इसका उत्तम उदाहरण है। प्रशम गुण तब तक नहीं हो सकता जब तक अनन्तानुबन्धी क्रोध विद्यमान रहता है। उसके छूटते ही प्रशम गुण प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्यों अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी मान, माया, लोभ सभी कषाय प्रशमगुणके घातक हैं। संसारसे भय उत्पन्न होना संवेग है। विवेकी मनुष्य जब चतुर्गतिरूप संसारके दुःखोंका चिन्तन करता है, तब उसकी आत्मा भयभीत हो जाती

है, तथा दु खके कारणोसे निवृत्त हो जाती है। दुःखी मनुष्यको देखकर हृदयमे कम्पन उत्पन्न हो जाना अनुकम्पा है। मिथ्यादृष्टिकी अनुकम्पा और सम्यग्दृष्टिकी अनुकम्पामे अन्तर होता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य जव किसी आत्माको क्रोधादि कपायोसे अभिभूत तथा भोगासक्त देखता है, तब उसके मनमे करुणाभाव उत्पन्न होता है कि देखो, बेचारा कषायके भारसे कितना दव रहा है? इसका कल्याण किस प्रकार हो सकेगा? आप्त, व्रत, श्रुत, तत्त्वपर तथा लोक आदि पर श्रद्धापूर्ण भावका होना आस्तिक्य भाव है। ये गुण सम्यग्दर्शनके अविनाभावी है। यद्यपि मिथ्यात्वकी मन्दतामे भी ये हो जाते है तथापि वे यथार्थ गुण नही, किन्तु गुणाभास कहलाते है।

: ३ :

आज आर्जव धर्म है। आर्जवका अर्थ सरलता है और सरलताके मायने मन-वचन-कायकी एकता है। मनमे जो विचार आया हो, उसे वचनसे कहा जाय और जो वचनसे कहा जाय, उसीके अनुसार कायसे प्रवृत्ति की जाय। जव इन तीनो योगोकी प्रवृत्तिमे विषमता आ जाती है, तव माया कहलाने लगती है। यह माया शल्यकी तरह हृदयमे सदा चुभती रहती है। इसके रहते हुए मनुष्यके हृदयमे स्थिरता नही रहती और स्थिरताके अभावमे उसका कोई भी कार्य यथार्थरूपमे सिद्ध नही हो पाता।

मान और लोभके बीचमे मायाका पाठ आया है, सो उसका कारण यह है कि माया मान और लोभ—दोनोके साथ सम्पर्क रखती है। दोनोसे उसकी उत्पत्ति होती है। मानके निमित्तसे मनुष्यको यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरे वडप्पनमे कोई प्रकारकी कमी न आ जाय, परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे वडप्पनका कार्य करनेमे असमर्थ रहता है, इसलिए मायाचाररूपी प्रवृत्ति कर अपनी हार्दिक कमजोरीको छिपाये रखता है। मनुष्य जिस रूपमे वस्तुत है उसी रूपमे उसे अपने आपको प्रगट करना चाहिये। इसके विपरीत जव वह अपनी दुर्बलताको छिपाकर बड़ा बननेका प्रयत्न करता है, तव मायाकी परिणति उसके सामने आती है। यही दम्भ है, माया है। जिनागम तो यह कहता है कि जितनी शक्ति हो उतना कार्य करो और अपने असली रूपमे प्रकट होओ। लोभके वशी-

(भूत होकर जीव नानाप्रकारके कष्ट भोगता है तथा इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए निरन्तर अध्यवसाय करता है। वह तरह-तरहकी छल-क्षुद्रताओको करता है। मोहकी महिमा विचित्र है।) आपने पद्मपुराणमे त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्व भव श्रवण किये होगे। एक मुनिने एक स्थान पर मासोपवास किये। व्रत पूर्ण होने पर वे तो कही अन्यत्र विहार कर गये, पर उनके स्थानपर अन्यत्रसे विहार करते हुए दूसरे मुनि आगये। नगरके लोग उन्हे ही मासोपवासी मुनि समझ उनकी प्रभावना करने लगे, पर उन आगन्तुक मुनिको यह भाव नही हुआ कि कह दे—मै मासोपवासी नही हूँ। महान् न होनेपर भी महान् बननेकी आकाक्षाने उनकी आत्माको मायाचारसे भर दिया और उसका परिणाम क्या हुआ सो आप जानते है। मनुष्य अपने पापको छिपानेका प्रयत्न करता है, पर वह रुईमे लपेटी आगके समान स्वयमेव प्रकट हो जाता है। किसीका जल्दी प्रकट हो जाता है, और किसीका विलम्बसे, पर यह निश्चित है कि प्रकट अवश्य होता है। पापके प्रकट होनेपर मनुष्यका सारा वडप्पन समाप्त हो जाता है और छिपानेके कारण सक्लेशरूप परिणामोसे जो खोटे कर्मोका आस्रव करता रहा उसका फल व्यर्थ ही भोगना पडता है। वाँसकी जड, मेढेके सीग, गोमूत्र तथा खुरपीके समान माया चार प्रकार की होती है। यह चारो प्रकारकी माया दु खदायी है। मायाचारी मनुष्यका कोई विश्वास नही रखता और विश्वासके न होनेसे उसे जीवन भर कष्ट उठाने पडते है। जब कि सरल मनुष्य इसके विरुद्ध अनेक सम्पत्तियोका स्वामी होता है। आपने पूजामे पढा होगा—

कपट न कीजे कोय चोरनके पुर ना वसै।
सरल स्वभावी होय ताके घर वहु सम्पदा ॥

(अर्थात् किसीको कपट नही करना चाहिये, क्योकि चोरोके कभी गाँव वसे नही देखे गये। जीवन भर चोर चोरी करते है, पर अन्तमे उन्हे कफनके लिए परमुखापेक्षी होना पडता है। इसके विपरीत सरल मनुष्य अधिक सम्पत्तिशाली होता है। मायासे मनुष्यकी सव सुजनता नष्ट हो जाती है। मायावी मनुष्य ऐसी मुद्रा वनाता है कि देखनेमे वडा भद्र मालूम होता है, पर उसका अन्त करण अत्यन्त कलुषित रहता है।) वनवासके समय जव रामचन्द्रजी पम्पा सरोवरके किनारे पहुचे, तव एक वगला वडी शान्त मुद्रामे वैठा था। उसे देख रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते है कि लक्ष्मण! देखो कैसा शान्त तपस्वी वैठा है? उसी समय एक मच्छ की आवाज आती है कि महाराज! इसकी शान्त वृत्तिका हाल तो

मुझसे पूछिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्य येनकेन प्रकारेण अपना ऐहिक प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं, पर पारलौकिक प्रयोजनकी ओर उनकी दृष्टि नही हे। साँप लहराता हुआ चलता है, पर वह जब अपने बिलमे घुसने लगता है, तब उसे सीधा ही चलना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य जव स्वरूपमे लीन होना चाहता है, तव उसे सरल व्यवहार ही करना पडता है। सरल व्यवहारके बिना स्वस्वभावमे स्थिरता कहाँ हो सकती है ?

जहाँपर स्वस्वभावरूप परिणमन है, वहाँ पर कपटमय व्यवहार नही, और जहाँ कपट व्यवहार है, वहाँ स्वस्वभावपरिणमनमे विकार है। इसीसे इसको विभाव कहते हैं। विभाव ही ससारका कारण है। (प्राय ससारमे प्रत्येक मनुष्यकी यह अभिलाषा रहती है कि मै लोगोंके द्वारा प्रशसा पाऊँ—लोग मुझे अच्छा समझे, यही भाव जीवके दु खके कारण है। ये भाव जिनके नही होते, वे ही सुजन हैं। उनके जो भाव होते है, वे ही सुस्वभाव कहलाते है। जिन जीवोके अपने कषाय पोषणके परिणाम नही, वही सुजन हैं। उनकी जो परिणति है, वही सुजनता है। यहाँ तक उनकी निर्मल परिणति हो जाती है कि वे परोपकारादि करके भी अपनी प्रशसा नही चाहते—किसी कार्यके कर्ता नही बनते) मेरा तो विश्वास है कि ऐसे महान् पुरुष पुण्यको बन्धका कारण समझते है। यदि उसे बन्धका कारण न समझते, तो उसके कर्तृत्वको क्यो न अपनाते ? वे कर्मोदयमे विषयादि कार्य भी वलात् करते हैं, परन्तु उसमे विरक्त रहते है। जो पुण्य कार्य करनेमे भी उपेक्षा करते हैं, वे पाप कार्य करनेमे अपेक्षा करे, यह बुद्धिमे नही आता। सुजन मनुष्यकी चेष्टा अगम्य है। उनका जो भी कार्य है, वह कर्तृत्वसे शून्य है। इसीसे वे लौकिक सुखो और दु खके होनेपर हर्ष और विषाद भावके पात्र नही होते। वे उन कार्योको कर्मकृत जान उनसे उपेक्षित रहते हैं। वे जो दानादि करते हैं, उनमे भी उनके प्रशसादिके भाव नही होते। यही कारण है कि वे अल्प कालमे ससारके दु खोसे वच जाते हैं।

सुजनताकी गन्ध भी मनुष्यके लग जावे, तो वह अधर्म कार्योसे वच जावे। वर्तमान युगमे मनुष्य प्राय विषयलम्पटी हो गये हैं। इससे सम्पूर्ण ससार दु खमय हो रहा है। पहले मनुष्य विद्यार्जन इसलिये करते थे कि हम ससारके कष्टोसे बचे तथा परको भी बचावें। हमारे सचयमे जो वस्तु हो, उससे परको भी लाभ पहुँचे। पहलेके लोग ज्ञानदान द्वारा अज्ञानीको सुज्ञानी बनानेका प्रयत्न करते थे, परन्तु अब तो विद्याध्ययन-

(अर्थात् यह आशारूपी गर्त प्रत्येक प्राणीके सामने खुदा है। ऐसा गर्त कि जिसमे समस्त ससारका वैभव परमाणुके समान है। फिर किसके भागमे कितना आवे, अत विषयोकी वाञ्छा करना व्यर्थ है। इस आशारूपी गर्तको जैसे-जैसे भरा जाता है, वैसे-वैसे ही यह गहरा होता जाता है। पृथिवीके अन्य गर्त तो भर देनेसे भर जाते है, पर यह आशागर्त भरनेसे और भी गहरा हो जाता है)। किसी आदमीको हजारकी आशा थी, हजार उसे मिल भी गये, पर अव आशा दश हजारकी हो गई। अर्थात् आशारूपी गर्त पहलेसे दशगुना गहरा हो गया। भाग्यवश दश हजार भी मिल गये, पर अव एक लाखकी आशा हो गई। अर्थात् आशागर्त पहलेसे सौ गुना गहरा हो गया। यह केवल कहनेकी वात नही है। इसे आप लोग रात-दिन अपने जीवनमे उतार रहे हैं। तृष्णाके वशीभूत हुआ प्राणी क्या-क्या नही करता है ? वह इष्टसे इष्ट व्यक्तिका प्राणान्त करनेमे भी पीछे नही हटता। आजका मानव निरन्तर 'और-और' चिल्लाता रहता है। उसके मुखसे कभी 'वस' नही निकलता। विना सन्तोषके वस कैसे निकले ? एक समय था कि जव लडका कार्य सम्भालने योग्य हो जाता था, तव वृद्ध पिता सम्पत्तिसे मोह छोड़ दीक्षा ले लेता था, पर आज वृद्ध पिता और उनके भी पिता हो, तो वह भी सम्पत्तिसे मोह नही छोड़ना चाहता, फिर लड़का तो लडका ही है। वह सम्पत्तिसे मोह नही छोड रहा है, इसमे आश्चर्य ही क्या है ? कपडा वुननेवाला कुविन्द कपडा वुनते अन्तिम छीरा छोड देता है, पर हम उस अन्तिम छीरे तक वुनना चाहते है। इस तृष्णाका भी कभी अन्त होगा ?

लोभ मीठा शत्रु है। यह दशम गुणस्थान तक मनुष्यका पिण्ड नही छोडता। अन्य कषाय यद्यपि उसके पहले ही नष्ट हो जाती है, पर लोभकषाय सवसे अन्त तक चलती जाती है। लोभके निमित्तसे आत्मामे अपवित्रता आती है। लोभसे ही समस्त पापोमे इस प्राणीकी प्रवृत्ति होती है। आचार्योंने लोभको ही पापका वाप वतलाया है। एकवार एक आदमी काशी पढने गया। उस समय छोटी अवस्थामे विवाह हो जाता था, इसलिये उसका भी विवाह हो गया था। वह स्त्रीको घर छोड गया। ५-६ वर्ष काशीमे पढनेके वाद जव घर लौटा, तव गाँवके लोगोने उसका वडा सत्कार किया। जव वह अपनी स्त्रीके पास पहुँचा, तव स्त्रीने कहा कि आप मुझे अकेली छोड, काशी गये थे। अव आप मेरे एक प्रश्नका उत्तर यदि दे सकें, तो मैं अपने घरके भीतर पैर रखने दूँगी, अन्यथा नही। उसने कहा कि अपना प्रश्न कहो। स्त्रीने कहा कि वताओ 'पापका

वाप क्या है ?' अद्भुत प्रश्न सुनकर, वह बहुत घवडाया। रामायण, महाभारत, भागवत आदि सब ग्रन्थ देख डाले, पर कही पापका वाप नही मिला। उसे चुप देख स्त्रीने कहा कि अब पुन काशी जाइये और यह पढकर आइये। काशी बहुत दूर थी, इसलिये उसने सोचा कि यदि कोई यही पापका बाप बता दे, तो काशी न जाना पडे। अन्तमें वह पागलकी भाँति नगरकी सडको पर पापका वाप क्या है ? पापका बाप क्या है ? यह चिल्लाता हुआ भ्रमण करने लगा। एक दिन एक वेश्याने अपने घरकी छपरीसे उसे ऊपर वुलाया और कहा कि यहाँ आओ, पापका वाप मै बताती हूँ। वह आदमी सीढियोसे जब ऊपर पहुँचा, तो वह वेश्या जान बडा दुःखी हुआ और झटसे नीचे उतरने लगा। वेश्याने कहा—महाराज ! ठहरिये तो सही; आप जिस सडकपर चल रहे थे उस सडकपर तो वेश्या आदि सभी अधम प्राणी चलते है, फिर हमारा यह मकान उस सडकसे तो अच्छा है। आप इतनी घृणा क्यो करते हैं ? आपने हमारा घर अपनी चरणरजसे पवित्र किया, इसलिए एक मुहर आपको देती हूँ यह कहकर वेश्याने एक मुहर उसे दे दी। मुहर देख उसने सोचा कि यह ठीक तो कह रही है। आखिर यह मकान सडकसे तो अच्छा है। कुछ देर ठहरनेके बाद वह जाने लगा, तब वेश्याने कहा महाराज ! दो मुहरे देती हूँ। यह सामने पंसारीकी दूकान है, इससे सीधा वुलाकर भोजन बना लीजिये, फिर जाइये। दो मुहरोका लाभ देख, उसने सोचा कि मै भी तो इसी पसारीकी दूकानसे खाद्य सामग्री लेता हूँ, इसलिए वेश्याका इसके साथ क्या सम्बन्ध है ? २ मुहरे लेकर उसने भोजन बनाना शुरू किया। जब भोजन बन चुका, तब वेश्याने कहा महाराज ! मैंने जीवन भर पाप किये है। यदि आज आपके लिये अपने हाथसे भोजन परोस सकूँ, तो मै पापसे निर्मुक्त हो जाऊँ। इस कार्यके लिये मै पाँच मुहरे आपके चरणोमे चढाती हूँ। पाँच मुहरोका नाम सुनते ही उसके मुँहमे पानी आ गया। उसने सोचा कि भोजन तो मेरे हाथका बनाया है। यदि वेश्या छूकर इसे मेरी थालीमे रख देती है, तो इससे कौन-सा अधर्म हुआ जाता है। यह विचारकर उसने वेश्याको परोसनेकी आज्ञा दे दी। वेश्याने उत्तम थालीमे भोजन परोस दिया। पश्चात् वेश्या बोली—महाराज ! एक भावना बाकी और रह गई है। मै चाहती हूँ कि मै एक ग्रास थालीसे उठाकर आपके मुखमे दे दूँ, तो मेरे जन्म-जन्मके पाप कट जावे। इस कार्यके लिये मै दश मुहरें चढाती हूँ। दश मुहरोका लाभ देख, उसने वेश्याके हाथसे भोजन करना स्वीकृत

कर लिया। वेश्याने जो ग्रास मुखमे देनेके लिये उठाया था, उसे मुखतक ले जानेके बाद छोड दिया और उसके गालमे जोरकी थप्पड मारते हुए कहा कि समझे पापका बाप क्या है? पापका बाप लोभ है। कहाँ तो आप वेश्याके घर आनेपर ग्लानिसे नीचे उतरने लगे थे और कहाँ उसके हाथका ग्रास खानेके लिये तैयार हो गये? यह सब महिमा लोभकी है। मुहरोके लोभने आपको धर्म-कर्मसे भ्रष्ट कर दिया है।

शौच पवित्रताको कहते है और यह पवित्रता बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकार की है। अपने-अपने पदके अनुसार लौकिक शुद्धिका विचार रखना बाह्य शुद्धि है और अन्तरङ्गमे लोभादि कषायोका कम करना आभ्यन्तर शुद्धि है। 'गङ्गास्नानान्मुक्ति'—गङ्गास्नानसे मुक्ति होती है, इसे जिन-शासन नही मानता। उससे शरीरका मल छूट जानेके कारण लौकिक शुद्धि हो, पर वास्तविक शुद्धि तो आत्मामे लोभादि कषायोके कृश करनेसे ही होती है। अर्जुनके प्रति उपदेश है—

आत्मा नदी सयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा नयोर्मि।
तत्राभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा।

सयम ही जिसका पवित्र घाट है, सत्य ही जिसमे पानी भरा है, शील ही जिसके तट है और दयारूप भवरे जिसमे उठ रही है, ऐसी आत्मा-रूपी नदीमे हे अर्जुन! अभिषेक करो, क्योकि पानीमात्रसे अन्तरात्मा शुद्ध नही होती? आत्माको निर्मल बनानेका जिसने अभ्यास कर लिया, उसने सब कुछ कर लिया। 'आतमके अहित विषय कषाय'—आत्माके सबसे बडे शत्रु विषय और कषाय है। इनसे जिसने आपकी रक्षा कर ली, उसने जग जीत लिया अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लिया।

लोभ केवल रुपया पैसाका ही हो, सो बात नही। मान प्रतिष्ठा आदि-की आकाक्षा रखना भी लोभका ही रूप है। जब रामका रावणके साथ लङ्कामे युद्ध हो रहा था, तब राम रावणको मारते थे, तो वह बहुरूपिणी विद्यासे दूसरा रूप बना कर सामने आ जाता था। इसी प्रकार हम लोभको छोडनेका प्रयत्न करते है। घर-गृहस्थी, बाल-बच्चे छोडकर जगलमे जाते है, पर वहाँ शिष्य-सग्रह, धर्म-प्रचार आदिका लोभ सामने आ जाता है। पहले घरके कुछ लोगोके भरण-पोषणका ही लोभ था, अब अनेको शिष्योके भरण-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा आदिका लोभ सामने आ गया। लोभ नष्ट कहाँ हुआ? वह तो वेष

वदल कर आपके सामने आ गया है। यदि वास्तवमे लोभ नष्ट हो जाता, तो इस परिकरकी क्या आवश्यकता थी ? इसका कल्याण करूँ, उसका कल्याण करूँ, यह विकल्पजाल निरन्तर आत्मामे क्यो उठते ? अत-प्रयत्न ऐसा करो कि जिससे यह लोभ समूल नष्ट हो जाय। एक रोग छूटनेके वाद, यदि दूसरा रोग दवाईसे होता है, तो वह दवाई दवाई नही। दवाई तो वह है, जिससे वर्तमान रोग नष्ट हो जाय और उसके वदले कोई दूसरा रोग उत्पन्न न हो। विषय-कषायका सेवन करते-करते अनन्त काल वीत गया, पर, आत्मामे सतोप उत्पन्न नही हुआ। इससे जान पडता है कि यह सव सतोपके मार्ग नही है। समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

तृष्णार्चिप परिदहन्ति न शान्तिरासा—
मिष्टेन्द्रियार्थविभवै परिवृद्धिरेव ॥

अर्थात् तृष्णारूपी ज्वालाए इस जीवको निरन्तर जला रही है। यह जीव इन्द्रियोके इष्ट विषय एकत्रित कर उनसे इन तृष्णारूपी ज्वालाओको शान्त करनेका प्रयत्न करता है। पर उनसे इसकी शान्ति नही होती, प्रत्युत वृद्धि ही होती है। जिस प्रकार घृतकी आहुतिसे अग्नि-ज्वाला शान्त होनेके वदले प्रज्वलित ही होती है, उसीप्रकार विषय-सामग्रीसे तृष्णारूप ज्वाला शान्त होनेके वदले प्रज्वलित ही अधिक होती है।

चतुर्थ अध्यायमे देवलोकका वर्णन आपने सुना। देवपर्यायके दीर्घ काल तक स्थिर रहनेवाले सुखोसे भी इस जीवको तृप्ति नही हुई, फिर मनुष्यलोकके अल्पकालीन सुखोसे इसे तृप्ति हो जायगी, यह सभव नही। सागरो पर्यन्त स्वर्गके सुख यह जीव भोगता है, पर अन्तमे जव माला मुरझा जाती है, तो दु खी होता है कि हाय अब यह सामग्री अन्यत्र कहाँ मिलेगी ? इसी आर्तध्यानसे मर कर कितने ही देव एकेन्द्रिय तक हो जाते है। नरकसे निकलकर एकेन्द्रिय पर्याय नही मिलती, पर देवसे निकल कर यह जीव एकेन्द्रिय तक हो जाता है। परिणामोकी विचित्रता है। देवोके वर्णनमे आपने सुना है कि उनमे 'स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका' और 'गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीना' अर्थात् स्थिति, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय और अवधिज्ञानके विषयकी अपेक्षा अधिकता है, तथा गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीनता है। ऊपर ऊपरके देवोमे सुखकी मात्रा तो अधिक है, परन्तु परिग्रहकी अल्पता है, इससे सिद्ध होता है कि परिग्रह सुखका कारण नही है, किन्तु परिग्रहकी आकाक्षा न

होना ही सुखका कारण है। यह प्राणी मोहोदयके कारण परिग्रहको सुखका कारण मान रहा है, इसलिये रात-दिन उसीके सचयमे तन्मय हो रहा है। पासका परिग्रह नष्ट न हो जाय, यह लोभ है और नवीन परिग्रह प्राप्त हो जाय, यह तृष्णा है। इस प्रकार आजका मनुष्य इन लोभ और तृष्णा दोनोके चक्रमे फँस कर दु खी हो रहा है।

: ५ :

जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप कथन करना सत्य है। भगवान् उमास्वामीने असत्य पापका लक्षण लिखा है—'असदभिधानमनृतम्' अर्थात् प्रमादके योगसे जो कुछ असत्का कथन किया जाता है, उसको अनृत या असत्य कहते है। इसके चार भेद है—जो वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्टय कर है, उसका अपलाप करना, यह प्रथम असत्य है। जैसे देवदत्तके रहने पर भी कहना कि यहाँ पर देवदत्त नही है। जो वस्तु अपने चतुष्टय कर नही है, वहाँ उसका सद्भाव स्थापना द्वितीय असत्य है। जैसे जहाँपर घट नही, वहाँ पर कहना कि घट है। जो वस्तु अपने स्वरूपसे है, उसे पररूपसे कहना यह तृतीय असत्य है, जैसे गौको अश्व कहना। तथा पैशुन्य, हास्य, कर्कश, असमजस, प्रलाप तथा उत्सूत्ररूप जो वचन है, वह चतुर्थ असत्य है। इन चार भेदोमे ही सब प्रकारके असत्य आ जाते है। इन चार भेदोके विपरीत जो वचन है, वे चार प्रकारके सत्य है। असत्य भाषणके प्रमुख कारण दो है—एक अज्ञान और दूसरा कषाय। अज्ञानके कारण मनुष्य असत्य बोलता है और कषायके वशीभूत होकर कुछका कुछ बोलता है। यदि अज्ञानजन्य असत्यके साथ कषायकी पुट नही है, तो उससे आत्माका अहित नही होता, क्योकि वहाँ वक्ता अज्ञानसे विवश है। ऐसा अज्ञानजन्य असत्यवचनयोग तो आगममे बारहवें गुणस्थान तक बतलाया है, परन्तु जहाँ कषायकी पुट रहती है, वह असत्य आत्माके लिये अहितकर है। ससारमे राजा वसुका नाम असत्यवादियोमे प्रसिद्ध हो गया। उसका खास कारण यही था कि वह कषायजन्य था। पर्वतकी माताके चक्रमे पड कर उसने 'अजैर्यष्टव्यम्' वाक्यका मिथ्या अर्थ किया था, इसलिए उसका तत्काल पतन हो गया। और वह दुर्गतिका पात्र हुआ। कषायवान मनुष्य अपने स्वार्थके कारण पदार्थका स्वरूप उस

रीतिसे करनेका प्रयत्न करते है, जिससे उनके स्वार्थमे बाधा न पड जाय। महाभारतमे एक गृद्ध और गोमायुका सवाद आया है कि किसीका पुत्र मर गया, उस मृतक पुत्रको लेकर उसके परिवारके लोग श्मशानमे गये। जब श्मशानमें गये तब सूर्यस्त होनेमे कुछ विलम्व था। उसी श्मशानमे एक गृध्र तथा एक गोमायु—शृगाल विद्यमान थे। गृध्र रातमे नही खाता, इसलिए वह चाहता था कि ये लोग मृत वालकको छोडकर जल्दी ही यहाँसे चले जावे, तो मैं इसे खालूँ और गोमायु यह चाहता था कि ये लोग यहाँ सूर्यास्त होने तक विद्यमान रहे, जिससे सूर्यास्त होनेके बाद इसे गृध्र खा नही सकेगा तव केवल मेरा ही यह भोज्य हो जावेगा। अपने अभिप्रायके अनुसार गृध्र कहता है।

अल स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन्गृध्रगोमायुसकुले।
कङ्कालवहले घोरे सर्वप्राणिभयकरे॥
न चेह जीवित कश्चित्कालधममुपागतः।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्य प्राणिना गतिरीदृशी॥

अर्थात् गृध्र तथा शृगालोसे भरे और समस्त प्राणियोको भय उत्पन्न करनेवाले श्मशानमे ठहरना व्यर्थ है। मृत्युको प्राप्त हुआ कोई भी प्राणी यहाँ आकर जीवित नही हुआ। चाहे प्रिय हो, चाहे अप्रिय हो, प्राणियोकी रीति ही ऐसी है।

गृध्रके वचनोका प्रभाव सुन बालकके बन्धुजनो पर न पड जाय, इस भावनासे गोमायु कहता है—

आदित्योऽय स्थितो मूढा' स्नेह कुरुत साम्प्रतम्।
वहुविघ्नो मुहूर्तोऽय जीवेदपि कदाचन॥
अमु कनकवर्णाभ वालमप्राप्तयौवनम्।
गृध्रवाक्यात्कथ मूढास्त्यजध्वमविशङ्किता॥

अर्थात् अरे मूर्खो! अभी यह सूर्य विद्यमान है। तुम लोग वालकसे स्नेह करो। यह मुहूर्त अनेक विघ्नोसे भरा है कदाचित् तुम्हारा बालक जीवित हो जाय। जो स्वर्णके समान कान्तिमान है तथा जिसका यौवन नही आ पाया, ऐसे बालकको गृध्रके कहनेसे आप लोग नि शङ्क हो, क्यो छोड रहे हो?

प्रकरण लम्बा है, पर उसका अभिप्राय देखिये कि मनुष्य अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार पदार्थके यथार्थ स्वरूपको कैसा छिन्न-भिन्न करते हैं। इस छिन्न-भिन्न करनेका कारण मनुष्यके हृदयमे विद्यमान

योग या कपायपरिणति ही है। उस पर विजय हो जाय, तो फिर मुखसे एक भी असत्य शब्द न निकले। मनुष्यकी शोभा या प्रामाणिकता उसके वचनोसे है। वचनोकी प्रामाणिकता नष्ट हुई कि सब कुछ नष्ट हो गया। असत्यवादीके वचन रथ्यापुरुषके वचनके समान अप्रामाणिक होते है। उनपर कोई ध्यान नही देता, पर सत्यवादी मनुष्यके वचन सुनने लिए लोग घण्टो पहलेसे उत्सुक रहते हैं। वचनोमे बल सत्यभापणसे ही आता है, असत्य भाषणसे नही। एक सत्यभाषण ही मनुष्यकी अन्य पापोसे रक्षा कर देता है।

एक राजपुत्रको चोरीकी आदत पड गई। जब राजाको उसका व्यवहार सह्य नही हुआ, तव उसने घरसे निकाल दिया। अव वह खुले रूपमे चोरी करने लगा। एक दिन उसने किन्ही मुनिराजके उपदेशसे प्रभावित होकर असत्य बोलनेका त्याग कर दिया। अब वह एक राजाके यहाँ चोरी करनेके लिए गया। पहरेपर खडे लोगोने पूछा कि कहाँ जाते हो ? उसने कहा चोरी करनेके लिए जाता हूँ। राजपुत्र था, इसलिए शरीरका सुन्दर था। पहरेपर खडे लोगोने सोचा कि यह कोई महापुरुष राजाका स्नेही व्यक्ति है। कही चोर यह कहते नही देखे गये कि मैं चोरी के लिए जाता हूँ। यह तो हम लोगोसे हँसी कर रहा है। ऐसा विचार कर उन्होने उसे रोका नही। चोरी करनेके बाद वह वही एक स्थानपर सो गया। प्रात काल जव लोगोकी दृष्टि पडी, तव उससे पूछा गया, तो उसने यही कहा कि मै चोर हूँ, चोरी करनेके लिए आया हूँ। फिर भी लोगोको विश्वास नही हुआ। राजपुत्र सोचता है कि देखो सत्य वचनमे कितना गुण है कि चोर होनेपर भी किसीको विश्वास ही नही होता कि मै चोर हूँ। जब एक पापके छोडनेमे इतना गुण है, तब समस्त पापोके छोडनेमे कितना गुण न होगा ? यह विचार कर उसने मुनिराजके पास जाकर समस्त पापोका परित्याग कर दीक्षा धारण करली। अस्तु,

मै आजतक नही समझा कि असत्य भी कुछ है, क्योकि जिसे आप असत्य कहते हैं, वह वस्तु भी तो आत्मीय स्वरूपसे सत् है। तब मेरी बुद्धिमे तो यह आता है कि जो पदार्थ आत्माको दु.खकर हो, उसको त्यागना ही सत्य है। जैसे शरीरको आत्मा मानना असत्य है। शरीर असत्य नही है, किन्तु जिस रूपसे वह है, उससे अन्यरूप मानना असत्य है। शरीर पुद्गल द्रव्यका विकार है। उसे आत्मद्रव्य मानना मिथ्या है। यह विपरीत मान्यता मिथ्यात्वके कारण उत्पन्न होती है, इसलिए सर्वप्रथम इसे ही त्यागना चाहिए।

पञ्चमाध्यायमे षड् द्रव्योका वर्णन आपने सुना है। उसमे प्रमुख जीवद्रव्य है। उसीका सब खेल है, वैभव है—

अहप्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात् ।
'एको दरिद्र एक श्रीमानिति च कर्मण ॥

'मै सुखी हूँ, दु खी हूँ, इत्यादि प्रत्ययसे जीवके अस्तित्वका साक्षात्कार होता है तथा अन्वयसे भी इसका प्रत्यय होता है। यह वही देवदत्त है, जिसे मैने मथुरामे देखा था, अब यहाँ देख रहा हूँ। इस प्रत्ययसे भी आत्माके आस्तित्वका निर्णय होता है तथा कोई तो श्रीमान् देखा जाता है और कोई दरिद्र देखा जाता है, इस विभिन्नतामे भी कोई कारण होना चाहिए। यह विभिन्नता—विषमता निर्हेतुक नही। जो हेतु है, उसीको कर्म नामसे कहा जाता है। नाममे विवाद नही—चाहे कर्म कहो, अदृष्ट कहो, ईश्वर कहो, खुदा कहो, विधाता कहो, जो आपको रुचिकर हो, परन्तु यह अवश्य मानना कि यह विभिन्नता निर्मूल नही। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जो यह दृश्यमान जगत् है, वह केवल एक जीवका परिणाम नही। केवल एक पदार्थ हो, तो उसमे नानात्व कहाँसे आया ? नानात्वका नियामक द्रव्यान्तर होना चाहिए। केवल पुद्गलमे शब्दबन्धादि पर्यायें नही होती। जब पुद्गल परमाणुओकी बन्धावस्था हो जाती है, तभी यह पर्याये होती हैं। उस अवस्थामे पुद्गल परमाणुओ की सत्ता द्रव्यरूपसे अबाधित रहती है। एतावता शब्दादि पर्याये केवल परमाणुओकी नही, किन्तु स्कन्ध पर्यायापन्न परमाणुओकी है। इसी तरह जो रागादि पर्याय हैं, वह उदयावस्थापन्न कर्मोंके सद्भावमे ही जीवके होती है। यदि ऐसा न माना जावे, तो रागादि परिणाम जीवका परिणामिक भाव हो जावेगा और ऐसा होनेसे ससारका अभाव हो जावेगा, जो कि किसीको इष्ट नही। रागादिक भावोका प्रत्यक्षमे सद्भाव देखा जाता है। इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादि भाव औपाधिक है। जैसे स्फटिकमणि स्वच्छ है, किन्तु जब स्फटिकमणिके साथ जपापुष्पका सम्बन्ध होता है, तब उसमे लालिमा प्रतीत होती है। यद्यपि स्फटिकमणि स्वय रक्त नही, किन्तु निमित्तको पाकर रक्तिमामय प्रत्ययका विषय होता है। इससे यह समझमे आता है कि स्फटिकमणि निमित्तको पाकर लाल जान पडती है। यह लालिमा सर्वथा असत्य नही। ऐसा सिद्धान्त है कि जो द्रव्य जिस कालमे जिस रूप परिणमती है, वह उ कालमे तन्मय हो जाती है। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने स्वयं व लिखा है—

परिणमदि जेण दव्व तक्काल तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ॥

इस सिद्धान्तसे यह निष्कर्ष निकला कि आत्मा जिस समय रागादि रूप परिणमेगा, उस समय नियमसे उसी रूप होगा तथा पर्यायदृष्टिसे उन्ही रागादिकका उस कालमे अस्तित्व रहेगा। जो भाव करेगा, उसीका वर्तमानमे अनुभव होगा। जल शीत है, परन्तु अग्निके सम्बन्धसे उष्ण पर्यायको प्राप्त करता है।

यद्यपि उसमे शक्ति अपेक्षा शीत होनेकी योग्यता है, तथापि वर्तमान मे शीत नही। यदि कोई उसे शीत मानकर पान करे, तो दग्ध ही होगा। इसी प्रकार आत्मा यदि वर्तमानमे रागरूप है, तो रागी ही है। इस अवस्थामे वीतरागका अनुभव होना असम्भव है—इस कालमे आत्माको रागादि रहित मानना मिथ्या है। यद्यपि रागादि परिणाम परनिमित्तक है, अतएव औपाधिक है—नशनशील है, तथापि वर्तमानमे तो औष्ण्य परिणत अय पिण्डवत् आत्मा तन्मय हो रहा है, अर्थात् उन परिणामोके साथ आत्माका तादात्म्य हो रहा है। इसीका नाम अनित्य तादात्म्य है। यह अलीक कथन नही। एक मनुष्यने मद्यपान किया और उसके नशासे वह उन्मत्त हो गया। हम पूछते है कि क्या वह वर्तमानमे उन्मत्त नही है? अवश्य उन्मत्त है, किन्तु किसीसे आप प्रश्न करे कि मनुष्यका क्या लक्षण है? इसके उत्तरमे उत्तर देनेवाला क्या यह कह सकता है कि उन्मत्तता मनुष्यका लक्षण है? नही, यह उत्तर ठीक नही, क्योकि मनुष्य की सर्व-अवस्थाओमे उन्मत्तताकी व्याप्ति नही। इसी तरह आत्मामे रागादिभाव होनेपर भी आत्माका लक्षण रागादि नही हो सकता, क्योकि आत्माकी अनेक अवस्थाओमे रागादिभाव व्यापकरूपसे नही रहता, अत यह आत्माका लक्षण नही हो सकता। लक्षण वह होता है, जो सर्व-अवस्थाओमे पाया जावे। ऐसा लक्षण चेतना ही है। यद्यपि रागादि परिणाम तथा केवलज्ञानादि भी आत्मामे ही होते है, तथापि उन्हे लक्षण नही माना जाता, क्योकि वे जीवकी पर्यायविशेप है, व्यापकरूपसे नही रहती। अन्ततोगत्वा चेतना ही आत्माका एक ऐसा गुण है, जो आत्माकी सर्वदशाओमे व्यापकरूपसे रहता है। आत्माकी दो अवस्थाएँ है—ससारी और मुक्त। इन दोनोमे चेतना रहता है। उसीसे अमृतचन्द्र स्वामीने लिखा है कि—

अनाद्यमनन्तमचल स्वसवेद्यमिह स्फुटम्।
जीव स्वय तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥

जीव नामक जो पदार्थ है, वह स्वय सिद्ध है, तथा परनिरपेक्ष अपने आप अतिशय कर चकचकायमान हो रहा है। कैसा है? अनादि है। कोई इसका उत्पादक नही, अतएव अनादि है, अतएव अकारण है। जो वस्तु अनादि अकारणक है, वह अनन्त भी है, तथा अचल है, ऐसे अनादि, अनन्त तथा अचल अजीव द्रव्य भी है, इससे इसका लक्षण स्वसवेद्य भी है, यह स्पष्ट है। जीव नामक पदार्थमे अन्य अजीवोकी अपेक्षा चेतनागुण ही भेद करनेवाला है। वही गुण इसमे ऐसा विशद है कि सर्वपदार्थोकी तथा निजकी व्यवस्था कर रहा है।

इस गुणको सव मानते है, परन्तु कोई उस गुणको जीवसे सर्वथा भिन्न मानते है। कोई गुणसे अतिरिक्त अन्य द्रव्य नही—गुण-गुणी सर्वथा एक है, ऐसा मानते है। कोई चेतना तो जीवमे मानते है, परन्तु वह ज्ञेयाकार परिच्छेदसे पराङ्मुख रहता है, ऐसा अङ्गीकार करते है। प्रकृति और पुरुषके सम्बन्धसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है, उसमे चेतनाके ससर्गमे जानपना आता है। कोईका कहना है कि पदार्थ नाना नही एक ही अद्वैत तत्त्व है। वह जब मायावच्छिन्न होता है, तव यह ससार होता है। किसीका कहना है कि जीव नामक स्वतन्त्र पदार्थकी सत्ता नही, किन्तु पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनकी जिस समय विलक्षण अवस्था होती है, उसी समय यह जीवरूप अवस्था हो जाती है। ये जितने मत है, वे सर्वथा मिथ्या नही। जैनदर्शनमे अनन्त गुणोका जो अविष्वग्भाव सम्बन्ध है वही तो द्रव्य है। वह आत्मीय स्वरूपकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न है, परन्तु कोई ऐसा उपाय नही कि उनमेसे एक भी गुण पृथक् हो सके। जैसे पुद्गल द्रव्यमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण है। चक्षुरादि इन्द्रियोमे पृथक्-पृथक् ज्ञानमे आते है, परन्तु उनमेसे कोई पृथक् करना चाहे, तो नही कर सकता। वे सब अखण्डरूपसे विद्यमान है। उन सर्व गुणोकी जो अभिन्न प्रदेशता है, उसीका नाम द्रव्य है। अतएव प्रवचनसारमे श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

णत्थि विणा परिणाम अत्थो अत्थ विणेह परिणामो।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिप्पण्णो ॥

परिणामके विना अर्थकी सत्ता नही तथा अर्थके विना परिणाम नही। जैसे दुग्ध, दधि, घी, छाछ इनके विना गोरस कुछ भी सत्ता नही रखता। इसी तरह गोरस न हो, तो इन दुग्धादिकी भी सत्ता नही। एव यदि आत्माके ज्ञानादि गुण न हो, तो आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि नही हो सकती तथा आत्माके विना ज्ञानादि गुणोका कोई अस्तित्व नही।

विना परिणामीके परिणमनका नियामक कोई नही। हाँ, यह अवश्य है कि ये गुण सदा परिणमनशील हैं, किन्तु अनादिसे आत्मा कर्मोंसे सम्बद्ध है, इससे इसके ज्ञानादि-गुणोका विकास निमित्त-कारणोके सहकारसे होता है। होता उसीमे है, परन्तु जैसे घटोत्पत्तिकी योग्यता मृत्तिकामे ही होती है, किन्तु कुम्भकारके बिना घट नही वनता। यद्यपि घटकी उत्पत्तिके योग्य व्यापार कुम्भकारमे ही होगा, फिर भी मृत्तिका अपने व्यापारसे घटरूप होगी, कुम्भकार घटरूप न होगा। उपादानको मुख्य माननेवालोका कहना है कि जव मृत्तिकामे घटपर्यायकी उत्पत्ति होती है, तव वहाँ कुम्भकारकी उपस्थिति स्वयमेव हो जाती है। यहाँ पर यह कहना है कि घटोत्पत्ति स्वयमेव मृतिकामे होती है, इसका क्या अर्थ है? जिस कालमे मृत्तिकामे घट होता है, उस कालमे क्या कुम्भकारादि निरपेक्ष घट होता है, या सापेक्ष? यदि निरपेक्ष घटोत्पत्ति होती है, तो एक भी उदाहरण ऐसा वताओ कि मृत्तिकामे कुम्भकारके बिना घट हुआ हो, सो तो देखा नही जाता। यदि सापेक्ष पक्षको अङ्गीकार करोगे, तो स्वयमेव आगया कि कुम्भकारके व्यापार विना घटकी उत्पत्ति नही होती। इसका अर्थ यह है कि कुम्भकार घटोत्पत्तिमे सहकारी निमित्त है। जैसे आत्मामे रागादि परिणाम होते हैं। यद्यपि आत्मा ही उनका उपादानकर्ता है, परन्तु चारित्रमोहके उदय विना रागादि नही होते। होते आत्मामे ही हैं, परन्तु बिना कर्मोदयके यह भाव नही होते। यदि निमित्तके विना यह हो, तव तो आत्माका त्रिकाल अवाधित स्वभाव हो जावे, सो ऐसा यह भाव नही। इसका विनाश हो जाता है, अत यह मानना पड़ेगा कि यह आत्माका निज भाव नही, इसका यह अर्थ नही कि यह भाव आत्मामे होता ही नही। होता तो है, परन्तु निमित्त कारणकी अपेक्षासे होता है। यदि निमित्त कारणकी अपेक्षासे नही है, ऐसा कहोगे, तो आत्मामे मतिज्ञानादि जो चार ज्ञान उत्पन्न होते है, वे भी तो नैमित्तिक हैं, उनको भी आत्माके मत मानो। यह भी हमे इष्ट है, हम तो यहाँ तक माननेको प्रस्तुत हैं कि क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक जितने भी भाव है, वे आत्माके अस्तित्वमे सर्वदा नही होते। उनकी कथा छोडो, क्षायिक भाव भी तो क्षयसे होते हैं, वे भी अवाधित रूपसे त्रिकालमें नहीं रहते, अत. वे भी आत्माके लक्षण नहीं। केवल चेतना ही आत्माका लक्षण है, यही अवाधित त्रिकालमें रहता है। इसी भावको पुष्ट करनेवाला श्लोक अष्टावक्र गीतामे अष्टावक्र ऋषिने लिखा है—

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे वन्धो या स्याज्जीविते स्पृहा॥

अर्थात् मै देह नही हूँ और न मेरा देह है, न मै जीव हूँ, मै तो चित् हूँ, चैतन्यगुणवाला हूँ। यदि ऐसा वस्तुका निज स्वरूप है, तो आत्माको वन्ध क्यो होता है ? इसका कारण हमारी इस जीवमे स्पृहा है। यह जो इन्द्रिय, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास तथा आयुप्राणवाले पुतलेमे हमारी स्पृहा है, यही तो वन्धका मूल कारण है (हम जिस पर्यायमे जाते है, उसीको निज मान बैठते है। उसके अस्तित्वसे अपना अस्तित्व मान कर पर्यायवुद्धि हो, पर्यायके अनुरूप ही समस्त व्यवहार कर पर्यायान्तरको प्राप्त होते है। इससे यही तो निकला कि हम पर्यायवुद्धिसे ही अपनी जीवनलीला पूर्ण करते हैं। अस्तु, विषय लम्बा हो गया है।)

: ६ :

स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियो तथा मनके विपयो और षट्कायिक जीवो-की हिंसासे विरत होना सयम कहलाता है। (इन्द्रिय-विपयोके आधीन हुआ प्राणी उत्तर कालमे प्राप्त होनेवाले दु खोको अपनी दृष्टिसे ओझल कर देता है। यही कारण है कि वह तदात्व सुखमें निमग्न हो, आत्महित-से वञ्चित हो जाता है।) इन्द्रिय-विषयोके आधीन हुआ वनका हाथी अपनी सारी स्वतन्त्रता नष्ट कर देता है। रसनेन्द्रियके वशमे पडा मीन धीवरकी वशीमे अपना कण्ठ छिदा देता है। नासिकाके आधीन रहने-वाला भ्रमर सन्ध्याके समय यह सोचकर कमलमे बन्द हो जाता है कि रात्रि व्यतीत होगी, प्रात काल होगा, कमल फूलेगा तव मैं निकल जाऊँगा। अभी रात भर तो मकरन्दका रसास्वादन करूँ, पर प्रात काल होनेके पहले ही एक हाथी आकर उस कमलिनीको उखाड कर चला जाता है। भ्रमरके विचार उसके जोवनके साथ ही समाप्त हो जाते हैं। कहा है—

> रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभात,
> भास्वानुदेष्यति हमिष्यति पङ्कजश्री ।
> इत्थ विचारयत्यब्जगते द्विरेफे,
> हा ! हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार ॥

नेत्रेन्द्रियके वशीभूत हुए पतग दीपको पर अपने प्राण न्योछावर

कर देते हैं और कर्णेन्द्रियके आधीन हो हरिण वहेलियोके द्वारा मारे जाते हैं। ये तो पञ्चेन्द्रियोमे एक-एक इन्द्रियके आधीन रहनेवाले जीवोकी बात कही, पर जो पाँचो ही इन्द्रियोके वशीभूत हैं, उनकी तो कथा ही क्या है। पञ्चेन्द्रियोमे स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ अधिक प्रबल हैं। वट्टकेर स्वामीने मूलाचारमे कहा है कि चतुरङ्गुल प्रमाण स्पर्शन और रसना इन्द्रियने ससारको पटरा कर दिया—नष्ट कर दिया। इन इन्द्रियोकी विषयदाहको सहन करनेके लिए जब प्राणी असमर्थ हो जाता है, तब वह इनमे प्रवृत्ति करता है। कुन्दकुन्द स्वामीने प्रवचनसारमे यहाँ तक लिखा है कि ससारके साधारण मनुष्योकी तो कथा ही क्या है? हरि, हर, हलधर तथा देवेन्द्र आदिक भी इन्द्रियोकी विषयदाहको न सहकर उनमे झम्पापात करते हैं। इसका अर्थ यह नही कि बडे-बडे पुरुष इनमे झम्पापात करते हैं, अत ये त्याज्य नही है। विष तो विष ही है, चाहे उसे छोटे पुरुष पान करे, चाहे बडे पुरुष। हरि-हरादिककी विषयोमे प्रवृत्ति हुई सही, परन्तु जब उनके चारित्रमोहका उदय दूर हुआ, तब उन्होने उस विषयमार्गको हेय समझ कर त्याग दिया। भगवान् ऋषभदेव अपने राज्यपाट, भोगविलासमे निमग्न थे, परन्तु नीलाञ्जनाका विलय देख विषयोसे विरक्त हो गये। जब तक चारित्रमोहका उदय उनकी आत्मामे विद्यमान रहा, तब तक उनका भाव विषयोसे विरक्त नही हुआ। उन्होने समस्त राज्य-वैभव छोड कर दिगम्बर दीक्षा धारण की। इससे यही तो अर्थ निकला कि यह विषयका मार्ग श्रेयस्कर नही। यदि श्रेयस्कर होता तो तीर्थंकर आदि इसे क्यो छोडते। अत अन्तरङ्गसे विषयेच्छाको दूर कर आत्महितका प्रयत्न करना चाहिये।

वज्रदन्त चक्रवर्ती सभामे विराजमान थे। मालीने एक सहस्रदल कमल उनकी सेवामे भेट किया। सूँघनेके बाद, जब उन्होने कमलके अन्दर मृत भ्रमरको देखा तो उनके हृदयके नेत्र खुल गये। वे विचार करने लगे कि देखो, नासा इन्द्रियके वशीभूत हो इस भ्रमरने अपने प्राण गँवाये हैं। यह विषयासक्ति ही जन्म-मरणका कारण है। ऐसा विचार कर उन्होने दीक्षा लेनेका विचार कर लिया। चक्रवर्ती थे, इसलिये राज्यका भार बडे पुत्रको देने लगे। पुत्रके भी परिणाम देखो, उसने कहा, पिताजी! यह राज्य-वैभव अच्छा है या बुरा? यदि अच्छा है तो आप ही इसे क्यो छोड रहे हैं? यदि बुरा है तो फिर मै तो आपका प्रीतिपात्र हूँ—स्नेहभाजन हूँ। यह बुरी चीज मुझे ही क्यो दे रहे हैं। किसी शत्रुको दीजिये। चक्रवर्ती निरुत्तर हो गये। दूसरे पुत्रको राज्य देना चाहा, उसने भी

लेनेसे इनकार कर दिया। तव पुण्डरीक नामका छोटा-सा वालक जो कि बडे पुत्रका लडका था, उसका राज्याभिषेक कर वनको चले गये। उनके मनमे यह भी विकल्प न उठा कि पट्खण्डके राज्यको छोटा-सा वालक कैसे सँभालेगा? सँभाले या न सँभाले, इसका विकल्प ही उन्हे नही उठा। यही सच्चा वैराग्य कहलाता है। हम लोग तो 'आलसी वानिया अपशकुनकी वाट जोहै' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे है। जरा-जरासे कामके लिये वहाना खोजा करते है, पर यह निश्चित समझो, ये वहाना एक भी काम न आवेगे। मनुष्य-जीवनका भरोसा क्या है? अभी आरामसे वैठे हो, पर हार्ट फेल हो जाय, तो पर्याय समाप्त होते देर न लगे, इसलिये समय रहते सावधान हो जाना विवेकका कार्य है। 'सुरग-नरक-पशुगतिमे नाही' यह सयम देव, नरक तथा पशुगतिमे प्राप्त नही होता। यद्यपि पशुगतिमे सयमासयमरूप थोडा-सा सयम प्रकट हो जाता है, पर वह उत्कृष्ट सयमके समक्ष नगण्य ही है। यह सयम कर्मभूमिक मनुष्यके ही हो सकता है, अत मनुष्य पर्याय पाकर इसे अवश्य धारण करना चाहिये। अपनी शक्तिको भूलकर लोग दीन-हीन हो रहे हैं। कहते है कि हमसे अमुक काम नही वनता, अमुक विषय नही छोडा जाता। यदि राजाज्ञा होने पर वलात्कार यह काम करना पडे तो फिर शक्ति कहाँसे आवेगी। आत्मामे अचिन्त्य शक्ति है। यह प्राणी उसे भूल परपदार्थका आलम्बन ग्रहण करता फिरता है, परन्तु यह निश्चित है कि जव तक यह परका आलम्वन छोड अपनी स्वतन्त्र शक्तिकी ओर दृष्टिपात न करेगा, तव तक इसका कल्याण न होगा।

आजका मनुष्य इच्छाओका कितना दास हो गया है? न उसके रहन-सहनमे विवेक रह गया है, न खान-पानमे भक्ष्याभक्ष्यका विचार शेष रहा है। स्त्री-पुरुषोकी वेष-भूषा ऐसी हो गई है कि जिससे कुलीन और अकुलीनका अन्तर ही नही मालूम होता है। पुरुष स्वय विषयोका दास हो गया है, जिससे वह स्त्रियोको नाना प्रकारके उत्तेजक वस्त्राभूषणोसे सुसज्जित देख प्रसन्नताका अनुभव करता है। यदि पुरुषके अन्दर थोडा विवेक रहे तो वह अपने घरके वातावरणको सँभाल सकता है। आजके प्राणी जिह्वा इन्द्रियके इतने दास हो गये है कि उन्हे भक्ष्य-अभक्ष्यका कुछ भी विचार नही रह गया है। जिन चीजोमे प्रत्यक्ष त्रसघात अथवा वहुस्थावरघात होता है, उन्हे खाते हुये वे सुखका अनुभव करते है। वे यह भूल जाते है कि हमारे अल्प स्वादके पीछे अनन्त जीवोकी जीवन-लीला समाप्त हो रही है। आज खाते समय लोग दिन-रात

का विकल्प छोड बैठे है। उन्हे जब मिलता है, तभी खाने लगते है। आशाधरजीने कहा है कि उत्तम मनुष्य दिनमे एक बार, मध्यम मनुष्य दो बार और अधम मनुष्य पशुके समान चाहे जब भोजन करते है। जैसे पशुके सामने जब भी घासका पूला डाला जाता है, वह तभी उसे खाने लगता है, वैसे ही आजका मनुष्य जब भी भोजन सामने आता है, तभी खाने लगता है।

छठवे अध्यायमे आपने आस्रवतत्त्वका वर्णन सुना है। मेरी दृष्टिमे यह अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम कर्मबन्धसे बचना तो चाहते है, पर कर्म किन कारणोसे बँधते है, यह न जाने, तो कैसे बच सकते है? बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक ऐसे बहुतसे कार्य हम लोगोसे होते रहते है, जिनसे कर्मका बन्ध जारी रहता है। जो वैद्य रोगके निदानको ठीक-ठीक समझ लेता है उसकी दवा तत्काल लाभ पहुँचा देती है, पर जो निदानको समझे बिना उपचार करता है उसकी दवा महीनो सेवन करने पर भी लाभ नही पहुँचाती।

'आव चोर चारी कर ले गव मोरी मूँदत मुगव फिरे'

सीधा-साधा पद है। किसीके घर चोर आया और चोरी कर लेगया, पर उस मूर्खको यह पता नही चला कि चोर किस रास्तेसे आया था, अत' वह मुहरी—पानी आने-जानेके मार्गको चोरका मार्ग समझकर मूँदता फिरता है। दूसरी रात फिर चोर आते है। यही दशा ससारी प्राणाकी है कि जिन भावोसे कर्मोका आस्रव होता है—कर्मरूपी चोर आत्मामे घुसते है, उन भावोका इसे पता नही रहता, इसलिये अन्य प्रयत्न कर्मोका आस्रव रोकनेके लिये करता है। पर कर्मोका आस्रव रुकता नही है। यही कारण है कि यह अनन्तबार मुनिलिङ्ग धारण कर नवम ग्रैवेयक तक उत्पन्न हुआ, परन्तु ससार-बन्धनसे मुक्त नही हो सका। जान पडता है कि उसे कर्मो के आस्रवका बोध ही नही हुआ। आत्माकी विकृत परिणतिसे होनेवाले आस्रवको उसने केवल शरीराश्रित क्रियाकाण्डसे रोकना चाहा, सो कैसे रुक सकता था? आगममे लिखा है कि अज्ञानी जीव करोडो जन्मकी तपस्याके द्वारा भी जिस कर्मको नही खपा सकता, ज्ञानी जीव उसे क्षणमात्रमे खिपा देता है। तालेकी जो कुजी है, उसीसे तो वह खुलेगा। दूसरी कुंजीसे दूसरा ताला घटो परिश्रम करने पर भी नही खुल सकता और कुजीका ठीक-ठीक बोध हो जानेपर जरासी देरमे खुल जाता है। यही बात यहाँपर है। जो कर्म जिस भावसे

आता है, उस भावके विरुद्ध भाव जब आत्मामे उत्पन्न हो तब उस कर्मका आना रुक सकता है। आपने सुना है 'सकषायाकषाययो साम्परायिकेर्यापथयो' अर्थात् योग सकषाय जीवोके साम्परायिक तथा कषायरहित जीवोके ईर्यापथ आस्रवका कारण है। जिस आस्रवका प्रयोजन ससार है उसे साम्परायिक आस्रव कहते है और जिसमे स्थिति तथा अनुभागबन्ध नही पडता उसे ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। साम्परायिक आस्रव आत्माका अत्यन्त अहित करनेवाला है । यह कपायसहित जीवके ही होता है। जिस प्रकार शरीरमे तेल लगाकर मिट्टीमे खेलनेवाले पुरुषके मिट्टीका सम्बन्ध सातिशय होता है और तेलरहित मनुष्यके नाममात्र का होता है, उसी प्रकार कषायसहित जीवका आस्रव सातिशय होता है—स्थिति और अनुभागसे सहित होता है, परन्तु कषायरहित जीवके नाममात्रका होता है। अर्थात् समयमात्र स्थित रहकर निर्जीर्ण हो जानेवाले कर्मप्रदेशोका आस्रव उसके होता है। इस तरह आत्माकी सकषाय अवस्था ही आस्रव है बन्धका कारण है, अत उससे वचना चाहिये। जिस प्रकार फिटकली आदिके ससर्गसे जो वस्त्र सकपाय हो गया है, उसपर रगका सम्वन्ध अच्छा होता है, परन्तु जो वस्त्र फिटकली आदिके ससर्गसे रहित होनेके कारण अकषाय है, उसपर रङ्गका सम्बन्ध स्थायी नही होता, उसी प्रकार प्रकृतमे भी समझना चाहिये।

नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोमें तीर्थकरप्रकृति सातिशय पुण्यप्रकृति है इसलिये उसके आस्रव आचार्यने अलगसे वतलाये है। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओके चिन्तनसे उसका आस्रव होता है। इन सभीमे दर्शनविशुद्धि प्रमुख है। यदि यह नही है और वाकी सब है तव भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव नही हो सकता और यह है तथा वाकीकी नही है, तब भी उसका आस्रव हो सकता है। दर्शनविशुद्धिका अर्थ है अपायविचय धर्मध्यानमे वैठकर करुणापूर्ण हृदयसे यह विचार करना कि ये ससारके प्राणी मोहके वशीभूत हो, मार्गसे भ्रष्ट हो कितना दु ख उठा रहे हैं। इनका दु ख किस प्रकार दूर कर सकूँ। इस लोककल्याणकी भावनाके समय जो शुभ राग होता है, उसीसे तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव होता है। सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता तो मोक्षका कारण है। उसके द्वारा कर्मबन्ध किस प्रकार हो सकता है?

'तपसा निर्जरा च' आचार्य उमास्वामीने लिखा है कि तपके द्वारा सवर तथा निर्जरा दोनो ही होते है। मोक्ष उपादेय तत्त्व है और सवर तथा निर्जरा उसके साधक तत्त्व है। इनके विना मोक्ष होना सभव नही। तप चारित्रका ही विशेप रूप है। चरित्रमोहका अभाव होने पर मनुष्य-की विरक्तिरूप अवस्था होती है और उस विरक्ति अवस्थामे जो कार्य होता है वह तप कहलाता है। विरक्तिरूप अवस्थामें इच्छाओका निरोध सुतरा हो जाता है, इसलिए 'इच्छानिरोधस्तप' इच्छाको रोकना तप है, यह तपका लक्षण प्रसिद्ध हो गया है। (रागके उदयमे यह जीव वाह्य वैभवको पकडे रहता है, पर जव अन्तरङ्गसे राग छूट जाता है, तव उस वैभवको छोडते इसे देर नही लगती) वडे-वडे पुरुप ससारसे विरक्त न हो सके, पर छोटे पुरुप विरक्त होकर आत्मकल्याण कर जाते है। प्रद्युम्नको वैराग्य आया—दीक्षा लेनेका भाव उसका हुआ, अत राज्य-सभामे वलदेव तथा श्रीकृष्णसे आज्ञा लेने गया। वहाँ जाकर जव उसने अपना अभिप्राय प्रकट किया तव वलदेव तथा श्रीकृष्ण कहते है कि वेटा! अभी तेरी अवस्था ही क्या है? तूने ससारका सार जाना ही क्या है? जो दीक्षा लेना चाहता है, अभी हम तुझसे वडे-वूढे विद्यमान है। हम लोगोके रहते तू यह क्या विचार कर रहा है? सुनकर प्रद्युम्नने उत्तर दिया कि आप लोग ससारके स्तम्भ हो, अत राज्य करो। मेरी तो इच्छा दीक्षा धारण करनेकी है। इस ससारमे सार है ही क्या, जिसे जाना जाय। इस प्रकार राज्यसभासे विदा लेकर अपने अन्त पुरमे पहुँचा और स्त्रीसे कहता है—प्रिये! मेरा दीक्षा लेनेका भाव है। स्त्री पहलेसे ही विरक्त वैठी थी। वह कहती है जव दीक्षा लेनेका भाव है, तव प्रिये! सम्बोधनकी क्या आवश्यकता है? क्या स्त्रीसे पूछ-पूछकर दीक्षा ली जाती है। आप दीक्षा ले या न ले, मै तो जाकर अभी लेती हूँ। यह कहकर वह प्रद्युम्नसे पहले निकल गई। दोनोने दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण किया और श्रीकृष्ण तथा वलदेव ससारके चक्रमे फँसे रहे। एक समय था कि जव लोग थोडा-सा निमित्त पाकर ससारसे विरक्त हो जाते थे। सिरमे एक सफेद वाल देखा कि वैराग्य आ गया, पर आज एक-दो नही समस्त वाल सफेद हो जाते है, पर वैराग्यका नाम

नही हैं। आता है। उसका कारण यही है कि मोहका सस्कार वडा प्रवल जिस प्रकार चिकने घडे पर पानीकी वूँद नही ठहरती, उसी प्रकार मोह जीवोपर वैराग्यवर्धक उपदेशोका प्रभाव नही ठहरता। थोडा-वहुत वैराग्य जव कभी आता भी है तो श्मशान-वैराग्यके समान थोडी ही देरमे साफ हो जता है।

वाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तप दो प्रकारके हैं। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह वाह्य तप है। इन्हे वाह्य पुरुष भी कर सकते है तथा इनका प्रवृत्त्यश वाह्यमे दृष्टिगोचर होता है, इसलिये इन्हे वाह्य तप कहते हैं। और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप है। इनका सीधा सम्वन्ध आभ्यन्तर—अन्तरात्मासे है तथा इन्हे वाह्य पुरुष नही कर सकते, इसलिये ये आभ्यन्तर तप कहलाते है। इन सभी तपोमे इच्छाका न्यूनाधिक रूपसे नियन्त्रण किया जाता है, इसीलिये इनसे नवीन कर्मोका वन्ध रुकता है और पूर्वके वँधे कर्म निर्जीर्ण हो जाते हैं। 'कर्मशैलको वज्रसमाना' यह तप कर्मरूपी पर्वतको गिरानेके लिये वज्रके समान है। जिस प्रकार वज्रपातसे पर्वतके शिखर चूर-चूर हो जाते हैं उसी प्रकार तपश्चरणसे कर्म चूर-चूर हो जाते हैं। जिन कर्मोके फल देनेका समय नही आया ऐसे कर्म भी तपके प्रभावसे असमयमे ही गिर जाते है। अविपाक निर्जराका मूल कारण तप ही है। तपके द्वारा किसी सासारिक फलकी आकाक्षा नही करना चाहिये। जैन सिद्धान्त सम्मत तप तथा अन्य लोगोके तपमे अन्तर वताते हुए श्री समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

> अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया
> तपस्विन केचन कर्म कुर्वते।
> भवान् पुनर्जन्म-जराजिहासया
> त्रयी प्रवृत्ति समधीरनारुणत्॥

हे भगवन्! कितने ही लोग सतान प्राप्त करनेके लिये, कितने ही धन प्राप्त करनेके लिये तथा कितने ही मरणोत्तर कालमे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादिकी तृष्णासे तपश्चरण करते हैं, परन्तु आप जन्म और जराकी वाधाका परित्याग करनेकी इच्छासे इष्टानिष्ट पदार्थोमे मध्यस्थ हो मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिको रोकते हैं। अन्यत्र तपका प्रयोजन ससार है, तो यहाँ तपका प्रयोजन मोक्ष है। परमार्थसे तप मोक्षका ही साधन है।

उसमे यदि कोई न्यूनता रह जाती है, तो सासारिक सुखका भी कारण हो जाता है। जैसे खेतीका उद्देश्य अनाज प्राप्त करना है। यदि पाला आदि पडनेसे अनाज प्राप्त न हो तो भूसा प्राप्त होगा ही। इसी प्रकार तपश्चरणसे मोक्ष मिलता है। यदि कदाचित् उसकी प्राप्ति न हो सकी तो स्वर्गका वैभव कौन छीन लेगा ? वह तो प्राप्त होगा ही।

पद्मपुराणमे विशल्याकी महिमा आपने सुनी होगी। उसके पास आते ही लक्ष्मणके वक्ष स्थलसे देवोपनीत शक्ति निकलकर दूर हो गई। इसमे विशल्याका पूर्व जन्ममे किया हुआ तपश्चरण ही कारण था। निर्जन वनमे उसने तीन हजार वर्ष तक कठिन तपश्चरण किया था। (तपश्चर्याके प्रभावसे मुनियोके शरीरमे नाना प्रकारकी ऋद्धिया उत्पन्न होती है, पर वे उनकी ओरसे निर्भान ही रहते है) विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न थी, पर उन्हे इसका पता ही नही था। क्षुल्लकके कहनेसे उनका उस ओर ध्यान गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती तपश्चरण करते थे। दुष्कर्मके उदयसे उनके शरीरमे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो गये, फिर भी उस ओर उनका ध्यान नही गया। एक बार इन्द्रकी सभामे इसकी चर्चा हुई, तो एक देव इनकी परीक्षा करनेके लिए आया। जहाँ वे तप करते थे, वहाँ वह देव एक वैद्यका रूप धरकर चक्कर लगाने लगा तथा उनके शरीर पर जो रोग दिख रहे थे, उन सबकी औषधि अपने पास होनेकी टेर लगाने लगा। एक दो दिन हो गये। मुनि विचार करते है कि यदि यह वैद्य है, तो नगरमे क्यो नही जाता ? यहाँ क्या झाड-झखाडोकी औषधि करने आया है ? उन्होने उसे बुलाया और पूछा कि तुम्हारे पास क्या-क्या औषधियाँ है ? उसने जो रोग उनके शरीरपर दिख रहे थे, उन सबकी औषधियाँ बता दी। मुनिराजने कहा कि भाई ! ये रोग तो मुझे है नही। ये सब शरीरमे अवश्य है, पर उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? मै तो आत्मद्रव्य हूँ जो कि इससे सर्वथा भिन्न है। उसे इन रोगोमेसे एक भी रोग नही है। हाँ, उसे जन्म-मरणका रोग है। यदि तुम्हारे झोलामे उसकी औषधि हो तो देओ। वैद्य असली रूपमे प्रकट हो, चरणोमे गिर कर कहता है कि भगवन् ! इस रोगकी औषधि तो आपके ही पास है। हम देव लोग तो इसकी औषधि जो तप है, उससे वञ्चित ही रहते है। चाहते है कि तप करें, पर हमारा यह वैक्रियिक शरीर उसमे बाधक है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि किसी तरह गृहस्थीके जालसे छुटकारा मिला है, तो दूसरे जालमे नही फँसना चाहिए और निर्द्वन्द्व होकर आत्माका कल्याण करना चाहिए।

अन्तरङ्ग तपोमे स्वाध्यायको भी तप वताया है। स्वाध्यायसे आत्मा और अनात्माका बोध होता है, इसलिए प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमे प्रवृत्ति करना चाहिए। आचार्योकी वुद्धि तो देखो, उन्होने शास्त्र पढनेके लिए 'स्वाध्याय' यह कितना सुन्दर शव्द चुना है। अरे, शास्त्र पढते हो तो उसके लिए 'शास्त्राध्याय' शव्द चुनते, पर उन्होने स्वाध्याय शव्द चुना है। इसका तात्पर्य यह है कि शास्त्र पढ़कर स्वको पढ़ो—अपने आपको पहिचानो। यदि ग्यारह अङ्ग और नौ पूर्वको पढनेके बाद भी स्वको नही पढ़ सके, तो उस भारभूत ज्ञानसे कौन-सा लाभ होनेवाला है ? इतना ज्ञान तो इस जीवने अनन्तवार प्राप्त किया, परन्तु ससार-सागरसे पार नही हो सका। जैन सिद्धान्तमे अनेक शास्त्रोको जाननेकी प्रतिष्ठा नही है, किन्तु सम्यग्ज्ञानकी प्रतिष्ठा है। यहाँ तो मात्र तुषमात्रको भिन्न-भिन्न जाननेवाले मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति वताकर मोक्ष पहुँचनेकी वात लिखी है, अत. ज्ञान थोडा भी हो, तो हानि नही, परन्तु मिथ्या न हो, इस वातका ध्यान रक्खो।

सप्तम अध्यायमे आपने शुभास्रवका वर्णन सुनते समय अहिसादि पाँच व्रतोका वर्णन सुना है। उसमे उन्होने उन व्रतोकी स्थिरताके लिए पाँच-पाँच भावनाओका वर्णन किया है। उसपर ध्यान दीजिए। जिन कामोसे व्रतमे वाधा होती दिखी, उन्ही-उन्ही कामोपर आचार्यने पहरा बैठा दिया है। जैसे मनुष्य हिंसा करता है, तो किन-किन कार्योसे करता है ? १ वचनसे कुछ बोलकर, २ मनसे कुछ विचार, ३ शरीरसे चलकर, ४ किन्हो वस्तुओको रख तथा उठाकर और ५ भोजन ग्रहणकर, इन पाँच कार्योसे ही करता है। आचार्यने इन पाँचो कार्योपर पहरा बैठाते हुए लिखा है—

'वाड मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च' अर्थात् वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपानभोजन इन पाँच कार्योसे अहिंसाव्रतकी रक्षा होती है। इसी प्रकार सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, व्रह्मचर्यव्रत और परिग्रहत्यागव्रतकी वात समझना चाहिए।

उन्होंने एक वात और लिखी है 'नि शल्यो व्रती' अर्थात् व्रतीको नि शल्य होना चाहिये। माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य हैं। ये काँटेकी तरह सदा चुभती रहती है, इसलिये व्रतीको इनसे दूर रहना

एक वार एक साधु नदीके किनारे पहुँचा। दूसरी पार जानेके लिए नाव लगती थी। नावका किराया दो पैसा था। साधुके पास पैसाका अभाव था, इसलिए वह नदीके इस पार ही ठहरनेका उद्यम करने लगा। इतनेमे एक सेठ आया, बोला—बाबाजी! रात्रिको यहाँ कहाँ ठहरेगे! उस ओर चलिये, वहाँ ठहरनेका अच्छा स्थान है। साधुने कहा बेटा! नावमे बैठनेके लिए दो पैसा चाहिये। मेरे पास है नही, अत यही रात्रि बितानेका विचार किया है। सेठने कहा पैसोकी कोई वात नही, आप नाव पर बैठिये। सेठ और साधु दोनो नावो पर बैठ गये। सेठने चार पैसे नाववालेको दिये। जब नावसे उतरकर दूसरी ओर दोनो पहुँच गये, तब सेठने साधुसे कहा—बाबाजी आप वहुत त्यागका उपदेश देते हो। यदि आपके समान मैने भी पैसे त्याग दिये होते तो आज क्या दशा होती? अत त्यागकी वात छोडो। साधुने हँसकर कहा—बेटा! यदि नदी पार हुई है तो चार पैसोके त्यागसे ही हुई है। यदि तूँ ये पैसे अपनी अटीमे रखे रहता तो यह नाववाला तुझे कभी भी नदीसे पार नही उतारता। सेठ चुप रह गया।

कहनेका तात्पर्य यही है कि त्यागसे ही ससारके सब काम चलते है।

> पानी बाढे नावमें घरमें बाढे दाम।
> दोनों हाथ उलीचिये यही सयाना काम॥

यदि नावमे पानी बढ रहा है तो दोनो हाथोसे उलीचकर उसे बाहिर करना ही बुद्धिमता है। इसी प्रकार (यदि घरमे सम्पत्ति बढ रही है तो उसे दानके द्वारा उत्तम कार्यमे खर्च करना ही उसकी रक्षाका उपाय है। दान सन्मानके साथ देना चाहिये और उसके बदले किसी प्रकारका अभिमान हृदयमे उत्पन्न नही होना चाहिये, अन्यथा पैसाका पैसा जाता है और उससे आत्माको लाभ भी कुछ नही होता। दानमें लोभकषायसे निवृत्ति होनेके कारण दाताकी आत्माको लाभ होता है। यदि लोभके वदले उसके दादा मानका उदय आत्मामे हो गया तो इससे क्या लाभ कहलाया। उत्तम पात्रके लिये दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नही जाता) धन्यकुमारकी कथा आप लोग जानते है। घरसे निकलनेपर उसे जो स्थान-स्थानपर अनायास ही लाभ हुआ था वह उसके पूर्व पर्यायमे दिये दानका ही फल था। समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

क्षितिगतमिव वटबीज पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।
फलति च्छायाविभव बहुफलमिष्ट शरीरभृताम् ।।

अर्थात् जिसप्रकार योग्य भूमिमे पडा हुआ वटका छोटा-सा बीज कालान्तरमे बडा वृक्ष बनकर छायाके विभवको प्रदान करता है, उसी प्रकार योग्य पात्रके लिये दिया हुआ छोटा-सा दान भी समय पाकर अपरिमित्त वैभवको प्रदान करता है।

जब वसन्त याचक भये दीने तरु मिल पात ।
इससे नव पल्लव भये दिया व्यर्थ नहिं जात ।।

एक कविके सामने पूर्तिके लिये समस्या रखी गई—'दिया व्यर्थ नहिं जात', जिसकी उसने उक्त प्रकार पूर्ति की। कितना सुन्दर भाव इसके अन्दर भर दिया है। वसन्त ऋतुमे प्रथम पतझड आती है, जिससे समस्त वृक्षोके पुराने पत्ते झड जाते हैं और उसके बाद उन वृक्षोमे नये लह-लहाते पल्लव उत्पन्न होते हैं। कविने यही भाव इसमे अंकित्त किया है कि जब वसन्त ऋतु याचक हुआ अर्थात् उसने वृक्षोसे पत्तोकी याचना की, तब सब वृक्षोने उसे अपने-अपने पत्ते दे दिये। उसीके फलस्वरूप उन्हे नये-नये पल्लवोकी प्राप्ति होती है, क्योंकि दिया दान कभी व्यर्थ नही जाता है। मान-बडाईके लिए जो दान दिया जाता है, वह व्यर्थ जाता है। इसके लिए महाभारतमें एक उपकथा आती है—

युद्धमे विजयोपरान्त युधिष्ठिर महाराजने एक बडा भारी यज्ञ किया। उसमे हजारो ब्राह्मणोको भोजन कराया गया। जिस स्थान पर ब्राह्मणो-को भोजन कराया गया, उस स्थानपर युधिष्ठिर महाराज खडे हुए कुछ लोगोसे वार्ता कर रहे थे। वही एक नेवला जूठनमे बार-बार लोट रहा था। महाराजने नेवलासे कहा—यह क्या कर रहा है ? तब नेवलाने कहा—महाराज ! एक गाँवमे एक वृद्ध ब्राहृण रहता था। उसकी स्त्री थी, एक लडका था और लडकेकी स्त्री थी। इस तरह चार आदमियोकी उसकी गृहस्थी थी। बेचारे बहुत गरीब थे। खेतो परसे शिला बीनकर लाते और उससे अपनी गुजर करते थे। एक बार ३ दिनके अन्तरसे उन्हे भोजन प्राप्त हुआ। शिला बीनकर जो अनाज उन्हे मिला, उससे वे आठ रोटियाँ बनाकर तथा दो-दो रोटियाँ अपने हिस्सेकी लेकर खाने बैठे। बैठे ही थे कि इतनेमे एक गरीब आदमी चिल्लाता हुआ आया— सात दिनसे मुखमे अनाजका दाना भी नही गया, भूखके मारे निकले जा रहे है। उसकी दीन वाणी सुन ब्राह्मणको दया आ गई,

उसने यह विचार कर कि अभी मुझे तो दो तीन ही दिन हुए हैं, पर इस बेचारेको सात दिन हो गये हैं, अपनी रोटियाँ उसे दे दी। वह आदमी तृप्त नही हुआ। तव ब्राह्मण अपनी स्त्रीकी ओर देखने लगा। ब्रह्मणीने कहा कि आप भूखे रहे और मै भोजन करूँ, यह कैसे हो सकता है ? यह कह उसने भी अपनी रोटियाँ उसे दे दी। वह फिर भी तृप्त नही हुआ। तव दोनो लडकेकी ओर देखने लगे। लडकेने कहा कि हमारे वृद्ध माता-पिता भूखे रहे और मै भोजन करूँ, यह कैसे हो सकता है ? यह कह उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दी। वह फिर भी तृप्त नही हुआ, तव तीनो लडकेकी स्त्रीकी ओर देखने लगे। उसने भी कहा कि यद्यपि मै आपके घर उत्पन्न नही हुई हूँ, तथापि आप लोगोके सहवाससे मुझमे भी कुछ-कुछ उदारता और दयालुता आई है, यह कहकर उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दी। वह भूखा आदमी तृप्त होकर आशीर्वाद देता हुआ चला गया। चारोके चारो भूखे रह गये। महाराज! जिस स्थान पर उस गरीवने वैठकर भोजन किया था, मै वहाँसे निकला तो मेरा नीचेका भाग स्वर्णमय हो गया। अव आधा स्वर्णमय और आधा चर्ममय होनेसे मुझे अपना रूप अच्छा नही लगा। इसी बीच मैंने सुना कि महाराजके यहाँ यज्ञमे हजारो ब्राह्मणोका भोजन हुआ है। वहाँ जाकर लोटूँगा तो पूरा स्वर्णमय हो जाऊँगा। यही सुनकर मै यहाँ आया और वडी देरसे जूँठनमें लोट रहा हूँ, परन्तु मेरा शेष शरीर स्वर्णमय नहीं हो रहा है। महाराज! जान पडता है आपने यह ब्राह्मण-भोजन करुणा-बुद्धिसे नही कराया, केवल मान-बडाईके लिये लोकव्यवहार देख कराया है। कथा तो कथा ही है, पर इससे सार यही निकलता है कि मान-बडाईके उद्देश्यसे दिया दान निष्फल जाता है। दान देते समय पात्रकी योग्यता और आवश्यकता पर भी दृष्टि डालना चाहिये। एक स्थान पर कहा है—

> दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
> व्याधितस्यौषध पथ्य नीरुजस्य किमौषधैः॥

अर्थात् हे युधिष्ठिर! दरिद्रोका भरण-पोषण करो, सम्पन्न व्यक्तियोको धन नही दो। रुग्ण मनुष्यके लिए औषधि हितकारी है, नीरोग मनुष्यको उससे क्या प्रयोजन ?

प्रसन्नताकी वात है कि जैन समाजमे दान देनेका प्रचार अन्य समाजोकी अपेक्षा अधिक है। प्रतिवर्ष लाखों रुपयोका दान समाजमे

होता है और उससे समाजके उत्कर्षके अनेक कार्य हो रहे हैं। पिछले पचास वर्षोसे आपकी समाजमे जो प्रगति हुई है वह आपके दानका ही फल है।

अष्टम अध्यायमे आपने बन्धतत्त्वका वर्णन सुना है। बन्धका प्रमुख कारण मोहजन्य विकार है। 'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव' इस सूत्रमे जो बन्धके कारण बतलाये हैं, उनमे योगको छोड़कर शेष सब मोहजन्य विकार ही तो हैं। अन्य कर्मो के उदयसे जो भाव आत्मामे उत्पन्न होते है, उनसे नवीन कर्मबन्ध नही होता। परन्तु मोहकर्मके उदयसे जो भाव होता है वह नवीन कर्मबन्धका कारण है। कुन्दकुन्द स्वामीने भी समयसारमे कहा है—

रत्तो वंधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥

अर्थात् रागी-प्राणी कर्मोको बाँधता है और राग रहित प्राणी कर्मोको छोडता है। वन्धके विषयमे जिनेन्द्र भगवान्का यही उपदेश है, अत कर्मोमे राग नही करो। इस रागसे वचनेका प्रयत्न करो। 'यह राग आग दहे सदा ताते समामृत सेइये' यह रागरूपी आग सदा जलाती रहती है, इसलिये इससे वचनेके लिए सदा समताभावरूपी अमृतका सेवन करना चाहिये। यह ससारचक्र अनादि-कालसे चला आ रहा है और सामान्यकी अपेक्षा अनन्त काल तक चलता रहेगा। पञ्चास्तिकायमे श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

गदिमधिगदस्स देहो देहादिदियाणि जायते।
जो खलु ससारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो॥
परिणामादो कम्म कम्मादो गदिसु होदि गदी।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इदियाणि जायते॥
तेहिं दु विसयगहण तत्तो रागो व दोसो वा।
जायदि जीवस्सेवं भावो ससारचक्कवालम्मि॥
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा।

(जो ससारमे रहनेवाले जीव हैं उनके स्निग्ध परिणाम होता है, परिणामोसे कर्मका वन्ध होता है, कर्मसे जीव एक गतिसे अन्य गतिमे जाता है, जहाँ जाता है वहाँ देह ग्रहण करता है, देहसे इन्द्रियोका उत्पाद होता है, इन्द्रियोके द्वारा विषय-ग्रहण करता है, विषय-ग्रहणसे रागादिपरिणामोकी उत्पत्ति होती है, फिर रागादिसे कर्म और कर्मसे गत्यन्त-

गमन, फिर गत्यन्तरगमनसे देह, देहसे इन्द्रियाँ, इन्द्रियोसे विषय-ग्रहण, विषयोसे स्निग्ध परिणाम, स्निग्धपरिणामोसे कर्म और कर्मसे वही प्रक्रिया, इस तरह यह ससार-चक्र वरावर चला जाता है। यदि इसको मिटाना है, तो उक्त प्रक्रियाका अन्त करना पडेगा। इस प्रक्रियाका मूल कारण स्निग्ध परिणाम है। उसका अन्त करना ही इस भवचक्रके विध्वंसका मूल हेतु है। इसको दूर करनेके उपाय वडे-वडे महात्माओने वतलाए है। आज ससारमे धर्मके जितने आयतन दृष्टिपथ हैं, वे इसी चक्रसे वचनेके साधन हैं। किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि डालो, तो ये सर्व उपाय पराश्रित है। केवल स्वाश्रित उपाय ही स्वद्वारा अर्जित ससारके विध्वस-का कारण हो सकता है। जैसे शरीरमे यदि अन्न खाकर अजीर्ण हो गया है, तो उसको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि उदरसे पर द्रव्यका सम्वन्ध पृथक् कर दिया जावे। उसकी प्रक्रिया यह है कि प्रथम तो नवीन भोजन त्यागो तथा उदरमे जो विकार है, वह या तो काल पाकर स्वयमेव निर्गत हो जावेगा या शीघ्र ही पृथक् करना है, तो वमन-विरेचन द्वारा निकाल दिया जावे। ऐसा करनेसे निरोगताका लाभ अनायास हो सकता है। मोक्षमार्गमे भी यही प्रक्रिया है। वल्कि जितने कार्य है, उन सर्वकी यही पद्धति है। यदि हमे ससार-वन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है, तो सवसे प्रथम हम कौन है ? क्या हमारा स्वरूप है ? वर्तमान क्या है ? तथा ससार क्यो अनिष्ट है ? इन सब वातोका निर्णय करना आवश्यक है। जव तक उक्त वातोका निर्णय न हो जावे, तव तक उसके अभावका प्रयत्न हो ही नही सकता। आत्मा अहम्प्रत्यय-वेद्य है। उसकी जो अवस्था हमें ससारी वना रही है, उससे मुक्त होने-की हमारी इच्छा है, तव केवल इच्छा करनेसे मुक्तिके पात्र हम नही हो सकते। जैसे जल अग्निके निमित्तसे उष्ण हो गया है। अब हम माला लेकर जपने लगे कि 'शीतस्पर्शवज्जलाय नम' तो क्या इससे अनल्प कालमे भी जल शीत हो जायगा ? नही, वह तो उष्ण स्पर्शके दूर करनेसे ही शीत होगा। इसीतरह हमारी आत्मामे जो रागादि विभाव परिणाम हैं, उनके दूर करनेके अर्थ 'श्रीवीतरागाय नम' यह जाप असख्य कल्प भी जपा जावे, तो भी आत्मामे वीतरागता न आवेगी, किन्तु रागादि निवृत्तिसे अनायास वीतरागता आ जावेगी। वीतरागता नवीन पदार्थ नही, आत्माकी निर्मोह अवस्था ही वीतरागता है, जो कि शक्तिकी अपेक्षा सदा विद्यमान रहती है। जिसके उदयसे परमे निजत्व बुद्धि होती है, वही मोह है। परको निज मानना, यह अज्ञानभाव है, अर्थात् मिथ्या-

ज्ञान है। इसका मूलकारण मोहका उदय है। ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे ज्ञान तो होता है, परन्तु विपर्यय होता है। जैसे शुक्तिकामे रजतका विभ्रम होता है। यद्यपि शुक्ति रजत नही हो गई तथापि दूरत्व एव चाकचिक्यादि कारणोसे भ्रान्ति हो जाती हैं। यहाँ भ्रान्तिका कारण दूरत्वादि दोष है। जैसे कामला रोगी जब शङ्ख देखता है, तव 'पीत-शङ्ख' ऐसी प्रतीति करता है। यद्यपि शङ्खमे पीतता नही, यह तो नेत्रमे कामला रोग होनेसे शङ्खमे पीतत्व भासमान है। यह पीतता कहाँसे आई। तव यही कहना पडेगा कि नेत्रमे जो कामला रोग है वही इस पीतत्वका कारण है। इसी प्रकार आत्मामे जो रागादि होते है उनका मूल कारण मोहनीय कर्म है। उसके दो भेद हैं—१ दर्शनमोह और २ चारित्रमोह। उनमे दर्शनमोहके उदयसे मिथ्यात्व और चारित्रमोहके उदयसे रागद्वेष होते है। उपयोग आत्माका ऐसा है कि उसके सामने जो आता है, उसीका उसमे प्रतिभास होने लगता है। जैसे नेत्रके समक्ष जो पदार्थ आता है वह उसका ज्ञान करा देता है। यहाँ तक तो कोई आपत्ति नही, परन्तु जो पदार्थ ज्ञानमे आवे उसे आत्मीय मान लेना आपत्तिजनक है, क्योकि वह मिथ्या अभिप्राय है। जो पर वस्तुको निज मानता है, ससारमे लोग उसे ठग कहते हैं, परन्तु यह चोट्टापन छूटना सहज नही। अच्छे-अच्छे जीव परको निज मानते हैं, और उन पदार्थो की रक्षा भी करते हैं, किन्तु अभिप्रायमे यह है कि ये हमारे नही। इसीलिये उन्हे सम्यग्ज्ञानी कहते है। मिथ्यादृष्टि जीव उन्हे निज मान अनन्त ससारके पात्र होते है, अत सिद्ध होता है कि यह मोहपरिणति ही बन्धका कारण है। इससे छुटकारा चाहते हो, तो प्रथम मोहपरिणतिको दूर कर आत्मस्वरूपमे स्थित होनेका प्रयास करो। इसीसे आत्मशान्ति प्राप्त होगी। परमार्थसे आत्मशान्तिका उपाय यही है कि परसे सम्वन्ध छोडा जाय और आत्मपरिणतिका विचार किया जाय। विचारका मूल कारण सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति आप्तश्रुतिसे होती है, आप्तश्रुति आप्ताधीन है, आप्त रागादि दोपरहित है, अत रागादि दोपोको जानो, उनको पारमार्थिक दशासे परिचय करो। रागादि दोपोका त्याग ही ससारवन्धनसे मुक्तिका उपाय है। रागादिकोका यथार्थ स्वरूप जान लेना ही उनसे विरक्त होनेका मूल उपाय है।

: ९ :

त्याग करते-करते अन्तमे आपके पास क्या वचेगा ? कुछ नहीं।

जिसके पास कुछ नही बचा, वह अकिञ्चन कहलाता है और अकिञ्चनका जो भाव है वही आकिञ्चन्य कहलाता है। परिग्रहका त्याग हो जानेपर ही पूर्ण आकिञ्चन्य धर्म प्रकट होता है। सुख आत्माका गुण है। भले ही वह वर्तमानमे विपरीतरूप परिणमन कर रहा हो, पर यह निश्चित है कि जब भी वह प्रकट होगा, तव आत्मामे ही प्रकट होगा, यह ध्रुव सत्य है, परन्तु मोहके कारण यह जीव परिग्रहको सुखका कारण जान, उसके सचयमे रात-दिन एक कर रहा है। 'परितो गृह्णाति आत्मानमिति परिग्रह' जो आत्माको सव ओरसे पकड़ कर जकड़ कर रक्खे वह परिग्रह है। परमार्थसे विचार किया जाय तो यह परिग्रह ही इस जीवको समन्तात्—सव ओरसे जकडे हुए है। 'मूर्च्छा परिग्रह ।' आचार्य उमास्वामी महाराजने परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा रक्खा है। मै इसका स्वामी हूँ, ये मेरे स्व है, इस प्रकारका भाव ही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छाके रहते हुए पासमे कुछ भी न हो, तव भी यह जीव परिग्रही कहलाता है और मूर्च्छाके अभावमे समवसरणरूप विभूतिके रहते हुए भी अपरिग्रह—परिग्रह रहित कहलाता है। परिग्रह सवसे वडा पाप है, जो दशम गुणस्थान तक इस जीवका पिण्ड नही छोडता। आज परिग्रहके कारण ससारमे त्राहि-त्राहि मच रही है, जहाँ देखो वही परिग्रहकी पुकार है। जिनके पास है वे उसे अपने पाससे अन्यत्र नही देना चाहते और जिनके पास नही है वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं, इसीलिये ससारमे सघर्ष मचा हुआ है। यदि लोगोकी दृष्टिमे इतनी वात आ जाय कि परिग्रह निर्वाहका साधन है। जिस प्रकार हमे भोजन, वस्त्र और निवासके लिए परिग्रहकी आवश्यकता है, उसी प्रकार दूसरेके लिए भी इसकी आवश्यकता है, अत हमे आवश्यकतासे अधिक अपने पास नही रोकना चाहिये, तो ससारका कल्याण हो जाय। यदि परिग्रहका कुछ भाग एक जगह अनावश्यक रुक जाता है, तो दूसरी जगह उसके विना कमी होनेसे सकट उत्पन्न हो जाता है। शरीरके अन्दर जवतक रक्तका सचार होता रहता है, तवतक शरीरके प्रत्येक अग अपने कार्यमें दक्ष रहते हैं, पर जहाँ कही रक्तका सचार रुक जाता है, वहाँ वह अङ्ग बेकार हो जाता है और जहाँ रक्त रुक जाता है, वहाँ मवाद पैदा हो जाता है। यही हाल परिग्रहका है। जहाँ यह नही पहुँचेगा वहाँ उसके विना सकटापन्न स्थिति हो जायगी और जहाँ रुक जायगा वहाँ मद-मोह विभ्रम आदि दुर्गुण उत्पन्न कर देगा। इसलिये जैनागममे यह कहा गया है कि गृहस्थ अपनी आवश्यकताओके अनुसार परिग्रहका परिमाण करे और मुनि सर्वथा ही उसका

परित्याग करे ।)

आजके युगमे मनुष्यकी प्रतिष्ठा पैसेसे आँकी जाने लगी है, इसलिये मनुष्य न्यायसे अन्यायसे जैसे बनता है वैसे पैसेका सचय कर अपनी प्रतिष्ठा बढाना चाहता है। प्रतिष्ठा किसे बुरी लगती है ? इस परिग्रह-की छीना-झपटीमें मनुष्य भाई भाईका, पुत्र पिताका और पिता पुत्र तक-का घात करता सुना गया है। इसके दुर्गुणोकी ओर जब दृष्टि जाती है, तब शरीरमे रोमाञ्च उठ आते है। चक्रवर्ती भरतने अपने भाई बाहुबलि-के ऊपर चक्र चला दिया। किसलिए ? पैसेके लिये। क्या वे यह नही सोच सकते थे कि आखिर यह भी तो उसी पिताकी सन्तान है, जिसकी मैं हूँ। यह एक न वशमे हुआ न सही, षट्खण्डके समस्त मानव तो वश-मे आ गये—आज्ञाकारी हो गये, पर वहाँ तो भूत मोहका सवार था, इसलिए सन्तोष कैसे हो सकता था ? वे मन्त्रियो द्वारा निर्णीत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्धमे पराजित होनेपर भी उबल पडे—रोपमे आ गये और भाईपर चक्ररत्न चलाकर शान्त हुए। उस समयके मन्त्रियोकी बुद्धिमानी देखो। वे समझते थे कि ये दोनो भाई चरमशरीरी--मोक्ष-गामी है। इनमेसे एकका भी विघात होनेका नही। यदि सेनाका युद्ध होता है, तो हजारो निरपराध व्यक्ति मारे जावेगे, इसलिए अपनी बल-वत्ताका निर्णय ये दोनो अपने ही युद्धोसे करे और युद्ध भी कैसे, जिनमे घातक शस्त्रोंका नाम भी नही ? यह उस समयके मन्त्री थे और आजके मन्त्रियोकी बात देखो। आप घरमेसे बाहर नही निकलेगे, पर निरपराध प्रजाके लाखों मानवोंका विध्वस करा देगे। कौरव और पाण्डवोका युद्ध किनिमित्तक था ? इसी परिग्रह निमित्तक तो था। कौरव अधिक थे, इसलिए सम्पत्तिका अधिक भाग चाहते थे। पाण्डव यदि यह सोच लेते कि हम थोडे है, अत हमारा काम थोडेसे ही चल सकता है। अर्ध भाग-की हमे आवश्यकता नही है, तो क्या महाभारत होता ? नही, पर उन्हे तो आधा भाग चाहिए था। कितने निरपराध सैनिकोका विनाश हुआ, इस ओर दृष्टि नही गई। जावे कैसे, परिग्रहका आवरण नेत्रके ऊपर ऐसी पट्टी बाँध देता है कि वह पदार्थका सही रूप देख ही नही पाता। ससार-मे परिग्रह पापकी जड है। वह जहाँ जावेगा वही पर अनेक उपद्रव करावेगा। करावे, किन्तु जिन्हे आत्महित करना है, वे इसे त्याग करे। त्याग परिग्रहका नही, मूर्छाका होना चाहिये।

कितने ही लोग ऐसा सोचते है कि, अभी परिग्रहका अर्जन करो, पीछे दान आदि कार्योमे व्यय कर पुण्यका सचय कर लेंगे, परन्तु आचार्य कहते

है कि 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' अर्थात् कीचड धोनेकी अपेक्षा दूरसे ही उसका स्पर्श न करना अच्छा है। लक्ष्मीको अगीकार कर उसका त्याग करना कहाँकी बुद्धिमानी है। कार्तिकेय मुनिने लिखा है कि वैसे तो सभी तीर्थङ्कर समान है, परन्तु वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थङ्करोमे हमारी भक्ति विशेष है, क्योकि इन्होने सम्पत्तिको अङ्गीकृत ही नही किया, जबकि अन्य तीर्थङ्करोने सामान्य मनुष्योकी तरह सम्पत्ति ग्रहण कर पीछे त्याग किया। परिग्रहवालोसे पूछो कि उन्हे परिग्रहसे कितना सुख है ? जिसके पास कुछ नही है वह सुखकी नीद तो सोता है, पर परिग्रहवालोको यह नसीव नही।

एक गरीव आदमी था, महादेवजीका भक्त था। उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर एक दिन महादेवजीने कहा—बोल क्या चाहता है ? महादेवजीको सामने खडा देख बेचारा घवडा गया। बोला—महाराज ! कल सवेरे माँग लूँगा। महादेवजीने कहा—अच्छा। वह आदमी साय कलसे ही विचार करने वैठा कि महादेवजीसे क्या माँगा जाय। हमारे पास रहनेके लिये घर नही, इसलिए यही माँगा जाय। फिर सोचता है जब महादेवजी मु ह मागा वरदान देनेको तैयार है, तब घर ही क्यो माँगा जाय ? देखो, ये जमीदार हैं, गाँवके समस्त लोगो पर रौब गाँठते है, इसलिए हम भी जमीदार हो जावे, तो अच्छा है। यह विचार कर उसने जमीदारी माँगनेका निर्णय किया। फिर सोचता है आखिर जब लगान भरनेका समय आता है, तब ये तहसीलदारकी आरजू मिन्नत करते है, इसलिए इनसे वडा तो तहसीलदार है, वही क्यों न वन जाऊ ? इस तरह विचार कर वह तहसीलदार बननेकी आकाक्षा करने लगा। कुछ देर वाद उसे जिलाधीशका स्मरण आया, तो उसके सामने तहसीलदारका पद फीका दिखने लगा। इस प्रकार एकके बाद एक इच्छाएँ वढती गई और वह निर्णय नही कर पाया कि क्या माँगा जाय। सारी रात्रि विचार करते करते निकल गई। सवेरा हुआ, महादेवजीने पूछा—बोल क्या चाहता है ? वह उत्तर देता है—महाराज ! कुछ नही चाहिए ! क्यो ? क्यो क्या, जब पासमे सम्पत्ति आई नही, आनेकी आशामात्र दिखी, तब तो रात्रिभर नीद नही। यदि कदाचित् आ गई, तो फिर नीद तो एकदम विदा हो जायगी, इसलिए महाराज मै जैसा हूँ वैसा ही अच्छा हू'। उदाहरण है, अत इससे सार ग्रहण कीजिए।' साग इतना ही है कि परिग्रह जञ्जालका कारण है, अत इससे निवृत्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये।

नवम अध्यायमे सवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन आपने सुना है।

वास्तवमे विचार करो, तो मोक्षके साधक ये दो ही तत्त्व है। नवीन कर्मोका आस्रव रुक जाय, यही सवर है और पूर्वबद्ध कर्मोका क्रम-क्रमसे खिर जाना निर्जरा है। सवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्रके द्वारा होता है। इन कारणोमे आचार्य महाराजने सर्वसे प्रथम गुप्तिका उल्लेख किया है। समस्त आस्रवोका मूल कारण योग है। यदि योगो पर नियन्त्रण हो गया, तो आस्रव अपने आप रुक जावेंगे। इस तरह गुप्ति ही महासवर है, परन्तु गुप्तिका प्राप्त होना सहज नही। गुप्ति-रूप अवस्था सतत नहीं हो सकती, अत उसके अभावमे प्रवृत्ति करना पडती है, तब आचार्यने आदेश दिया कि भाई यदि प्रवृत्ति ही करना है, तो प्रमाद रहित प्रवृत्ति करो। प्रमाद रहित प्रवृत्तिका नाम समिति है। मनुष्य चलता है, बोलता है, खाता है, किसी वस्तुको उठाता धरता है और मलमूत्रादिका त्याग करता है। इनके सिवाय यदि अन्य कर्म करता हो, तो बताओ ? उसके समस्त कार्य इन्ही पाच कर्मोमे अन्तर्गत हो जाते है। आचार्य महाराजने पाच समितियोके द्वारा इन पाचो कार्यो पर पहरा बैठा दिया, फिर अनीतिमे प्रवृत्ति हो तो कैसे हो ?

: १० :

आत्माका उपयोग आत्मामे स्थिर नही रहता, इसका कारण परिग्रह है। परिग्रहके कारण ही उपयोगमे सदा चञ्चलता आती रहती है। आकिञ्चन्य धर्ममे परिग्रहका त्याग होनेसे आत्माका उपयोग अन्यत्र न जाकर ब्रह्म अर्थात् आत्मामे ही लीन होने लगता है। यथार्थमे यही ब्रह्मचर्य है। बाह्य ज्ञेयसे उपयोग हटकर आत्मस्वरूपमे ही लीन हो जाय, तो इससे बढकर धर्म क्या होगा ? इसीलिये ब्रह्मचर्यको सबसे बडा धर्म माना है। ब्रह्मचर्यकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानमे होती है। आगममे वहाँ ही शीलके अठारह हजार भेदोकी पूर्णता बतलाई है। यद्यपि निश्चयनयसे ब्रह्मचर्यका यही स्वरूप है, तथापि व्यवहारसे स्त्रीत्याग-को ब्रह्मचर्य कहते है। स्वकीय तथा परकीय दोनो प्रकारकी स्त्रियोका त्याग हो जाना पूर्ण ब्रह्मचर्य है और परकीय स्त्रीका त्यागकर स्वकीय स्त्रीमे सतोष रखना अथवा स्त्रीकी अपेक्षा स्वपुरुषमे सतोष रखना एकदेश ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्यसे ही मनुष्यकी शोभा तथा प्रतिष्ठा है। चिरकालसे मनुष्योमे जो कौटुम्बिक व्यवस्था चली आ रही है, उसका कारण मनुष्यका ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्यका सबसे बडा बाधक कारण कुसङ्गति है। कुसगतिके चक्रमे पडकर ही मनुष्य बुरी आदतोमे पडता

है, इसलिये ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाले मनुष्यको सर्व प्रथम कुसगतिसे बचना चाहिये। शुभचन्द्राचार्यने वृद्धसेवाको ब्रह्मचर्यका साधक मानकर ज्ञानार्णवमे इसका विशद वर्णन किया है। यहाँ जो उत्तमगुणोसे सहित है उन्हे वृद्ध कहा है केवल अवस्थासे वृद्ध मनुष्योकी यहाँ विवक्षा नही है। मनुष्यके हृदयमे जब दुर्विचार उत्पन्न होते है, तब उन्हे रोकनेके लिए लज्जा गुण बहुत कुछ प्रयत्न करता है। उत्तम मनुष्योकी सगतिसे लज्जागुणको वल मिलता है। और वह मनुष्योके दुर्विचारोको परास्त कर देता है, परन्तु जब नीच मनुष्योकी सगति रहती है, तब लज्जागुण असहाय जैसा होकर स्वय परास्त हो जाता है। 'हृदयसे लज्जा गई' फिर दुर्विचारोको रोकनेवाला कौन है ?

आदर्श गृहस्थ वही हो सकता है, जो अपनी स्त्रीमे सतोष रखता है। इस एकदेश ब्रह्मचर्यका भी कम माहात्म्य नही है। सुदर्शन सेठकी रक्षाके लिए देव दौडे आते है। सीताजीके अग्निकुण्डको जलकुण्ड बनानेके लिए देवोका ध्यान आकर्षित होता है। यह क्या है ? एक शीलव्रतका ही अद्भुत माहात्म्य है। इसके विरुद्ध जो कुशील पापमे प्रवृत्ति करते है, वे देर सबेर नष्ट हो जाते है, इसमे सदेहकी बात नही है। जिन घरोमे यह पाप आया वे घर वरवाद ही हो गये और पाप करनेवालोको अपने ही जीवनमे ऐसी दशा देखनी पडी कि जिसकी उन्हे स्वप्नमे भी सभावना नही थी। जिस पापके कारण रावणके भवनमे एक बच्चा भी नही बचा, उसी पापको आज लोगोने खिलौना बना रक्खा है।

जाहि पाप रावणके छाना रह्यौ न भौना माँहि।
ताहि पाप लोगनने खिलौना कर राख्यौ है॥

पाप पाप ही है। इसे जो भी करेगा, वह दु.ख उठावेगा। ब्रह्मचारी मनुष्यको अपने रहन, वेषभूषा आदि सब पर दृष्टि रखना पडती है। बाह्य परिकर भी उज्वल बनाना पडता है, क्योकि इन सबका असर उसके ब्रह्मचर्यपर अच्छा नही पडता। आप भगवान् महावीरस्वामीके सबोधे हुए शिष्य है। भगवान् महावीर कौन थे ? बाल ब्रह्मचारी ही तो थे। अच्छा जाने दो, उनकी बात, उनके पहले भगवान् पार्श्वनाथ कैसे थे ? वे भी बालब्रह्मचारी थे और उनके पहले कौन थे ? नेमिनाथ, वे भी ब्रह्मचारी थे। उनका ब्रह्मचर्य तो और भी आश्चर्यकारी है। बीच विवाहसे विरक्त हो, दीक्षा उन्होने धारण की थी। इस तरह एक नही तीन-तीन तीर्थंकरोने आपके सामने ब्रह्मचर्यका माहात्म्य प्रकट किया,

है। हम अपने आपको उनका शिष्य बतलाते है। पर ब्रह्मचर्यकी ओर दृष्टि नही देते। जीवन विलासमय हो रहा है और उसके कारण सूरतपर वारह वज रहे है, फिर भी इस कमीको दूर करनेकी ओर लक्ष्य नही जाता। कीडे-मकोडेकी तरह मनुष्य-सख्यामे वृद्धि होती जा रही है। वल-वीर्यका अभाव शरीरमे होता जा रहा है, फिर भी ध्यान इस ओर नही जाता। एक वच्चा माँके पेटमे और एक अञ्चलके नीचे है, फिर भी मनुष्य विषयसे तृप्त नही होता। पशुमे तो कमसे कम इतना विवेक होता है कि वह गर्भवती स्त्रीसे दूर रहता है, पर हाय रे मनुष्य! तू तो पशुसे भी अधम दशाको पहुँच रहा है। तुझे गर्भवती स्त्रीसे भी समागम करनेमे सकोच नही रहा। इस स्थितिमे जो तेरे सन्तान उत्पन्न होती है, उसकी अवस्थापर भी थोडा विचार करो। किसीके लीवर वढ रहा है, तो किसीके पक्षाघात हो रहा है, किसीकी आँख कमजोर है तो किसीके दाँत दुर्वल हैं। यह सर्व क्यो है? एक ब्रह्मचर्यके महत्त्वको नही समझनेसे है। जव तक एक वच्चा माँका दुग्धपान करता है, तव तक दूसरा वच्चा उत्पन्न न किया जाय, तौ वच्चे भो पुष्ट हो तथा माता-पिता भी स्वस्थ रहे। आज तो स्त्रीके दो-तीन वच्चे हुए नही कि उसके शरीरमे बुढ़ापाके चिह्न प्रकट हो जाते है। पुरुषके नेत्रो पर चश्मा आ जाता है और मुँहमे पत्थरके दाँत लगवाने पडते है। जिस भारतवर्षमे पहले टी वी का नाम नही था, वहाँ आज लाखोकी सख्यामे इस रोगसे ग्रसित है। विवाहित स्त्री-पुरुषोकी वात छोडिये, अव तो अविवाहित वालक-वालिकाये भी इस रोगकी शिकार हो रही है। इस स्थितिमे भगवान् ही देशकी रक्षा करें। एक राजा ज्योतिष विद्याका, वडा प्रेमी था। वह मुहूर्त दिखाकर ही स्त्री-समागम करता था। राजाका ज्योतिपी तीन सालमे एक वार मुहूर्त निकाल कर देता था। इससे राजाकी स्त्री बहुत कुढती रहती थी। एक दिन उसने राजासे कहा कि ज्योतिषीजी आपको तो तीन साल बाद मुहूर्त शोध कर देते है और स्वय निजके लिए चाहे जव मुहूर्त निकाल लेते है। उनका पोथी-पत्रा क्या जुदा है? देखो न, उनके प्रति वर्ष वच्चे उत्पन्न हो रहे है। स्त्रीकी वात पर राजाने ध्यान दिया और ज्योतिपीको वुलाकर पूछा कि महाराज! क्या आपका पोथी-पत्रा जुदा है? ज्योतिपीने कहा—महाराज! इसका उत्तर कल राज-सभामे दूगा। दूसरे दिन राजसभा लगी हुई थी। सिंहासन पर राजा आसीन थे। उनके दोनो ओर तीन-तीन वर्षके अन्तरसे हुए दोनो वच्चे सुन्दर वेष-भूषामे वैठे थे। राजसभामे ज्योतिपीजी पहुँचे। प्रति वर्ष

उत्पन्न होनेवाले बच्चोंमेंसे वे एकको कन्धेपर रखे थे, एकको बगलमे दाबे थे और एकको हाथसे पकडे थे। पहुँचने पर राजाने उत्तर पूछा। ज्योतिषीने कहा--महाराज! मुहूर्तका बहाना तो मेरा छल था। यथार्थ बात यह है कि आप राजा है। आपकी संतान राज्यकी उत्तराधिकारी है। यदि आपके प्रतिवर्ष संतान पैदा होती, तो वह हमारे इन बच्चोके समान होती। एकके नाक बह रही है, एककी आँखोमे कीचड़ लग रहा है, कोई ची कर रहा है, कोई पी कर रहा है। ऐसी सन्तानसे क्या राज्यकी रक्षा हो सकती है? हम तो जातिके ब्राह्मण है। हमारे इन बच्चोको राज्य तो करना नही है, सिर्फ अपना पेट पालना है, सो येन-केन प्रकारेण पाल ही लेगे। आपके ये दोनो बच्चे तीन-तीन सालके अन्तरसे हुए है। दोनोकी सूरत मिलान कर लीजिये। राजा ज्योतिषीके उत्तरसे निरुत्तर हो गया तथा उसकी दूरदर्शिता पर बहुत प्रसन्न हुआ। यह तो कथा रही, पर मै आपको एक प्रत्यक्ष घटना सुनाता हूँ। मै प० ठाकुरदासजीके पास पढता था। वह बहुत भारी विद्वान् थे। उनकी स्त्री दूसरे विवाहकी थी, पर उसकी परिणतिकी बात हम आपको क्या सुनावे? एक बार पण्डितजी उसके लिए १००) सौ रुपयेकी साडी ले आये। साडी हाथमे लेकर वह पण्डितजीसे कहती है—पण्डितजी! यह साडी किसके लिये लाये है? पण्डितजीने कहा कि तुम्हारे लिये लाया हूँ। उसने कहा कि अभी जो साडी मै रोज पहिनती हूँ वह क्या बुरी है? बुरी तो नही है, पर यह अच्छी लगेगी पण्डितजीने कहा। यह सुन उसने उत्तर दिया कि मै अच्छी लगनेके लिए वस्त्र नही पहनना चाहती। वस्त्रका उद्देश्य शरीरकी रक्षा है, सौन्दर्यवृद्धि नही और सौन्दर्य वृद्धि कर मै किसे आकर्षित करूँ? आपका प्रेम मुझपर है, यही मेरे लिये बहुत है। उसने वह साडी अपनी नौकरानीको दे दी और कह दिया कि इसे पहिन कर खराब नही करना। कुछ बट्टेसे वापिस होगी, सो वापिस कर आ और रुपये अपने पास रख, समय पर काम आवेंगे। जब पण्डितजीके २ सन्तान हो चुकी, तब एक दिन उसने पण्डितजीसे कहा कि देखो अपने दो सन्तान एक पुत्र और एक पुत्री हो चुकी। अब पापका कार्य बन्द कर देना चाहिये। पण्डितजी उसकी बात सुनकर कुछ हीला-हवाला करने लगे, तो वह स्वय उठकर उनकी गोदमे जा बैठी और बोली कि अब तो आप मेरे पिता तुल्य है और मै आपकी बेटी हूँ। पण्डितजी गद्-गद् स्वरसे बोले—बेटी! तूने तो आज वह काम कर दिया, जिसे मै जीवन भर अनेक शास्त्र पढकर भी नही कर

पाया। उस समयसे दोनो ब्रह्मचर्यसे रहने लगे। यदि किसीकी लडकी या वधू विधवा हो जाती है, तो लोग यह कह कर उसे रुलाते हैं कि हाय! तेरी जिन्दगी कैसे कटेगी? पर यह नही कहते कि बेटी! तू अनन्त पापसे वच गई, तेरा जोवन वन्धन मुक्त हो गया। अव तू आत्महित स्वतन्त्रतासे कर सकती है।

प्रथमानुयोगमे एक कथा आती है—किसी आदमीसे पानी छाननेके वाद जो जोवानी होती है, वह लुढ़क गई। उसने मुनिराजसे इसका प्रायश्चित्त पूछा, तो उन्होने कहा कि असिधारा व्रत धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषको भोजन कराओ। महाराज! इसकी परीक्षा कैसे होगी? ऐसा उसने पूछा—तो मुनिराजने कहा कि जव तेरे घरमे ऐसे स्त्री-पुरुष भोजन कर जावेगे, तव तेरे घरका मलिन चदेवा सफेद हो जावेगा। मुनिराजके कहे अनुसार वह स्त्री-पुरुषोको भोजन कराने लगा। एक दिन उसने एक स्त्री तथा पुरुषको भोजन कराया और देखा कि उनके भोजन करते-करते मैला चदेवा सफेद हो गया है। आदमीको विश्वास हो गया कि ये ही असिधारा व्रतके धारक हैं। भोजनके वाद उसने उनसे पूछा तो उन्होने परिचय दिया कि जब हम दोनोका विवाह नही हुआ था, उसके पहले हमने शुक्ल पक्षमे और इसने कृष्ण पक्षमे ब्रह्मचर्य रखनेका नियम ले रक्खा था। अनजानमे हम दोनोका विवाह हो गया। शुक्लपक्षके वाद कृष्णपक्षमे जब हमने इसके प्रति कामेच्छा प्रकट की, तो इसने उत्तर दिया कि मेरे तो कृष्णपक्षमे ब्रह्मचर्यसे रहनेका जीवनपर्यन्तके लिए नियम है। मै उत्तर सुनकर शान्त हो गया। तदनन्तर जव कृष्णपक्षके वाद शुक्लपक्ष आया और इसने अपना अनुराग प्रकट किया, तव मैने कहा कि मैने शुक्लपक्षमे ब्रह्मचर्यसे रहनेका नियम जीवनपर्यन्तके लिये विवाहके पूर्व लिया है। स्त्री शान्त हो गई। इस प्रकार स्त्री-पुरुप दोनो साथ-साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्यसे अपना जीवन बिता रहे हैं। देखो, उनके सतोपकी वात कि सामग्री पासमे रहते हुए भी उनके मनमे विकार उत्पन्न नही हुआ तथा जीवन भर उन्होने अपना अपना व्रत निभाया। अस्तु,

दशम अध्यायमे आपने मोक्षतत्त्वका वर्णन सुना है। इसमे आचार्यने मोक्षका स्वरूप बतलाते हुए लिखा है कि 'वन्धहेत्वभावनिर्जराभ्या कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः' अर्थात् वन्धके कारणोका अभाव और पूर्वबद्ध कर्मोकी निर्जरा होनेसे जो समस्त कर्मोका आत्यन्तिक क्षय हो जाता है वह मोक्ष कहलाता है। निश्चयसे तो सब द्रव्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। जीव

स्वतन्त्र है और कर्मरूप पुद्गल द्रव्य भी स्वतन्त्र है। इनका बन्ध नही, जब बन्ध नही, तब मोक्ष किसका ? इस तरह निश्चयकी दृष्टिसे तो बन्ध और मोक्षका व्यवहार बनता नही है, परन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे जीव और कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका एकक्षेत्रावगाह हो रहा है, इसलिये दोनोका बन्ध कहा जाता है और जब दोनोंका एक क्षेत्रावगाह मिट जाता है, तब मोक्ष कहलाने लगता है। समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू
बद्धश्च मुक्तश्च फल च मुक्ते ।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्त
नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥

अर्थात् बन्ध, मोक्ष, इनके कारण, जीवकी बद्ध और मुक्त दशा तथा मुक्तिका प्रयोजन यह सब हे नाथ! आपके ही सघटित होता है, क्योकि आप स्याद्वादसे पदार्थका निरूपण करते है, एकान्त दृष्टिसे आप पदार्थका उपदेश नही देते।

इस तरह परपदार्थसे भिन्न आत्माकी जो परिणति है वही मोक्ष है। इस परिणतिके प्रकट होनेमे सर्वसे अधिक बाधक मोह-कर्मका उदय है, इसलिये आचार्य महाराजने आज्ञा की है कि सर्वप्रथम मोहकर्मका क्षय कर तथा उसके बाद शेष तीन घातिया कर्मोका क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करो। उसके बाद ही अन्य अघातिया-कर्मोका क्षय होनेसे मोक्ष प्राप्त हो सकेगा। मोहके निकल जाने तथा केवलज्ञानके हो जाने पर भी यद्यपि पचासी प्रकृतियोका सद्भाव आगममे बताया है तथापि वह जली हुई रस्सीके समान निर्बल है—

ध्यान कृपाण पाणि गहि नाशी त्रसठ प्रकृति अरी।
शेप पचासी लाग रही है ज्यो जेवरी जरी ॥

परन्तु इतना निर्बल नही समझ लेना कि कुछ कर ही नही सकती है। निर्बल होनेपर भी उनमे इतनी शक्ति है कि वे देशोन कोटि पूर्व तक इस आत्माको केवलज्ञान हो जानेपर भी मनुष्यशरीरमे रोके रहती है। फिर निर्बल कहनेका तात्पर्य यही है कि वे इस जीवको आगेके लिये बन्धन युक्त नही कर सकती। परमयथाख्यातचारित्रकी पूर्णता चौदहवे गुणस्थानमे होती है। अतः वही शुक्लध्यानके चतुर्थ पायेके प्रभावसे उपान्त्य तथा अन्तिम समयमे बहत्तर और तेरह प्रकृतियोका क्षय कर यह जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है तथा ऊर्ध्वगमन स्व-

ावके कारण एक समयमे सिद्धालयमे पहुँच कर विराजमान हो जाता
। यही जैनागममे मोक्षकी व्याख्या है।

त्रयोदशी और चतुर्दशीके दिन नगरके मन्दिरोके दर्शनार्थ जुलूस
ंकले। क्षमावणीके दिन विद्यालयके प्राङ्गणमें श्रीजिनेन्द्रदेवका कलशा-
भषेक हुआ। क्षमाधर्मपर विद्वानोके भाषण हुए। आसौज वदी ४ को
ायन्ती उत्सव हुआ। बाहरसे भी अनेक महानुभाव पधारे। दिल्लीसे
ाजकृष्ण तथा फिरोजाबादसे श्रीलाला छदामीलालजी भी आये। आपने
फरोजाबादके मेलाकी फिल्म दिखलाई तथा राजकृष्णजीने उसका परि-
चय दिया। जिसे देख-सुन कर जनता प्रसन्न हुई।

विचार-कण

दीपावलीके पूर्व धन्वन्तरि त्रयोदशी (धनतेरस) का दिन था। मनमे विचार आया कि आजके दिन सब लोग नया वर्तन खरीदते है, अत हम भी आजसे प्रतिदिन एक एक नया वर्तन खरीदे। वर्तन नाम विचारका है। उस दिनसे हमने कुछ दिन तक प्रतिदिन जो वर्तन खरीदे, उनका सचय इस प्रकार है—

'ससारमे वही मनुष्य वन्दनीय होते है, जिन्होने ऐहिक और पारलौकिक कार्यसे तटस्थ रहकर आत्मकल्याणके अर्थ स्वकीय परिणतिको निर्मल बना लिया है।'

'जो अवस्था आवे, उसे अपनानेका प्रयत्न मत करो। पुण्य पाप दोनो ही विकार परिणाम है, इनकी उपेक्षा करो।'

'प्रभु कोई अन्य नही, आत्मा ही प्रभु है और वही अपनी रक्षा करने वाला है। अन्यको रक्षक मानना ही महती अज्ञानता है।'

'किसीको तुच्छ मत बना, अपनी प्रशसाकी लिप्सा ही दूसरेको तुच्छ बतलाती है।'

'स्वतन्त्रता ही ससार-वल्लरीकी सत्ताको समूल नाश करनेवाली असिधारा है और पराधीनता ही ससारकी जननी है।'

'ईश्वर अन्य कोई नही। आत्मा ही सर्व शक्तिमान् है। यही ससारमे

अपने पुरुषार्थके द्वारा रङ्कसे इतना समर्थ हो जाता है कि ससारको इसके अनुकूल वनते देर नही लगती ।'

'यदि आत्मकल्याणकी अभिलाषा है तो परकी अभिलाषा त्यागो ।'

'कल्याणका मार्ग निश्चिन्त दशामे है। जव आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है, तव उसे परतन्त्र वनाना ही वन्धनका कारण है ।'

'कल्याणका मार्ग अति सुलभ है परन्तु हृदयमे कठोरता नही होनी चाहिये ।'

'इस ससारमे जो शातिसे जीवन विताना चाहते हैं,उन्हे परकी चिंता त्यागना चाहिये तथा स्वयका इतना स्वच्छ आचरण करना चाहिये कि जिससे परको कष्ट न हो ।

'किसीको वह उपदेश नही देना चाहिये, जिसे तुम स्वय करनेमे असमर्थ हो ।'

'मनको कावू करना कठिन नही, क्योकि वह स्वय पराधीन है। वह तो अश्वके सदृश है। सवार उसे चाहे, जहाँ ले जा सकता है ।'

'समयका सदुपयोग करो। पुस्तकोके ऊपर ही विश्वास मत करो। अन्त करणसे भी तत्त्वको देखो ।'

'परकी आशा त्यागो। परावलम्वनसे कभी किसीका कल्याण नही हुआ ।'

'निरन्तर यही भावना रक्खो कि स्वप्नमे भी मोहके अधीन न होना पडे। जो आत्मा मोहके अधीन रहता है, वह कदापि सुखका पात्र नही हो सकता ।'

'मोह क्या है ? यह यदि ज्ञानमे आ जावे, तो निर्मोह होना कुछ कठिन नही ।'

'आहारत्यागका नाम उपवास नही, किन्तु आहारसम्वन्धी आशाका त्याग ही उपवास है।'

'जो कार्य करना चाहते हो, प्रथम उसके करनेका दृढ-सकल्प करो, अनन्तर उसके कारणोका सग्रह करो। जो वाधक कारण हो, उनका परित्याग करो ।'

'बहुत मत वोलो। वोलना ही फँसनेका कारण है। पक्षी वोलनेसे जालमे फँसता है ।'

'उपयोगकी स्वच्छता ही अहिसा है—रागादि परिणामोकी अनुत्पत्ति ही अहिंसा है ।'

'शान्तिके पाठसे शान्ति नही, किन्तु अशान्तिके कारण दूर करनेसे शान्ति प्राप्त होती है ।'

'बाह्य वेषसे परकी वञ्चना करनेवाला स्वय आत्माको दु खके सागरमे डालता है। जो ईंधन परको दग्ध करनेके अभिप्रायसे अग्निका समागम करता है, वह स्वय भस्म हो जाता है।'

'आत्माका परिचय होना उतना कठिन नही, जितना आत्माको जानकर आत्मनिष्ठ होना कठिन है।'

'यदि अशान्तिका साक्षात् अनुभव करना है, तो समाजके कार्योमे अग्रेसर बन जाओ।'

'यदि हम चाहे, तो प्रत्येक अवस्थामे सुखका अनुभव कर सकते है। सुख कोई बाह्य वस्तु नही। आत्माकी वह परिणति है, जहाँ पर आत्मा आकुलताके कारणोसे अपनेको रक्षित रखती है।'

'स्वाधीनता कहो या यह कहो परके अवलम्बनका त्याग। जो मानव इस सकल्प-विकल्पसे जायमान विविध प्रकारकी वेदनाओका अभाव करना चाहते है, उन्हे उचित है कि परपदार्थोका अपनाना त्यागे।'

'प्रशसाकी इच्छासे कार्य आरम्भ करना आत्माको पतित बनानेकी कला है।'

'अपनी सुध भूलकर यह आत्मा दु खका पात्र बना। गृहस्थोके जालमे आकर जैसे चुगके लोभसे चिडियाँ फँस जाती है, वैसे ही त्यागी वर्ग मोह-जालमे फँस जाता है।'

'आत्माराम अकेला आया और अकेला ही जावेगा। कोई भी इसका साथी नही, अन्यकी क्या कथा, शरीर भी सुख-दु ख भोगनेमे साथी नही।'

'शुद्ध हृदयकी भावना नियमसे फलीभूत होती है। निर्माय [माया-रहित] ही कार्य सफल होता है।'

'परका भय मत करो। परको अपनाना छोडो। परको अपनाना ही राग-द्वेषमे निमित्त है।'

'भयसे व्यवहार करना, आत्माको वञ्चना है। मोक्षमार्गका सुगमोपाय अपनी अहम्बुद्धि त्यागो। मै कौन हूँ ? इसे जानो। इसे जानना कुछ कठिन नही। जिससे यह प्रश्न हो रहा है, वही तो तुम हो।'

'आत्मज्ञान होना कठिन नही, किन्तु परसे ममता-भाव त्यागना अति कठिन है।'

'सुख—शान्तिका लाभ परमेश्वरकी देन नही, उपेक्षाकी देन है।'

'शान्त मनुष्य वह हो सकता है, जो अपनी प्रशसाको नही चाहता।'

'परकी समालोचना न करो और न सुनो।'

'धन अधिक संग्रह करना चोरी है, इसलिये कि तुमने अन्यका स्वत्व हरण कर लिया।'

'राग-द्वेष घटानेसे घटता है, किन्तु उसके प्राक्-मोहका नाश करो। मोहके नशामे आत्मा उन्मत्त हो जाता है।'

'यदि शान्ति चाहते हो, तो स्थिर चित्त रहो। व्यग्रता ही संसारकी दादी है। यदि ससारमे रुलनेकी इच्छा है, तो इस दादीके पुत्रसे स्नेह करो।'

'यदि परोपकार करनेकी भावना है, तो उसके पहले आत्माको पवित्र बनानेका प्रयत्न करो।'

'परोपकारकी भावना उन्हीके होती है, जो मोही है। जिनकी सत्तासे मोह चला गया, वे परको पर समझते है तथा आत्मीय वस्तुमे जो राग है, उसे दूर करनेका प्रयास करते है।'

'ज्ञानार्जन करना उत्तम है, किन्तु ज्ञानार्जनके बाद यदि आत्महितमे दृष्टि न गई, तब जैसा धनार्जन वैसा ज्ञानार्जन।'

'मनुष्य वही है, जिसने मानवता पर विश्वास किया।'

'लोभ पापका बाप है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य जो-जो अनर्थ करते है वह किसीसे गुप्त नही।'

'अपने लक्ष्यसे च्युत होनेवाले मनुष्यके कार्य प्रायः निष्फल रहते है।'

'जितना अधिक संग्रह करोगे, उतना ही अधिक व्यग्र होगे।'

जो सुख चाहत आतमा तज दो अपनी भूल।
परके तजनेमे कही मिटे न निजकी शूल॥
जो आनन्द स्वभावमय ज्ञानपूर्ण अविकार।
मोहराजके जालमे सहता दुःख अपार॥
जो सुख है निज भावमे कही न इम जग बीच।
परमे निजकी कल्पना करत जीव सो नीच॥
जो नाही दुःख चाहता तज दे परकी ओट।
अग्नी संगत लोहकी सहती घनकी चोट॥
परकी संगतिके लिये होता मनमे द्वन्द्व।
लोह अगनि संगति मिटे होत तप्त सब अङ्ग॥
गल्पवादमे दिन गया सोवत बीती रात।
तोय विलोवत होत नहि कभी नीकने हात॥
जो चाहत दुःखसे बचे करो न परकी चाह।
पर पदार्थकी चाहसे मिटे न मनकी दाह॥

वहु सुनवो कम वोलवो यो है चतुर विवेक ।
तव ही तो विधिने रच्यो दोय कान जिभ एक ॥
जो चाहत निज रूप तजह परिग्रह कामना ।
तिन सम नाही भूप अर्थ, चाह जिनके नही ॥

स्वराज्य मिला पर सुराज्य नहीं

लिखना सरल है—स्वराज्य मिल गया, परन्तु मानवोको शान्ति नही । अन्नादि खाद्य-सामग्रीकी न्यूनता हो रही है, अनेक मनुष्य बेकार है, यन्त्रविद्याकी प्रचुरता होनेसे अनेक कार्य करनेवाले बेकार हों गये, लोगोके हृदयमे स्वकीय कार्यके प्रति निष्ठा नही, नौकरीकी टोहमे प्राय सब घूमते है, दैवी विपत्ति निरन्तर आती रहती है, पशु-धनकी हानि हो रही है, राज्यने पशुओंके लिये चारे तकका स्थान नही रहने दिया, सब पर अपना अधिकार कर लिया, इसलिये पशुधनको चारा तक नही मिलता, शुद्ध घी, दूध भक्षणमे नही आता, मनुष्योका नैतिक बल उत्तरोत्तर घटता जा रहा है, डाकेजनीका प्रचार वढ गया है, ग्रामीण लोग नगरोको सब सामग्री तैयार कर देते हैं, परन्तु इस समय वे असुरक्षाका अनुभव कर रहे है, घूसखोरीका जोर वढ रहा है, प्राय अधिकाश लोग पदलिप्साकी दौडमे एक दूसरेको पीछे छोड स्वय आगे वढ जाना चाहते हैं, आज यदि कुछ मूल्य रह गया मनुष्यका, तो मनुष्यके स्वार्थके लिये अन्य समस्त वध्य हो रहे हैं, जैसे मानो उनमे जीव ही न हो, चरखाका स्थान चक्रने ले लिया है, गाय, भैंस, बकरा, वकरियोकी परवाह नही रही, वन्दरो पर भी वारी आ गई, तालाबोकी मछलियाँ भी अव सुरक्षित नही रही, न्यायालयोका न्याय समय-साध्य तथा द्रव्य-सापेक्ष हो गया, जनताके हृदयमे स्वराज्यके लिये जो उत्साह था, वह निराशामे परिणत हो रहा है, देशकी जनता करोके भारसे त्रस्त है और ऋणके भारसे दब रही है। इन सब कारणोको देखते हुए हृदयसे निकलने लगता है कि स्वराज्य तो मिला पर सुराज्य नही । स्वराज्य तो अँग्रेजोने दे दिया, पर सुराज्य देने वाला कोई नही । यह तो स्वय अपने आपसे लेना है । देशकी जनता देशके प्रति कर्तव्यनिष्ठ हो, अपने स्वार्थमे कमी

करे, वढती हुई तृष्णाओको नियन्त्रित करे, गाँधीजीके सिद्धान्तानुसार यान्त्रिक विद्याकी प्रचुरताको कमकर हस्तोद्योगको वढावा दे, परिश्रमकी प्रतिष्ठा करे और अहिंसाको केवल वाचनिक रूप न दे, प्रयोगमे लावे, तो सुराज्य प्राप्त हो सकता है।

गिरिराजके लिए प्रस्थान

पौष कृष्णा अमावस्या स० २००९ की रात्रि थी। आकाशमे माघ-वृष्टिके मेघ छाये थे। रात्रिके समय अचानक वर्षा शुरू होनेसे निद्रा भङ्ग हो गई। मनमे नानाप्रकारके विकल्प उठने लगे। विचार आया कि तेरी आयु ७९ वर्षकी हो गई, फिर भी इस चक्रमें पडा है। कभी ललितपुर, कभी सागर, कभी जवलपुर, कभी सागर विद्यालय और कभी वनारस विद्यालय। शरीरकी शक्ति दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। भाग्य-वश एक वार श्रीपार्श्वप्रभुके पादमूलमे पहुँच गया था, परन्तु मोहके जालमे पड, वहाँसे वापिस आ गया। पक्वपानवत् शरीरकी अवस्था है। न जाने कव डालसे नीचे झड जाय, इसलिये जव तक चलनेकी सामर्थ्य है, तव तक पुन श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌के पादमूलमे पहुचनेका विचार कर। जहाँसे अनन्तानन्त तीर्थंकरोने तथा वर्तमानमे वीस तीर्थंकरोने निर्वाण प्राप्त किया, उस स्थानसे वढकर समाधिके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त होगा? वहाँ निरन्तर धार्मिक-पुरुषोका समागम भी रहता है। सागरमे तूँ वहुत समय रहा है, अत यहाँके लोगोसे आत्मीयवत् स्नेह है। श्री भगवतीआराधनामे लिखा है कि सल्लेखना करनेके लिए अपना सघ अथवा अपना परिचित स्थान छोडकर अन्यत्र चला जाना चाहिये, जिससे अन्तिम-क्षण किसी प्रकारकी शल्य अथवा चिन्ता आत्मामे न रह सके।

उक्त विचारधारामे निमग्न रहते हुए, लगभग १ घटा व्यतीत हो गया। उठकर समयसारका स्वाध्याय किया। तदनन्तर सामायिकमे वैठा। सामायिकमें भी यही विकल्प रहा कि जितना जल्दी हो यहाँसे गिरिराजके लिये प्रस्थान कर देना चाहिये। आकाश मेघाच्छन्न था, इसलिये तत्काल तो यह विचार कार्य-रूपमे परिणत नही कर सका, पर मनमे जानेका दृढ निश्चय कर लिया। मैंने यह विचार मनमे ही रक्खा।

कारण यदि प्रकट करता तो सागरके लोग रोकनेका प्रयास करते और मैं उनके सकोचमे पड जाता। २ दिन बाद ईसरीसे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी-का पत्र आया कि आप जिस दिन ईसरी आ जावेंगे, मैं उसी दिन नवमी प्रतिमाके व्रत धारण कर लूँगा। भगतजीके पत्रसे मुझे और भी प्रेरणा मिली, जिससे मैंने दृढ निश्चय कर लिया कि गिरिराज अवश्य जाना। यद्यपि शरीर शक्तिहीन हैं, तथापि श्रीपार्श्वप्रभुमे इतना अनुराग है कि वे पूर्ण बल प्रदान करनेमे निमित्त होगे।

पौषशुक्ला ११ सवत् २००९ को भोजनके उपरान्त मैंने लोगोके समक्ष अपना विचार प्रकट कर दिया कि मैं आज गिरिराजके लिये १ बजे प्रस्थान करूँगा। यह खबर सारे शहरमे बिजलीकी भाँति फैल गई, जिससे बहुतसे लोग एकत्र हो गये और रोकनेका प्रयत्न करने लगे। परन्तु मैं अपने विचारसे विचलित नही हुआ। लोगोके आवागमनके कारण १ बजे तो प्रस्थान नही कर पाया, परन्तु ३ बजे प्रस्थान कर चल दिया। मार्गमे बहुत भीड हो गई। मैं जाकर गोपालगजके मन्दिरमे बाहर जो कमरे हैं, उनमे ठहर गया। रात्रिके १० बजे तक लोगोका आना-जाना बना रहा। सेठ भगवानदासजी, बालचन्द्रजी मलैया आदि अनेक पुरुष आये, पर मैं किसीके चक्रमे नही आया।

दूसरे दिन प्रात काल गोपालगजके मन्दिरमे शास्त्र-प्रवचन हुआ। भोजनोपरान्त सामायिक किया। तदनन्तर १ बजेसे चल दिया। यूनीवर्सिटीके मार्गसे चलकर शामके ५ बजे गमीरिया पहुँच गये। यहाँ तक सागरके अनेक महानुभाव पहुँचाने आये। गाँवके जमीदारने सत्कार-पूर्वक रात्रिभर रक्खा। जो अन्य लोग गये थे, उन्हे दुग्ध पान कराया। खेद इसका है कि हम लोग किसी दूसरेको अपनाते नही। धर्मको हम लोगोने अपनी सम्पत्ति मान रक्खा है।

कटनी

गमीरियासे ४ मील चलकर वमोरीमे आहार किया, तदनन्तर-सानोधा और पडरिया ठहरते हुए आगे बढे। पडरियासे ३ मील चलकर १ कूप पर भोजन हुआ। स्थान अति रम्य और सुखद था। ऐसे स्थानो पर मनुष्योको स्वाभाविक निर्मलता आ जाती है, परन्तु हम लोग उन परिणामोको यो ही व्यय कर देते है। यहाँ पर ईसरीसे श्री सुमेरुचन्द्रजी भगत आ गये। आप वहुत ही विलक्षण प्रकृतिके है—प्राय सवकी समालोचना करनेमे नही चूकते। अस्तु, उनकी प्रकृति है, उसे हम निवारण नही कर सकते। अच्छा तो यही था कि इसके विरुद्ध वे अपनी समालोचना करते। यहाँसे गोरा, सासा, शाहपुर, टडा आदि स्थानोमे ठहरते हुए माघ शुक्ला ११ को दमोह आ गये। लोगोने सम्यक् स्वागत किया। प्रात.काल धर्मशालाके विशाल-भवनमें प्रवचन हुआ। एक सहस्र सख्या एकत्र हुई। लोगोकी भीड देखकर लगने लगता है कि प्राय सर्व लोग धर्मके पिपासु है, परन्तु कोई इन्हे निरपेक्षभावसे धर्मपान करानेवाला नही है। प० जगन्मोहनलालजी आ गये। आपने अपने प्रवचनमे संगठन पर वहुत वल दिया, परन्तु लाभाश कुछ नही हुआ। केवल वाह-वाहमे व्याख्यानका अन्त हो गया। गल्पवादकी वहुलतासे संसार व्यामूढ हो रहा है। यही पर श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजी भी थे। उनके दर्शन करनेके लिए गये। सेठ लालचन्द्रजीसे भी वार्तालाप हुआ। आप विद्वान् है, धनी है, परन्तु समाज आपसे लाभ लेना नही जानती।

दमोहसे हिंडोरिया तथा पटेरामे ठहरते हुए श्रीअतिशयक्षेत्र कुण्डलपुरजी पहुँच गये। वड़ा रमणीय क्षेत्र है। कुण्डलाकार पर्वत पर सुन्दर मन्दिर वने है। नीचे तालाव है। उसके समीप भी अनेक मन्दिर वने हैं। ऊपर श्री भगवान् महावीरस्वामीकी सातिशय विशाल प्रतिमा है। मेलाका समय था। लगभग ४ सहस्र आदमी थे। मेला सानन्द सम्पन्न हुआ। प० जगन्मोहनलालजीके पहुँच जानेसे अच्छी प्रभावना तथा क्षेत्र-को अच्छी आय हुई। लोगोमे जागृति हुई। जनता धर्मपिपासु थी। एक दिन पर्वत पर स्थित श्रीमहावीरस्वामीके दर्शन किये। चित्तमे असीम हर्ष उत्पन्न हुआ। यहाँसे वीचके कई स्थानोंमें ठहरते हुए फाल्गुन कृष्णा १० को कटनी आगये। वीचका मार्ग पहाड़ी-मार्ग था, अतः कष्ट हुआ, परन्तु यथास्थान पहुँच गया। कटनीकी जनताने स्वागत किया। दूसरे

दिन प्रात काल मन्दिरमें प्रवचन हुआ। समयसार ग्रन्थ सामने था, इसलिये उसीका मङ्गलाचरण कर प्रवचन प्रारम्भ किया। मैने कहा—

श्रीकुन्दकुन्द भगवान् ने ८४ प्राभृत वनाये है। उनमे कतिपय अब भी प्रसिद्ध है। उन प्रसिद्ध प्राभृतोमे समयसारकी बहुत प्रसिद्धि है। यद्यपि श्री स्वामीने जो कुछ लिखा है, वह सभी मोक्षमार्गका पोषक है, परन्तु कई व्यक्ति समयसारको ही वहुत महत्त्व देते है, यह व्यक्तिगत विचार है। इसके हम निवारक कौन होते हैं ? फिर भी हमारी वुद्धिमे जो आया उसे स्वीय अभिप्रायके अनुकूल कुछ लिखते है।

श्रीस्वामीने प्रथमगाथामे सिद्धभगवान्को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा की कि मै समयप्राभृतका परिभाषण करूँगा और यह भी लिखा कि श्रुतकेवली भगवान्ने जैसा कहा, वैसा करूँगा। इससे यह द्योतित होता है कि वर्तमानमे हमारी आत्मामे सिद्ध पर्याय नही है, अर्थात् ससार-पर्याय है। श्रुतकेवलीने जैसा कहा, इससे यह द्योतित होता है कि परम्परा-से यह उपदेश चला आया है। मै वैसा ही कहूँगा, इससे यह ध्वनि निकलती है कि मेरे अनुभवमे भी आ गया है। निरूपण करनेका यह प्रयोजन है कि अनादिकालसे जो स्वपरमे मोह है, उसका नाश हो जावे। इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि स्वामीके धर्मानुराग है और यही धर्मानुराग उपचारसे शुद्धोपयोगका कारण भी कहा जाता है। स्वामीने प्रतिज्ञा की कि मै समयप्राभृत कहूँगा। यहाँ आशङ्का होती है कि समय क्या पदार्थ है ? इस आशङ्काका स्वय स्वामी उत्तर देते है कि जो सम्य-ग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्रमे स्थित है उसे स्वसमय और जो इससे भिन्न पुद्गल कर्मप्रदेशमे स्थित है उसे परसमय कहते है। यह दोनो जिसमे पाये जावे उसीका नाम जीव जानो, चाहे समय जानो। इसके वाद स्वामीने द्वैविध्यको आपत्तिजनक बतलाया अर्थात् यह द्वैविध्य शोभनीक नही, एकत्व प्राप्त जो समय है वही सुन्दर है। जहाॅ द्विविध हुआ, वहाँ ही वन्ध है, ससार है। जैसे मांके पुत्र पैदा होता है, तो स्वतन्त्र होता है। जहाँ उसका विवाह हुआ—परको अपनाया—ब्रह्मचारीसे गृहस्थ हुआ, वहाँ उसकी स्वतन्त्रताका हरण हो गया—वह ससारी वन गया। इसी तरह आत्माने जहाॅ परको अपनाया, वहाॅ उसका एकत्व चला गया। क्यो दुर्लभ हो गया ? इसका उत्तर यह कि अनादिसे काम-भोगकी कथा सुनी, वही परिचयमे आई और वही अनुभवमे आई। आत्माका जो एकत्व था, उसे कषायचक्रके साथ एकमेक होनेसे न तो सुना, न परिचयमे लाया और न अनुभवमे लाया। इसपर श्री आचार्य लिखते है कि मै उस

आत्माके एकत्वका जो सर्वथा परसे भिन्न है, अपने विभवके अनुसार निरूपण करूँगा। मेरा विभव यह है कि मैंने स्याद्वाद पद भूषित शब्द-ब्रह्मका अच्छा अभ्यास किया है, एकान्तवाद द्वारा जो उसकी बाधक वृक्तियाँ है, उनको निरस्त करनेमे समर्थ युक्तियोकी पूर्णता प्राप्त की है, परापर गुरुओंका उपदेश भी मुझे प्राप्त है, तथा वैसा अनुभव भी है। इतने पर भी यदि अच्छा न जँचे, तो अनुभवसे परीक्षा कर पदार्थका निर्णय करना, छल ग्रहण कर अमार्गका अवलम्बन मत करना।'

अब स्वय स्वामी उस केवल आत्माको कहते है, जो न तो अप्रमत्त है और न प्रमत्त है, केवल ज्ञायकभाववाला है, उसीको शुद्ध कहते है, वही ज्ञाता है अर्थात् आत्माकी कोई अवस्था हो, वह ज्ञायकभावसे शून्य नही होती। जैसे मनुष्यकी बाल्यादि अनेक अवस्थाएँ होती है, परन्तु वे ज्ञायकभावसे शून्य नही होती। यही कारण है कि आत्माका लक्षण अन्यत्र चेतना कहा है। कर्तृ-कर्माधिकारमें आत्मामे कर्तृत्व तथा कर्मत्व हो सकता है या नही? इस पर विचार किया है। यह विचार २ दृष्टियोसे हो सकता है—एक तो शुद्ध दृष्टिसे और दूसरा अशुद्ध दृष्टिसे। कर्ता किसे कहते है? जो परिणमन करता है, वह कर्त्ता है और जो परिणमन होता है, वह कर्म है। कर्तृ-कर्माधिकारमें जो दिखाया है वह निमित्तकी गौणता कर दिखाया है। उसे लोक सर्वथा मान लेते है, यही परस्पर विवादका स्थल बन जाता है।

अमृतचन्द्र स्वामीने मङ्गलाचरणमे लिखा है कि मै एक कर्ता हूँ और ये जो क्रोधादिक भाव है, ये मेरे कर्म है, ऐसी अज्ञानी जीवोकी अनादि कालसे कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति चली आती है, परन्तु जब सब द्रव्योंको भिन्न-भिन्न दर्शानेवाली ज्ञानज्योति उदयको प्राप्त होती है, तब यह सब नाटक शान्त हो जाता है। इससे यह निश्चय हुआ कि यह नाटक, जब तक इसकी विरोधी ज्ञानज्योति उदित नही हुई, तब तक सत्य है। आपकी इच्छा, चाहे इसे व्यवहार कहो या अशुद्ध दशा कहो।

जीवकी दो पर्याय होती है—एक ससार और दूसरी मोक्ष। हम तो दोनो पर्यायोको सत्य मानते है। जब कि ये अपने-अपने कारणोंसे होती है, तब एकको सत्य और दूसरीको असत्य मानना, यह हमारे ज्ञानमे नही आता। हाँ, यह अवश्य है कि एक पर्याय अनादि-सान्त है और दूसरी सादि-अनन्त है। इन दोनो पर्यायोंका आधार आत्मा है, एक पर्याय आकुलतामय है, क्योंकि उसमे परपदार्थोका सम्पर्क है और दूसरी आकुलतासे रहित है, क्योंकि उसमे परपदार्थोका सम्पर्क दूर हो

गया है। जहाँ परपदार्थके सम्पर्कको जीव निज मानता है और जहाँ परमे निजत्वकी कल्पना करता है, वही आपत्तियोकी उत्पत्ति होने लगती है। कर्तृ-कर्माधिकारमे स्वामीने यही तो लिखा है कि जब तक आत्मा आस्रव और आत्माके विशेष अन्तरको नही जानता, तब तक यह अज्ञानी है और इस अवस्थामे क्रोधादिमे प्रवृत्ति करता है। यहाँ क्रोध उपलक्षण है, अन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगका ग्रहण समझना चाहिये। क्रोधादि कषायोमे प्रवर्त्तमान जीवके कर्मोका सचय होता है। इसतरह भगवान्ने जीवके बन्ध होता है, यह बतलाया है। आत्माका ज्ञानके साथ तादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध है अर्थात् आत्माका ज्ञानके साथ जो सम्बन्ध है वह कृत्रिम नही, किन्तु अनादिकालसे चला आया है। यही कारण है कि आत्मा नि शङ्क होकर ज्ञानमे प्रवृत्ति करता है। करता क्या है ? स्वाभाविक यह प्रवाह चल रहा है और चलता रहेगा। इसी तरह यह जीव सयोगसिद्ध सम्बन्धसे युक्त जो क्रोधादिक भाव है, उनके विशेष अन्तरको न जानता हुआ अज्ञानके वशीभूत हो उनमे प्रवृत्ति करता है। यह जीव जिस कालमे क्रोधादिको निज मानता है, उस कालमे क्रोधादिक भावरूप क्रिया परभाव होनेसे यद्यपि त्याग योग्य है, तो भी उस क्रियामे स्वभावरूपका निश्चय होनेसे, यह उन्हे उपादेय मानता है, जिससे कभी क्रोध करता है, कभी राग करता है और कभी मोह करता है, यहाँ पर आत्मा अपनी उदासीन अवस्थाका त्याग कर देती है, अतएव इन क्रोधादिक भावोका कर्ता बन जाती है और ये क्रोधादिक इसके कर्म होते है। इस प्रकारसे यह अनादिजन्य कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति धारावाही रूपसे चली आ रही है। अतएव अन्योन्याश्रय दोषका यहाँ अवकाश नही।

यहाँ पर क्रोधादिकके साथ जो सयोग सम्बन्ध कहा है, इसका क्या तात्पर्य यह है—क्रोध तो आत्माका विकृत भाव है और ऐसा नियम है कि द्रव्य जिस कालमे जिस रूप परिणमता है, उस कालमें तन्मय हो जाता है। जैसे लोहका पिण्ड जिस समय अग्निसे तपाया जाता है, उस समय अग्निमय हो जाता है। एव आत्मा जिस समय क्रोधादिरूप परिणमता है, उस कालमे तन्मय हो जाता है, फिर क्रोधादिकोंके साथ सयोग सम्बन्ध कहना सगत कैसे हुआ ' यह आपका प्रश्न ठीक है, किन्तु यहाँ जो वर्णन है, वह औपाधिक भावोको निमित्तजन्य होनेसे निमित्तकी मुख्यताकर निमित्तके कह दिये है, ऐसा समझना चाहिये। क्रोधादिक भाव चारित्रमोहके उदयसे उत्पन्न होते है, चारित्रमोह पुद्गल द्रव्य है। उसका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है, अत' उसके उदयमे होनेवाले

क्रोधादिका भी सयोग सम्बन्ध कह दिया। मेरी तो यह श्रद्धा है कि रागादिक तो दूर रहो, मतिज्ञानादिक भी क्षयोपशमजन्य होनेसे निवृत्त हो जाते हैं।

अपनी परिणति अपने आधीन है, उसे पराधीन मानना ही अनर्थकी जड़ है और अनर्थ ही ससारका मूल स्वरूप है। अनर्थ कोई पदार्थ नही। अर्थको अन्यथा मानना ही अनर्थ है।

कटनीमे बनारससे पण्डित कैलाशचन्द्रजी भी आ गये। यहाँकी सस्थाओंका उत्सव हुआ। प० जगन्मोहनलालजीने सस्थाओका सक्षिप्त विवरण सुनाया। लोगोने यथाशक्ति सस्थाओकी सहायता की। बहुत सहायताकी सभावना थी, परन्तु आजकल लोग एक काम नही करते। एक उत्सवमे अनेक कार्योंका आयोजनकर लेते है। फल एकका भी पूर्ण नही हो पाता। कुण्डलपुर क्षेत्रकी अपील हुई, तो उसे भी सहायता मिल गई। पण्डित कैलाशचन्द्रजीका भी व्याख्यान हुआ। यहाँ ५ दिन रहना पडा। यहाँ पर जबलपुरसे बहुत अधिक मनुष्य आये। सबका अत्यन्त आग्रह था कि जबलपूर चलिये, परन्तू हम अपने निश्चयसे विचलित नही हुए।

बनारसकी ओर

श्री चम्पालालजी सेठी गयावाले मोटर लेकर पहले ही आ गये थे। मोटरमे साथके लोगोका सामान जाता था तथा उसके द्वारा आगामी निवासकी व्यवस्था हो जाती थी। श्री चम्पालालजी व्यवस्थामे बहुत पटु है, अन्तरङ्गसे स्वच्छ है। फाल्गुन कृष्णा १४ को संध्याकाल कटनीसे ४ मील चलकर चाकामे ठहर गये। प्रात. ३ मील चलकर कैलवारके जगलमे एक बगला था, उसमे ठहर गये। वही पर भोजन हुआ। मध्याह्नके बाद यहाँसे २ मील चलकर टिकरवारा ग्राममे ठहर गये। आनन्दसे रात्रि बीती। यहाँ पर रात्रिको समयसारका निर्जराधिकार पढकर परम प्रसन्नता हुई। निर्जरा प्राणी मात्रके होती है, परन्तु नवीन कर्मबन्धन होनेसे गजस्नानवत् उसका कोई मूल्य नही होता। यहाँसे ३ मील चलकर १ स्कूलमे ठहर गये। इस ग्रामका नाम झकोही था। यहाँ

पर कटनीसे वहुत मनुष्य आये। हृदयमे प्रेम था। सव कुछ होना सरल है, परन्तु प्रेम पर विजय पाना अति दुश्कर है। यहाँसे ३ मील चलकर सवागाँवके स्कूलमे निवास किया। रात्रिको प्रवचन किया। मास्टर लोग आये। सभ्यताकी पराकाष्ठा थी। अभी भारतमे अतिथियोंका सम्मान है।

यहाँसे चलकर ३ मील पर श्री गोकुल साधुकी कुटियामे निवास किया। आपने वडे आदरसे स्वागत किया, शाक आदि सामग्री दी तथा साथमे सायकाल २ मील आये। पकरिया ग्राममे एक राजपूतके मकानमे ठहर गये। स्थान वहुत ही स्वच्छ था। रात्रि सानन्द वीती। प्रात ४ मील चलकर असदरा आ गये। यही पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चलकर घुनवाराकी धर्मशालामे आ गये। यही पर श्री भगवानदासजी सेठ सागरसे आये। साथमे श्री रामचरणलाल तथा मुन्नालालजी कमरया थे। रात्रि सुखसे वीती। प्रात काल ४ मील चलकर मदनपुरके वगीचामे ठहर गये। यही पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चल कर सडकके किनारे धर्मशालामे ठहर गये। प्रातःकाल ३ मील चल कर पौड़ी आ गये। यही पर आहार किया। यहाँ १ ठाकुर जागीरदार आये। वहुत सज्जन है। यहाँसे चल कर ५ वजे मैहर आ गये। रात्रिको श्री नाथूरामजी ब्रह्मचारीने प्रवचन किया। समुदाय अच्छा था। दूसरे दिन कटनीसे प० जगन्मोहनलालजी आये। प्रात.काल हमारा प्रवचन हुआ। २ वजेसे सभा हुई, जिसमे पण्डितजीका भक्तिमार्गपर सुन्दर विवेचन हुआ। जनता मुग्ध हो गई। हमने भी कुछ उपदेश दिया। लोगोको रुचिकर हुआ। यहाँ पर पूर्णचन्द्रजी वहुत सज्जन है। आपकी वृत्ति अत्यन्त उत्तम है। व्यापार करनेमे न्यायका त्याग नही। राजाज्ञाका उल्लंघन भी आप नही करते। यहाँ श्री राघवेन्द्रसिंह विरमीवाले ठाकुर साहवसे धार्मिक वात हुई। आप निरपेक्ष है। यद्यपि आप वैष्णव सम्प्रदायके है, तथापि जैनधर्मसे प्रेम है। यहाँसे ४½ मील चल कर नरौरा ग्रामकी सड़कके किनारे १ कुर्मीकी धर्मशालामे ठहर गये। समय सानन्द व्यतीत हुआ।

यहाँसे ४½ मील चलकर वरड़या ग्रामके वगीचामे ठहर गये। सतनावाले श्री ऋषभकुमारकी माँने आहार दिया। यहाँसे ३ मील चलकर एक कृषकके यहाँ रह गये। रात्रिमे श्री नाथूरामजी शास्त्रीने व्याख्यान दिया। जनता ग्रामीण थी। सवको धर्म-पिपासा है, परन्तु योग्य उपदेष्टा नही मिलते, अत इनकी प्रवृत्तिका सुधार नही होता। प्रात काल ३ मील चल कर अमरपाटन आये। प० जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आपने

स्नानादिसे निवृत्त हो प्रवचन किया। पश्चात् हमने भी कुछ कहा। यहाँ पर २० घर जैनियोके है। २ मन्दिर है। १ प्राचीन मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ है। १ पाठशाला भी है, जिसमे जैन-अजैन सब मिलकर १०० छात्र है। यहाँ पर जनताने भोजनाच्छादन आदिमे जो व्यय हो, उस पर एक पैसा रुपया दानमे निकलना स्वीकृत किया। श्री हजारीलाल बहोरेलालजी सिंघईने आहारके समय कटनीकी पाठशालाको ५०१) देना स्वीकृत किया तथा स्वागतमे बीसो रुपयेके पैसे गरीबोको वितरण कर दिये। मध्याह्नके वाद यहाँसे चलकर ४½ मील बाद कतपारीके बागमे ठहर गये। यही पर भोजन हुआ। यहाँसे ५ मील चलकर इटवा नदीके तीर धर्मशालामे ठहर गये। यहाँ पर श्री हनुमानजीका मन्दिर है। स्थान रम्य है, परन्तु कोई पुजारी नही रहता। रात्रिको सुखपूर्वक सोया, किन्तु १ बजे श्री नीरजने खबर दी कि मोटर लौट जानेसे चम्पालालजी सेठी आदिको चोट लग गई। सुनकर चित्तमे बहुत खेद हुआ। प्रात काल ६½ बजेसे चलकर ९ वजे १ बगीचामे आये। यहाँ पर भोजन किया। तदनन्तर सामायिकादिसे निवृत्त हो २ बजे चल दिये और ५ बजे सतना आ गये। श्री चम्पालालजी आदिको देखा, बहुत चोट लगी थी। उपयोगमे यह आया कि इस सर्व उपद्रवके निमित्त कारण तुम थे। न तुम होते, न यह समुदाय एकत्रीभूत होता। आगममे लिखा है कि क्षुल्लक मुनिके समागममे रहता है, पर तूँ उसकी अवहेलनाकर, इस परिकरके साथ भ्रमण कर रहा है, यह उसी अवहेलनाका फल है।

सतना अच्छा शहर है। जैनियोकी सख्या अच्छी है। प्राय सम्पन्न है। एक मन्दिर है। पास ही धर्मशाला भी है। श्री शान्तिनाथ भगवान्‌की प्राचीन मूर्ति है। एक जैन स्कूल भी है। प्रात काल समयसारपर प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनके वाद प० महेन्द्रकुमारजीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका विषय रोचक था। तृतीय दिन श्री प० जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आज प० महेन्द्रकुमारजीका प्रवचन और प० जगन्मोहनलालजीका भाषण हुआ। खजराहा क्षेत्रकी व्यवस्थापक समितिका निर्माण हुआ। एक दिन प्रवचनके बाद यहाँकी पाठशालाके अर्थ चन्दा हुआ। लगभग १४००० चौदह हजार रुपया आ गये। लोग उदार है—आवश्यकतानुसार धन देते है, परन्तु व्यवस्थाके अभावमे कार्य सिद्ध नही होता। रुपयाका मिलना कठिन नही, किन्तु कार्यकर्ताका मिलना कठिन है। फाल्गुन कृष्ण १३ को सतना आये थे और चैत्र कृष्ण ६ को यहाँसे निकल पाये।

सतनासे ३ वजे चल कर ५ मीलके वाद माधवगढके स्कूलमे ठहर गये। स्थान अत्यन्त स्वच्छ था। दूसरे दिन प्रात काल ५ मील चल कर रामवन आये। यहाँ पर १ वाग है। उसीमे १ कूप है। १ छोटीसी टेकरी पर १ कुटिया वनी है। कुटियाके नीचे तलघर है। उसमे अच्छा प्रकाश है। उष्णकालके लिये वहुत उपयोगी है। कुटियामे ३ तरफ खिडकियाँ और १ तरफ उत्तरमुख दरवाजा है। दरवाजाके आगे १ दहलान है। जिसमे १० आदमी धर्म साधन कर सकते हैं। ½ मील लम्बा चौडा वाग है। हनूमानका १ मन्दिर है। उसमे २७ करोड राम नाम लिखे गये हैं। यहाँसे सायकाल चल कर वकनाके मन्दिरमे ठहर गये।

प्रात काल ५ मील चल कर कुरहीमे ठहर गये। एक गृहस्थने वहुमान पूर्वक स्थान दिया। यहाँ सतनासे २० आदमी आये। श्री ऋषभकुमारकी माँके यहाँ आहार हुआ। प्राय सवके परिणाम निर्मल थे। सबको कल्याणकी चाह है, परन्तु जिन कारणोसे कल्याण होता है, उनसे दूर भागते हैं। कपायाग्नि ही प्राणीको सतप्त कर रही है। जव कषायोका वेग आता है, तव इस जीवको सुध-वुध नही रहती। जिस निमित्तको पाकर क्रोध उत्पन्न हुआ, उस निमित्तको मिटानेका प्रयत्न करता है, पर यह उसका वीज हमारी ही आत्मामे विद्यमान है, यह नही विचारता।

यहाँसे २ मील चल कर सायकाल कृषिकार्यालयमे आगये। रात्रिभर आनन्दसे रहे। दूसरे दिन प्रात काल ५ मील चल कर वेलापुर आगये और यहाँके स्कूलमे ठहर गये। यही पर भोजन किया। सतनासे श्री ऋषभकुमारकी मा आदि आये। साथमे प० पन्नालालजी धर्मालकार और चौधरी पन्नालालजी मैनेजर तेरापथी कोठीके थे। मार्गमे इन महानुभावोके समागमसे अत्यन्त शान्ति रहती है। अन्तिम शान्ति नही, औपाधिक शान्तिका ही लाभ होता है। अन्तिम शान्ति तो वह है, जिससे फिर अशान्ति न हो। यह शान्ति इच्छाके अभावमे होती है। दूसरे दिन प्रात काल ८ वजे रीवा आ गये। धर्मशालामे ठहर गये। स्नान कर मन्दिरजीमे श्री शान्तिनाथ भगवान्के दर्शन किये। मूर्ति बहुत ही सुन्दर है। इसके दर्शनसे हृदयमे यह भावना हुई कि शान्तिका मार्ग तो वाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग है। इसमे वाह्य परिग्रहका त्याग तो सरल है, परन्तु आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग होना अति कठिन है। सवसे कठिन तो परको निज माननेका त्याग करना है। शरीरकी कथा छोडो, स्त्री-पुत्र-वान्धवको भी पृथक् करना कठिन है। हम सवसे भिन्न हैं यह पाठ प्रत्येक व्यक्ति पढता है, परन्तु भीतरसे उन्हे छोडता नही।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाजारके मन्दिरमे प्रवचन हुआ। वही पर आहार हुआ। तदनन्तर धर्मशालामे आगये। सामायिकके बाद एक वृद्ध, जिनकी आयु ८४ वर्षकी थी, आये। और तत्त्वज्ञानकी उपयोगी चर्चा करते रहे। आपका पुत्र पुलिस-विभागमे जनरलइन्सपेक्टर है। आप जैनधर्मकी चर्चासे प्रसन्न हुए। रीवाँ विन्ध्यप्रान्तकी राजधानी है। जैनियोके घर भी अच्छे है। यहाँसे ३ बजे चलकर २½ मीलके बाद एक स्कूलमे ठहर गये। उक्त वृद्ध महाशय हमारे साथ मार्गमे १ मील तक आये। यहाँ टीकमगढसे प० नन्हेलालजी प्रतिष्ठाचार्य आये। आप बहुत ही सरल स्वभावके हैं। आपने वादा किया कि हम ईसरी आवेगे। अगले दिन प्रातःकाल ६ मील चलकर रामऊनके मिडिल स्कूलमे निवास किया। स्कूलके अन्त भागमे आम्र वन और कूप था। उसी स्थान पर रीवाँसे आये हुए २५ आदमी ठहरे हुए थे। यही पर बनारससे श्री प० कैलाश चन्द्रजी तथा ब्र० हरिश्चन्द्रजी आये। आप लोगोके आनेसे विशेष स्फूर्ति आगई। आहार यही पर हुआ। चैत्र कृष्णा १३ को ५ मील चलकर विलवाके उद्यानमे ठहर गये। यहाँ रीवाँसे श्री कपूरचन्द्रजीका चौका आया था। वही पर आहार हुआ। मध्याह्नके उपरात यहाँसे ३ मील चलकर मनगुवाँकी पुलिस चौकी पर निवास किया। स्थान सुरम्य था, दिनकी थकावटसे जल्दी सो गये, अत रात्रिको १ बजे निद्रा भग्न हो गई। छहढालाकी छटवी ढालका पाठ किया, परन्तु पाठ करना अन्य बात है, हृदयमे शान्तिका आना अन्य बात है। शान्तिका लाभ कषायके अभावमे है। शान्तिका पाठ पढना, प्रत्येक व्यक्तिको आता है, किन्तु भीतरसे शान्तिका होना कठिन है। प्रात ५ मील चलकर बाबाजीकी कुटियामे ठहर गये। यही पर भोजन किया। विचारमे यह आया कि गिरिराज पहुँचकर धर्मसाधन करना। परसे न शान्ति मिलती है और न मिलनेकी सभावना है। हम अनादिसे परके साथ अपना अस्तित्व मान रहे है। फल उसका जो है, सो प्रत्यक्ष है। यहाँसे ५½ मील प्रयाण कर एक बाबाजीकी कुटियाके सामने आम्रतरुके नीचे निवास किया। पर ज्यो हो भोजन बनानेका आरम्भ हुआ, त्यो ही ग्रामीण मनुष्य बहुत आ गये, मना करनेपर भी नही हटे। अस्तु, आज दयाचन्द्रने असत्य भाषण कर अभक्ष्य दुग्धका भक्षण करा दिया। यद्यपि मैने दुग्ध त्याग दिया, फिर भी आत्मामे ग्लानि बनी रही। हम लोग बहुत ही तुच्छ प्रकृतिके बन गए है, शरीरको अपना ही मान लेते है। आत्मद्रव्यको अमूर्तिक कह देना अन्य बात है। उस पर अमल करना अन्य बात है। यहाँसे २½ मील

चलकर डवडवा आ गये। रात्रिमे निवास करनेके वाद प्रात काल डव-डवासे ५ मील चलकर मऊगजके एक वागमे आम्रवृक्षके नीचे निवास किया। स्थान सुरम्य था। यही पर भोजन किया। यहाँ पर परिणामोंमें शान्ति रही। परमार्थसे सङ्गमे शान्ति नही रहती। इसका मूल कारण हृदयगत मलिनता है। हम लोग हृदयमे कुछ रखते है, कहते कुछ है, कायसे कुछ करते है। ३६के अनुरूप हमारा व्यवहार है। इसमे शान्ति की आशा मृगतृष्णामे सलिलान्वेपणके तुल्य है।

भोजनके उपरात स्कूलमे निवास किया। मास्टर योग्य थे। ४ वजे यहाँसे चले। घडी भूल आये। ४ मील चलनेके वाद १ मिडिल स्कूलमे ठहर गये। यहाँ पर शान्तिसे रात्रि काटी। स्कूलमे २५ छात्र देहातके अध्ययन करते है। मास्टर लोग पढाई अच्छी करते है। प्रार्थना होती है। सभ्यताकी ओर लक्ष्य है, परन्तु सभ्यता पश्चिमी है। यहाँसे प्रात. ४३/४ मील चलकर पुन एक स्कूलमे ठहर गये। यहाँके मास्टर वहुत ही योग्य थे। आपने वहुत ही आदरके साथ स्थान दिया। स्थान शान्तिपूर्ण था। शरीरमे कुछ थकावट भी थी, अत इस दिन सध्याकालीन प्रयाण स्थगित कर, रात्रिको यही विश्राम किया। स्थान निर्जन था, कोई प्रकार का कोलाहल न था, फिर भी अन्तरङ्गकी शान्ति न होनेसे अन्तरङ्ग लाभ नही हुआ। जहाँ तक विचारसे काम लेते है, यही समझमे आता है कि अनादि कलुषताके प्रचुर प्रभावमे कुछ सुध-वुध नही रहती, केवल ऊपरी वेप रह जाते है।

यहाँसे प्रात ३ मील ३ फर्लांग चलकर हनुमना आ गये। यह नगर अच्छा है। यहाँ पर श्री कोमलचन्द्रजीकी दूकान है। रीवाँसे २ गृहस्थ आये। उन्होने आहार दिया। पण्डित फूलचन्द्रजी भी आये। ३ वजे स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामे जो वोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है, उस पर विचार हुआ। सर्व पर्यायोमे मनुष्यपर्याय अतिदुर्लभ है। इसमे उत्तरोत्तर सयम पर्यन्तकी दुर्लभता दिखाई। सयमरत्नको पाकर जो विषयलोलुपी सयम का घात कर लेते है, वे भूति (भस्म) के अर्थ रत्नको जला देते है। इस परिणतिको धिक् है। रात्रिको यही रहे। प्रात काल श्री शान्तिनाथ भग-वान्का पूजन समारोहके साथ हुआ। भोजन रीवाँवालोके यहाँ हुआ। मिर्जापुरसे श्री पोस्टमास्टर कन्हैयालालजी आये। परिग्रहका पिशाच सवके ऊपर अपना प्रभाव जमाये है। अच्छे-अच्छे धनी-मानी इसके प्रभावमे अपनी प्रतिष्ठा खो देते है। सम्यग्ज्ञान होनेके वाद भी इसका

रक्षित रहना कठिन है। अज्ञानीकी कथा छोडो। अज्ञानी परिग्रहको न छोडे, आश्चर्य नही, परन्तु जानकार ज्ञानी न छोडे, यह आश्चर्य है।

यहाँसे सायकाल ३ मील चलकर भैंसोडके डाकबङ्गलामे ठहर गए। प्रात.काल ३½ मील चल लुहस्थिहरके पहाड पर आगये। यहाँ पर सडकके किनारे १ चौकी है। उसीमे भोजन बना। यहाँ ७७ हाथ गहरा कूप है, परन्तु पानी इतना मिष्ट नही। नदी १ फर्लाङ्ग है। स्थान रम्य है। १० घर गोपाल लोगोके हैं। सायकाल ४॥ मील चलकर द्रासिलगज आ गए। यहाँ पर एक सस्कृत पाठशाला है। उसमे ठहर गये। पाठशालाके प्रधानाध्यापक महान् साधु पुरुष हैं। आपके प्रयत्नसे इस पाठशालाका काम साधु रूपसे चलता है। व्याकरण साहित्यके आचार्य पर्यन्त यहाँ अध्ययन होता है। ५१ छात्र अध्ययन करते हैं। पाठशालाके सर्वस्व प्रधानाध्यापक हैं। आज वनारससे प० महेन्द्रकुमारजी और प० पन्नालालजी आये। दूसरे दिन प्रात ३ मील चलकर मार्गमे १ मुसलमानके घरमे ठहरे। घरका स्वामी साक्षर था। बहुत सत्कारसे उसने ठहराया। वह अपने धर्मका पूर्ण विद्वान् था। सायकाल यहाँसे ५ मील चलकर बरौधा आ गये। यहाँ पर एक मिडिल स्कूलमे ठहरे। यहाँके अध्यापक वर्ग अत्यन्त सभ्य हैं। १ कमरा तत्काल रिक्त कर दिया। प्रात काल यहाँसे ६ मील चलकर एक महन्तके स्थानपर निवास किया। बहुत ही पुष्कल और पवित्र स्थान था। श्री ठाकुरजीके मन्दिरमे जो दालान थो, उसमे गर्मीको विताया। यहाँ पर मिर्जापुरके तहसीलदार, जो कि जैन थे, आये। आप बहुत भद्र हैं। धर्मकी उत्तम रुचि भी रखते हैं। वैष्णव सम्प्रदायमे अतिथिसत्कारकी समीचीन प्रथा है। इसका अनुकरण हम लोगोको करना चाहिये। परमार्थसे सब जीव समान हैं। विकृत परिमाणोसे ही भेद हैं। जिस दिन विकार चला जायगा, उसी दिन यह जीव परमात्मा हो जायेगा। परन्तु विकारका जाना कठिन है। शरीरमे थकावटका अनुभव होनेसे रात्रि यही व्यतीत की। दूसरे दिन प्रात काल ३ मील चलकर तुलसीग्राम आ गये। यहाँ पर नागाबाबाओका अखाडा है। ९ बजे प्रवचन हुआ। प्रवचनमे यह बात थी कि आत्मा और पुद्गल स्वतन्त्र द्रव्य हैं। इनमे जो परिणमन होता है उसके आत्मा और पुद्गल स्वतन्त्र कर्ता हैं। एक दूसरेके परिणमनमे निमित्त-कारण हैं। जैसे जब रागकर्मका सम्बन्ध है, वह आत्मा रागरूप परिणमन करता है तथा उसी काल कार्मणवर्गणा ज्ञानावरणादिरूप हो जाता है। प्रवचनके बाद यही पर भोजन हुआ। सायकाल चलकर एक वनमे ठहर गये। आगामी

दिन प्रात काल ३ मील चलकर १ मन्दिरमे निवास किया। मन्दिर वहुत रम्य था। यही पर भोजन किया। यहाँसे मिर्जापुर ६ मील है। रात्रि भी यही व्यतीत की। यहाँ पर वनारससे प० कैलाशचन्द्रजी, मत्री सुमतिलालजी, अधिष्ठाता हरिश्चन्द्रजी तथा कोषाध्यक्षजी आये। आप लोग ४ घंटा यहाँ पर रहे। अनन्तर मन्त्रीजीको त्याग सव चले गये। प्रात काल ३ मील चलकर मिर्जापुरके वगीचामे ठहर गये। यहाँ एक सुन्दर कूप तथा अखाडा है। ठहरनेके लिए वँगला है। एक शिवालय भी है। चारो ओर रम्य उपवन है। यही पर भोजन हुआ। यहाँ मिर्जापुरसे कई मनुष्य आ गये। मध्याह्नकी सामायिकके वाद मिर्जापुर गये। लोगोने उत्साहसे स्वागत किया।

दूसरे दिन चैत्र शुक्ला १३ स० २०१० होनेसे महावीर-जयन्तीका उत्सव था। वनारससे प० महेन्द्रकुमारजी तथा कैलाशचन्द्रजी आ गये। प्रात काल प० महेन्द्रकुमारजीने प्रवचन किया। आपने यह भाव प्रकट किया कि सप्त तत्त्व जाने विना मोक्षमार्गका निरूपण नही हो सकता। रात्रिको आमसभा हुई। उसमे श्री महावीर स्वामीके जीवनचरित्रका वर्णन श्री प० कैलाशचन्द्रजीने उत्तम रीतिसे किया। प० महेन्द्रकुमारजी का भी उत्तम व्याख्यान हुआ। कुछ हमने भी कहा। एक दिन प्रात काल वडे मन्दिरमे प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। जैनधर्मका मूल उपदेश तो यह है कि स्वपरका भेदज्ञान प्राप्त कर विषय-कषायसे निवृत्त होओ। शास्त्रप्रवचनोमे यही वात प्रतिदिन कही जाती है, परन्तु अमलमे नही लाई जाती, इसलिये वक्ताके हाथ केवल कहना रह जाता है, और श्रोताके हाथ केवल सुनना। प्रथम वैशाख वदीको यहाँसे चलना था, परन्तु मोटर द्वारा दुर्घटना हो गई, जिससे रुकना पडा। मनमे विचार आया कि यदि यह परिकर साथ न होता तो व्यर्थका सक्लेश न उठाना पडता। इस दुर्घटनाके कारण मिर्जापुरमे २ दिन और रुकना पडा। वार वार विचार होता था कि अतिशय दुर्लभ मनुष्य-जीवन पाकर भी मैंने इसका उपयोग नही किया। मानव-जीवन सकल योनियोमे श्रेष्ठ है। इस जीवनसे ही मनुष्य जगत्के विकृत भावोसे रक्षित होकर स्वभाव परिणतिका पात्र होता है। अगले दिन श्री सुमतिलालजी मत्रीके यहाँ आहार हुआ। आप वहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य है। स्याद्वाद विद्यालयका कार्य इन्हींके द्वारा चल रहा हे। यह एक सिद्धान्त है कि जिस सस्थाका सचालक निर्मल परिणामी होता है, वही सस्था सुचारुरूपसे चलती है। आप उन महापुरुषोमेसे हैं जो कार्य कर नाम नही चाहते हैं।

प्र० वैशाख वदी ३ सं० २०१० को यहाँसे सध्याकाल चलकर चिलीके उपवनमें ठहर गये। रात्रि सानन्द व्यतीत हुई। प्रात.काल ४½ मील चलकर एक धर्मशालामे ठहर गये। श्री हरिश्चन्द्रने सानन्द भोजन कराया। भोजन भक्तिसे दिया। अत्यन्त स्वादिष्ट था। हम लोग उद्दिष्ट त्यागकी कथामात्र कर लेते है, परन्तु पालन नही करते। उसीका फल है कि परिणामोमे शान्ति नही आती। शान्तिका मूल कारण अन्तरङ्ग अभिप्रायकी पवित्रता है। हम लोग वाह्य त्यागसे अपनी परिणतिको उत्तम मानते हैं, यह सर्वथा अनुचित है। रात्रि यही बिताई।

दूसरे दिन प्रात' ४ मील चलकर महाराजगजकी सस्कृत पाठशाला-मे निवास किया। यहाँपर जमनादास, पन्नालालजीके नाती आये और उन्हीके यहाँ आहार हुआ। मध्याह्न कालमे हुई चर्चाका सार यह निकला कि जो आत्माको पवित्र बनानेके लिए कलुपताका त्याग करना चाहते हैं, उन्हे उचित है कि अपनी परिणति मायाचारसे रक्षित रक्खे। गर्मीकी बहुलतासे अत्र सध्याकालका भ्रमण कष्टकर होने लगा, अत यही पर रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन प्रात काल ५ मील चलकर राजमार्ग-स्थ रूपापुरके शिशुपाठालयमे निवास किया। यही पर भोजन किया। यहाँ स्याद्वाद विद्यालयके दो छात्र आये। मत्रीजीने उन्हे भेजा था। यहाँ से दो मील दूरीपर मिर्जासिराय है, वहीपर जानेका विचार हुआ।

प्रात काल ५ मील चलकर राजातालावपर भोजन हुआ। यहाँ दिल्लीसे राजकृष्ण तथा उनकी धर्मपत्नी आईं। उन्हीके यहाँ भोजन हुआ। बनारससे कई छात्र महोदय आये। यहीपर श्री १०८ विजयसागर जी मुनियुगल, दो क्षुल्लक तथा दो ब्रह्मचारी भी आये। शान्तपरिणामी हैं, परन्तु विजयसागरजीके नेत्रोकी ज्योति बहुत कम हो गई है तथा वृद्ध भी अधिक हैं, अत उन्हे चलनेका कष्ट होता है। फिर भी आजकलके युवाओकी अपेक्षा शक्तिशाली हैं। सध्याकालमे ४ मील चलकर भास्कर के उपवनमे एक कूपके ऊपर निवास किया। यहाँ एक शिवालय है। पुजारीकी आज्ञासे उसीमें ठहर गये। पुजारी भद्रस्वभावका है। जैसा आतिथ्य-सत्कार ये लोग करते हैं, वैसा हम लोगोमे नही है। हम लोग तो अन्य लोगोको मिथ्यादृष्टि वाक्यका उपयोग कर ही अपने आपको कृतकृत्य मान लेते हैं। सध्याकाल यहाँसे चलकर श्री बनारसीदासजीके उपवनमे ठहर गये। रात्रि सुखसे बीती। यहाँसे बनारस केवल ३ मील दूर है।

बनारस और उसके अंचलमें

प्रथम वैशाखकृष्ण ९ स० २०१० को प्रात:काल ३ मील चलकर भेलूपुर आ गये। यह स्थान हमारा चिरपरिचित स्थान था। यही बाईजी रहती थी और यही पर रहकर हमने बहुत दिन विद्याका अभ्यास किया था। उस समय यहाँ एक शान्तिप्रिय नामक ब्रह्मचारी भी रहते थे, जो प्रबल शक्तिशाली थे। यहाँ दो मन्दिर है—एक नीचे सडकके समीप और एक ऊपर। सुन्दर उद्यान है। मूर्तियाँ अत्यन्त मनोज्ञ है। ऊपरका मन्दिर कोलाहलसे अतीत अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। श्री राजकृष्णजीके यहाँ आहार किया। एक दिन तथा एक रात्रि यही निवास किया।

दूसरे दिन प्रात:काल चलकर स्याद्वाद विद्यालय आगये। सूर्योदयका समय था। गगाके उस पार दूर क्षितिजसे सूर्यकी सुनहली-आभा प्रकट होकर, गङ्गाके निर्मल-वारिको रक्त-पीत वना रही थी। विस्तृत छतके ऊपर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्का सुन्दर मन्दिर है। उसकी शिखरपर सूर्यकी मनोहर-किरणे पड रही थी। छतपरसे सूर्योदयका दृश्य बडा सुन्दर जान पडता था। स्याद्वाद विद्यालयमे पहुँचते ही, पिछले जीवनकी स्मृति नवीन होगई। बाबा भगीरथजी तथा स्व० सेठ माणिकचन्द्रजी आदिका स्मरण हो आया, जिनकी कि उपस्थितिमे बडे समारोहके साथ जेठ सुदी ५ स० १९६२ मे इस स्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन हुआ था। स्व० गुरु अम्बादासजी शास्त्रीका स्मरण आते ही हृदय गद्गद् होगया। जिस समय अन्य ब्राह्मण विद्वानोने जैन छात्रोको पढानेसे इनकार कर दिया था, उससमय आप एक ही ऐसे सहृदय विद्वान् थे, जिन्होने मुझ जैसे निराश व्यक्तिको प्रेमसे विद्याध्ययन कराया था। श्री शास्त्रीजीकी हमारे ऊपर पूर्ण कृपा थी। मुझे जो कुछ ज्ञान है, वह उन्हीका दिया हुआ है। स्नानादिसे निवृत्त हो, श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्के दर्शन किये। तदनन्तर श्री हरिश्चन्द्रजीके यहाँ भोजन हुआ। सायकाल छात्रोके बीच भाषण हुआ। रात्रिको यही विश्राम किया। दूसरे दिन विद्यालयके बालकोंने बहुत भक्तिके साथ भोजन कराया। उनकी प्रवृत्तिसे उनका आस्तिक्यभाव टपक रहा था।

सायकाल ५ बजे चलकर ६½ बजे सन्मति-निकेतनमे आगये। यहाँ पर श्रीसेठ हुकमचन्द्रजी इन्दौरवालोने बहुत ही रम्य जिनालयका

कराया है। श्री महावीर स्वामीका बिम्ब अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। सन्मति निकेतनमे वे छात्र रहते हैं, जो यूनिवरसिटीमे अध्ययन करते है। रात्रिको यही विश्राम किया। प्रात काल गङ्गाके तटपर प्रात कालीन क्रियाओसे निवृत्त हो, हिन्दू विश्वविद्यालयके भवनोको देखते हुए, सन्मति निकेतनमे आगये। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री महावीरस्वामीके दर्शन किये। हृदयमे बडा आह्लाद उत्पन्न हुआ। एक सीधी-साधी वेदिकापर भगवान् महावीर स्वामीकी विशालकाय शुभ्र मूर्ति विराजमान की गई है। सायंकालके समय निकेतनमें उत्सव हुआ। कई प्रोफेसर आये। सानन्द छात्रावासका उद्घाटन हुआ।

प्रथम वैशाख कृष्णा १४ स० २०१० को प्रात काल ७ बजे चलकर स्याद्वाद विद्यालय आ गये। यहीपर भोजन हुआ। ३ बजेसे विद्यालयका वार्षिक उत्सव हुआ। जनता अच्छी आई। कैलाशचन्द्रजीने विद्यालयका परिचय कराया। उत्सवमें ४ बजे श्रीआनन्दमयी माता भी पधारी। आप शान्तिमूर्ति है। सचमुच ही आनन्दमयी हैं। सबके आनन्दमे निमित्त हो जाती है। उत्सवमे छात्रोको पुरस्कार दिया गया। अन्तमे शान्तिपूर्वक सब लोग स्वस्थानको गये। आनन्दमयी माताका आश्रम विद्यालयके समीप ही गङ्गाके तटपर है। मुझे वहाँ बुलाया गया, अतः मै भी अमावस्याके दिन वहाँ गया। बहुत ही सुन्दर भवन बनाया गया है। वहाँ अनेक साध्वियाँ तथा साधु निर्मल परिणामोवाले थे। क्रम विकासपर हमारा भाषण हुआ। अन्तमे आनन्दमयीने यह कहा कि अपना-पराया मतभेद छोडो। आप बगाली है। बगाली लोग, आपको बड़ी श्रद्धासे देखते हैं। एक दिन मैदागिनके मन्दिरमे गये। श्री प० कैलाशचन्द्रजी तथा प० जगन्मोहनलालजी कटनीका व्याख्यान हुआ। आत्मदर्शनका अच्छा प्रतिपादन हुआ। तदनन्तर हमने भी कुछ कहा। जनता अच्छी थी।

प्रथम वैशाख शुक्ला ३ को प्रात काल ५½ बजे चलकर एक उपवनमे ठहर गये। यही पर भोजन हुआ। यहाँ पर प० पन्नालालजी व प० फूलचन्द्रजी साहब आये। उपवनमे जो कूप है, उसका जल अत्यन्त मिष्ठ है। यह उपवन श्री मोतीलाल सिंघईके लघु बालक सूरजमल्लका है। स्थान रम्य है। यदि कोई धर्मसाधन करे, तो कर सकता है, परन्तु इस समय धर्मसाधनकी दृष्टि चली गई है। अब तो लोग विषय-साधनमे मग्न है। यहाँसे १½ मील चलकर सारनाथ (सिंहपुरी) आ गये। सिंहपुरी श्री श्रेयान्स भगवान्का जन्मस्थान है। सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। एक

धर्मशाला तथा उद्यान भी है। धर्मशालामे स्वच्छता कम है। प्रात काल मन्दिरमे प्रवचन हुआ। दिल्लीसे प० दरवारीलालजी तथा राजकृष्णका बालक प्रेमचन्द्रजी आये। दो घटा रहे। यहाँ आरासे प० महेन्द्रकुमारजी तथा एक सज्जन आये। उन्होने कहा कि आराकी जैन जनता आपको आरामे चौमासा करनेका निमत्रण देती है। मै सुनकर चुप रहा। यही पर कलकत्तासे सरदारमल्ल हुलासरायजी, श्री गोम्मटस्वामीके दर्शन कर आये। एक घटा रहे। आप लोग श्री स्व० सूर्यसागरजीके परमभक्त है। तेरापन्थके माननेवाले हैं। वास्तवमे धर्मका स्वरूप तो निर्विकार है। उपाधिसे नाना विकार मनुष्योने उसमे ला दिये है, अत जिन्हे आत्म-कल्याण करना हो, उन्हे यह विकार दूर करना चाहिए।

गरमीकी प्रवलताके कारण कुछ समय विश्राम करनेकी इच्छा हुई। सारनाथ कोलाहलसे परे शान्तिपूर्ण स्थान है, अत १५ दिन यही रहने का विचार किया। एकान्त होनेसे स्वाध्यायका लाभ भी यहाँ अच्छा मिला। और चिन्तन भी अच्छा हुआ। अष्टमीका दिन था। मध्यान्हके वाद विचार आया कि चित्तकी स्थिरताके लिए क्या करना चाहिए? हृदयसे उत्तर मिला कि सयम धारण करना चाहिए। उसी क्षण विचार आया कि संयम तो बहुत समयसे धारण किये हूँ, फिर चित्तकी स्थिरता क्यो नही है। तब 'सयम' शब्दके अर्थकी ओर दृष्टि गई। 'सयमन सयम' सम् उपसर्ग पूर्वक 'यम उपरमे' धातुसे सयम शब्द बना है, जिसका अर्थ होता है, *सम्यक् प्रकारसे रुक जाना। अर्थात् पञ्चेन्द्रियोके विषयोमे* जो प्रवृत्ति हो रही है, उसका भले प्रकारसे रुक जाना सयम है। जव तक इन्द्रियोके विषयोसे यथार्थ निवृत्ति नही होती, तब तक नामनिक्षेपके सयमसे क्या लाभ होनेवाला है? निवृत्तिका अर्थ तटस्थ रहना है तथा मनोनिग्रहका अर्थ कषाय-कृशता है। इन्द्रियोके दमनका अर्थ इन्द्रियो द्वारा विषय जाननेका अभाव नही। उनमे लोलुपता न होना चाहिए। शरीरदमन न कोई कर सकता है और न उसका दमन होता ही है। भोजन करनेसे शरीरकी तृप्ति नही होती, किन्तु आत्मामे ही भोजन करनेकी जो इच्छा थी, वह शान्त हो जाती है। वही तृप्तिका कारण है। जो केवल कायक्लेश करते है, वे शान्तिके पात्र नही होते।

द्वितीय वैशाख कृष्णा २ को सिंहपुरीसे ५ मील चलकर मैंदागिनमे आगये। यही पर भोजन हुआ। रात्रि भी यही व्यतीत की। अगले दिन प्रात काल ५¾ बजे चलकर ३½ मीलकी दूरीपर एक खत्रियके बागमे ठहर गये। स्थान सुरम्य था। बहुत आनन्दसे समय गया। श्री गणेशदास

जीके सुपुत्र श्री गुल्लूबाबू तथा मौजीलालजीका चौका आया था। इन्हीके यहाँ भोजन हुआ। सायकाल दो मील चलकर एक बागमे ठहर गये। वृद्धावस्थाके कारण अधिक चला नही जाता था, इसलिए थोडा ही चलते थे और यह निश्चय कर लिया था कि जितनी शक्ति होगी, तदनुकूल ही गमन करेगे, परन्तु गमन श्री पार्श्वप्रभुके सम्मुख ही करेगे।

पार्श्वप्रभुकी ओर

प्रात काल बागसे ४ मील चलकर मोगलसरायकी धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशालामे सब प्रकारके मनुष्य आते है। यदि वहाँ कोई धर्मप्रचार करना चाहे, तो अनायास कर सकता है। सायकाल ३ मील चलकर एक बाबाजीकी कुटीमे ठहर गये। अन्य साधु जिस प्रकार निरीह हो, नगरके बाहर शान्तिसे जीवन बिताते है, उस प्रकार हमारे साधु नही। अब इन्हे बिना परिकरके एक दिन भी चैन नही पडता। दूसरे दिन प्रात काल कुटीसे ४ मील चले, तो क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी मिल गये। प्रसन्नता हुई। यहाँसे दो मील चलकर चन्दौलीके शिवालयके पास धर्मशालामे ठहर गये। यहाँ पर भोजन हुआ। दुपहरी शान्तभावोसे बीती, किन्तु जहाँपर अधिक समागम होता है, वहाँ सिवाय अप्रयोजनीभूत कथाओके कुछ नही होता। अगले दिन ५ मील चलकर सैय्यदराजा ग्राममे आगये। एक अग्रवालकी धर्मशालामे रह गये। धर्मशालाका मैनेजर धार्मिक था। उसने कहा कि भगवद्भजनमे उपयोग लगे, ऐसी प्रकृति किस तरह प्राप्त हो सकती हैं ? हमने यही उत्तर दिया कि उसका उपाय तो विषयोसे चित्तको रोकना है। उसका दूसरा प्रश्न था कि प्रत्येक प्राणीको भगवद्-भजनकी इच्छा क्यो रहती हैं ? इसके उत्तरमे हमने कहा कि भगवान् पूर्ण है, वीतराग है और हितोपदेशी है तथा हम परमार्थसे अनेक प्रकार के अपराध करते है, एव निरन्तर पतित मार्गमे जाते है, अत॰ एतन्नि-वारणाय किसी महापुरुषकी शरणमे ही जाना, हमारे लिए श्रेयोमार्ग है। यहाँसे चलकर कर्मनाशा स्टेशनके समीप ठहर गये और दूसरे दिन प्रात॰ ६ मील चलकर दुर्गावतीनदीके तटपर डाँक बँगलामे निवास किया। यही पर आहार हुआ। यहाँसे आधा फर्लांग पर एक स्कूल था। उसमे सानन्द निवास किया। अध्यापकवर्ग शिष्ट था। एक बालकने प्रश्न
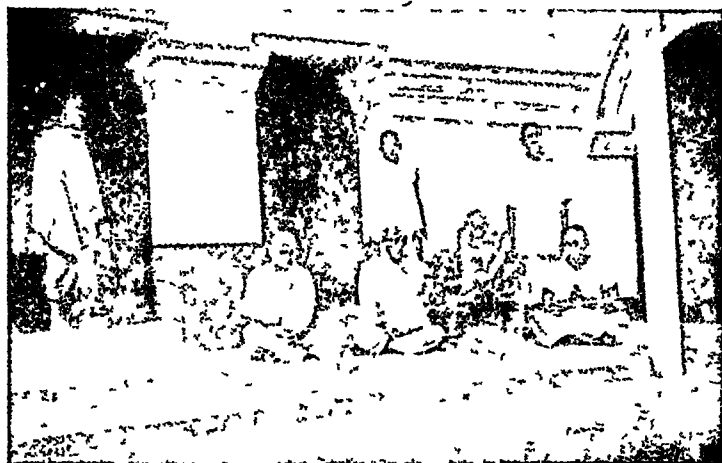
पूज्य श्री वर्णीजी
श्री ब्र० नाथूलालजी आदि खडे हुए है
और श्री भवरीलालजी सरिया व
श्री नदलालजी सरावगी
कलकत्ता आदि वैठे हुए है।

[पृ० ३२४]

किया—आप कौन है ? मैने उत्तर दिया—जैन है। उसने फिर जिज्ञासा भावसे पूछा—जैन किसे कहते है ? मैने कहा—जो जीवमात्र पर दया करे। उसने फिर प्रश्न किया—जीवमात्र पर दया करनेसे ससारकी व्यवस्था किस प्रकार चलेगी ? मैने कहा—दयाका यथोचित विभाग करनेसे सब व्यवस्था चल सकती है। अपने-अपने पद और अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार जीवदयाका पालन करनेसे कही कोई व्यवस्था भग्न नही होती। उत्तर सुनकर बालक प्रसन्न हुआ।

प्रात ५ मील चलकर एक बाबाकी कुटियामे फिर विश्राम किया। बाबाने प्रेमसे स्थान दिया। यहाँ गयासे सोनूबाबू आगये। दूसरे दिन प्रात काल ५ मील चलकर एक बगलामे ठहर गये। यहॉपर दुर्गावती नदी बहती है। यहीपर जैनबद्रीकी यात्रासे श्री राजेन्द्रकुमारजी बनारस-वाले और प० श्रीलालजी आये। यही भोजन किया। २५ आदमियोका समागम था, धर्मरुचिवाले थे, परन्तु अन्तरङ्गसे जो बात होना चाहिए, वह नही थी। अन्तरङ्गकी कथा इस समय अत्यन्त दुर्लभ हो रही है। यहाँसे प्रात ४½ मील चलकर पुसौली रेलके क्वार्टरोमे ठहरगये। जो मैनेजर था, उसने बहुत आदरसे ठहराया। यहाँपर दुर्गावती नदी है। उसका जल पिया, अच्छा था। सायकाल चलकर एक बाबाकी कुटीमे विश्राम किया। वहाँसे प्रात ५½ मील चलकर जहानाबादके शिवालयके पास जो धर्मशाला है, उसमे ठहर गये। धर्मशाला अच्छी थी। क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी यहाँ आ गये। आपका डालमियानगरमे मन नही लगा। हमारी बुद्धिमे तो यह आता है कि परसे सम्बन्ध रखना ही नाना प्रकार के विकल्पोका उत्पादक है और परकी शल्य तब तक नही जा सकती, जब तक कि अन्तरङ्गसे मोह नष्ट न हो जाय। जहानाबादसे २½ मील चलकर एक स्कूलमे ठहर गये। दूसरे दिन प्रात.काल ५½ मील चलकर शिवसागर ग्राममे एक शिवालयमे ठहर गये। शिवालयकी दहलानमे भोजन हुआ। शिवालयका जो पुजारी था, वह अत्यन्त शिष्ट था। गर्मी की अधिकता देख, उसने हमे शिवालयके भीतर स्थान दिया। भीतर देवस्थान है। वहाँ ठहरनेसे अविनय होगी ऐसा हमारे कहनेपर उसने उत्तर दिया कि मनुष्यकी रक्षा करना सर्वोपरि है। भगवान्का उपदेश है कि दया करो। हम भीतर आपको स्थान देकर दयाका ही तो पालन कर रहे है, इसमे अविनयकी कौनसी बात है ? अविनय तो तब होती, जब हम उनके उपदेशके प्रतिकूल कार्य करते। उसका उत्तरसुन कर जब हमने अपने लोगोकी प्रवृत्तिकी ओर दृष्टि दी, तो जान पड़ा कि हमलोग

मुखसे ही दयाका पाठ पढते हैं। काम पड जावे, तो हम लोग अन्य धर्मावलम्बियोको मन्दिरमे ठहरना तो दूर रहा, वेठने तक न देवेंगे। यह वात जैनधर्मके सर्वथा प्रतिकूल है। अरे! जैनधर्म तो उन जीवोकी भी रक्षाका उपदेश देता है, जो इन्द्रियोके गोचर नही। फिर चलते-फिरते मनुष्योकी तो वात ही क्या है?

प्रात काल यहाँसे ५½ मील चलकर १ शिवालयमे फिर ठहर गये। यहाँके पुजारीने भी वडे सत्कारसे रक्खा। यह स्थान अति-रमणीय है। अक्षय-तृतीयाके दिन प्रात काल २ मील चलकर सासाराम आगये। यहाँ एक सुन्दर धर्मशाला है। उसीमे ठहर गये। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्याय मे मन नही लगा तथा तृषाके कारण भी अशान्ति रही, परन्तु मैंने देखा कि पानी पीनेवाले हमसे भी अधिक अशान्त रहते हैं, अत पानी ही शान्ति-का कारण नही है। सायकाल यहाँसे २ मील चलकर एक कूपपर ठहर-गये। यह कूप एक तेलिनने वनवाया है। उसपर एक आदमी रहता है जो, दिनभर पशुओ तथा मनुष्योंको पानी पिलाता रहता है। यहाँसे प्रात ४ मील चलकर एक पानीका स्थान था, वही ठहरगये, वहीपर भोजन हुआ। ३ वजे यहाँसे चलकर डालमियाँनगर आ गये। लोगोने अच्छा स्वागत किया। स्थान रम्य है। यह वही स्थान है, जहाँ पर श्री स्वर्गीय सूरि-सागरजी महाराजने अन्तिम-जीवनका उत्सर्ग किया था। आप वडे तप-स्वी थे। तेरापन्थ दिगम्बर जैनधर्मके अनुयायी थे। आपका ज्ञान विशाल था। आपके द्वारा सयमप्रकाश आदि अनेक शास्त्रोकी रचना हुई है। आपका स्वर्गवास गतवर्षके श्रावणवदी ८ को यही हुआ था। आप ६ घटा समाधिमे रत रहे। १२ वजे रात्रिको आपने देहोत्सर्ग किया। आपकी दिगम्बर पद्मासन मुद्रा देह-त्यागके वाद ज्यो-की-त्यों रही। यहाँ आते ही मुझे आपका नाम स्मृत हो उठा और मनमे अपने प्रति एक ग्लानिका भाव उठने लगा—ग्लानिका भाव इसलिए कि मैंने नर-तन पाकर भी कुछ नही किया—

असी वर्षकी आयुमे किया न आतम काम।
ज्यो आये त्यो ही गये निशदिन पोसा चाम॥

क्या कहे? किससे कहे? कुछ कहा नही जाता। व्यर्थके जजालमे पडकर अपनी अभिलाषाओको न रोक सके। यथार्थमे 'यो करेंगे, त्यों करेंगे' ऐसे शव्दो द्वारा जनताके समक्ष शेखी वघारना कुछ लाभदायक नहीं। पानीके विलोलनेसे हाथ चीकना नही होता। वह तो परिश्रमका कारण है।

डालमियाँनगर श्री साहु शान्तिप्रसादजीके पुरुषार्थका फल है। पुरुषार्थ उसीका सफल होता है, जिसके पास पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म है। अथवा पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म भी पूर्व पर्यायका पुरुषार्थ ही है। यहाँ आपके द्वारा निर्मित नाना कारखाने है। कार्यकर्ताओके रहनेके लिए अच्छे स्थान है तथा धर्मसाधनके लिए सुन्दर मन्दिर है। शान्तिप्रसाद प्रकृत्या शान्त तथा भद्र परिणामी हैं। इस समय आपके द्वारा जैनधर्मके उत्कर्षको बढाने वाले अनेक कार्य हो रहे है। आपकी पत्नी रमारानी भी सुयोग्य तथा सुशीला नारी है। प० महेन्द्रकुमारजी तथा प० फूलचन्द्रजी बनारससे यहाँ आये थे। साथमे नरेन्द्रकुमार बालक भी था। प० युगलने साहु शान्तिप्रसादजीसे सन्मति-निकेतनके अर्थ माँग की, तो आपने १३ कमरे दुहरे करवा देनेका वचन दिया और १००) मासिक छात्रावास चलानेको कह दिया। आप बहुत ही उदार मानव है। विशेषता यह है कि आप निरपेक्ष-त्याग करते है। नरेन्द्रकुमार छात्र बहुत ही शिष्ट तथा होनहार बालक है। प्रकृतिका स्वाभिमानी है, अत किसीसे याचना नही करता। यदि कोई इसे विशेष रूपसे सहायता देवे, तो यह अद्भुत मानव हो सकता है।

मन्दिरमे प्रवचन हुआ। मैंने कहा—कि मनुष्यजन्म दुर्लभ है। सयोगवश यदि यह प्राप्त हो गया है, तो इससे इसका कार्य करना चाहिये। भोग-विलासमे मस्त रहना, मनुष्यजन्मका कार्य नही है, किन्तु भोगोसे निवृत्त हो सयम-धारण करना मनुष्यजन्मका सर्वोपरि कार्य है। जीवनमे इसे अवश्य ही धारण करना चाहिये। अनादिकालसे हमारी अन्य द्रव्यपर दृष्टि लग रही है, अन्य द्रव्यसे तात्पर्य पुद्गल-द्रव्यसे है। आत्मा तथा पुद्गल दोनोका अनादिकालसे ऐसा एकक्षेत्रावगाह होरहा है कि जिससे आत्माकी ओर दृष्टि जाती ही नही है। केवल पुद्गलमे ही दृष्टि उलझ कर रह जाती है। गौके स्तनसे जो दूध दुहा जाता है, उसमे पानीका बहुभाग रहता है, परन्तु वह दुग्धके साथ इस प्रकार मिला हुआ है कि उसे कोई पानी कहता ही नही है। इसी प्रकार शरीर और आत्मा इस प्रकार मिले हुए है कि कोई आत्माको अलगसे जानता ही नही है। परन्तु जिस प्रकार मिठया दूधको कड़ाहीमे चढ़ाकर भट्टीकी आँचसे दूध ओर पानीको अलग-अलग कर देता है, उसी प्रकार ज्ञानी-प्राणी आत्मा और पुद्गलको अपने भेदज्ञानके द्वारा अलग-अलग कर देता हैं। भले ही आत्माके साथ पुद्गलका जो सम्बन्ध है वह अनादिकालसे चला आ रहा हो, पर इससे अनन्तकाल तक चला जावेगा, यह व्याप्ति नही। भव्य जीवके आत्मा और पुद्गलका सम्बन्ध अनादि-सान्त माना गया है, सुवर्ण-

प्रात काल यहाँसे ४ मील चलकर चित्रशाली ग्राममे पहुँच गये। स्थान उत्तम था, अत. गर्मीका प्रकोप नही हुआ। यहाँसे श्री सोहनलाल-जी व श्री चम्पालालजी सेठी गया चले गये। रफीगज यहाँसे ४ मील है। आजकल ऋतुकी उग्रतासे भोजनके वाद तृषाका प्रकोप हो जाता है, प्राय २२ घण्टा रहता है, फिर भी चित्तमे यह खेद नही होता कि व्रत क्यो धारण किया। खेद इस वातका रहता है कि हम वाह्य वाधा तो सहन कर लेते है, परन्तु अन्तरङ्ग-कषायको नही रोक पाते, अत' वाह्य क्लेश सहना नहीके तुल्य है।

ज्यष्ठ कृष्णा ५ स० २०१० को प्रात काल ८ वजे रफीगज आ गये। श्री मन्दिरजीके नीचे ठहरगये। यहाँ पर जैन-वन्धुओमे परस्पर अत्यन्त प्रेम है। प० गोपालदासजी योग्य व्यक्ति हैं। आप साढ़ूमलके हैं। आपके पिता वहुत ही सज्जन थे, पण्डित थे, त्यागी थे, वहुत उदार थे और जैनधर्ममे अतिराग रखते थे। आपके भाई गोलचन्द्रजी भी उत्तम विद्वान् है। गयासे प० राजकुमारजी शास्त्री भी आये। आप योग्य व्यक्ति हैं, त्यागी है, सरल परिणामी है, गयामे अध्ययन कराते हैं तथा समाजको भी स्वाध्याय कराते हैं। आपको करणानुयोगका अच्छा अभ्यास है तथा चरणानुयोगपर विशेष अनुराग है। आज-कल लोगोने चरणानुयोगका पालन करना अत्यन्त कठिन वना दिया है। मन्दिरमे प्रवचन हुआ। प्रकरण था कि जो इस जीवको संसारके वन्धनमे फँसाते है, ऐसे कुटुम्वी-जन परमार्थसे इसके शत्रु हैं और जो हितका ध्यान रखते हैं, ऐसे योगी इसके वन्धु हैं। परन्तु इस जीवकी अनादिकालसे विषय-वासनामे ही प्रीति हो रही है, इसलिए इसमे सहायक लोगोको यह मित्र मानता है और जो इसमे वाधक है, उन्हे शत्रु समझता है। वास्तवमे विचार किया जाय, तो यह सव कथन व्यवहारकी मुख्यतासे हैं। निश्चयसे न तो जीवका कोई शत्रु है और न कोई मित्र है। इसके जो रागादिक परिणाम है, वही इसके शत्रु हैं और जो वीतरागादि भाव है, वही हमारे मित्र हैं। मोहके उदयमे अनेक कल्पनाएँ होती है, अत जो जीव आत्महितैषी हैं, उन्हे परपदार्थोका सपर्क त्यागना चाहिये, केवल गल्पवादसे कुछ लाभ नही। एक दिन प० चन्द्रमौलिजीके द्वारा भोजनमे फलोका आहार हुआ। भारतमे अव तक पात्रदानका महत्त्व है। यथार्थमें पात्रका होना कठिन है। यदि आगमानुकूल पात्र हो; तो आज दानकी जो दुरवस्था है, वह सुधर जावे। परन्तु यही होना कठिन है। पात्र ३ प्रकारके हैं—१ सयमी, २ देशसयमी और ३ अविरत सम्यग्दृष्टि। आजकल ये तीनो पात्र प्राय'

वेषमात्रसे मिलते हैं। अन्तरङ्गसे मिलना कठिन है। यहाँ एक महानुभावने पूछा कि कल्याण किस प्रकार हो सकता है ? मैंने कहा—इसके लिये अधिक प्रयासकी आवश्यकता नही, यह कार्य तो अत्यन्त सरल है। मेरा उत्तर सुनकर वह आश्चर्यमे पड गया तथा कहने लगा कि यह कैसे ? मैंने कहा कि इसमे आश्चर्यकी वात क्या है ? वर्तमानमे जो तुम्हारी अवस्था है, वह कैसी है ? इसका उत्तर दो। उसने कहा कि दु खमय है। मैंने पूछा कि दु खमय क्यो है ? उसने उत्तर दिया कि आकुलताकी जननी है। तव मैंने कहा कि अव किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नही, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे आधीन है। जिन कारणोसे दु ख होता है, उन्हे त्याग दो, कल्याण निश्चित है। एक आदमी सूर्य आतापमे वैठकर गर्मीके दु खसे दुखी हो रहा है। यदि वह आतापसे हटकर छायामे बैठ जाय, तो अनायास ही उसका दु ख दूर हो सकता है। दु ख इस वातका है कि हम लोग सुख-दु ख आदि प्रत्येक कार्यमे परमुखापेक्षी वनकर स्वकीय शक्तिको भूल गये है।

यहाँ वाचनालय खोलनेके लिये लोगोने कहा। मैंने उत्तर दिया कि खोलिये, आपकी सामर्थ्यके वाहरका कार्य नही। आप जितना खर्च अपने भोजनाच्छादनादिमे करते हैं उस पर प्रति रुपया)। एक पैसा एक पेटीमे डालते जाइये। समझिए हमारा एक पैसा अधिक खर्च हो गया है। इस विधिसे आपके पास कुछ समयमे इतना द्रव्य एकत्रित्त हो जायगा कि उससे आप वाचनालय क्या बड़ा भारी सरस्वती-भवन भी खोल सकेंगे। सबने यह कार्य ३ वर्षके लिये स्वीकृत किया। एक दिन राजपुरसे ज्योतिप्रसाद शीलचन्द्रजी आए। आप बहुत्त ही सज्जन तथा उदार हैं। आपके धार्मिक विचार हैं। यहाँ ५ दिन लग गए।

एकादशीको प्रात्त काल ४½ मील चलकर डबुहा ग्राममे ठहर गये। यहाँ दिनभर रहकर शामको १ मील आगे चले तथा १ भूमिहारके स्थान पर ठहर गये। बहुत आदरसे उसने रक्खा। भोजनके लिए भी अत्यन्त आग्रह किया। प्रात काल यहाँसे ४ मील प्रस्थान कर गुण्डू आगये। भोजन भी उन्हीके घर हुआ। प्रकृतिका सज्जन है। गर्मीका प्रकोप पूर्णरूपसे था, परन्तु सहन करना पड़ा। सायकाल यहाँसे चलकर सलेमपुर पहुँच गये। दूसरे दिन प्रात्त काल ४ मील चलकर परैया आ गये। यहाँ १ गुवालाके घर निवास किया। यहाँपर आहार देनेके लिये गयासे कई औरतें आईं। उन्होने भक्तिसे आहार कराया। दुपहरी १ झोपडीमे बिताई सायकाल यहाँसे २ मील चलकर १ पाठशालामे ठहर गये। यहाँपर

ग्रामसे २० बालक तथा आदमी दर्शनार्थ आये। लोगोमें ऐसी श्रद्धा हो गई है कि ये महात्मा है, परन्तु महात्मा तो अत्यन्त निर्विकार जीव होता है, यह कौन पूछनेवाला है।

ज्येष्ठकृष्णा अमावस्याको यहाँसे ५ बजे चलकर ७½ बजे गया आ-गये। बडे ठाट-बाटके साथ स्वागत हुआ। अन्तमे जैन-भवनमे ठहर गये। बहुत रम्य स्थान है। समीप ही फल्गु नदी बहती है। भवनसे निकलते ही दो मन्दिर है—१ प्राचीन और १ नया। यहाँ जैनियोके बहुत घर है। श्री चम्पालाल सेठीने मुझे इस ओर लानेमे बहुत प्रयत्न किया है। उन्हीका प्रभाव था, जो मै इस वृद्धावस्थामे इतना लम्बा मार्ग चलनेके लिए उद्यत हुआ और यहाँ तक आ गया। आप घरसे निःस्पृह रहते है। बाबू सोनूलालजी भी धार्मिक व्यक्ति है। आपका अधिकाश समय धार्मिक कार्योमे ही व्यतीत होता है। श्री ब्र० पतासीबाईजीके विषयमे क्या लिखूँ ? वह तो अत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे अनुराग रखनेवाली है। आपको देखकर बाईजीका स्मरण हो आता है। आपके प्रभावसे यहाँ स्त्री-समाजमे स्वाध्यायकी अच्छी प्रवृत्ति चली है। कई स्त्रियाँ तो शास्त्रका अच्छा ज्ञान रखती है।

मन्दिरमे शास्त्रका प्रवचन हुआ। प्रकरण था स्वद्रव्य और पर-द्रव्यका। ज्ञाता-दृष्टा आत्मा स्वद्रव्य है और कर्म नोकर्म परद्रव्य है। अनादिकालसे यह जीव परद्रव्यका ग्रहण कर, उसका स्वामी बन रहा है। परद्रव्यको अपना माननेमे अज्ञान ही मूल कारण है, अन्यथा ऐसा कौन विवेकी होगा, जो परको जानता हुआ भी उसे ग्रहण करे। जिसका जो भाव, वही उसका स्व है और वही उसका स्वामी है। जब यह सिद्धान्त है, तब ज्ञानी मनुष्य परका ग्रहण कैसे कर सकता है ? इस भवाटवीमे मार्ग-प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मोहराजाकी यह अटवी है। इसके रक्षक राग-द्वेष है। इनसे यह निरन्तर रक्षित रहती है। जीवोका इससे निकलना अतिकठिन है। जिन महापुरुषोने अपनेको पहिचाना वे ही इससे निकल सकते है।

दूसरे दिन ईसरीसे ब्र० सुरेन्द्रनाथजी आगये। आप बहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य हैं। आपका त्याग अतिनिर्मल है। स्वाध्यायके अति प्रेमी है। विनयगुणके भण्डार है। उदार भी हैं। कलकत्ता निवासी है। घरसे उदास रहते है। इतने निर्मोही हैं कि लडका मोटरसे गिर पडा, फिर भी कलकत्ता नही गये। एक दिन बाद श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तासे आये। आप अनुभवी दयालु भी हैं। आपका निवास अधिकतर कलकत्ता-

श्री ब्र० पतासीबाईजीके विषयमे क्या लिखूँ ? वह तो अत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे अनुराग रखनेवाली है। आपको देखकर बाईजीका स्मरण हो आता है।

[पृ० ३३२]

मे रहता है। आप प्राचीन पद्धतिके रक्षक है। किसीके रौबमे नही आते। आपकी व्याख्यानशैली उत्तम है। आपने आकर बहुत ही प्रेमसे वार्तालाप किया। एक दिन डालमियानगरसे बाबू जगत्प्रसादजीका शुभागमन हुआ, साथमे पण्डित चेतनदासजी भी थे। आप अत्यन्त सरल स्वभावके है। कल्याण चाहते है। यदि उन्हे धार्मिक पुरुषोका समागम मिले, तो आपकी परिणति विशेषरूपसे निर्मल हो सकती है।

दिल्लीसे राजकृष्ण भी आये। आपने मूडबिद्रीमे स्थित श्री धवलके फोटो लेनेका पूर्ण विचार कर लिया है। इस कार्यमे १५०००) व्यय होगा। आपका निश्चय है कि यदि यह रुपया कोई अन्य न देगा, तो हम अपनी तरफसे लगा देंगे। काल पाकर आ जावेगा। आपका उत्साह और अदम्य साहस प्रशसनीय है। सभव हैं, आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जावे, क्यो कि आपकी भावना अति निर्मल हैं। हमारा निजका विश्वास है कि यह कार्य अवश्य पूर्ण होगा। ससारमे जो दृढप्रतिज्ञ होता है उसके सर्व कार्य सफल होते है। पन्द्रह दिन रहनेके बाद आषाढ कृष्णा १ को विचार किया कि पार्श्व प्रभुकी निर्वाण-भूमिपर पहुँचनेके सकल्पसे तूने ग्रीष्मकालमे भी प्रयाण किया है। अब यहाँ निकटमे आकर उलझ जाना उत्तम नही। ईसरीसे पं० शिखरचन्द्रजी तथा ब्र० सोहनलालजी भी आ गये। गयावालोको जब यह समाचार विदित हुआ, तब वे यही चौमासाकी प्रेरणा करने लगें, परन्तु हमने यही निश्चय प्रकट किया कि अब तो पार्श्वप्रभुकी शरणमे जाना चाहते है। मेरा उत्तर श्रवण कर लोग निराश हो गये। ईसरी जानेके लिये उद्यम किया कि आकाशमे सघन बादल छा गये, इसीसे विवश होकर इस दिन रुक जाना पडा।

आषाढ कृष्णा द्वितीया स० २०१० के दिन दिनके २ बजेसे ४ मील चलकर १ क्षत्रियके बगलापर ठहर गये। हमारे चले जानेसे गयावालोको बहुत खेद हुआ। हमको भी कुछ विकल्प हुआ। दूसरे दिन प्रात.काल बगलासे १ मील चले, परन्तु मार्गमे कही शुष्क प्रदेश नही मिला। सब ओर हरी-हरी घास तथा मार्गमे जन्तुओकी प्रबलता दिखी। ऐसे मार्ग पर चलना हृदयमें अरुचिकर हुआ, जिससे लौटकर उसी बगलामे आ-गये। गयासे स्वर्गीय दानूमल्लजीकी धर्मपत्नी आदि ४ स्त्रियोने आकर आहार कराया। पश्चात् २ बजे यहाँसे प्रस्थानकर वापिस गया पहुँच गये और चार मास वही रहनेका निश्चय कर लिया। गयाके लोग प्रसन्न हो गये, परन्तु ब्र० सोहनलाल तथा प० शिखरचन्द्रजीको

अत्यन्त खेद हुआ। श्यामलालजी तपस्वी भी खिन्न थे, अत॰ वे ईसरी चले गये।

स्मृतिकी रेखायें

यहाँ पं॰ राजकुमारजी शास्त्री पहलेसे ही विद्यमान थे तथा यथावसर अन्य भी पधारते रहते थे, इसलिये लोगोंको प्रवचनका अच्छा लाभ मिलता रहता था। श्रावण कृष्णा १० को प्रात॰काल ५ बजे विनोवाजी भावे आये, १५ मिनट ठहरे, आप बहुत ही शान्त स्वभावके हैं। आपका भाव अत्यन्त निर्मल है। सर्वप्राणी सुखके पात्र हैं। तथा कोई दु खका अनुभव न करे, यह मैत्री-भावना आपमे पाई जाती है। 'दु॰खानुत्पत्त्यभिलाषी मैत्री' यही तो मैत्रीका लक्षण है। देहातोमे गरीब जनता खेती योग्य भूमिसे रहित न रहे, इस भावनासे प्रेरित होकर आप परिकरके साथ भ्रमण करते है और सम्पन्न मनुष्योसे भूमि माँगकर गरीबोके लिये वितरण करते है। उत्तम कार्य है। यदि जनतामे ऐसी उदारता आ जावे कि हम आवश्यकतासे अधिक भूमिके स्वामी न बने तथा वह अतिरिक्त भूमि भूमिहीन मनुष्योके लिये दे दे, तो देशका कल्याण अनायास हो जावे।

श्रावण शुक्ला ८ स॰ २०१० को श्री साहु शान्तिप्रसादजी आये। १ घण्टा मन्दिरमे रहे। गयावालोने उन्हे और उन्होने गयावालोको धन्यवाद दिया। भाद्रपद शुक्ला ३ को टाउन हालमे विनोवाभावेकी जयन्ती थी। हम भी गये। उत्सवका आयोजन सफल हुआ। पर्यूषण पर्वमे तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन करनेके लिये बनारससे श्री प॰ कैलाशचन्द्रजी साहब पधारे। आपकी प्रवचनशैली उत्तम तथा वाणी मिष्ट है। त्यागधर्मके दिन स्याद्वाद विद्यालय बनारसको अच्छा दान मिल गया।

भाद्र शुक्ला १४ के दिन पुराने गयामे श्री पार्श्वनाथ स्वामीके दर्शन किये। यहाँपर पूजाका प्रबन्ध अच्छा है। गानतानके साथ पूजा होती है। आज १ बजे दिनसे ३ बजे दिन तक श्री पतासीबाईके जन्म-दिवसका उत्सव था। जनता अच्छी सख्यामे थी। आजके दिन अधिक स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। मन्दिरके वाहर जुलूस भी गया।

पर्वके वाद आश्विन कृष्णा ४ को वर्णी-जयन्तीका उत्सव था। वाहरसे अनेक महानुभाव आये थे। आरासे प॰ नेमिचन्द्रजी ज्योतिषा-

श्रावण कृष्णा १० को प्रात काल ५ वजे विनोवाजी भावे आये,
१५ मिनट ठहरे ।

[पृ० ३३८]

चार्य भी आये थे। द्वितीय टाउनहालमे व्याख्यान-सभाका आयोजन था। श्री नेमिचन्द्रजीने अहिंसा-तत्त्वपर अच्छा प्रकाश डाला। आपने कहा कि हम जिस मुहल्लामे रहते हैं, उसमे रहनेवाले सब लोगोके साथ हमे कुटुम्ब जैसा व्यवहार करना चाहिये। यदि किसीके घर किसी वस्तुकी कमी है, तो उसको पूर्ति करना चाहिये। हम लोग अहिंसाके नाम पर छोटे-छोटे जीव-जन्तुओकी तो रक्षा करते है, परन्तु मनुष्योकी उपेक्षा कर देते हैं।

आश्विनकृष्णा दशमी २ अक्टूबरको यहाँ मन्नू लाइब्रेरीमे गाधी-जयन्तीका उत्सव था। कोई ५०० महिलाये वहाँ पर थी। हम लोगोका भी निमन्त्रण था, अत गये थे। गाधीजी एक त्यागी पुरुष थे। जो काम वह करते थे। निष्कपटभावसे करते थे। इसीसे उनका प्रभाव पूर्ण जनता के हृदयगम था। यही कारण था कि इतना प्रभावशाली ब्रिटेन भी उनके प्रभावमे आ गया तथा बिना किसी शर्तके भारतको त्याग कर स्वदेश चला गया। इतना त्याग जगत्‌की एक अपूर्व घटना है।

एक दिन (कार्तिक कृष्णा ७) नालन्दा बौद्ध विद्यालयके अधिष्ठाता मिले। बहुत शिष्ट पुरुष है। आपका जैनदर्शनमे अनुराग है। आपकी अन्तरङ्ग इच्छा है कि नालन्दामे भी जैनदर्शनके अध्यापनादि कार्य हो और इसके लिए वहाँ १ जैन विद्यालय खोला जावे। ऐसा करनेसे परस्पर आदान-प्रदान होगा, जिससे छात्रोको तुलनात्मक अध्ययन करनेका अवसर अनायास मिल सकेगा। आत्मा ज्ञानी है, अत वह सत्यको ग्रहण करेगी और असत्यको छोड देगी। उक्त महानुभावकी उक्त बात हमे रुचिकर हुई। विचार ले, तो पैसेवालोको कार्य कठिन नही।

विचार प्रवाह

गयामे कुछ विचार दैनंदिनीके पृष्ठोपर अकित किये थे, उन्हे यहाँ दे रहा हूँ—

'वही मनुष्य सुखका पात्र होता है, जो विश्वको अपना नही मानता। परको अपना मानना ही ससारकी जड है।'

'यह केवल कहनेकी बात है कि नश्वर देहसे अविनश्वर सुख मिलता

है। सुख तो आत्मीक गुण है। उसका घातक न तो शरीर है और न द्रव्यान्तर। यह आत्मा स्वय रागादिरूप परिणमनकर स्वय आकुलता रूप दु खका भोक्ता होता है और जब रागादि-परिणामोसे पृथक् अपनी परिणतिका अनुभव करता है, तभी अनन्त सुखका उपभोक्ता हो जाता है। देह न सुखका कारण है और न दु.खका।'

'रागादिका मूल कारण मोह है, अत सबसे प्रथम इसीका त्याग होना चाहिये। जब परपदार्थोमे त्यागकी कल्पना मिट जावेगी, तब अनायास राग-द्वेप प्रलयावस्थाको प्राप्त हो जावेगे इस कथासे कार्य सिद्धि नही होती। भोजनकथासे भोजन नही बन जाता। भोजनकी प्रक्रियासे भोजन बनेगा तथा भोजन बननेसे तृप्ति नही होगी, किन्तु भोजन खानेसे तृप्ति होगी।'

'सग सर्वथा अच्छा नही। अन्तरङ्गसे हम स्वय निर्मल नही, अत अपनेको दोषी न समझ, अन्यको दोषी समझते हैं।'

'धर्मका सम्बन्ध शारीरिक कष्टसे नही होता। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। जब सब उपद्रवोकी समाप्ति हो जाती है, तब धर्मका उदय होता है।'

'दूसरेकी नही, किन्तु अपनी ही तारतम्यावस्थाको देखकर विरक्त होना चाहिये। परमार्थसे तत्त्वज्ञान बिना विरक्तता होना अतिदुर्लभ है।'

'जिन्हे आत्मकल्याण करनेकी इच्छा है, वे तत्त्वज्ञानकी वृद्धिकी चेष्टा करते हैं। जिनकी उस ओर रुचि नही, वे अपनेको तत्त्वज्ञानके सम्पादनमे क्यो लगावेगे ?'

'परद्रव्य मेरा स्व नही, मैं उसका स्वामी नही, परद्रव्य ही परद्रव्यका स्व है और वही उसका स्वामी है। यही कारण है कि ज्ञानी परद्रव्यको ग्रहण नही करता।'

'जिन्हे ससार तत्त्वसे पृथक् होनेकी अभिलाषा है, उन्हे हृदयकी दुर्बलताको समूल नष्ट कर देना चाहिये।'

'अनादिकालसे इस जीवके परपदार्थोका सम्बन्ध हो रहा है, आकाशवत् एकाकी नही रहा। यद्यपि परसम्बन्धसे इसका कोई भी अश अन्यरूप नही हुआ। जीवद्रव्य न तो पुद्गल हुआ और न पुद्गल जीव हुआ। केवल सुवर्ण-रजतका गलनेसे एक पिण्ड होगया। उस पिण्डमे सुवर्ण-रजत अपनी-अपनी मात्रामे उतने ही रहे, परन्तु अपनी शुद्ध परिणतिको

दोनोने त्याग दिया एव जीव और पुद्गल भी बन्धावस्थामे दोनो ही अपने-अपने स्वरूपसे च्युत हो गये।'

'ऊपरी चमक-दमकसे आभ्यन्तरकी शुद्धि नही होती।'

'आत्मद्रव्यकी सफलता इसीमे है कि अपनी परिणतिको परमे न फँसावे। पर अपना होता नही और न हो सकता है। ससारमे आजतक ऐसा कोई प्रयोग न वन सका, जो परको अपना बना सके और आपको पर बना सके।'

'स्नेह ही बन्धनजनक है। यदि ससारमे नही फँसना है, तो परका सपर्क त्यागना ही भद्र है।'

'आत्मामे कल्याण शक्तिरूपसे विद्यमान है, परन्तु हमने उसे औपाधिक भावो द्वारा ढँक रक्खा है। यदि ये न हो, तो उसके विकास होनेमे विलम्ब न हो।'

'आत्मा अनादिकालसे परके साथ सम्बन्ध कर रहा है और उनके उदयकालमे नाना विकार-भावोका कर्ता बनता है। यही कारण है कि अपने ऊपर इसका अधिकार नही।'

'जो आत्मा परसे ही अपना कल्याण और अकल्याण मानता है, वह पराधीनताको स्वयं अंगीकार करता है।'

'समाजमे अब आदर विद्वत्ताका नही, किन्तु वाचालताका रह गया है।'

'अन्तरङ्गकी परिणतिको निर्मल करना ही पुरुषार्थ है। जिसने मनुष्य-जन्मको पाकर अपनी परिणतिकी मलिनतासे रक्षा न की, उसका मनुष्य-जन्म यो ही गया।'

'परिग्रहका अर्जन करना ही ससारका मूल कारण है। आत्मा अनादिसे परिग्रहके चक्रमे है, इससे पीछा छूटे तो आत्मदृष्टि आवे अथवा जब आत्मदृष्टि आवे, तब परिग्रहसे पीछा छूटे।'

'जिसने रागादि भावोपर विजय प्राप्त कर ली, वही मनुष्यताका पात्र है।'

'चित्तको अधिक मत भ्रमाओ, चित्तकी कलुषता ही दु खका मूल कारण है और कलुषताका मूल कारण परमे निजत्व बुद्धि है।'

'कडवी तूबडी किसी कामकी नही, फिर भी उसके द्वारा नदी पार की जा सकती है, इसी प्रकार मनुष्यका शरीर किसी कामका नही, फिर भी उससे ससार-सागर पार किया जा सकता है।'

आगामी दिन प्रात काल ६ बजे चलकर ७।। बजे कर्मणीके डाँक-बँगलामे ठहर गये। गयावाले सूरजमलजी तथा रतनबाबूकी माँके चौकेमे आहार हुआ। स्थान स्वच्छ था। साथमे लगभग २५ मनुष्य होगे। सबका भोजन हुआ १ बजे चलकर २।। बजे एक स्थानपर ठहर गये। वही कुछ उपदेश दिया। नगरके कोलाहल पूर्ण स्थानसे निकलकर जब जगलमे पहुँचते है, तो मनमे अपने आप शान्ति आजाती है और उन दिगम्बर मुनियोके ऊपर सुतरा ध्यान आकर्षित हो जाता है, जो जगलके स्वच्छ वातावरणमे ही अपना समययापन करते थे। रात्रिको जहाँ विश्राम किया, वहाँ ५० घर मुसलमानोके थे। सबने सौमनस्य व शिष्टताका व्यवहार किया। यहाँसे अगले दिन प्रात. ६ बजे चलकर ८ बजे डोभीके डाकबगलामे पहुँच गये। प्रवचनके बाद गयावाले सोनूबाबूके चौकामे आहार हुआ। मध्यान्हके बाद चलकर रात्रिमे भदैया ग्रामके सरकारी मकानकी दहलानमे विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात ६।। बजे ६ मील चलकर ८।। बजे कादुदाग ग्रामके डाकबगलामे पहुँच गये। अबतक ४० मनुष्योका सघ हो गया था। श्री विहारीलालजी गयावालोके यहाँ आहार हुआ। रात्रिको भी यही विश्राम किया।

अन्य दिन प्राय ८ मील चलकर ९।। बजे नदी पारकर जगलमे भोजन हुआ। कोडरमावालोका चौका था, उसीमे भोजन हुआ। कोडरमासे श्री गौरीलालजी आदि ६ महानुभाव आये। सायंकाल चलकर भलुआके डाकबंगलामे विश्राम किया। आज अधिक चलना पडा, इसलिए शरीरमे थकावटका अनुभव होने लगी। दूसरे दिन प्रात ६ बजे चलकर ९। बजे चौपारन पहुँच गये। गयाके बाद यही पर जिन-मन्दिर मिला। श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शन कर हृदयमे अपार आनन्द हुआ। आज अष्टमीका दिन था। ब्र० नाथूराम शास्त्रीने शास्त्र-प्रवचन किया। दूसरे दिन मन्दिरमे प्रात प्रवचन हुआ। दिनमे एक बजे सभा हुई, जिसमे भगतजीका भाषण हुआ। हमने भी कुछ कहा। रात्रिको ब्र० नाथूराम तथा भगत सुमेरुचन्द्रजीके भाषण हुए। लोगोने स्वाध्यायका नियम लिया। तीसरे दिन श्री सोहनलालजीके यहाँ आहार कर २ बजे आगेके लिए प्रस्थान कर दिया। ग्रामके लोगोंने बहुत ही शिष्टतासे व्यवहार किया। यहाँसे कोडरमा १४ मील है। रात्रि एक डाकबगलामे व्यतीत की।

आगामी दिन प्रात काल ४ मील चलकर ८।। बजे रामपुर आगये। यहाँ कोडरमासे चौका आया था, उसीमे आहार हुआ। यहाँ कोडरमासे

२० स्त्री-पुरुष आगये। अपराह्न काल चलकर एक मढियाके समीप विश्राम किया। दूसरे दिन प्रात' चलकर भोडीके स्कूलमे ठहरे। वहीपर आहार हुआ। सध्याकाल चलकर विन्दामे विश्राम किया। आगामी दिन प्रात ४ मील चलकर एक स्कूलमे ठहरे। कोडरमावालोके चौकामे आहार हुआ। वहाँसे १ बजे ४ मील चलकर ३।। बजे झूमरीतलैया आ-गये। लोगोने उत्साहसे स्वागतकर धर्मशालामे ठहरा दिया।

झूमरीतलैया ग्रामका नाम है और स्टेशनका नाम कोडरमा है। यहाँ जैनियोके अच्छे घर हैं। मन्दिर अच्छा है। लोगोमे धार्मिक-भावना उत्तम है। यहाँ श्री जगन्नाथजी पाण्डयाने आहार होनेके उपलक्ष्यमे पाठ-शाला, औषधालय तथा चैत्यालय बनानेके लिये अच्छा दान किया। श्री प० गोविन्दरामजी यहाँ अच्छे विद्वान् है। बनारससे प० कैलाशचन्द्रजी भी आगये। आपका अहिंसा व मानवधर्मपर आमसभामे उत्तम-भाषण हुआ। यहाँ १५ दिन लग गये।

अगहन वदी ११ स० २०१० को १ बजे प्रस्थान कर चिगलावर, जयनगर तथा फरसाबादमे क्रमश. ठहरते हुए त्रयोदशीके दिन सरिया (हजारीबाग रोड) आगये। यहाँ स्टेशनके पास एक सुन्दर मन्दिर है। ग्राममे एक चैत्यालय है। सेठ भँवरीलालजीके यहाँ आहार हुआ। यहाँ आरासे ब्र० चन्दाबाईजी आ गई। २ बजे सभा हुई, जिसमे भगतजी तथा नाथूरामजीके भाषण हुए। यहाँ ३ दिन लग गये। यहाँसे मुन्सरिया तथा चौधरीवादमे विश्राम किया। यह लघुयात्रा सुखद रही।

भारहीनो वभूव

अगहन सुदी ३ सवत् २०१० को प्रात. चौधरीवादसे चलकर ८।। बजते-बजते ईसरी पहुँच गये। चित्तमे बडा हर्ष हुआ। एक बार यहाँ आकर पुन परिवर्तन करनेके लिये निकल पडा था और उस चक्रमे फँस १० वर्ष यत्र-तत्र भटकता रहा। शरीरमे शक्ति नही थी, फिर भी भटकना पडा। आज पुन श्रीपार्श्व प्रभुकी निर्वाण-भूमिके समीप आ जानेसे हृदय-मे जो आनन्द हुआ वह शब्दोके गोचर नही। यहाँके समस्त त्यागियो तथा परिकरके अन्य लोगोको भी महान् हर्ष हुआ।

देखते-देखते ईसरीमे बहुत परिवर्तन हो गया है। जहाँ पहले एक

साधारण-सी धर्मशाला थी, वहाँ आज विशाल पक्की धर्मशाला है, सुन्दर मन्दिर है, व्रतीजनोके आत्मकल्याणके अर्थ उदासीनाश्रम है और छात्रों-के हितार्थ एक पाठशाला है। ग्रामकी उन्नति भी पहलेकी अपेक्षा अधिक हो गई है। यहाँ आनेपर मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे 'भारहीनो वभूव'— शिरसे भारी भार उतर गया हो। उदासीनाश्रमके अहातेमे प्रवचनके लिये एक सुन्दर भवन अलगसे बन गया है। प्रात काल स्नानादिसे निवृत्त होनेपर शास्त्र-प्रवचन होता है। अनन्तर भोजनके बाद ११॥ बजेसे सामायिक सब त्यागीवर्ग करते है। फिर २ बजेसे शास्त्रप्रवचन होता है। अनन्तर सायकालकी सामायिक और रात्रिके प्रारम्भका शास्त्र-प्रवचन होता है। सब त्यागी तथा धर्मलाभकी भावनासे यहाँ रहनेवाले अन्य महानुभाव इन सब कार्यक्रमोमे शामिल रहते है। मै भी सब कार्य-क्रमोमे पहुँच जाता था। प्रात कालका प्रवचन मैं कर देता था, परन्तु मध्याह्न और रात्रिके प्रवचन अन्य विद्वान् करते थे। मै श्रवण करता था। प्रात.कालके प्रवचनमे कभी समयसार, कभी प्रवचनसार, कभी पञ्चास्तिकाय, कभी नियमसार आदि कुन्दकुन्द स्वामीके ग्रन्थ रहते थे। कुन्दकुन्द स्वामीने अपने ग्रन्थोंमे जो पदार्थका वर्णन किया है, वह बहुत ही सरलताके साथ वस्तुके शुद्ध स्वरूपको वत्तलानेवाला है। मेरी श्रद्धा तो यह है कि इस युगमे कुन्दकुन्दके समान वस्तुतत्त्वका निरूपण करने-वाला दूसरा आचार्य नही हुआ। माध्यह्नमे सैद्धान्तिक ग्रन्थका विवेचन रहता था और रात्रिको सर्वसाधारणोपयोगी हिन्दी ग्रन्थ तथा प्रथमानु-योगके ग्रन्थोका स्वाध्याय चलता था।

यहाँ बाहरसे अनेक विद्वान् तथा विशिष्ट महानुभाव यदा-कदा आते रहते हैं। उनके भोजनकी व्यवस्थाके लिये रायबहादुर श्री चाँदमल्लजी राँचीवालोकी ओरसे एक चौका खोल दिया गया, जिसमे अतिथियोंके भोजनकी उत्तम व्यवस्था बन गई। यहाँका प्राकृतिक दृश्य भी नयना-भिराम है। पास ही हरे-भरे गिरिराजके दर्शन होते हैं। श्रीपार्श्व प्रभुका निर्वाण-स्थान अपनी निराली शोभासे दर्शकोको अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। आकाशको चीरती हुई गिरिराजकी हरी भरी चोटियाँ कभी तो धूमिल घनघटासे आच्छादित हो जाती हैं और कभी स्वच्छ-अनावृत दिखाई देती है। प्रात.कालके समय पर्वतकी हरियालीपर जब दिनकरकी लाल-लाल किरणे पडती है, तब एक मनोहर दृश्य दिखाई देता है। लम्बी-चौडी चट्टाने और वृक्षोकी शीतल छायाएँ ध्यानके लिये बलात् प्रेरणा देती हैं।

श्री गिरिराजकी वन्दनाका हृदयमे बहुत अनुराग था, अत
अगहन सुदी १० को मधुवनके लिए प्रस्थान किया।

[पृ० ३४३]

धर्म-साधनकी भावनासे यहाँ चारो तरफकी जनता सर्वदा आती रहती है। स्टेशन छोटा है, पर कलकत्ताके मार्गमे होनेसे गाडियोका यातायात प्राय अहर्निश जारी रहता है। मोटरोका आवागमन भी यहाँसे पर्याप्त होने लगा है। अगहन सुदी ६ को श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तावालोंकी जयन्तीका उत्सव हुआ। आप विशिष्ट तथा ज्ञानवान् मनुष्य हैं। आश्रमके अधिष्ठाता है। २ वजे दिनसे जुलूस निकला और उसके वाद सभा हुई, जिसमे श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित की गई। स्कूलके छात्रोको किसमिस वितरण की गई। श्रीगिरिराजकी वन्दनाका हृदयमे वहुत अनुराग था, अत अगहन सुदी १० को मधुवनके लिये प्रस्थान किया। वीचमे मटियो नामक ग्राममे रात्रि व्यतीत की। तदनन्तर प्रात चलकर मधुवन पहुँच गये। द्वादशीको प्रात वन्दनार्थ गिरिराज पर गये। साथमे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी, व्र० नाथूरामजी तथा व्र० मगलसेनजी थे। यात्रियोकी भीड़ वहुत थी। भक्तिसे भरे नर-नारी पुण्य पाठ पढते हुए पर्वतपर चढ रहे थे। जिस स्थानसे अनन्तानन्त मुनिराज कर्म-वन्धन काटकर निर्वाण धामको प्राप्त हुए, उस स्थानपर पहुँचनेसे भावोमे सातिशय विशुद्धता आ जाय, इसमे आश्चर्य नही। शुक्लपक्ष था, अत. चारो ओर स्पष्ट चाँदनी छिटक रही थी। मार्गके दोनो ओर निस्तब्ध वृक्षपक्ति खडी थी। श्रीकुन्थुनाथ भगवान्‌की टोकपर पहुँच गये। सूर्योदयकालकी लाल-लाल आभा वृक्षोको हरी-भरी चोटियोपर अनुपम दृश्य उपस्थित कर रही थी। क्रम-क्रमसे समस्त टोकोकी वन्दनाकर १० वजे श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌के निर्वाण स्थानपर पहुँच गये। वन्दना पूर्ण होनेपर हृदयमे अत्यन्त हर्ष हुआ। श्रीसमन्तभद्रस्वामीने पार्श्वनाथ भगवान्‌का जो स्तोत्र लिखा है, उसे पढकर चित्तमे शान्ति आई। यही पर मध्याह्नकी सामायिकर दिनके ३½ वजे मधुवन वापिस आ गये और श्रीपन्नालालजी चौधरीके यहाँ आहार किया। भक्तिका प्रावल्य देखो कि स्त्रियाँ तथा आठ-आठ वर्षके वच्चे भी १८ मीलका पहाडी मार्ग चलकर भी खेदका अनुभव नही करते। जो स्त्रियाँ अन्यत्र २ मील चलनेमे भी कष्टका अनुभव करती हैं, वे यहाँ १८ मीलका लम्वा मार्ग एक साथ चलकर भी कष्टका अनुभव नही करती। यथार्थ बात यह है कि उस समय उनका उपयोग दूसरी ही ओर रहता है। तीन-चार दिन मधुवनमे रहे। नीचे तेरहपन्थी कोठीमे श्रीभगवान् पार्श्वनाथकी विशाल प्रतिमा विराजमान है। तथा श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोके मन्दिरमे श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्‌की भी मनोज्ञ प्रतिमा है। यहाँसे चलकर पुन. ईसरी

वापिस आगये। यहाँ कलकत्ता निवासी श्री सेठ शान्तिप्रसादजी तथा बाबू नन्दलालजी, सेठ बैजनाथजी सरावगी, पटनानिवासी बद्रीप्रसादजी सरावगी, खरखरी निवासी श्री बाबू विमलप्रसादजी, बाबू शिखरचन्द्रजी, वरनावावाले नत्थूमल्लजी, गिरीडीहनिवासी श्री बालचन्द्रजी मोदी, राधाकृष्ण कालूरामजी, रामचन्द्रजी सेठी, सागरमल्लजी पाण्डया, गिरनारीलालजी सरावगी, कोडरमा निवासी श्री जगन्नाथजी पाण्डया, गौरीलालजी, जीतमलजी, भँवरीलालजी पाण्डया, राँची निवासी श्री रायबहादुर हरषचन्द्रजी, लालचन्द्रजी सेठी, हजारीबागनिवासी श्री कन्हैयालाल मिश्रीलालजी तथा गयानिवासी श्री छोगालालजी, सोनूलालजी तथा चम्पालालजी सेठी आदि महानुभाव समय-समय पर पधार कर सब व्यवस्था बनाये रहते हैं।
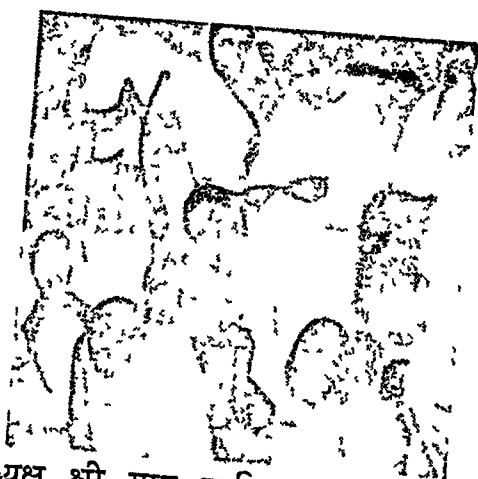
उत्सवके अध्यक्ष श्री साहु शान्तिप्रसादजी कलकत्ता थे। आपने सपरिवार पधारकर उत्सवको अच्छी तरह सम्पन्न कराया।

[पृ० ३४५]

राष्ट्रपतिसे साक्षात्कार

ईसरीमे सवत् २०१२ सन् १९५५ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमे विहार राज्य ग्राम पचायतका चतुर्थ अधिवेशन था। जिसके उद्‌घाटनके लिए भारतवर्षके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी आये थे। जैन हाईस्कूल के मैदानमे आपका भाषण हुआ। आप प्रकृतिके सरल तथा श्रद्धालु व्यक्ति है। साक्षात्कार होनेपर आपने बहुत ही शिष्टता दिखलाई। मैने आपसे कहा कि विहार आपका प्रान्त है और इसी प्रान्तमे मद्यके सेवनकी प्रचुरता देखी जाती है। इस मद्य-सेवनसे गरीबोकी गृहस्थी उजड रही है। उनके बाल-बच्चोको पर्याप्त अन्न और वस्त्र नही मिल पाता निर्धन अवस्थाके कारण शिक्षाकी ओर भी उनकी प्रगति नही हो पाती, इसलिए ऐसा प्रयत्न कीजिये कि जिससे यहाँके निवासी इस दुर्व्यसनसे बचकर अपना भला कर सके। आप जैसे आस्थावान् राष्ट्रपतिको पाकर भारतवर्ष गौरवको प्राप्त हुआ है।

उत्तरमे उन्होने कहा कि हम प्रयत्न ऐसा कर रहे है कि विहार ही क्यो भारतके किसी भी प्रदेशमे मद्यपान न हो। पूज्य गाधीजीने मद्य-निषेधको प्रारम्भ किया है और हम उनके पदानुगामी है, परन्तु खेद इस बातका है कि हम द्रुगतिसे उनके पीछे नही चल पाते हैं।

स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण-जयन्तीमहोत्सव

बनारसका स्याद्वाद विद्यालय जैन समाजकी प्राचीन एव महोपकारिणी सस्था है। गङ्गाके तटपर इसकी विशाल इमारत वनी हुई है। उसीमे श्री भगवान् सुपार्श्वनाथका सुन्दर मन्दिर है। ५० वर्षसे जैन समाजमे सस्कृत विद्याका प्रचार इस विद्यालयसे हो रहा है। सैकडो विद्वान् इस विद्यालयमे पढकर तैयार हुए हैं। बनारसका स्थान सस्कृत विद्याका प्रचार केन्द्र है। यहाँ हिन्दूधर्मावलम्बियोके द्वारा चलनेवाले संस्कृतके सैकडो विद्यालय हैं, अनेकों छोटी-मोटी पाठशालाएँ, सरकारी कालेज हैं तथा मालवीयजी द्वारा उदघाटित हिन्दू यूनिवर्सिटी है। ऐसे केन्द्र स्थानमे यह स्याद्वाद विद्यालय अपना बडा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता

हैं। प० कैलाशचन्द्रजी इसके प्रधानाध्यापक है। यथार्थमे आप विद्यालय-के प्राण हैं। आपके द्वारा ही वह व्यवस्थितरूपसे चला आ रहा है।

विद्यालयके अधिकारियोका यह निश्चय हुआ कि ५० वर्ष हो जाने-के कारण इस विद्यालयका स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव सम्पन्न कराया जाय। मेरा बनारस पहुँचना सभव नही था, इसलिये उत्सवका आयोजन मधु-वनमे रक्खा गया। मेरा कहना था कि उत्सव विद्यालयके स्थानपर ही शोभा देगा, परन्तु सुननेवाला कौन था। उत्सवके आयोजकोका भाव यह था कि श्री सम्मेदशिखरजी जैसे परम पवित्र सिद्ध क्षेत्रपर मेरा सन्निधान रहते हुए जनता अनायास आ जायगी। उत्सवके अध्यक्ष श्री साहु शान्तिप्रसादजी कलकत्ता थे। आपने सपरिवार पधारकर उत्सवको अच्छी तरह सम्पन्न कराया। कलकत्तासे श्री सेठ गजराजी, बाबू छोटे-लालजी तथा उनके भाई श्री नन्दलालजी आदि अनेक महानुभाव पधारे। हजारीबाग, कोडरमा, राँची, गिरीडीह आदिसे अनेक व्यक्ति सपरिवार आये। अन्य जनता भी इतनी अधिक आई कि मधुवनकी तेरापन्थी तथा श्वेताम्बर कोठीकी सब धर्मशालाएँ ठसाठस भर गयी। ऊपरसे डेरा-तम्बुओका प्रबन्ध करना पडा।

माघ बदी १४ सवत् २०१२ को श्री ऋषभ-निर्वाण दिवसका उत्सव मनाया गया, जिसमें भगवान् ऋषभदेवसे सम्बन्ध रखनेवाले भाषण हुए। विद्वानोमे श्री प० बशीधरजी न्यायालकार इन्दौर, प० फूलचन्द्रजी बना-रस, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं० मुन्नालालजी समगौरया सागर आदि अनेक विद्वान् आये थे। काशीके सब विद्वान् थे ही। रात्रिमे वर्णी-जयन्तीका आयोजन था, जिसमे अनेक लोगोने अपनी अपनी इच्छा-नुसार श्रद्धाञ्जलियाँ दी, जिन्हे मैने नतमस्तक होकर संकोचके साथ श्रवण किया। दूसरे दिन स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्णजयन्ती महोत्सव हुआ। विद्यालयका परिचय देते हुए, उसके अबतकके कार्यकलापोका निर्देश श्री प० कैलाशचन्द्रजीने किया। साहुजीने अपना भाषण दिया तथा भाषणमे ही विद्यालयको चिरस्थायी करनेकी अपील समाजसे कर दी। समाजने हृदय खोलकर विद्यालयको सहायता दी। लगभग डेढ़ दो लाखकी आय विद्यालयको हो गई।

एक दिन श्री रमारानीकी अध्यक्षतामे महिलासभाका भी अधिवेशन हुआ था। जिसमे श्री चन्दाबाईजीकी प्रेरणासे महिलासभाको भी अच्छी आमदनी हो गई। जैनसमाजमें दान देनेकी प्रवृत्ति नैसर्गिक है। वह देती है, और प्रसन्नतासे देती है, परन्तु समाजमे एक सघटनका अभाव होनेसे

उस दानसे जो लाभ मिलना चाहिये, नही मिल पाता। समाजमे जहाँ-तहाँ मिलकर प्रतिवर्ष लाखो रुपयोका दान होता है, पर वह दान की हुई रकम स्वस्थानोमें रहनेसे छिन्न-भिन्न हो जाती है और उससे समाजको ऊँचा उठानेवाला कोई काम नही हो पाता। समाजके सर्वदानको एकत्र मिलाया जाय तो उससे विद्यालय तथा कालेज तो दूर रहो, यूनिवरसिटी-का भी सचालन हो सकता है और उसके द्वारा जैन सस्कृतिका प्रचार सर्वत्र किया जा सकता है। दानका रुपया एकत्र तब तक नही हो सकता जब तक कि दाता महानुभाव अपने स्थानका मोह नही छोड देते हैं। आज कोई दान देता है, तो उसका परिणाम अपने ही यहाँ देखना चाहता है। पर यह निश्चित है कि उसकी उतनी छोटी रकमसे कोई बडा काम नही चल सकता और न सर्वत्र उत्तम कोटिके कार्यकर्ता ही हो सकते है। देनेवाले महानुभाव जब तक अपने हृदयको विशाल कर उदार नही बनाते हैं, तव तक उक्त कार्य स्वप्नवत् ही जान पडते है। अस्तु,

तीसरे दिन प्रात काल साहुजीको 'श्रावक-शिरोमणि' की पदवी दी जानेका प्रस्ताव रक्खा गया। उसके उत्तरमे आपने जो भाषण दिया, उससे जनताने समझा कि आप कितने उज्ज्वल तथा नम्र-निरहकार व्यक्ति हैं।

उत्सव समाप्त होनेपर मैं प्रात काल श्री पार्श्वप्रभुकी वन्दना करनेके लिए गया था। उसी समय किन्ही लोगोने परिषद्के द्वारा प्रकाशित हरिजन मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी पुस्तिकाये जनतामे वितरण कर दी। फिर क्या था ? कुछ लोगोने इसकी खबर उस समय मधुवनमे विद्यमान श्री मुनि महावीरकीर्तिजीको दे दी। खबर पाते ही आपका पारा गरम हो गया और इतना गरम हो गया कि आपने जनतामे एकदम उत्तेजना फैला दी। जब मैं गिरिराजसे लौटकर २ बजे आया, तब यहाँका रङ्ग दूसरा ही देखा। तेरापथी कोठीके सामने महाराज जनताके समक्ष उत्ते-जनापूर्ण शब्दोमे अपना अभिप्राय प्रकट कर रहे थे। यह दृश्य देखकर मुझे लगा कि मनुष्य किसी वस्तुस्थितिको शान्त भावसे न सोचते है और न सोचनेका प्रयत्न ही करते हैं। मै चुपकेसे, जहाँ महाराज भाषण कर रहे थे, पहुँचा और मैंने लोगोसे कहा कि भाइयो! मै तो रातिके ४ बजेसे श्री पार्श्व प्रभुकी वन्दनाके लिए गया था। यह पुस्तके जो वितरण की गई है, इसकी जानकारी मुझे न पहले थी और न अब भी है कि पुस्तके कहाँसे आई और किसने वितरण की ? हरिजनोके विषयमे महाराज जो कहे, सो आप लोग मानो, इसमे मुझे आपत्ति नही। आप आगमके ज्ञाता

है, सो आपको बतलावेंगे कि धर्म कौन धारण कर सकता है ? श्री समन्तभद्र स्वामीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको धर्म कहा है। इनके धारक कौन हो सकते हैं और धर्म धारण करनेके बाद भी धारण करनेवाले जीवोमे कुछ विशेषता होती है या नही ? मेरा तो विश्वास है कि जैनागममे सम्यग्दर्शनके धारण करनेकी प्रत्येक सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकको छूट है। मनुष्यकी बात तो दूर रही तिर्यञ्चके लिए भी इसका अधिकार है। जब अनन्त ससारसे पार करनेवाला धर्म उसके हाथ लग गया, तब भी वह पापी बना रहा, यह बात जैनागममे मेरे देखनेमे नही आई। उन्हे आप मन्दिर न आने दो, क्योकि मन्दिर आपके हैं, परन्तु सम्यग्दर्शनरूप ज्योतिके प्रकट होनेपर भी उनमे पापरूप अन्धकार विद्यमान रहता है, यह बात बुद्धिमे नही आती।

अनन्तर वातावरण शान्त हो गया, जिससे रथयात्रा आदि कार्य शान्तिसे सम्पन्न हुए। हम सायकाल मधुवनसे ईसरी आगये। मेला भी थाक्रमसे विघट गया।

आचार्य नमिसागरजी महाराजका समाधिमरण

श्री आचार्य नमिसागरजी महाराज महातपस्वी थे। न जाने क्यो आपका हमपर अधिक स्नेह था। जब देहली तथा बड़ौतमे आपके चातुर्मास हुए थे, तब आप बराबर हमारे लिये शुभाशीर्वाद भेजते रहते थे। हम ईसरी मे थे, आपकी आकाक्षा थी कि हमारा समाधिमरण वर्णी गणेशप्रसादके सान्निध्यमे हो। इस आकाक्षासे प्रेरित होकर आप देहलीसे मधुवन तकका लम्बा मार्ग तयकर श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमे पधारे थे। आप निर्द्वन्द्व-निरीह वृत्तिके साधु थे। ससारके विषय-वातावरणसे दूर थे। आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था। ७० वर्षकी आपकी अवस्था थी, फिर भी दैनिक चर्यामे रञ्चमात्र भी शिथिलता नही आने देते थे।

श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्रा कर आप ईसरी आगए, जिससे सबको प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्थाके कारण आपका शरीर दुर्बल हो गया तथा उदरमे व्याधि उत्पन्न हो गई, जिससे आपका विचार हुआ कि यह मनुष्य शरीर सयमका साधक होनेसे रक्षणीय अवश्य है, पर जब रक्षा करते-करते अरक्षित होनेके सम्मुख हो, तब उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर-

है।..... यह विचार कर आपने १२-१०-१९५६ शुक्रवारको समाधिका नियम ले लिया। आपने सब प्रकारके आहार और औषधिका त्याग कर केवल छाछ और जल ग्रहण करनेका नियम रक्खा। उदासीनाश्रमके सब त्यागीगण आपकी वैयावृत्यमे निरन्तर निमग्न रहते थे। श्री प्यारेलालजी भगत भी उस समय ईसरीमे ही थे। अत आप वैयावृत्यकी पूर्ण देख-रेख रखते थे। हम भी समय समयपर आपको भगवती आराधना सुनाते थे। महाराज वडी एकाग्रतासे श्रवण करते थे। महाराजके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए दिल्लीसे अनेक लोग पधारे। आस-पासके भी अनेक महानुभाव आये। सेठ गजराजजो गगवाल भी सकुटुम्ब आकर आपकी परिचर्यामे निमग्न थे। महाराज तेरापन्थी कोठीमे ठहरे थे। मै आपके दर्शनके लिए गया। चलते-चलते मेरी श्वास भर आई। यह देख महाराज बोले—आपने क्यों कष्ट किया ? आप तो हमारे हृदयमे विद्यमान हैं।

अनन्तर सबकी सलाहसे उन्हे उदासीनाश्रममे ले आये और सरस्वतीभवनमे ठहरा दिया। इस समय आपने अपने ऊपरसे झु गी हटवा दी तथा खुले स्थानमे पलाल पर शयन किया। जव अन्तिम दो दिन रह गये तब आपने छाँछका भी परित्याग कर दिया, केवल जल लेना स्वीकृत रक्खा। कार्तिक वदी ३ स० २०१३ को १० बजे आपने तीन चुल्लू जलका आहार लिया। आहारके बाद आपको अधिक दुर्बलताका अनुभव हुआ, फिर भी मुखाकृति अत्यन्त शान्त थी। आपने सबसे कहा कि आप लोग भोजन कर। महाराजकी आज्ञा पाकर सव लोग भोजनके लिए चले गये तथा सेवामे जो त्यागी थे, उन्हे छोड अन्य त्यागी सामायिक करने लगे। हम भी सामायिकमे वैठना ही चाहते थे कि इतनेमे समाचार मिला कि महाराजका स्वास्थ्य एकदम खराव हो रहा है। हम उसी समय उनके पास आये। हमने पूछा कि महाराज! सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होने हूकार भरा और उसी समय आपके प्राण निकल गये सबके हृदय शोकसे भर गये। महाराजके शवको पद्मासनसे विमानमे वैठाकर ग्राममे जुलूस निकाला और आश्रमके पास ही बगलवाले मैदानमे आपका अन्तिम सस्कार किया गया। गोला तथा चन्दनका पुष्कल प्रबन्ध श्री गजराजजी कलकत्तावालोने पहलेसे कर रक्खा था। रात्रिमे शोकसभा हुई, जिसमे महाराजके गुणोका स्मरण कर उन्हे श्रद्धाञ्जलियाँ दी गई।

हमारे हृदयमे विचार आया कि जिनका ससार अत्यन्त निकट रह

जाता है, उन्हीका इस प्रकार समाधिमरण होता है। आगममें लिखा है, कि जिसका सम्यक् प्रकारसे समाधिमरण होता है, वह सात आठ भवसे अधिक ससारमे भ्रमण नही करता। भक्त भगवज्जिनेन्द्रसे प्रार्थना करता है कि—

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य।
मम होउ जगदवान्धव! तव जिणवरचरणसरणेण॥

हे भगवन्! हे जगत्के वन्धु! आपके चरणोकी शरण पाकर मेरे दु खोका क्षय हो, इस प्रकार कोई भक्त भगवान्से प्रार्थना करता है। भगवान्की ओरसे उत्तर मिलता है कि दु खोका क्षय तबतक नही हो सकता, जबतक कि कर्मोका क्षय न हो जाय। यह सुन भक्त, भगवान्से कहता है कि भगवन्! कर्मोका भी क्षय हो। भगवान्की ओरसे पुन. उत्तर मिलता है कि कर्मोका क्षय तबतक नही हो सकता जबतक कि समाधिमरण न हो। कायरोकी तरह रोते-चीखते हुए जो मरण करते हैं, वे कर्मोका क्षय कदापि नही कर सकते। यह सुन भगवान्से पुनः प्रार्थना करता है कि भगवन्! समाधिमरणकी भी मुझे प्राप्ति हो। भगवान्की ओरसे पुन· आवाज आती है कि बोधि—रत्नत्रयकी प्राप्तिके बिना समाधिमरणका होना दुर्लभ है। तब फिर भक्त प्रार्थना करता है कि महाराज! बोधिका लाभ भी मुझे हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त नही कर लेता तबतक इसके दु·खोका क्षय नही हो सकता। जिस प्रकार हिमके कुण्डमे अवगाहन करनेसे तत्काल शीतलताका अनुभव होने लगता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके होनेपर तत्काल सुखका अनुभव होने लगता है। अन्यकी बात जाने दो, नारकी जीव भी सम्यग्दर्शनके होने पर तत्काल सुखका अनुभव करने लगता है। विपरीताभिनिवेश दूर होना ही सम्यग्दर्शन है। जहाॅ विपरीतभाव गया, वहाँ सुखकी बात क्या पूछना ?

मैने श्रद्धाञ्जलि भाषणमें लोगोसे यही कहा कि महाराज तो आत्मकल्याण कर स्वर्गमे कल्पवासी देव होगये। अब उनके प्रति शोक करनेसे क्या लाभ है ? शोक तो वहाँ होना चाहिये, जहाँ अपना स्नेह-भाजन व्यक्ति दु खको प्राप्त हो। अब तो हम सबका पुरुषार्थ इस प्रकार-का होना चाहिये कि जिससे जन्म-मरणकी यातनाओसे बचकर हमारी आत्मा शाश्वत सुखका पात्र हो सके।

सागर विद्यालयका स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव

सागरकी सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशाला पहले सत्तर्क विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध हुई, अब गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। इस सस्थाने बुन्देलखण्ड प्रान्तमे काफी कार्य किया है। ५० वर्ष पूर्व जहाँ मन्दिरोमे पूजा और विधान बाँचनेवाले विद्वान् नही मिलते थे, वहाँ अब धवल-महाधवल जैसे ग्रन्थराजोका अनुवाद और प्रवचन करनेवाले विद्वान् विद्यमान है। जहाँ सस्कृतके ग्रन्थ बॉचनेमे लोग दूसरेका मुख देखते थे, वहाँ आज सस्कृतमे गद्य-पद्य रचना करनेवाले विद्वान् तैयार हो गये हैं।

सागर बुन्देलखण्डका केन्द्र स्थान है, अत. यहाँपर विद्याके एक विशाल आयतनकी आवश्यकता सदा अनुभवमे आती रहती थी। सागरके उत्साही लोगोने अपने यहाँ एक छोटी-सी पाठशाला खोली थी, वह वृद्धि करते-करते आज विशाल विद्यालयका रूप धारण कर समाजमे कार्य कर रही है। किसी समय इसमे ५ विद्यार्थी थे, पर अब इसमे २०० छात्र भोजन पाते हुए विद्याध्ययन करते है। एक पहाड़ीकी उपत्यिकामे सुन्दर और स्वच्छ भवन विद्यालयका बना है, उसीमे सस्कृत विभाग तथा हाईस्कूल इस प्रकार दोनो विभाग अपना कार्य सचालन करते है। सस्कृतमे प्रारम्भसे शास्त्री, आचार्य तक तथा हाईस्कूलमे एन्ट्रेस तक पढाई होती है।

समय जाते देर नही लगती। इस सस्थाको भी कार्य करते हुए बहुत वर्ष हो गये थे, इसलिए इसके आयोजकोने भी स्वर्ण-जयन्ती मनानेका आयोजन किया। बनारस विद्यालयके उत्सवके समय श्रीसमगौरयाजीने कहा था कि इस वर्ष बडे भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती हो रही है और आगामी वर्ष छोटे भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। छोटे भैयाके मायने सागरका विद्यालय है। सुनकर जनताकी उत्सुकता बढी।

अगली वर्ष सागरसे प० पन्नालालजी और समगौरयाजी हमारे पास आकर कहने लगे कि इस वर्ष सागर विद्यालयकी स्वर्ण-जयन्ती मनाना है, इसलिए आप सागर पधारनेकी कृपा करें। मै सागर जाकर बडी कठिनाईसे वापिस आ पाया था तथा शरीरकी शक्ति भी पहलेकी अपेक्षा अधिक ह्रासको प्राप्त होगई थी, इसलिए मैने सागर जाना स्वीकृत नही किया। तब उन्होने दूसरा पक्ष रक्खा, तो यहीपर अर्थात्

मधुवनमे उत्सव रखनेकी स्वीकृति दीजिये। मै तटस्थ रह गया और उक्त दोनो विद्वान् कलकत्ता जाकर मधुवनमें स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव करनेकी स्वीकृति ले आये।

इसी बीच श्री कानजी स्वामी भी श्री गिरिराजकी वन्दनार्थ ससघ पधार रहे थे, जिससे लोगोंमे उक्त अवसर पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बढ रही थी। इसी वर्ष कोडरमामे पञ्चकल्याणक थे। लोग हमे भी ले गये। वहाँ भी सागर-विद्यालयकी स्वर्ण-जयन्ती महोत्सवका काफी प्रचार हो गया। फाल्गुन सुदी १२-१३ स० २०१३ उत्सवके दिन निश्चित किये गये। इस उत्सवमे वहुत जनता एकत्रित हुई। सव धर्मशालाएँ भर चुकी और उसके बाद सैकडो डेरे-तम्बुओका प्रवन्ध कमेटीको करना पड़ा। चारो ओरकी जनताका आगमन हुआ। उसी समय यहाँ जैन-सिद्धान्तसंरक्षिणी सभाका अधिवेशन भी था। तेरापन्थीकोठीमें इसका पडाल लगा था और श्री कानजी स्वामीके प्रवचनो तथा सागर विद्यालयके उत्सवका संयुक्त पडाल बीसपथी कोठीमे लगा था। इन आयोजनोमे बाहरसे श्री प० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य, प० बन्शीधरजी न्यायालकार, प० मक्खनलालजी, लालारामजी, प० फूलचन्द्रजी, पं० कैलाशचन्द्रजी, प० इन्द्रलालजी आदि अनेक विद्वान् आये थे। सागरके सब विद्वान् तथा छात्रवर्ग थे ही।

सागर विद्यालयवालोंने उत्सवका अध्यक्ष मुझे बना दिया। उत्सवके प्रारम्भमे विद्यालयमे अवतक पढकर निकलनेवाले स्नातको (छात्रो) की ओरसे ५२ स्वर्णमुद्राएँ विद्यालयकी सहायताके लिए हमारे सामने रखी गई। विद्यालयके ५२ वर्षका कार्यपरिचय जनताके समक्ष उसके मन्त्री श्रीनाथूराम गोदरेने रक्खा। प० फूलचन्द्रजीने विद्यालयके लिए अपील की, जिससे ५०-६० हजार रुपयेके वचन मिल गये। फुटकर सहायता भी लोगोने वहुत दी। उत्सव कार्यक्रम दो दिन चलता रहा और जनता बडी प्रसन्नतासे उसमें भाग लेती रही।

श्री कानजी स्वामी फागुन सुदी ५ को संघ सहित मधुवन आ गये थे। जितने दिन रहे, प्रायः हमसे मिलते रहे। प्रसन्नमुख तथा विचारक व्यक्ति है। आप प्रारम्भमे स्थानकवासी श्वेताम्बर थे, परन्तु श्री कुन्दकुन्दस्वामीके ग्रन्थोका अवलोकन करनेसे आपकी दिगम्बर धर्मकी ओर दृढ श्रद्धा हो गई, जिससे आपने स्थानकवासी श्वेताम्बर धर्म छोड कर दिगम्बर धर्म धारण कर लिया। न केवल आपने ही किन्तु अपने

उपदेशसे सौराष्ट्र तथा गुजरात प्रान्तके हजारो व्यक्तियोको भी दिगम्बर जैनधर्ममें दीक्षित किया है। आपकी प्रेरणासे सोनगढ तथा उस प्रान्त मे अनेक जगह दिगम्बर जैन मन्दिरोका निर्माण हुआ है।

आपके प्रवचन प्राय निश्चय धर्मकी प्रमुखता लेकर होते हैं, तथा आपका जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, मैने तो आनुपूर्वीसे देखा नही, पर लोग कहते है कि निश्चयधर्मकी प्रधानताको लिये हुए है। इस स्थितिमे अभी नही, तो आगे चलकर व्यवहार-धर्मसे लोगोकी उपेक्षा हो जाना इष्ट नही है। अत दोनो नयो पर दृष्टि डालते हुए श्री कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलक आदि आचार्योके समान पदार्थका निरूपण किया जाय, तो जैन श्रुतकी परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे। विद्वान् लोग यही चर्चा आपसे करना चाहते थे, पर कार्यक्रमोकी बहुलताके कारण मधुवनमे वह अवसर नही मिल सका।

उत्सवमे आपके यात्रा-संघकी ओरसे विद्यालयको १०००) समर्पित किया गया। उत्सवके बाद आपका सघ कलकत्ताकी ओर प्रस्थान कर गया। मेला विघट गया और हम भी ईसरी वापिस आगये।

श्री क्षु० संभवसागरजीका समाधिमरण

श्री क्षुल्लक सभवसागरजी बारासिवनीके रहनेवाले थे। प्रकृतिके बहुत ही शान्त तथा सरल थे। जबसे क्षुल्लक-दीक्षा आपने ग्रहण की, तबसे बराबर हमारे साथ रहे। संसारके चक्रसे आप सदा दूर रहते थे, तथा मुझसे भी निरन्तर यही प्रेरणा करते रहते थे, आप इन सब झझटोसे दूर रहकर आत्महित करें। एकबार शाहपुरमे मै सामायिक कर रहा था और मेरे पीछे आप सामायिकमे बैठे थे। किसी कारण मेरे खेसमे आग लग गई, मुझे इसका पता नही था और होता भी तो सामयिकमेसे कैसे उठता ? परन्तु आपकी दृष्टि अचानक ही उस आग पर पड गई और आपने झटसे उठकर हमारा जलता हुआ, खेस निकाल कर अलग कर दिया। उस दिन उन्होने एक असभाव्य घटनासे हमारी रक्षा की।

आपका स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब होता गया। आपकी आयुके कुछ दिन ही शेष रह गये, तब बोले महाराजजी ! आपमे मेरी अगाध

श्रद्धा है, मैं विशेष पढा-लिखा नही हूँ, और न शास्त्रका विशेष ज्ञान ही मुझे है, परन्तु गृहवाससे मेरे परिणाम विरक्त हो गये। पहलेसे ब्रह्मचारी-के वेषमे रहा और अब क्षुल्लक दीक्षा धारण की है। मेरा अभिप्राय सदा यह रहा है कि आप विशिष्ट ज्ञानी तथा अन्तरात्माके पारखी हैं, इसलिये आपके निकट रहनेसे हमारा समाधिमरण होगा। मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा होनेकी आशा नही है, इसलिये आप जिस तरह बने, उस तरह हमारा सुधार करें। हमारा उपकार अपकार आप पर निर्भर है। यह कहकर आपने सल्लेखना धारण कर ली। आश्रमके सब ब्रह्मचारी आपकी सेवामे लीन हो गये। मै भी यथा समय उन्हे सबोधता रहता था। मेरा तो उनसे यही कहना था कि इस समय अधिक चिन्तनकी आवश्यकता नही। इस समय तो आप इतना ही चिन्तन करो—

एगो मे सासदो अप्पा णाणदसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा॥

कुन्दकुन्द स्वामीके वचन हैं कि ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा शाश्वत द्रव्य है। अन्य, कर्मसयोगसे होनेवाले समस्त भाव बाह्य भाव हैं। उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही। शरीरादि परपदार्थोंसे भिन्न हमारी आत्मा है। उसे कोई भी नष्ट करनेवाला नही है।

यहाँ पर्यूषणके बाद आसोज वदी ४ को लोग वर्णी-जयन्तीके समारोहका आयोजन कर रहे थे, वहाँ श्री सभवसागरजीका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जाता था। मैने सब जगह सूचना करवा दी कि इस वर्ष जयन्तीका समारोह नही होगा, क्योकि हमारा एक सहयोगी सन्त समाधिपर आरूढ है। यद्यपि जयन्ती-उत्सव स्थगित कर दिया था, फिर भी आस-पासके लोगोकी अच्छी सख्या आकर यहाँ उपस्थित हो गई। कुँवार वदी ३ वीर निर्वाण २४८३ आपकी वर्तमान पर्यायका अन्तिम दिन था। दुर्बल होने पर भी आपकी चेतना यथापूर्व थी। आप बोल नही सकते थे, फिर भी यथार्थ तत्त्व आपके ज्ञानमे समाया हुआ था। आज आपने अन्न-जलका सर्वथा त्याग कर दिया। मैने कहा कि सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होने हूँकार भरा। तदनन्तर मैने कहा कि आत्मा परपदार्थोंसे भिन्न जुदा पदार्थ अनुभवमे आता है, या नही? पुन: उन्होने हूँकार भरा। तदनन्तर नमस्कार-मन्त्रका श्रवण करते-करते आपके प्राण शरीरसे बहिर्गत होगये। सबको दु:ख हुआ। पश्चात् आपका अन्तिम-सस्कार किया गया। शोकसभा की गई, जिसमे आपको

और आपके परिवारको 'शान्तिलाभ हो' ऐसी भगवान्से प्रार्थना की गई। सब लोगोके मुखसे आपकी प्रशसामे यही शब्द निकलते थे कि बहुत ही शान्त थे।

हजारीबागका ग्रीष्मकाल

हजारीबागकी जलवायु उत्तम है। ग्रीष्मकी बाधा भी वहाँ कम होती है, इसलिये अन्तरङ्गकी प्रेरणा समझो या वहाँके लोगोके आग्रहकी प्रबलता कुछ भी कारण समझो, मै वहाँ चला गया। बसतीलालजीने अपने उद्यानमे ठहराया। सुरम्य स्थान है। यहाँ आकर गरमीके प्रकोपसे तो बच गया, परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्बलतासे जैसी शान्ति मिलनी चाहिये, नही मिल सकी। सागरसे तार आये कि यहाँ सिंघई कुन्दनलालजीका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब है, इसलिये उनकी समाधिके लिए आप सागर पधारनेकी कृपा करे। सिं० कुन्दनलालजी अन्तरङ्गके निर्मल एवं परोपकारी जीव है। उनके सपर्कमे हमारा बहुत समय बीता है, इसलिये मनमे विकल्प उत्पन्न हुआ कि यदि हमारे द्वारा इनके परिणामोका सुधार होता है, तो पहुँचनेमे क्या हानि है। तारके बाद ही सागरसे कुछ व्यक्ति भी लेनेके लिए आगये। जब इस बातका यहाँके समाजको पता चला, तो सबमे व्यग्रता फैल गई। लोग यह कहने लगे कि आपकी अत्यन्त वृद्ध अवस्था है, इसलिए श्री पार्श्व प्रभुकी शरण छोडकर अन्यत्र जाना अच्छा नही है। साथ ही यह भी कहने लगे कि आपने इसी प्रान्तमें रहनेका नियम किया था, इसलिए इस प्रान्तसे बाहर जाना उचित नही हैं। हजारीबाग ही नही कई स्थानोके भाई एकत्रित होगये। मै दोनो ओरसे सकोचमे पड गया। इधर सागरके महाशय आगये, इसलिए उनका सकोच और उधर इस प्रान्तके लोगोका संकोच। हजारीबागसे चलकर ईसरी आये, तो यहाँ भी बहुतसे लोगोका जमाव देखा। बात यही थी, सबका यही कहना था कि आप इस प्रान्तको छोडकर अन्यत्र न जावें। जानेमे नियमकी अवहेलना होती है, परन्तु मेरा कहना था कि समाधिके लिए जानेका विचार है। यदि मेरे द्वारा एक आत्माका सुधार होता है, तो क्या बुरा है? लोगोकी युक्ति यह थी कि यदि सिंघईजी कोई व्रती क्षुल्लक या मुनि होते, तो जाना सभव हो सकता

था। अन्तरङ्गमे विचारोका सघर्ष चल रहा था कि सागरसे दूसरा समाचार आ गया कि सिघईजीका स्वास्थ्य सुधर रहा है। समाचार जानकर हृदयकी व्यग्रता कम हुई। मनमे यह लगा कि मेरा हृदय वहुत निर्वल है। जरा-जरासी वातोको लेकर उलझनमे पड जाता हूँ, इसे हृदयकी दुर्वलता न कहा जाय तो क्या कहा जाय। स्वस्थताके तारने हमारी उलझन समाप्त कर दी और मैंने सागरवालोसे कह दिया कि हमारा सागर पहुँचना शक्य नही है। इधरके लोगोको इससे सन्तोष हुआ, पर सागरके लोग निराश होकर चले गये। ससार है, सवको प्रसन्न रखनेकी क्षमता सवमे नही है। सूर्योदयसे कमल विकसित होता है, पर उसी तालावमें कमलके पास लगा हुआ, कुमुद वन्द हो जाता है। इसे क्या कहा जाय? पदार्थका परिणमन विचित्र-रूप है। हर्ष और विषादका अनुभव लोग अपनी-अपनी कषायके अनुसार ही करते है।

साहुजीकी दान-घोषणा

वृद्धावस्थाके कारण शरीरकी जर्जरता तो वढ रही थी। उस पर भी यदा-कदा वातका प्रकोप व्यग्रताको बढा देता था, इसलिए एक दिन निश्चय किया कि राजगृही रहा जाय। वहाँका वायुमण्डल शरीरके अनुकूल बैठ सकता है। श्रीराजकृष्णजीने इसके लिए एक विशिष्ट प्रकारकी कुर्सीका निर्माण कराया, जिसमे पहिये लगाये गये थे, और एक आदमी जिसे अच्छी तरह चला सकता था। ईसरीसे जाते समय मनमे विकल्प आया कि पार्श्व प्रभुके पादमूलसे हटकर जा रहा हूँ। फिर लौटकर आ सका या नही, इसलिए एक बार गिरिराज पर जाकर उनके दर्शन अवश्य करना चाहिये। निश्चयानुसार मधुवनके लिए प्रस्थान कर दिया।

प्रातःकाल श्रीपार्श्वप्रभुकी वन्दनाके लिये गया। डोलीमे जाना पडा। मन ही मन औदारिक शरीरकी दशा पर खेद उत्पन्न हो रहा था। एक समय था, जब इसी शरीरसे पैदल यात्रा कर पार्श्वप्रभुके दर्शन किये थे, पर अब उसे वाहन करनेके लिए दो आदमियोकी आवश्यकता पडती है। सीधे पार्श्वनाथ भगवान्की टोंक पर ही गये थे, इसलिए आठ बजते वहाँ पहुँच गये। पार्श्वप्रभुके दर्शन कर हृदयमे अपार शान्ति उत्पन्न हुई। एक बार स्वर्गीय बाईजीके साथ गिरिराज-

प्रात काल श्री पार्श्वप्रभुकी वन्दनाके लिए गया।
डोलीमे जाना पडा।
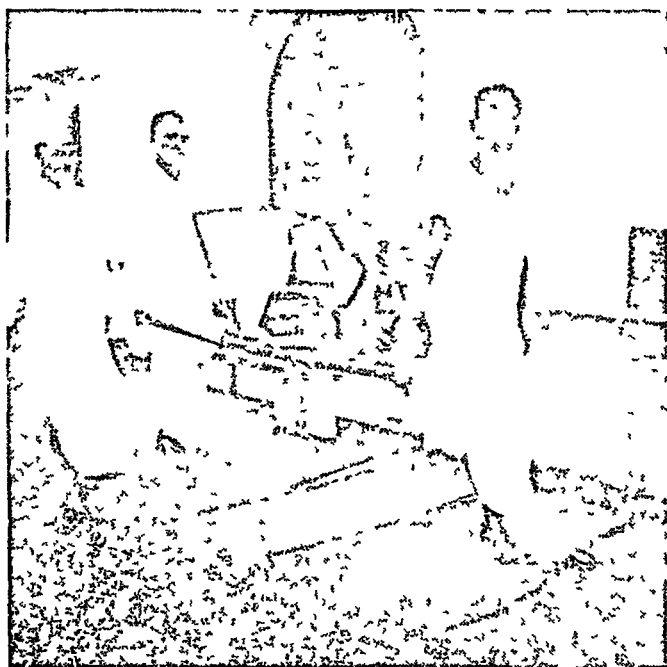
[पृ० ३५६]
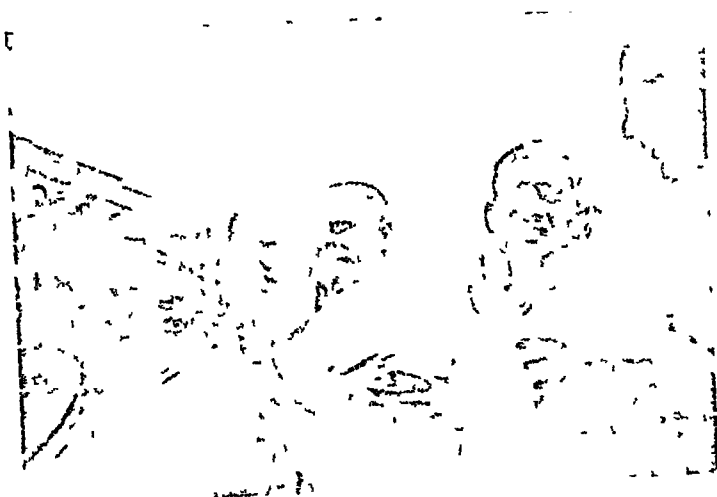
पर अब उसे (शरीरको) वाहन करनेके लिए
दो आदमियोकी आवश्यकता पडती है।

[पृ० ३५७]

की यात्रा की थी, तब पार्श्व प्रभुके पादमूलमे उन्होने अपना जीवनचक्र सुनाते हुए, प्रतिक्रमण कर नाना-व्रत धारण किये थे। वह दृश्य सहसा आँखोके सामने आ गया और बाईजीका उज्ज्वल रूप सामने दृष्टिगत होने लगा। साथके लोगोसे तत्त्वचर्चा करता हुआ, बाहर आया। चारो ओर हरे-भरे वृक्षो पर सूर्यकी सुनहली धूप पड रही थी। फिर भी शीतल वायुके झकोरे शरीरमे सिहरन पैदा कर रहे थे। मध्यान्हकी सामयिक बीचमे कर मधुवन आगये। आहार आदिसे निवृत्त हो सतोषका अनुभव किया।

मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। शीतकी प्रकोपतासे पावोमे सूजन आ गई, और वातका दर्द भी अधिक बढ गया। इसलिए राजगृही जाना कठिन हो गया। गिरीडीहके महानुभावोने आग्रह किया कि अभी आप गिरीडीह चले, वहाँ हम उपचार करेगे। अच्छा होने पर आप राजगृही जावे। हम गिरीडीह चले गये। लोगोने बहुत सम्मानसे ठहराया और नाना उपचार किये। स्वास्थ्यकी खराबीके समाचार जहाँ-तहाँ पहुच गये, जिससे अनेक लोग गिरीडीह पहुचे। क्षुल्लक मनोहरलालजी भी आ पहुचे। आपके प्रवचनोसे जनताको लाभ मिलने लगा। श्री साहु शान्तिप्रसादजी भी आये। आप प्रकृतिसे भद्र एव उदार चेता है। आपने एक दिन कहा कि महाराजजी! मै सागर विद्यालयकी जयन्तीके समय सम्मेदशिखरजीमे नही आ पाया था, सो अब आज्ञा कीजिये। मेने कहा कि मैं क्या आज्ञा करूँ? उस प्रान्तमे वह विद्यालय जैन समाजके उत्थानमे बहुत भारी काम कर रहा है। बना रहे, यही हमारी भावना है। समीपमे बैठे कुछ लोगोने कह दिया कि वहाँ पाँच हजार रुपयेका वार्षिक घाटा रहता है। सुनकर उन्होने कहा कि हम सदाके लिए इसकी पूर्ति कर देगे। अनन्तर बनारस विद्यालयके भवन गिर जानेकी बात आई, तो बोले कि हम सन्मति निकेतनमे इसके लिये दूसरा भवन बनवा देंगे। यह सब कह चुकनेके बाद उन्होने आग्रह किया कि आपका शरीर अत्यन्त जर्जर है। न जाने कब क्या हो जाय? इसलिए आप 'सम्मेदशिखरजीसे दूर न जावे। गिरीडीह, ईसरी तथा इसीके आस-पास रहे, तो उत्तम हो। मैने कहा—अच्छा है।

राजगृही जाना स्थगित हो गया तथा कुछ स्वस्थ होनेपर ईसरी आ गया। ईसरीमे दिनचर्या पूर्ववत् चलने लगी।

परिशिष्ट

कथाका विसर्जन : और विसर्जनकी कथा

—नीरज जैन, एम ए.

महापुरुष अपने जीवनसे हमे वहुत-सी शिक्षा देते है और प्राय अपने मरणसे भी वे हमे वहुत कुछ सिखाते है। यदि उनका जीवन एक प्रयोगशाला है तो मरण उनका सफल आविष्कार है। यदि जीवन एक पाठशाला है तो मरण उनकी परीक्षा है।

पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी इस युगके मान्य महापुरुष थे। उनके दीर्घ साधनामय और समर्पित जीवनको आदर्श वनाकर यदि हम यह सीख सकते है कि क्षुद्र मानव-जीवनको विकसित करके कैसे धर्म और समाजके लिये उसकी उपादेयता सिद्ध की जा सकती है तथा आत्मसयम-के द्वारा किस प्रकार उसकी सार्थकता स्थापित की जा सकती है, तो इसमे सन्देह नही कि उनके विवेकपूर्ण अवसानको ध्यानमे लाकर हम भलीभाँति यह भी जान सकते हैं कि किस प्रकार मरणको महानता प्रदान करके उसे भी अनुकरणीय वनाया जा सकता है।

वावाजीके देहावसानके पाँच सप्ताह पूर्वसे, उनकी चरणसेवा करने-का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। आज तेरह वर्षका लम्वा समय व्यतीत हो जानेके बाद भी, उस महाप्रयाणकी प्रायः सभी छोटी-वड़ी घटनाएँ, एलबमके चित्रोकी तरह मुझे अपने मानस-पटलपर स्पष्ट अकित दिखाई देती है।

वह साहसिक संकल्प—

१९६१ के रक्षावन्धनके कुछ दिन पूर्वकी बात है। बावाजी मोती-झिराकी लम्बी बीमारीसे मुक्त होकर कुछ स्वस्थ-सा अनुभव कर रहे थे। एक दिन अकस्मात् गुरुजी श्रद्धेय पण्डित जगन्मोहनलालजीका रेलगाडीमेसे लिखा एक पोस्टकार्ड सतनामे मुझे प्राप्त हुआ। लिखा था—

"पूज्य बाबाजीका स्वास्थ्य कुछ सुधार पर है। ज्वर शान्त हो गया है। मरण आसन्न नही है। फिर भी, न जाने क्यो, वे अन्न ग्रहण नही

कर रहे है । तुम जाकर प्रयत्न करो । शायद तुम्हारी बालहठ कुछ काम कर जाय ।"

पत्र देखते ही चित्त एकदम बेचैन हो उठा । दूसरे ही दिन सपरिवार मै ईसरी पहुँच गया । बाबाजीके एक और मूक सेवक भाई पन्नालालजी सतनासे ही साथ हो गये ।

सुबह साढे आठ बजे हम लोग आश्रम पहुँच गये । मनमे तो एक ही लगन थी कि बाबाजीको अन्नका आहार देना है । सुना, कुछ भी ग्रहण नही करते है । फलोके दो-चार तोले रसका ही शरीरको आसरा है ।

झटपट नहा धोकर मैने मूगकी दालका पानी तैयार कराया और एक छोटी कटोरीमे उसे लेकर प्रस्तुत हो गया । चर्याकी विधि प्रारम्भ हुई और लगभग एक छटाक मौसमी या अनारका रस, चार-पाँच घूँटमे, बाबाजीने ग्रहण किया । मैने दालका पानी बढाया, बहुत आग्रह किया, पर उन्होने एक बूँद भी उसे लेना स्वीकार न किया । पहली बार निषेध-मे जो उनका हाथ हिला सो हिलता ही चला गया । मेरी दाल बिल्कुल नही गली ।

पाचनकी प्रक्रियाके लिए फलोके रस और दालके छाने हुए पानीमे कोई विशेष अन्तर नही होता । वैद्योका भी परामर्श था कि दालके पानीसे प्रारम्भ करके धीरे-धीरे अन्नाहारपर आ जाना हितकर होगा । इस सबके बावजूद भी उनके निषेधकी दृढता देखकर मुझे विश्वास हो गया कि यह निषेध, अनिच्छा या अरुचिजन्य साधारण निषेध नही हैं । इसके पीछे अवश्य ही कोई दूसरा सकल्प होना चाहिए ।

बाबाजी सामायिकके उपरात विश्राममे थे । अशक्तिके कारण लेटे ही लेटे उनकी ये क्रियाये चलती थी । मै भी भोजनादिसे निवृत्त हुआ और अपनी टोहमे लग गया । उनकी डायरी निकालकर पढ डाली । निरन्तर लिखनेका उनका क्रम तो कभीका टूट चुका था, परन्तु कोई विशेष बात होने पर कभी-कभी बोलकर डायरीमे लिखा देते थे । एक-एक पक्ति छान डाली, पर कही कुछ संकेत मिला नही ।

उनके पास आने वाले पत्रोका निरीक्षण-परीक्षण भी व्यर्थ रहा । अन्तमे उनकी समयसारकी प्रति मैने उठाई । मुझे ज्ञात था, कि कई बार पूज्य बाबाजी विशेष महत्त्वके पत्र-कागज आदि समयसारके आवरणमे खोस देते है । अहिंसा प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित समयसारकी इस मोटी प्रति पर खाकी रंगके मोटे ही कपडेका एक आवरण था, जो बाबाजीको लिखे गये विशेष पत्रो आदिका शरणस्थल हुआ करता था ।

तीन-चार कागज उसमें प्राप्त हुए। उन्हीमे वह लिखित संकल्प मुझे प्राप्त हो गया, जिसे पढ़ने पर, वैद्योके परामर्शके बावजूद भी, दालके पानीके प्रति उनके दृढतापूर्ण निषेधका सही अर्थ मेरी समझमे आ गया। पत्र इस प्रकार था

"यद्यपि हमारा रोग दो वर्षसे हम अनुभव कर रहे हैं, निष्प्रतीकार है। परन्तु हमारे जो साधर्मी भाई है, वह कहते है कि आप सौ वर्ष जीवेंगे। यह उनका कहना तथ्य है या अतथ्य है, बहुज्ञानी जानें, या जो कहते है वे ही जाने। परन्तु मुझे विश्वास है, अब समाधिमरणके उपायोका अविलम्ब अवलम्बन श्रेयस्कर है।

इसका उपाय पेय पदार्थ है। अर्थात् आहारको छोडकर स्निग्ध पान करना बहुत उपयोगी होगा। आधा सेर दूध और दो अनारका रस जो पाव सेरसे अधिक न हो। आठ दिन इसका प्रयोग करना चाहिए। यदि यह उपयोग समाधिमरणके अनुकूल पड़ जावे तो अगाडी सात छटाक दूध और आधा पाव अनारका रसका उपयोग करना चाहिए। और इस उपयोगमे सफल हो तो आगामी कालमे तक्र आदिका प्रयोग करना चाहिए। ऐसी आशा है कि साधर्मी भाई सम्मति देगे अथवा इसे अनुचित समझे तो जो उचित हो उसे उपयोगमे लावे।

"अब केवल सन्तोष करानेसे मेरा तो कल्याण दुर्लभ होगा।"

आपका शुभचिन्तक

—गणेश वर्णी

पत्र आश्रमके छपे पैड पर पेंसिलसे लिखा हुआ था। एक भक्त विद्वान्‌को बोलकर यह पत्र लिखाया गया था और उस पर तिथि-तारीख-का कोई उल्लेख नही था। बाबाजीके सबल-सकल्पका यह दस्तावेज आज भी मेरे पास सुरक्षित है। लगता था, बाबाजीने अपने शरीर-त्याग-की यह तैयारी, काफी सोच-समझकर यथासमय ही कर ली थी। इधर कुछ सप्ताहोमे जिस क्रमसे भोजन घटाकर मात्र दो चुल्लू रस तक वे अपना आहार ले आये थे, उससे भी स्पष्ट था कि वे अपने निर्णयके अनुसार ही अपनी सल्लेखनाके मार्ग पर चल रहे हैं।

स्मृतियोंकी घनी छाँवमे—

जबसे मैंने होश सभाला तबसे बराबर वर्णीजीके श्रीचरणोका समागम मुझे मिलता रहा। छुटपनमे उनका नाम "बडे पडितजी" सुना करता था। बादमे 'वर्णीजी' की सज्ञा उनके व्यक्तित्वका प्रतीक बन गयी। अब,

क्षुल्लक दीक्षा लेनेके बाद, अथवा यो कहे कि वृद्ध हो जानेके कारण, सब लोग उन्हे 'बाबाजी' कहने लगे थे। मेरे पिता स्व० सिंघई लछमन-लालजीसे वर्णीजीका स्नेहभाव रहा है, और वे प्राय हमारे यहाँ रीठी आते जाते रहे हैं। इसी सुयोगवश शैशवसे लेकर आज तक मैने सदैव वर्णीजी महाराजका वरद हस्त अपने माथे पर महसूस किया था। उनका सान्निध्य ही अनेक आकुलताओको हरण करके चित्तको अनुपम शान्ति देता था। मेरे जैसे सैकडो लोग थे, जो ऐसा ही कुछ अनुभव करते थे। सान्त्वनाका यह सम्बल कभी छूटना भी है, ऐसी कल्पना कभी मनमे आयी ही नही थी। अब आज, बाबाजीका लिखाया हुआ, सल्लेखनाका यह सकल्प-पत्र जब उद्घाटित हुआ तो पढकर एक क्षणके लिए मुझे चक्कर आ गया। निकट भविष्यके गहन अन्धकारकी भयावह कल्पना मनको कपाने लगी।

महायात्राका पाथेय—

सिद्धान्ताचार्य श्रीमान् पडित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री और कलकत्तेके निष्ठावान् सरावगीबन्धु बाबू छोटेलालजी तथा बाबू नन्दलालजी, ब्र० बाबू सुरेन्द्रनाथजी, प० बशीधरजी न्यायालकार इन्दौर आदि उस समय बाबाजीकी सेवाके लिए आश्रममे ठहरे हुए थे। मैंने तत्काल वह पत्र बाबूजीको दिखाया। इन लोगोको भी इस सकल्पका आभास मिल चुका था। थोडे विचार-विमर्शके उपरान्त सब लोग उनके पास एकत्र हुए और पंडित कैलाशचन्द्रजीने उनसे प्रार्थना की कि एक बार शरीरको निरोग और शक्तिसम्पन्न करनेकी अनुकूलताको अवसर दिया जाना चाहिए। हम लोगोंने भी अपने-अपने रागके अनुरूप यही विनती की, परन्तु सल्लेखना-के प्रति बाबाजीके अडिग निश्चयमे कोई परिवर्तन करा लेना सभव न हुआ। उनका सकल्प अकम्प था और दृढता अचल थी।

पूज्य वर्णीजीकी सत्तासी वर्षकी आयु और जराजीर्ण शरीरकी रुग्णावस्थाको ध्यानमे रखकर तथा ससार और शरीरके प्रति उनकी उदासीनताके परिप्रेक्ष्यमे देहत्यागके उनके दृढ सकल्पको परख कर सबने यह जान लिया कि अब उन्हे उनके इस निश्चयसे हटाना न उचित है, न सभव। अत. पडितजीने रुद्धकण्ठ और भावभीने शब्दोमे वर्णीजीके परिणामोकी स्थिरताकी प्रशसा करते हुए विनय की कि अब हम लोग उनके सकल्पमे साधक ही होगे, बाधक नही।

पता लगानेपर विदित हुआ कि जुलाईके प्रथम सप्ताहमे उनपर ज्वरका आक्रमण हुआ था, जो दो-चार दिन मलेरियाका छद्म रूप दिखा-

कर शीघ्र ही मोतीझिरामें परिणत हो गया था। इस सावधिक ज्वरके प्रतिकार हेतु ही जुलाईके तीसरे सप्ताहमे उन्होंने अन्न-भोजन बन्द कर दिया था। उनका अतिम अन्न-ग्रहण सभवत: १६ या १७ जुलाईको हुआ था। इसप्रकार इस पर्यायके अंतिम पचास दिन उन्होंने अत्यन्त समता सहित, अन्नाहारके त्यागपूर्वक व्यतीत किये।

हृदय-मन्थनके वे दिन—

वर्णीजीने सल्लेखना ले ली है, यह घोषित होते ही ईसरीका वह आश्रम 'तीर्थधाम' बन गया। समाचार जंगलकी आगकी तरह थोड़े ही समयमे समाजमे फैल गया और चारो तरफसे उनके स्वास्थ्यके प्रति जिज्ञासा और चिन्ता प्रकट की जाने लगी। दर्शनार्थियोकी सख्या भी दिन-प्रतिदिन बढने लगी।

बाबाजी इस बीच प्राय निरोग हो गये थे। कभी-कभी कोप दिखाने वाले साधारण ज्वरके अतिरिक्त कोई रोगजन्य उपद्रव नही था। पाँवके घुटनोका दर्द अवश्य सच्चे मित्रकी तरह उनका साथ दे रहा था। इस स्थितिमे भी वे शरीरकी अवस्थाके प्रति नितान्त उदासीन और प्रसन्न चित्त दिखाई देते थे। मैंने जैन शास्त्रोंमे कई जगह पढ़ा था और विद्वानोके मुखसे कई बार सुना था कि शरीर पृथक् है और आत्मा पृथक् है। ईसरीमे अब हमलोग इस सैद्धान्तिक परिभाषाका प्रयोगात्मक रूप साक्षात् देख रहे थे। एक ओर जडधर्मी शरीर शिथिल और अशक्त होता जा रहा था वही दूसरी ओर आत्माकी शक्ति बढती चली जा रही थी। एक ओर शरीर दूषित और विकारग्रस्त होता जा रहा था वही दूसरी ओर आत्माके दोष और विकार उपशान्त होते चले जा रहे थे। एक ओर शरीर पीडा और तापका अनुभव कर रहा था वही दूसरी ओर आत्मा आनन्द और शान्तिका आस्वादन करती अनुभवमे आती थी।

यह वह दिन थे जब वर्णीजीकी अडिग आस्था कसौटीपर थी और समयसारकी उनकी जीवन-व्यापिनी परीक्षाका अन्तिम प्रश्नपत्र उनके सामने था। ऐसा लगता था कि इस परीक्षाके लिए उनकी तैयारी बहुत अच्छी है और उनका उत्साह और उनकी सावधानी बराबर बनी हुई है। "समयसार" तो वर्णीजीकी साँसोमे बस गया था। मूल गाथाओके साथ आचार्य अमृतचन्द्रके कलश भी चालीस वर्ष पूर्वसे उन्हे कण्ठस्थ थे। इस टीकाके पृष्ठके पृष्ठ कई बार सोते समय भी तन्द्राकी स्थितिमे उनकी वाणीमे निसृत होते थे। कहा जाता है कि आचार्य अमृतचन्द्र

और आचार्य जयसेनके बाद भगवान कुन्दकुन्दकी वाणीका इतना तलस्पर्शी अध्ययन किसीके द्वारा नही हुआ, जितना वर्णीजी महाराजके द्वारा किया गया। वे समयसारके एकमात्र अधिकृत अध्येता माने जाते थे। सोनगढमे कान्हजी स्वामीने जब अपने कुलका गृहीत मिथ्यात्व वाला मार्ग छोडकर सम्यक् मार्गकी शरण लेनेका उद्योग किया और समयसारका अध्ययन करना चाहा तब उनके सामने सिद्धान्तके अनेक गूढ प्रश्न उपस्थित हुए। समयसारकी यात्रामे कई जगह् अटकाव और भटकावकी स्थितिका सामना कान्हजी स्वामीको उस समय करना पडा। उस समय उनकी दृष्टि भी वर्णीजी पर गयी। कलकत्तेके कुछ जिज्ञासु मित्रोको सोनगढसे अपनी शकाये गुजराती भाषामे लिखी जाती थी। उन्हे हिन्दीमे करके वर्णीजीके समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। वर्णीजी उन प्रश्नोंके समाधान विस्तारसे समझाकर लिखते थे। तब उनकी वह वाणी कलकत्तेसे गुजराती लिपिमे सोनगढ पहुँचती थी। इस प्रक्रियासे वर्णीजी महाराजका सहारा लेकर सोनगढके साधकोका समयसारका अध्ययन सम्पन्न हुआ था। इन पत्रोका एक सकलन "अध्यात्म-पत्रावली" के नामसे सोनगढसे लगभग चालीस वर्ष पूर्व प्रकाशित भी हुआ था। कालान्तरमे सोनगढकी मान्यताओमे अनेकान्तकी छवि धूमिल होती गयी और एकागी आग्रह् वहाँ स्थापित हुआ, तब प्रयत्नपूर्वक इस 'अध्यात्म पत्रावली' का लोप किया गया। किन्तु यह एक पृथक् प्रकरण है। यहाँ उसका विश्लेषण अभीष्ट नही।

पूज्य वर्णीजीकी सल्लेखनाके इस महासकल्प के बीच जब हम यह देखते थे कि शरीरकी पीडाके उपरान्त भी पूज्य वर्णीजी उसी सहजता और एकाग्रताके साथ समयसारका चिन्तन, मनन और कभी-कभी होठोके भीतर उसका उच्चारण कर रहे है, तब उनकी साधनाके प्रति सबका मस्तक अनायास झुक जाता था।

आश्रममे घटनाचक्र तीव्रगतिसे घूम रहा था। महाराजका उठनाबैठना और बोलना क्रमश बन्द हो गया। आहार—खाद्य, पेय, औषधि आदिका क्रमश. त्याग हुआ। सल्लेखनाकी विधि-विधान और उसका नियमन श्रीमान् पंडित वशीधरजी न्यायालकारके निर्देशनमे हो रहा था। कहीसे दक्षिणके एक ऐलक महाराज पधार गये थे। वे भी वैय्यावृत्य और सुश्रूषामे सहायक होते थे। कमरेके बीचो बीच घासके सन्थारे पर महाराजको लिटाया गया था।

प्राय पूरे समय, महाराज शान्त और विचारमग्न, अपनी शैय्यापर निरुद्विग्न लेटे रहते थे। उनके कानके समीप धीमी और स्पष्ट ध्वनिमे निरन्तर कुछ न कुछ पाठ हम लोग किया करते थे। कभी बुधजनकी 'बारह भावना' या 'छहढाला', कभी दौलतरामकी 'छहढाला' या कोई पद। कभी 'एकीभाव' या 'भक्तामर स्तोत्र' और प्राय आचार्य अमृत-चन्द्रके 'समयसार कलश'। महाराज जब तक चाहते, सुनते थे। वे जब स्वत' कुछ चिन्तन करना चाहते थे, तब एक निश्चित इशारेसे यह पाठ बन्दकर दिया जाता था। उनकी वाणी तो पहले ही थक चुकी थी, परन्तु वे निरन्तर सावधान और पूरी तरह सतर्क थे। जिस महायात्राकी साधनाके लिये वे अपना बुन्देलखण्ड छोडकर, हजारो अपने लोगोकी ममताभरी मनुहारसे मुँह मोडकर और लाखो भोले भक्तोंके आँसुओकी धारामेसे मानो तैरकर इस सिद्ध-भूमिपर पारसप्रभुके पादमूलमे आये थे, उस महायात्राकी घड़ी अब क्षण-प्रतिक्षण पास आती जा रही थी। दौडकी स्पर्धा करने वाला खिलाडी, लक्ष्य रेखाको सामने देखकर जैसे पूरी शक्ति लगाकर अपनी गतिको अधिक सयत और अधिक तीव्र कर देता है, उसीप्रकार वर्णीजी महाराजकी जीवनव्यापी साधना, समाधि-के लक्ष्यको सम्मुख आया देखकर अधिक संयत और अधिक तीव्र हो उठी थी। करवट दिलानेके लिये, पैर या हाथ सिकोडने या फैलानेके लिये, लघुशका आदिक शरीरधर्मके लिए दो अगुलियोंके निश्चित संकेत निर्धारित हो गये थे। वे आवश्यकता पड़नेपर जितनी एकरूपता और निस्पृहताके साथ इन सकेतोका प्रयोग करते थे उसीसे यह बात स्पष्ट हो जाती थी कि वे कितने सजग और सावधान है। दर्शनार्थी भक्तोकी निरन्तर बढती हुई भारी भीडको ऐसा नियन्त्रित कर दिया था कि सबको उनका दर्शन प्राप्त हो, किन्तु उससे उनका चिन्तन और उनकी एकाग्रता बाधित न हो।

ज्योतिका विलय—

दिनाक १-९-६१ को उन्होने फलोंके रसका भी त्याग कर दिया। मात्र जल ग्रहणकी छूट रही, परन्तु शरीरकी अशक्तिके कारण क्रियाके अभावमे जल लेना भी संभव न हुआ। देहावसानके १६ घटे पूर्व दिनाक ५-९-६१ को उनकी सहर्ष अनुमति पूर्वक जलके त्यागके साथ ही उनके वस्त्रोंका भी त्याग कराकर उन्हे दिगम्बर मुद्रा धारण करायी गयी। "१०८ मुनि श्री गणेश कीर्ति" उनका दीक्षाका नाम घोषित किया गया। आज भाद्रपद कृष्ण एकादशीका वह दिन आ ही गया, जब जीवनके यज्ञकी अन्तिम

आहुति पडने वाली थी। इतने दिनोमे कई बार ऐसा हुआ कि उनका शारीरिक क्लेश अनायास बढ गया। कभी थर्मामीटरके पारेने १०५ पर जाकर विश्राम किया, कभी घुटनो और जोडोमे भयंकर पीडा उठी और कभी भीषण दाहने श्वास नलिकामे ऐंठन पैदा करनेका उपक्रम किया। परन्तु हम स्पष्ट देखते थे कि शरीरकी यह परिणति शरीर तक ही सीमित है। महाराजकी ज्ञाता-दृष्टा आत्माको लेशमात्र भी आकुलता पहुँचानेमे शरीरके ये उपद्रव सफल नही हो पा रहे थे। यद्यपि आज शिथिलता कुछ बढ गयी थी किन्तु उनकी सजगता और सावधानीमे कोई कमी नही आयी थी। आधी रातसे उनकी श्वासमे कफके लक्षण प्रकट हुए और दो घड़ीके भीतर एक बजकर बीस मिनटपर उन्होने अन्तिम श्वास ली। जीवन यदि साधनाका नाम था, तो आज वह सफल हो गयी। जीवन यदि एक परीक्षा थी, तो आज वह समाप्त हो गयी। और जीवन किसी अनजानी दिशाकी यात्राके बीचकी यदि एक बाधा-मात्र थी, तो आज वह दूर हो गयी। चिर पथिक अपनी रुचिर आत्म-साधनाका पाथेय बाँधकर अचिर यात्रापर प्रस्थित हो गया।

मुनि श्री गणेशकीर्तिजीकी समाधिका समाचार जैसे-जैसे लोग पाते गये, आश्रम जनाकुल होता गया। अपने आँसू अपने ही हाथो पोछकर जब मै सावधान हुआ तो मैंने देखा कि बाबू छोटेलालजी निढाल होकर एक ओर पडे है। बाबू नन्दलालजी ऐलक महाराजके साथ मिलकर वर्णीजीके पावन शरीरकी व्यवस्थामे लगे है। गयाके श्री चम्पालालजी सेठी आनन्दके अतिरेकमे बेसुध हो गये हैं। हाथमे करताल लेकर ऊँचे स्वरसे भजन बोलकर वे पागलकी तरह नाच रहे हैं। सौ-पचास कण्ठ और दस-बीस चरण और भी थे, जो उनका साथ दे रहे थे। कमरा इन भक्तोसे भरा था।

महाराजके देहत्यागके थोडी ही देर पहले साहु शान्तिप्रसादजीके सुपुत्र श्री आलोक प्रकाश कलकत्तेसे कार द्वारा पहुँचे थे। एकदम अस्त-व्यस्त और व्याकुल। अब वे महाराजके चरणोके वियोगका शोक और अन्त समयमे उनका दर्शन पा लेनेका सन्तोष एकसाथ भोग रहे थे। बडी तत्परतासे उन्होने धनवाद सन्देशा भेजकर तार, टेलीफोन और टेली-प्रिन्टरसे महाराजकी समाधिका समाचार अविलम्ब प्रसारित करा दिया।

शेष अवशेष—

आगेकी बात बहुत सक्षिप्त है। शायद इसलिये कि वे घटनायें मेरे

सामने घटी और मै और मेरा केमरा ये दोनो, यन्त्रवत् ही साथ-साथ उनके साक्षी रहे। प्रात' शरीरपूजन हुआ। उनकी देहको विमानमे सजाकर दो घण्टे तक लोग जुलूसमे घुमाते रहे। इसी बीच चारो तरफसे कारो, टैक्सियो, बसो और अन्य साधनोंका सहारा लेकर लगभग ३००० लोग ईसरीमे एकत्र हो गये। पारसनाथ आश्रमके प्रागणमें उनके साधना-कक्षके ठीक सामने एक बडे चबूतरेका निर्माण हुआ। उसीपर चन्दन, नारियल, घी और कपूरका एक बड़ा ढेर लग गया, जिसके बीचमे उनका तपःपूत शरीर विराजित करके उसे अग्निको समर्पित कर दिया गया। वह सन्तापहारिणी छवि क्षण भरमे भस्मीभूत हो गयी, जिसके दर्शनमात्र-से सारे दैहिक, दैविक और भौतिक ताप स्वत शान्त हो जाते थे। वे यशस्वी हाथ देखते-देखते अदृश्य हो गये, जिनका वरद स्पर्श, पारसका प्रभाव रखता था। वे चरण अचानक ही दृष्टिपथसे ओझल हो गये, जिन पर मस्तक टेककर हम, और हमारे जैसे सैकड़ो लोग अपने आपको धन्य मानते थे।

देखते-देखते चिताकी लपटें शान्त हो गयी और चारों तरफके गाँवो-से आदिवासी स्त्री-पुरुषोका ऐसा रेला आया, जिसने अपने इस सिद्ध महात्माकी पावन भस्मीकी एक-एक चुटकी उठाकर चबूतरा साफ कर दिया। बाबाजीके अनन्य भक्त प्रो खुशालचन्द्र गोरावाला और नरेन्द्र विद्यार्थीने जो थोड़ी-सी अस्थियाँ संचित कर ली वे शेष रह गयी। मेरे केमरेने इन सब घटनाओंकी जो छवियाँ अंकितकर ली वे शेष रह गयी, और शेष रह गयी वे अनगिनती स्मृतियाँ, जो हजारो लोगोके मन और मस्तिष्कमे सूमके धनकी तरह आज भी सचित है, सुरक्षित है और अविस्मरणीय है।